अखण्ड-ज्योति

Vol: 48 1985 No 4, 6, 8, 10

G. K. V. Lib
Hardwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

130311

Stock Verification-2024

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

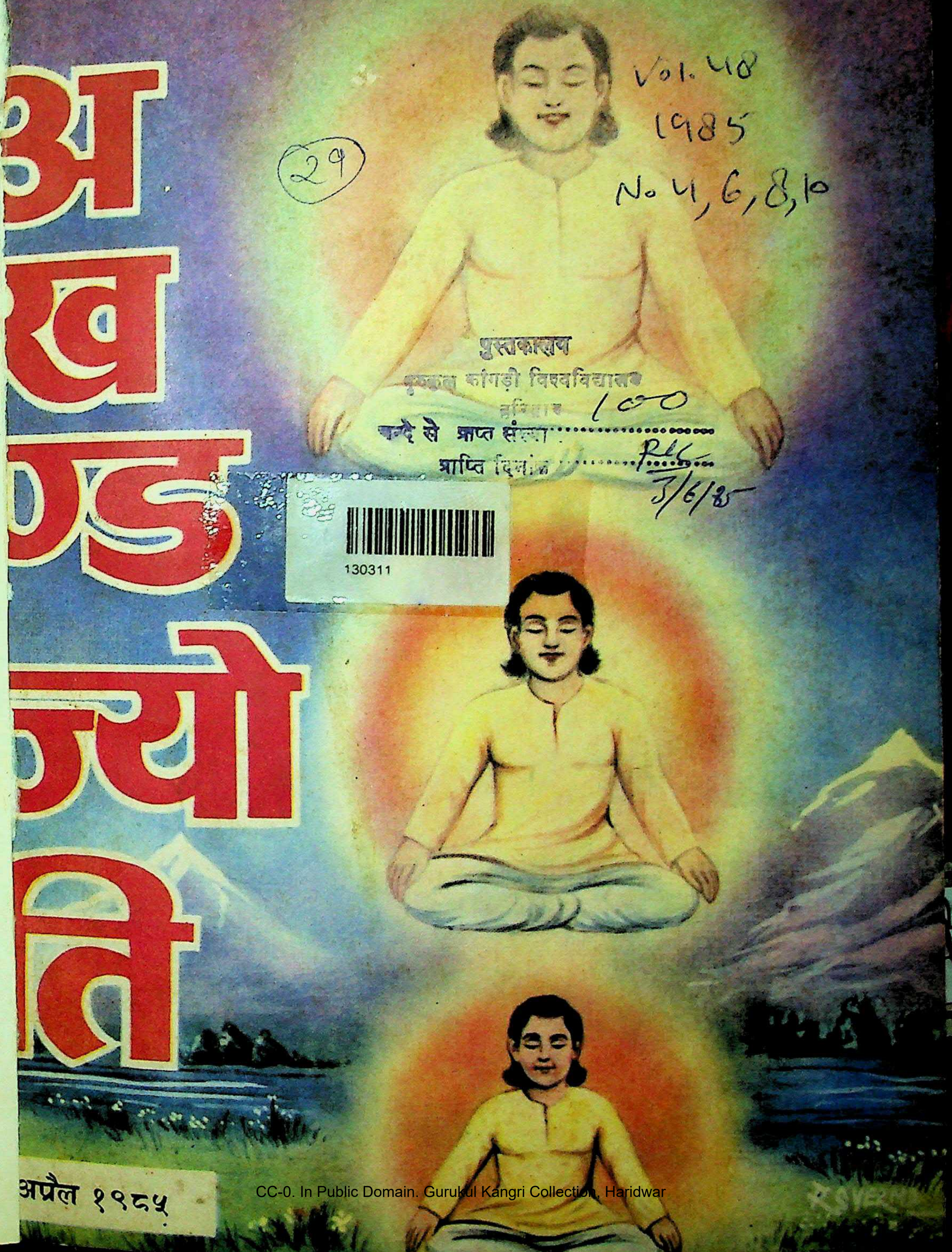

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदेव द्वारा लिखित फोल्डरों एवं नवीनतम पुस्तकों में से कुछ का अँग्रेजी अनुवाद कराना है। अनुवाद ऐसा हो जो बुद्धि जीवी वर्ग एवं विदेशों में त्रुटिहीन माना जा सके, सराहा जा सके। अखण्ड-ज्योति परिजनों में जिनकी अँग्रेजी अनुवाद की उच्चस्तरीय योग्यता हो, कृपया सहयोग करने का अनुग्रह करें। अनुवाद शान्ति-कुंज रहकर ही करना है।

अप्रैल	—	१९८५
अङ्क	—	४
वर्ष	—	४८
वार्षिक चन्दा	—	२०)
आजीवन	—	२००)

पढ़ें और पायें

१- आत्मा और परमात्मा की एकता — १
२- सौभाग्य सुयोग का आरम्भ — २
३- तीन जन्मों का सम्बन्ध इस जन्म का समर्पण — ७
४- मार्गदर्शक द्वारा चार हिमालय यात्राओं का निर्देश — ९
५- तीनों कार्यक्रमों का प्राणापण से निर्वाह — १२
६- सफलताओं के कुछ रहस्य सूत्र — १५
७- प्रथम बुलावा—पग-पग पर खतरे — १७
८- हिमालय की कन्दराओं में ऋषि सत्ता से साक्षातकार — २३
९- आमन्त्रण का प्रयोजन एवं भावी रूप रेखा का स्पष्टीकरण — २५
१०- दो मनों के मल्लयुद्ध में उत्कृष्ट की विजय — २८
११- अध्यात्म का ध्रुव केन्द्र—देवात्मा हिमालय — ३१
१२- द्वितीय हिमालय यात्रा एवं मथुरा के लिए प्रयाण — ३४
१३- मथुरा के कुछ रहस्यमय प्रसंग — ३९
१४- मथुरा का विचार क्रान्ति अभियान एवं प्रयाण की तैयारी — ४१
१५- तीसरी हिमालय यात्रा— ऋषि परम्परा का बीजारोपण — ४३
१६- शान्ति-कुञ्ज – गायत्री तीर्थ — ४५
१७- ऋषियों की पुरातन योजनाओं का शुभारम्भ एवं क्रियान्वयन — ४९
१८- हमने जीवन भर बोया एवं काटा — ५४
१९- चौथा और अन्तिम निर्देशन — ५७
२०- वीरभद्र यह करने में जुटेंगे — ६०
२१- यह भयावह घटाटोप तिरोहित होगा — ६३
२२- नवयुग का आगमन अति निकट है — ६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पता अखण्ड-ज्योति संस्थान मथुरा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

अखण्ड ज्योति

प्रज्ञायोग अध्यात्म विज्ञान

४१

वर्ष ४८ अङ्क ४ | अप्रैल १९८५ | वार्षिक २०) आजीवन २००)

(जीवन वृत्तान्त विशेषांक)

आत्मा और परमात्मा की एकता

मनुष्य शरीर, इस निखिल ब्रह्माण्ड का छोटा स्वरूप है। इस काया को व्यापक प्रकृति की अनुकृति कहा गया है। विराट् का वैभव इस पिण्ड के अन्तर्गत बीज रूप से प्रसुप्त स्थिति में विद्यमान है। कषाय-कल्मषों का आवरण चढ़ जाने से उसे नर-पशु की तरह जीवन यापन करना पड़ता है। यदि संयम और निग्रह के आधार पर इसे पवित्र और प्रखर बनाया जा सके तो इसी को ऋद्धि-सिद्धियों से ओत-प्रोत बनाया जा सकता है। कोयला ही हीरा होता है। पारे से मकरध्वज बनता है। यह अपने आप को तपाने का—तपश्चर्या का—चमत्कार है।

जीवात्मा परमात्मा का अंशधर ज्येष्ठ पुत्र, युवराज है। संकीर्णता के भव-बन्धनों से छूटकर वह "आत्मवत् सर्व भूतेषु" की मान्यता परिपुष्ट कर सके, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना परिपक्व कर सके तो इसी जीवन में स्वर्ग और मुक्ति का रसास्वादन कर सकता है। जीव को ब्रह्म की समस्त विभूतियाँ हस्तगत करने का सुयोग मिल सकता है।

हम काया को तपश्चर्या से तपायें और चेतना को परम सत्ता में योग द्वारा समर्पित करें तो नर को नारायण, पुरुष को पुरुषोत्तम, क्षुद्र को महान बनने का सुयोग निश्चित रूप से मिल सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौभाग्य सुयोग का आरम्भ

पन्द्रह वर्ष तक की आयु ऐसे ही बचपन के खेल-कूद में निकल गई। इनका परिचय देना हो तो कुछ काम की बातें इतनी ही हैं कि पिताजी अपने सहपाठी महामना मालवीय जी के पास उपनयन संस्कार कराके लाये। उसी को गायत्री दीक्षा कहा गया। ग्राम के स्कूल में प्राइमरी पाठशाला तक की पढ़ाई की।

पिताजी ने ही लघु कौमुदी—सिद्धान्त कौमुदी के आधार पर संस्कृत व्याकरण पढ़ा दिया। वे श्रीमद् भागवत की कथाएँ कहने राजा महाराजाओं के यहाँ जाया करते थे। मुझे साथ ले जाते। इस प्रकार भागवत का अद्योपान्त वृत्तान्त याद हो गया।

इसी बीच विवाह भी हो गया। पत्नी अनुशासन प्रिय, परिश्रमी, सेवाभावी और हमारे निर्धारणों में सहयोगिनी थी। बस समझना चाहिए कि पन्द्रह वर्ष समाप्त हुए।

सन्ध्या वन्दन हमारा नियमित क्रम था। मालवीयजी ने गायत्री मन्त्र की विधिवत् दीक्षा दी थी और कहा था कि यह ब्राह्मण की कामधेनु है। इसे बिना नागा किये जपते रहना। पाँच माला अनिवार्य, अधिक जितनी हो जाय उतनी उत्तम। उसी आदेश को मैंने गाँठ बाँध लिया और उसी क्रम को अनवरत चलाता रहा।

बसन्त पर्व का दिन था उस दिन ब्रह्म मुहूर्त में कोठरी में ही सामने प्रकाश-पुंज के दर्शन हुए। आँखें मलकर देखा कि कहीं कोई भ्रम तो नहीं है। प्रकाश प्रत्यक्ष था। सोचा कोई भूत-प्रेत या देव-दानव का विग्रह तो नहीं है। ध्यान से देखने पर भी वैसा कुछ लगा नहीं। विस्मय भी हो रहा था और डर भी लग रहा था। स्तब्ध था।

प्रकाश के मध्य में से एक योगी का सूक्ष्म शरीर उभरा। सूक्ष्म इसलिए कि छवि तो दीख पड़ी पर वह प्रकाश-पुंज के मध्य अधर लटकी हुई थी। यह कौन है? आश्चर्य।

उस छवि ने बोलना आरम्भ किया व कहा—हम तुम्हारे साथ तीन जन्मों से जुड़े हैं। मार्गदर्शन करते आ रहे हैं। अब तुम्हारा बचपन छूटते ही आवश्यक मार्गदर्शन करने आये हैं। सम्भवतः तुम्हें पूर्व जन्मों की स्मृति नहीं है इसी से भय और आश्चर्य हो रहा है। पिछले जन्मों का विवरण देखो और अपना सन्देह निवारण करो। उनकी अनुकम्पा हुई और योग-निद्रा जैसी झपकी आने लगी। बैठा रहा। पर स्थिति ऐसी हो गई मानों मैं निद्राग्रस्त हूँ। तन्द्रा-सी आने लगी। योग निद्रा कैसी होती है इसका अनुभव मैंने जीवन में पहली बार किया। ऐसी स्थिति को ही जाग्रत समाधि भी कहते हैं। इस स्थिति में डुबकी लगाते ही एक-एक करके मुझे अपने पिछले तीन जन्मों का दृश्य क्रमशः ऐसा दृष्टिगोचर होने लगा मानो वह कोई स्वप्न न होकर प्रत्यक्ष घटनाक्रम ही हो। तीन जन्मो की तीन फिल्में आँखों के सामने से गुजर गयीं।

पहला जीवन—सन्त कबीर का, सपत्नीक काशी निवास। धर्मों के नाम पर चल रही विडम्बना का आजीवन उच्छेदन। सरल अध्यात्म का प्रतिपादन।

दूसरा जन्म—समर्थ रामदास के रूप में दक्षिण भारत में विच्छृंखलित राष्ट्र को शिवाजी के माध्यम से संगठित करना। स्वतन्त्रता हेतु वातावरण बनाना एवं स्थान-स्थान पर व्यायामशालाओं एवं सत्संग भवनों का निर्माण।

तीसरा जन्म—रामकृष्ण परमहंस, सपत्नी कलकत्ता निवास। इस बार पुनः गृहस्थ में रहकर विवेकानन्द जैसे अनेकों महापुरुष गढ़ना व उनके माध्यम से संस्कृति के नव-जागरण का कार्य सम्पन्न कराना।

आज याद आता है कि जिस सिद्ध पुरुष—अंशधर ने हमारी पन्द्रह वर्ष की आयु में घर पधार कर पूजा की कोठरी में प्रकाश रूप में दर्शन दिया था, उनका दर्शन करते ही मन ही मन तत्काल अनेकों प्रश्न सहसा उठ खड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए थे। सद्गुरुओं की तलाश में आमतौर से जिज्ञासु गण मारे-मारे फिरते हैं। जिस-तिस से पूछते हैं। ऐसा लाभ मिलने को अपना भारी सौभाग्य मानते हैं। कोई कामना होती है तो उसकी पूर्ति के वरदान माँगते हैं। पर अपने साथ जो घटित हो रहा था, वह उसके सर्वथा विपरीत था। महामना मालवीय जी से गायत्री मन्त्र की दीक्षा पिताजी ने आठ वर्ष की आयु में ही दिलवा दी थी। उसी को प्राण दीक्षा बताया गया था। गुरु वरण होने की बात भी वहीं समाप्त हो गई थी। और किसी गुरु के प्राप्त होने की कभी कल्पना भी नहीं उठी। फिर अनायास ही वह लाभ कैसे मिला, जिसके सम्बन्ध में अनेकों किम्वदन्तियाँ सुनकर हमें भी आश्चर्यचकित होना पड़ा है।

शिष्य गुरुओं की खोज में रहते हैं। मनुहार करते हैं। कभी उनकी अनुकम्पा भेंट दर्शन हो जाय तो अपने को धन्य मानते हैं। उनसे कुछ प्राप्त करने की आकाँक्षा रखते हैं। फिर क्या कारण है कि मुझे अनायास ही ऐसे सिद्ध पुरुष का अनुग्रह प्राप्त हुआ। यह कोई छद्म तो नहीं है? अदृश्य में प्रकटीकरण की बात भूत-प्रेत से सम्बन्धित सुनी जाती है और उनसे भेंट होना किसी अशुभ अनिष्ट का निमित्त कारण माना जाता है। दर्शन होने के उपरान्त मन में यही संकल्प विकल्प उठने लगे। सन्देह उठा, किसी विपत्ति में फँसने जैसा कोई अशुभ तो पीछे नहीं पडा।

मेरे इस असमंजस को उन्होंने जाना। रुष्ट नहीं हुए। वरन् वस्तुस्थिति को जानने के उपरान्त किसी निष्कर्ष पर पहुँचने और बाद में कदम उठाने की बात उन्हें पसन्द आई। यह बात उनकी प्रसन्न मुख-मुद्रा को देखने से स्पष्ट झलकती थी। कारण पूछने में समय नष्ट करने के स्थान पर उन्हें यह अच्छा लगा कि अपना परिचय, आने का कारण और मुझे पूर्वजन्म की स्मृति दिलाकर विशेष प्रयोजन के निमित्त चुनने का हेतु स्वतः ही समझा दें। कोई घर आता है तो उसका परिचय और आगमन का निमित्त कारण पूछने का लोक व्यवहार भी है। फिर कोई वजनदार आगन्तुक जिसके घर आते हैं उसका भी कोई वजन तौलते है। अकारण हलके और ओछे आदमी के यहाँ जा पहुँचना उनका महत्व भी घटाता है और किसी तर्क बुद्धि वाले के मन में ऐसा कुछ घटित होने के पीछे कोई कारण न होने की बात पर सन्देह होता है और आश्चर्य भी।

पूजा की कोठरी में प्रकाश-पुंज उस मानव ने कहा- "तुम्हारा सोचना सही है। देवात्माएँ जिनके साथ सम्बन्ध जोड़ती हैं उन्हें परखती हैं। अपनी शक्ति और समय खर्च करने से पूर्व कुछ जाँच-पड़ताल भी करती हैं। जो भी चाहे उसके आगे प्रकट होने लगें और उसका इच्छित प्रयोजन पूरा करने लगे ऐसा नहीं होता। पात्र-कुपात्र का अन्तर किये बिना चाहे जिसके साथ सम्बन्ध जोड़ना किसी बुद्धिमान और सामर्थ्यवान के लिए कभी कहीं सम्भव नहीं होता। कई लोग ऐसा सोचते तो हैं कि किसी शक्ति सम्पन्न महामानव के साथ सम्बन्ध जोड़ने में लाभ है। पर यह भूल जाते हैं कि दूसरा पक्ष अपनी सामर्थ्य किसी निरर्थक व्यक्ति के निमित्त क्यों गँवायेंगे।

हम सूक्ष्म दृष्टि से ऐसे सत्पात्र की तलाश करते रहे जिसे सामयिक लोक-कल्याण का निमित्त कारण बनाने के लिए प्रत्यक्ष कारण बनावें। हमारा यह सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर से स्थूल कार्य नहीं बन पड़ते। इसके लिए किसी स्थूल शरीर धारी को ही माध्यम बनाना और शस्त्र की तरह प्रयुक्त करना पड़ता है। यह विषम समय है। इसमें मनुष्य का अहित होने की अधिक सम्भावनाएँ हैं। उन्हीं का समाधान करने के निमित्त तुम्हें माध्यम बनाना है। जो कमी है उसे दूर करना है। अपना मार्गदर्शन और सहयोग देना है। इसी निमित्त तुम्हारे पास आना हुआ है। अब तक तुम अपने सामान्य जीवन से ही परिचित थे। अपने को साधारण व्यक्ति ही देखते थे। असमंजस का एक कारण यह भी है। तुम्हारी पात्रता का वर्णन करें तो भी कदाचित तुम्हारा सन्देह निवारण न हो। कोई किसी की बात पर अनायास ही विश्वास करे ऐसा समय भी कहाँ है। इसीलिये तुम्हें पिछले तीन जन्मों की जानकारी दी गयी।"

तीनों ही जन्मों का विस्तृत विवरण जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक का दर्शाने के बाद उन्होंने बताया कि किस प्रकार वे इन तीनों जीवनों में हमारे साथ रहे और सहायक बने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे बोले—"यह तुम्हारा चौथा जन्म है। तुम्हारे इस जन्म में भी सहायक रहेंगे। और इस शरीर से वह करावेंगे जो समय की दृष्टि से आवश्यक है। सूक्ष्म शरीरधारी प्रत्यक्ष जन-सम्पर्क नहीं कर सकते और न घटनाक्रम स्थूल शरीरधारियों द्वारा ही सम्पन्न होते हैं इसलिए योगियों को उन्हीं का सहारा लेना पड़ता है।

तुम्हारा विवाह हो गया सो ठीक हुआ। यह समय ऐसा है जिसमें एकाकी रहने से लाभ कम और जोखिम अधिक है। प्राचीन काल में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, गणेश, इन्द्र आदि सभी सपत्नीक थे। सातों ऋषियों की पत्नियाँ थीं। कारण कि गुरुकुल आरण्यक स्तर के आश्रम चलाने में माता की भी आवश्यकता पड़ती है और पिता की भी। भोजन, निवास, वस्त्र, दुलार आदि के लिए भी माता चाहिए और अनुशासन, अध्यापन, अनुदान यह पिता की ओर से मिलता है। गुरु ही पिता है और गुरु पत्नी ही माता। ऋषि परम्परा के निर्वाह के लिए यह उचित भी है आवश्यक भी। आजकल भजन के नाम पर जिस प्रकार आलसी लोग सन्त का बाना पहनते और भ्रम जंजाल फैलाते हैं, तुम्हारे विवाहित होने से मैं प्रसन्न हूँ। इसमें बीच में व्यवधान तो आ सकता है पर पुनः तुम्हें पूर्व जन्म में तुम्हारे साथ रही सहयोगिनी पत्नी के रूप में मिलेगी जो आजीवन तुम्हारे साथ रहकर महत्वपूर्ण भूमिका निबाहेगी। पिछले २ जन्मों में तुम्हें सपत्नीक रहना पड़ा है। यह न सोचना कि इससे कार्य में बाधा पड़ेगी। वस्तुतः इससे आज की परिस्थितियों में सुविधा ही रहेगी एवं युग परिवर्त्तन के प्रयोजन में भी सहायता मिलेगी।"

वह पावन दिन—वसन्त पर्व का दिन था। प्रातः-ब्रह्म मुहूर्त था। नित्य की तरह सन्ध्या वन्दन का नियम निर्वाह चल रहा था। प्रकाश-पुंज के रूप में देवात्मा का दिव्य दर्शन—उसी कौतूहल से मन में उठी जिज्ञासा और उसके समाधान का यह उपक्रम चल रहा था। मैंने अपना पिछला जन्म आदि से अन्त तक देखा। इसके बाद दूसरा भी। तदुपरान्त तीसरा भी। तीनों ही जन्म दिव्य थे। साधना में निरत रहे थे एवं तीनों ही में समाज के नवनिर्माण की महती भूमिका निभानी पड़ी थी। उन सामने उपस्थिति देवात्मा के मार्गदर्शन तीनों ही जन्मों में मिलते रहे थे। इसलिए उस समय तक जो अपरिचित जैसा कुछ लगता था वह दूर हो गया। एक नया भाव जगा घनिष्ट आत्मीयता का। उनकी महानता अनुकम्पा और साथ ही अपनी कृतज्ञता का। इस स्थिति ने मन का काया-कल्प कर दिया। कल तक जो परिवार अपना लगता था वह पराया लगने लगा और जो प्रकाश-पुंज अभी-अभी सामने आया था। वह प्रतीत होने लगा कि मानो यही हमारी आत्मा है। इसी के साथ हमारा भूतकाल बँधा हुआ था और अब जितने दिन जीना है, वह अवधि भी इसी के साथ जुड़ी रहेगी। अपनी ओर से कुछ कहना नहीं। कुछ चाहना नहीं। किन्तु दूसरे का जो

> मैं धुँधले तौर पर यह अनुभव करता हूँ
> कि जब मेरे चारों ओर सब कुछ बदल रहा है,
> मर रहा है,तब भी इन सब परिवर्त्तनों के नीचे
> एक जीवित शक्ति है, जो कभी नहीं बदलती,
> जो सबको एक में ग्रथित करके रखती है,
> उसका संहार करती है और फिर नये सिरे से
> पैदा करती है, यही शक्ति ईश्वर है, परमात्मा
> है। मैं मानता हूँ कि ईश्वर जीवन है, सत्य है,
> प्रकाश है, प्रेम है, वह परम मंगल है।
>
> —महात्मा गाँधी

आदेश हो उसे प्राण-पण से पालन करना। इसी का नाम समर्पण है। समर्पण मैंने उसी दिन प्रकाश-पुंज देवात्मा को किया और उन्हीं को न केवल मार्गदर्शक वरन् भगवान के समतुल्य माना। उस सम्बन्ध निर्वाह को प्रायः साठ वर्ष होने को आते हैं। बिना कोई तर्क बुद्धि लड़ाये, बिना कुछ ननुनच किये, एक ही इशारे पर—एक ही मार्ग पर गतिशीलता होती रही है। सम्भव है, नहीं, अपने बूते यह हो सकेगा या नहीं, इसके परिणाम क्या होंगे? इन प्रश्नों में से एक भी आज तक मन में उठा नहीं।

उस दिन मैंने एक और नई बात समझी कि सिद्ध पुरुषों की अनुकम्पा मात्र लोक-हित के लिए—सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के निमित्त होती है। न उनका कोई सगा सम्बन्धी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है न उदासीन विरोधी। किसी को ख्याति, सम्पदा या कीर्ति दिलाने के लिए उनकी कृपा नहीं बरसती। विराट् ब्रह्म—विश्व मानव ही उनका आराध्य होता है। उसी के निमित्त अपने स्वजनों को वे लगाते हैं। अपनी इस नवोदित मान्यता के पीछे राम कृष्ण—विवेकानन्द का, समर्थ रामदास—शिवाजी का, चाणक्य चन्द्रगुप्त का, गाँधी-विनोबा का, बुद्ध-अशोक का गुरु शिष्य सम्बन्ध स्मरण हो आया। जिनकी आत्मीयता में ऐसा कुछ न हो, सिद्धि-चमत्कार, कौतुक-कौतूहल, दिखाने या सिखाने का क्रिया-कलाप चलता रहा हो, समझना चाहिए कि वहाँ गुरु और शिष्य की क्षुद्र प्रवृत्ति है और जादूगर बाजीगर जैसा कोई खेल-खिलवाड़ चल रहा है। गन्ध बाबा—चाहे जिसे फूल की सुगन्धि सुँघा देते थे। बाघ बाबा, अपनी कुटी में बाघ को बुलाकर बिठा लेते थे। समाधि बाबा कई दिन तक जमीन में गड़े रहते थे। सिद्ध बाबा आगन्तुकों की मनोकामना पूरी करते थे। ऐसी-ऐसी अनेक जनश्रुतियाँ भी दिमाग में घूम गईं और समझ में आया कि यदि इन घटनाओं के पीछे मस्मेरीज्म स्तर की जादूगरी थी तो वे 'महान्' कैसे हो सकते हैं। ठण्डे प्रदेश में गुफा में रहना जैसी घटनाएँ भी कौतूहल वर्धक ही हैं। जो काम साधरण आदमी न कर सके उसे कोई एक करामात की तरह कर दिखाए तो इसमें कहने भर की सिद्धाई है। मौन रहना, हाथ पर रखकर भोजन करना, एक हाथ ऊपर रखना, झूले पर पड़े-पड़े समय गुजारना जैसे असाधारण करतब दिखाने वाले बाजीगर सिद्ध हो सकते हैं। पर यदि कोई वास्तविक सिद्ध या शिष्य होगा तो उसे पुरातन काल के लोक मंगल के लिए जीवन उत्सर्ग करने वाले ऋषियों के राजमार्ग पर चलना पड़ा होगा। आधुनिक काल में भी विवेकानन्द, दयानन्द, कबीर, चैतन्य समर्थ की तरह उसी मार्ग पर चलना पड़ा होगा। भगवान अपना नाम जपने वाले मात्र से प्रसन्न नहीं होते। न उन्हें पूजा-प्रसाद आदि की आवश्यकता है। जो उनके इस विश्व उद्यान को सुरम्य, सुविकसित करने में लगाते हैं, उन्हीं का नाम जप सार्थक है। यह विचार मेरे मन में उसी बसन्त पर्व के दिन, दिनभर उठते रहे। क्योंकि उनने स्पष्ट कहा था कि पात्रता में जो कमी है उसे पूरा करने के साथ-साथ लोक-मंगल का कार्य भी साथ-साथ करना है। एक के बाद दूसरा नहीं दोनों साथ-साथ। चौबीस वर्ष का उपासना क्रम समझाया। गायत्री पुरश्चरणों की श्रृंखला बताई। इसके साथ पालन करने योग्य नियम बताये, साथ ही स्वतन्त्रता संग्राम में एक सच्चे स्वयंसेवक की तरह काम करते रहने के लिये कहा।

उस दिन उन्होंने हमारा समूचा जीवनक्रम किस प्रकार चलना चाहिए इसका स्वरूप एवं पूरा विवरण बताया। बताया ही नहीं स्वयं लगाम हाथ में लेकर चलाया भी। चलाया ही नहीं, हर प्रयास को सफल भी बनाया।

उसी दिन हमने सच्चे मन से उन्हें समर्पण किया। वाणी ने नहीं, आत्मा ने कहा—"जो कुछ पास में है,

> मृत व्यक्ति वापस नहीं लौटते, गत रजनी फिर नहीं आती, ...अतः मृत भूतकाल की पूजा छोड़ कर, आओ, सप्राण वर्त्तमान की पूजा करें।.........विलीन विनष्ट पथ के अनुसन्धान में शक्ति क्षय न करके, आओ, सुप्रशस्त नवीन मार्ग पर जो सामने है, चल पड़ें। इसी में बुद्धिमत्ता है।
>
> —स्वामी विवेकानन्द

आपके निमित्त ही अर्पण। भगवान को हमने देखा नहीं पर वह जो कल्याण कर सकता था वही आप भी कर रहे हैं। इसलिए आप हमारे भगवान हैं। जो आज सारे जीवन का ढाँचा आपने बताया है उसमें राई रत्ती प्रमाद न होगा।

उस दिन उनने भावी जीवन सम्बन्धी थोड़ी-सी बातें विस्तार से समझाईं (१) गायत्री महाशक्ति के चौबीस वर्ष में चौबीस महा-पुरश्चरण (२) अखण्ड घृत दीप की स्थापना (३) चौबीस वर्ष में एवं उसके बाद समय-समय पर क्रमबद्ध मार्गदर्शन के लिए चार बार हिमालय अपने स्थान पर बुलाना और प्रायः छह माह से एक वर्ष तक अपने समीपवर्ती क्षेत्र में ठहराना।

इस सन्दर्भ में और भी विस्तृत विवरण उन्हें बताना था, सो बता दिया। विज्ञ पाठकों को इतनी ही जानकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्याप्त है, जिसका ऊपर की पंक्तियों में उल्लेख है। उनके बताये सारे काम साथ-साथ निभते चले गए। रात्रि में पात्रता परिष्कृत करने की उपासना, साधना। दिन में परमार्थ प्रयोजन की आराधना। सम्भव हुआ तो जौ की रोटी। न सम्भव हुआ तो परोसे गए सामान में से जो सात्विक हो उसका चयन। यह दोनों क्रम साथ-साथ चलते रहे। दोनों परिपूर्ण श्रद्धा और सच्चाई के साथ बन पड़े। इसलिए अहर्निशि आनन्द में डूबे रहने जैसी मनः स्थिति बनी रही। चार घण्टे की नींद पर्याप्त बैठती रही। इतने समय में थकान पूरी तरह दूर हो जाती। पूरे मन से काम करने की आदत ने सोने की आदत भी ऐसी डाली जिसमें चार घण्टे इतनी गहरी नींद में सोना होता कि दीन दुनिया का कोई पता न चलता। एक रात्रि तो बाहर वर्षा में सोना हुआ, कपड़े भीगते रहे। पर नींद न खुली। नियत समय पर उठना हुआ तब तक पता चला कि कपड़े पूरी तरह भीग गये हैं।

निद्रा की तरह जिह्वा भी काबू में रही। उसने भी कभी हैरान न किया। कितने ही दिन, पालक बथुआ, मैंथी स्तर के पत्तों से कट गये। कितने ही दिन अंकुरित अन्न से, कई बार बिना नमक का सत्तू काम दे गया। स्वाद किसे कहते हैं, जाना ही नहीं। पेट इतना सही रहा अच्छी तरह चबाकर ध्यान रखने पर जो विवेक पूर्वक खाया गया वह भली प्रकार हजम होता रहा।

स्वाध्याय का, अध्ययन का व्यसन रहा। उसके लिए रास्ता चलते हुए पढ़ने की आदत रही। उससे एक साथ दो काम सधते रहे। पैर चलते रहे और आँखें पुस्तकें देखते हुए पढ़ती रहीं। हाथों को पुस्तक थामे रहने और पन्ने उलटते रहने का काम करना पड़ा। इस प्रकार नित्य नियमित रूप से टहलने के साथ पढ़ने का प्रतिफल आश्चर्य-जनक हुआ।

'समय की कमी' की शिकायत करने वालों के लिए हमारी दिनचर्या और कार्यविधि की नियमित संगति—यह दो अति महत्वपूर्ण सूत्र हैं। २४ घण्टे बहुत होते हैं। इनका ढीले-पोले ढंग से नहीं। कसकर—मुस्तैदी के साथ उपयोग किया जाय तो इतने भर में बहुत बड़ी उपलब्धि हो सकती है। हमारी जीवनचर्या में १५ में से लेकर ३६ वर्ष की आयु तक का जो त्रिविधि उपयोग हुआ वह हर किसी जागरूक व्यक्ति के लिए सम्भव है। इस पद्धति को अपनाने पर किसी को भी समय की कमी की कभी शिकायत नहीं रह सकती।

हमारे जीवन के सौभाग्य का सूर्योदय आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व हुआ उसे हम जन्म-जन्मान्तरों तक स्मरण रखेंगे। भगवान ऐसा सुयोग सबको दे, जिससे स्वयं पार होना और दूसरों को अपने कन्धे पर बिठाकर पार लगाना सम्भव हो सके।

×

भगवान निराकार सर्वव्यापी, एवं जन्म-मरण से रहित है। विकृत परिस्थितियों को सन्तुलित करने के लिए उनकी प्रेरणा से तूफानी आन्दोलन उभरते रहते हैं। ये अन्दोलन ही अवतार कहलाते हैं। धर्मचक्र प्रवर्त्तन, महाभारत संयोजन, स्वतन्त्रता संग्राम की तरह प्रज्ञा अभियान भी एक ऐसा ही आन्दोलन है।

× × × ×

महामानव सन्त, सुधारक और शहीद का जीवन जीते हैं। वे अपने चरित्र और प्रयासों से असंख्यों को ऊँचा उठाते, आगे बढ़ाते हैं। उन्हें देवात्मा या ऋषि भी कहते हैं। ये ऋषि अवतार सत्ता के ही अंश होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन जन्मों का सम्बन्ध — इस जन्म का समर्पण

पिछले जिन तीन जन्मों का दृश्य गुरुदेव ने हमें दिखाया उनमें से प्रथम थे सन्त कबीर, दूसरे समर्थ रामदास, तीसरे रामकृष्ण परमहंस। इन तीनों का कार्यकाल इस प्रकार रहा है—कबीर ई० (सन् १३९८ से १५१८) समर्थ (सन १६०८ से १६८२) श्री रामकृष्ण परमहंस (सन् १८३६ से १८८६)। यह तीनों ही भारत की सन्त सुधारक परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। उनके शरीरों द्वारा ऐसे महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए जिससे देश, धर्म, समाज और संस्कृति का महान कल्याण हुआ।

भगवान के भक्त तीनों ही थे। इसके बिना आत्म-बल की समर्थता और कषाय-कल्मषों का निराकरण कठिन है। किन्तु साथ ही भगवान के विश्व उद्यान को सींचने और समुन्नत सुविकसित करने की प्रक्रिया भी साथ-साथ ही चलनी चाहिए तो इन तीनों के जीवनों में यह परम्पराएँ भली प्रकार समाहित रहीं।

कबीर को एक मुसलमान जुलाहे ने तालाब किनारे पड़ा हुआ पाया था। उन्हें कोई ब्राह्मण कन्या अवैध सन्तान होने के कारण इस प्रकार छोड़ गई थी। जुलाहे ने उन्हें पाल लिया। वे सन्त तो आजीवन रहे पर गुजारे के लिए रोटी अपने पैतृक व्यवसाय से कमाते रहे।

अपने बारे में उनने लिखा है—

काशी का मैं बासी ब्राह्मण, नाम मेरा परवीना।
एक बार हर नाम बिसारा, पकरि जुलाहा कीन्हा॥
भई मेरा कौन बुनेगा ताना॥

कबीर ने तत्कालीन हिन्दू समाज की कुरीतियाँ और मत-मतान्तरों की विग्रह विडम्बनाओं को दूर करने के लिए प्राण-पण से प्रयत्न किये। उन पर इस्लाम विरोधी होने का इलजाम लगाया गया और हाथ-पैरों में लोहे की जंजीर बाँधकर नदी में डलवा दिया गया पर ईश्वर कृपा से जंजीर टूट गई और वे जीवित बच गये। कुल वंश को लेकर उन्हें समाज का विग्रह विरोध सहना पड़ा पर वे एकाकी अपने प्रतिपादन पर अड़े रहे। उन दिनों काशी में मृत्यु से स्वर्ग मिलने और मगहर में मरने पर नरक जाने की मान्यता प्रचलित थी। वे इसका खण्डन करने के लिए अन्तिम दिनों मगहर ही चले गये और वहीं शरीर छोड़ा कबीर विवाहित थे। उनकी पत्नी का नाम लोई था वह आजीवन उनके हर कार्य में उनके साथ रहीं। जीवन का एक भी दिन उनने ऐसा न जाने दिया, जिसमें भ्रान्तियों के निवारण और सत्परम्पराओं के प्रतिपादन में प्राण-पण से प्रयत्न न किया हो। विरोधियों में से कोई उन्हें तनिक भी न झुका सका।

मरते समय उनकी लाश को हिन्दू जलाना चाहते थे मुसलमान दफनाना। इसी बात को लेकर विग्रह खड़ा हो गया। चमत्कार यह हुआ कि कफन के नीचे से लाश गायब हो गई। उनके स्थान पर फूल पड़े मिले। इनमें से आधों को मुसलमानों ने दफनाया और आधों को हिन्दुओं ने जलाया। दोनों ही सम्प्रदाय वालों ने उनकी स्मृति में भव्य भवन बनाये। कबीर पन्थ को मानने वाले लाखों व्यक्ति हिन्दुस्तान में हैं।

दूसरे समर्थ रामदास महाराष्ट्र के उच्चस्तरीय सन्त थे। उन्होंने शिवाजी को स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने के लिए तैयार किया। भवानी से अजय पराक्रम वाली तलवार दिलवाई। उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर ७०० महावीर मन्दिर बनवाये। जिनमें हनुमान जी की प्रतिमा तो थी ही साथ ही व्यायामशाला और सत्संग प्रक्रिया भी नियमित रूप से चलती थी। इन देवालयों के माध्यम से शिवाजी को सैनिक, शस्त्र और धन मिलता था। ताकि स्वतन्त्रता संग्राम सफलता पूर्वक चलता रहे। शिवाजी ने राज्य की स्थापना की। उसकी गद्दी पर गुरु के खड़ाऊँ स्थापित किये और स्वयं प्रबन्धक मात्र रहे। शिवाजी द्वारा छेड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यगाआन्दोलन बढ़ता ही गया और अन्त में गान्धीजी के नेतृत्व में भारत स्वतन्त्र होकर रहा।

तीसरे रामकृष्ण परमहंस कलकत्ता के पास एक देहात में जन्मे थे। वे कलकत्ता दक्षिणेश्वर मन्दिर में पूजा करते थे। हजारों जिज्ञासु नित्य उनके पास आकर ज्ञान पिपासा तृप्त करते थे और उनके आशीर्वाद अनुदानों से लाभ उठाते थे। उनकी धर्मपत्नी शारदामणि थी।

उन्होंने नरेन्द्र के रूप में सुपात्र पाया और संन्यास देकर विवेकानन्द नाम दिया और देश-देशान्तरों में भारतीय संस्कृति की गरिमा समझाने भेजा। देश में शिक्षित वर्ग ईसाई एवं नास्तिक बनता चला जा रहा था। विवेकानन्द के प्रवचनों में लाखों के मस्तिष्क सुधरे। उनने संसार भर में रामकृष्ण परमहंस मिशन की स्थापनाएँ कीं जो पीड़ा निवारण की सेवा करता है। विवेकानन्द स्मारक कन्या कुमारी पर,जहाँ उन्हें नव-जागृति का सन्देश गुरु से मिला था, बना है एवं देखने ही योग्य है।

यह एक आत्मा के विभिन्न शरीरों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य आत्माओं में प्रेरणाएँ भर कर उस दैवी सत्ता ने समय-समय पर उनसे बड़े-बड़े काम कराये। चैतन्य महाप्रभु बंगाल के एवं बाबा जलाराम गुजरात के उन्हीं क संरक्षण में ऊँची स्थिति तक पहुँचे और देश को ऊँचा उठाने में, भगवद् भक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में जन-जन तक पहुँचाने में उस अन्धकार युग में अभिनव सर्वोदय का काम किया।

यह तीन प्रधान जन्म थे जिनकी हमें जानकारी दी गयी। इनके बीच-बीच मध्यकालों में हमें और भी महत्वपूर्ण जन्म लेने पड़े हैं, पर वे इतने प्रख्यात नहीं हैं, जितने उपरोक्त तीन। हमें समग्र जीवन की रूपरेखा इन्हीं में दिखायी गयी और बताया गया कि गुरुदेव इन जन्मों में हमें किस प्रकार अपनी सहायता पहुँचाते—ऊँचा उठाते और सफल बनाते रहे हैं।

अधिक जानने की अपनी इच्छा भी नहीं हुई जब समझ लिया गया कि इतनी महान आत्मा स्वयं पहुँच-पहुँचकर सत्पात्र आत्माओं को ढूँढ़ती और उनके द्वारा बड़े काम कराती रहीं हैं, तो हमारे लिए इस जन्म में भी यही उचित है कि एक का पल्ला पकड़ें, एक नाव में बैठें और अपनी निष्ठा डगमगाने न दें। इन तीन महान् जन्मों के माध्यम से जो समय बचा, उसे हमें कहाँ-कहाँ किस रूप में, कैसे खर्च करना पड़ा, यह पूछने का अर्थ उन पर अविश्वास व्यक्त करना था। अनेक गवाहियाँ माँगना था। हमारे सन्तोष के लिए यह तीन जन्म ही पर्याप्त थे।

महान् कार्यों का बोझ उत्तरदायित्व सम्भालने वाले को समय-समय पर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अनेक प्रकार के असाधारण पराक्रम दिखाने पड़ते हैं। यह हमारे साथ भी घटित होता रहा है। दौड़-दौड़कर गुरुदेव सहायता के लिए पहुँचते रहे हैं। हमारी नन्हीं-सी सामर्थ्य में अपनी महती सामर्थ्य मिलाते रहे हैं, संकटों से बचाते रहे हैं, लड़खड़ाते पैरों को सम्भालते रहे हैं। इन तीन जन्मों की घटनाओं से ही पूरी तरह विश्वास हो गया। इसलिए उसी दिन निश्चय कर लिया कि अपना जीवन अब इन्हीं के चरणों पर समर्पित रहेगा। इन्हीं के संकेतों पर चलेगा।

इस जन्म में उन्होंने हमें धर्मपत्नी समेत पाया और कहा—इस विषम समय में आध्यात्मिक जीवन धर्मपत्नी समेत अधिक अच्छी तरह बिताया जा सकता है। विशेषतया जब आश्रम बनाकर शिक्षा व्यवस्था करनी हो, माता द्वारा भोजन, निवास, स्नेह-दुलार आदि का प्रबन्ध और पिता द्वारा अनुशासन, अध्यापन, मार्गदर्शन का कार्य चलने में सुविधा रहती है।

●

सुकरात बहुत कुरूप थे। फिर भी वे सदा दर्पण पास रखते थे और बार-बार मुँह देखते रहते थे। एक मित्र ने इस पर आश्चर्य व्यक्त किया और कारण पूछा—तो उनने कहा—"सोचता यह रहता हूँ कि इस कुरूपता का प्रतिकार मुझे अधिक अच्छे कामों की सुन्दरता बढ़ाकर करना चाहिए। इस तथ्य को याद रखने में दर्पण देखने से सहायता मिलती है।" इस सन्दर्भ में एक दूसरी बात,सुकरात ने कहा—"जो सुन्दर है, उन्हें भी इसी प्रकार बार-बार दर्पण देखना चाहिए और सोचना चाहिए कि इस ईश्वर प्रदत्त सौन्दर्य में कहीं दुष्कृतों के कारण दाग धब्बा न लग जाय।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग दर्शक द्वारा चार हिमालय यात्राओं का निर्देश

लोग मार्गदर्शकों और सिद्ध पुरुषों की तलाश करते रहते हैं ताकि उनके अनुग्रह एवं सहयोग से अध्यात्म मार्ग पर चलना और सफलतापूर्वक लक्ष्य तक पहुँच सकना सम्भव हो सके। इसी खोज में लोग एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे की खोज में फिरते हैं, फिर भी उन्हें सफलता मिल नहीं पाती। जो दूसरों के लिए सहायक हुए वे भी अपनी ओर से मुँह फेर लेते हैं।

हमारा अनुभव इन लोगों से सर्वथा भिन्न रहा है। जितनी उत्सुकता साधकों को सिद्ध पुरुष खोजने की होती है उससे असंख्यों गुनी उत्कण्ठा सिद्ध पुरुषों को सुपात्र साधकों की तलाश करने के निमित्त होती है। साधक सत्पात्र चाहिए। जिसने अपना चिन्तन, चरित्र और व्यवहार परिष्कृत कर लिया हो वही सच्चा साधक है। उसे मार्गदर्शक खोजने नहीं पड़ते वरन् वे दौड़कर स्वयं उनके पास आते और उंगली पकड़ कर आगे चलने का रास्ता बताते हैं। जहाँ वे लड़खड़ाते हैं वहाँ गोदी में उठाकर कन्धे पर बिठाकर पार लगाते हैं। हमारे सम्बन्ध में यही हुआ है। घर बैठे पधारकर अधिक सामर्थ्यवान बनाने के लिए २४ वर्ष का गायत्री पुरश्चरण उन्होंने कराया एवं उसकी पूर्णाहुति में सहस्र कुण्डी गायत्री यज्ञ सम्पन्न कराया है। धर्म तन्त्र से लोक शिक्षण के लिए एक लाख अपरिचित व्यक्तियों को परिचित ही नहीं, घनिष्ठ बना कर कन्धे से कन्धा—कदम से कदम मिलाकर—चलने योग्य बना दिया।

अपने प्रथम दर्शन में ही चौबीस महापुरश्चरण पूरे होने एवं चार बार एक-एक वर्ष के लिए हिमालय बुलाने की बात गुरुदेव ने कही।

हमें हिमालय पर बार-बार बुलाये जाने के कई कारण थे। एक यह कि सुनसान प्रकृति के सान्निध्य में—प्राणियों एवं सुविधाओं के अभाव में आत्मा को एकाकीपन अखरता तो नहीं। दूसरे यह कि इस क्षेत्र में रहने वाले हिंस्र पशुओं के साथ मित्रता बना सकने लायक आत्मीयता विकसित हुई या नहीं। तीसरे,वह समूचा क्षेत्र देवात्मा है। उसमें ऋषियों ने मानवी काया में रहते हुए देवत्व उभारा और देव मानव के रूप में ऐसी भूमिकाएँ निभाईं जो साधन और सहयोग के अभाव में साधारण जनों के लिए कर सकना सम्भव नहीं थीं।

उनका मूक निर्देश था कि अगले दिनों उपलब्ध आत्मबल का उपयोग हमें ऐसे ही प्रयोजन के लिए एक साथ करना है, जो ऋषियों ने समय-समय पर तात्कालिक समस्याओं के समाधान के निमित्त अपने प्रबल पुरुषार्थ से सम्पन्न किया था। यह समय ऐसा है जिसमें अगणित अभावों की एक साथ पूर्ति करनी है। साथ ही एक साथ चढ़ दौड़ी अनेकानेक विपत्तियों से जूझना है। यह दोनों ही कार्य इसी उत्तराखण्ड कुरुक्षेत्र में पिछले दिनों सम्पन्न हुए हैं। पुरातन देवताओं ऋषियों में से कुछ आंशिक रूप से सफल हुए हैं, कुछ असफल भी रहे हैं। इस बार एकाकी वे सब प्रयत्न करने और समय की माँग को पूरा करना है। इसके लिए जो मोर्चे बन्दी करनी है उसकी झलक झाँकी समय रहते कर ली जाय ताकि कन्धों पर आने वाले उत्तरदायित्वों की पूर्व जानकारी रहे और पूर्वज किस प्रकार दाँव-पेंच अपना कर विजयश्री को वरण करते रहे हैं, इस अनुभव से कुछ न कुछ सरलता मिले। यह तीनों ही प्रयोजन समझने, अपनाने और परीक्षा में उत्तीर्ण होने के निमित्त ही हमारी भावी हिमालय यात्राएँ होनी हैं; ऐसा उनका निर्देश था। आगे उन्होंने बताया कि "हम लोगों की तरह तुम्हें भी सूक्ष्म शरीर के माध्यम से अति महत्वपूर्ण काम करने होंगे। इसका पूर्वाभ्यास करने के लिए यह सीखना होगा कि स्थूल शरीर से हिमालय के किस भाग में—कितने समय तक किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार ठहरा जा सकता है और निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न रहा जा सकता है।"

"सहज शीत ताप के मौसम में, जीवनोपयोगी सभी वस्तुएं मिल जाती हैं, शरीर पर भी ऋतुओं का असह्य दबाव नहीं पड़ता। किन्तु हिमालय क्षेत्र के असुविधाओं वाले प्रदेश में स्वल्प साधनों के सहारे कैसे रहा जा सकता है,यह भी एक कला है साधना है। जिस प्रकार नट शरीर को साधकर अनेक प्रकार के कौतूहलों का अभ्यास कर लेते हैं, लगभग उसी प्रकार का वह अभ्यास है जिसमें नितान्त एकाकी रहना पड़ता है। पत्तियों और कन्दों के सहारे निर्वाह करना पड़ता है और हिंस्र जीव-जन्तुओं के बीच रहते हुए अपने प्राण बचाना पड़ता है।

जब तक स्थूल शरीर है तभी तक यह झंझट है। सूक्ष्म शरीर में चले जाने पर वे आवश्यकताएँ समाप्त हो जाती हैं जो स्थूल शरीर के साथ जुड़ी हुई हैं। सर्दी-गर्मी से बचाव, क्षुधा पिपासा का निवारण, निद्रा और थकान का दबाव यह सब झंझट उस स्थिति में नहीं रहते हैं। पैरों से चलकर मनुष्य थोड़ी दूर जा पाता है किन्तु सूक्ष्म शरीर के लिए एक दिन में सैकड़ों योजनों की यात्रा सम्भव है। एक साथ, एक मुख से सहस्रों व्यक्तियों के अन्तःकरणों तक अपना सन्देश पहुँचाया जा सकता है। दूसरों की इतनी सहायता सूक्ष्म शरीर धारी कर सकते हैं, जो स्थूल शरीर रहते सम्भव नहीं। इसलिए सिद्ध पुरुष सूक्ष्म शरीर द्वारा काम करते हैं। उनकी साधनाएँ भी स्थूल शरीर वालों की अपेक्षा भिन्न हैं।"

"स्थूल शरीरधारियों की एक छोटी सीमा है। उनकी बहुत सारी शक्ति तो शरीर की आवश्यकताएँ जुटाने में दुर्बलता, रुग्णता, जीर्णता आदि के व्यवधानों से निपटने में खर्च हो जाती है। किन्तु लाभ यह है कि प्रत्यक्ष दृश्य-मान कार्य स्थूल शरीर से ही हो पाते हैं। इस स्तर के व्यक्तियों के साथ घुलना-मिलना—आदान-प्रदान इसी के सहारे सम्भव है। इसलिए जन-साधारण के साथ सम्पर्क साधे रहने के लिए प्रत्यक्ष शरीर से ही काम लेना पड़ता है। फिर वह जरा-जीर्ण हो जाने पर अशक्त हो जाता है और त्यागना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उसके द्वारा आरम्भ किये गये काम अधूरे रह जाते हैं। इसलिए जिन्हें लम्बे समय तक ठहरना है और महत्वपूर्ण व्यक्तियों के अन्तराल में प्रेरणाएँ एवं क्षमताएँ देकर बड़े काम कराते रहना है, उन्हें सूक्ष्म शरीर में ही प्रवेश करना पड़ता है।"

"जब तक तुम्हारे स्थूल शरीर की उपयोगिता रहेगी, तभी तक वह काम करेगा। इसके उपरान्त इसे छोड़कर सूक्ष्म शरीर में चला जाना होगा। तब साधनाएँ भिन्न होंगी, क्षमताएँ बढ़ी-चढ़ी होंगी। विशिष्ट व्यक्तियों से सम्पर्क रहेगा। बड़े काम इसी प्रकार हो सकेंगे।"

गुरुदेव ने कहा—"उचित समय आने पर तुम्हारा परिचय देवात्मा हिमालय क्षेत्र से कराना है। गो मुख से पहले सन्त महापुरुष स्थूल शरीर समेत निवास करते हैं। इस क्षेत्र में भी कई प्रकार की कठिनाइयाँ हैं। इनके बीच निर्वाह करने का अभ्यास करने के लिए, एक-एक साल वहाँ निवास करने का क्रम बना देने की योजना बनाई है। इसके अतिरिक्त हिमालयका हृदय जिसे अध्यात्म का ध्रुव केन्द्र कहते हैं उसमें चार-चार दिन ठहरना होगा, हम साथ रहेंगे। स्थूल शरीर जैसी स्थिति सूक्ष्म शरीर की बनाते रहेंगे। वहाँ कौन रहता है, किस स्थिति में रहता है, तुम्हें कैसे रहना होगा यह भी तुम्हें विदित हो जाएगा। दोनों शरीरों का दोनों क्षेत्रों का अनुभव क्रमशः बढ़ते रहने में तुम उस स्थिति में पहुँच जाओगे, जिसमें ऋषि अपने निर्धारित संकल्पों की पूर्ति में संलग्न रहते हैं। संक्षेप में यही है तुम्हें चार बार हिमालय बुलाने का उद्देश्य। इसके लिए जो अभ्यास करना पड़ेगा, जो परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ेगी, यह उद्देश्य भी इस बुलावे का है। तुम्हारी यहाँ पुरश्चरण साधना में, स्वतन्त्रता आन्दोलन में स्वयं सेवक रूपी सेवा में इस विशिष्ट प्रयोग से कोई विघ्न न पड़ेगा।

सूक्ष्म शरीर धारी उसी क्षेत्र में इन दिनों निवास करते हैं। पिछले हिम युग के बाद परिस्थितियाँ बदल गई हैं। जहाँ धरती का स्वर्ग था, वहाँ का वातावरण अब देवताओं के उपयुक्त नहीं रहा, इसलिए वे अन्तरिक्ष में रहते हैं।

पूर्व काल में ऋषिगण गो मुख से ऋषी केश तक अपनी-अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार रहते थे। वह क्षेत्र अब पर्यटकों, तीर्थयात्रियों और व्यवसाइयों से भर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। इसलिए उसे उन्हीं लोगों के लिए छोड़ दिया गया है। अनेकों देव मन्दिर बन गये हैं ताकि यात्रियों का कौतूहल-पुरातन काल का इतिहास और निवासियों का निर्वाह चलता रहे।"

हमें बताया गया कि थियोसोफी की संस्थापिका ब्लैवेट्स्की सिद्ध पुरुष थीं। ऐसी मान्यता है कि वे स्थूल शरीर में रहते हुए भी सूक्ष्म शरीरधारियों के सम्पर्क में थीं। उनने अपनी पुस्तकों में लिखा है कि दुर्गम हिमालय में "अदृश्य सिद्ध पुरुषों की पार्लियामेण्ट" है। इसी प्रकार उस क्षेत्र के दिव्य निवासियों को "अदृश्य सहायक' भी कहा गया है। गुरुदेव ने कहा कि वह सब सत्य है,तुम अपने दिव्य चक्षुओं से यह सब उसी हिमालयक्षेत्र में देखोगे, जहाँ हमारा निवास है।" तिब्बत क्षेत्र उन दिनों हिमालय की परिधि में आता था। अब वह परिधि घट गई है। तो भी ब्लैवेट्स्की का कथन सत्य है। स्थूल शरीरधारी उसे देख नहीं पाते पर हमें अपने मार्गदर्शक गुरुदेव की सहायता से उसे देख सकने का आश्वासन मिल गया।

गुरुदेव ने कहा—"हमारे बुलावे की प्रतीक्षा करते रहना। जब परीक्षा की स्थिति के लिए उपयुक्तता एवं आवश्यकता समझी जायगी, तभी बुलाया जायगा। अपनी ओर से उसकी इच्छा या प्रतीक्षा भी मत करना। अपनी ओर से जिज्ञासा वश उधर प्रयाण भी मत करना। वह सब निरर्थक रहेगा। तुम्हारे समर्पण के उपरान्त वह जिम्मेदारी हमारी हो जाती है।"

कथन समाप्त हुआ और वे उत्तर या समाधान की प्रतीक्षा किये बिना अन्तर्ध्यान हो गये।

—★—

पास ही बाँसों का झुरमुट—पास ही आम का पेड़। बाँस ऊँचा था, आम छोटा।

एक दिन बाँस ने कहा—देखते नहीं मैं कितना बड़ा हो चला, कितनी तेजी से बढ़ा, एक तुम हो जो इतनी आयु होने पर भी अभी छोटे ही बने हुए हो।

आम ने बाँस के सौभाग्य को सराहा पर अपनी स्थिति पर भी असन्तोष व्यक्त नहीं किया।

समय बीतता गया। बाँस पककर सूख चला। किन्तु आम की डालियाँ फलों से लदी और वह अधिक झुक गया।

बाँस फिर इठलाया। देखते हो मैं सुनहरा हो चला और बिना पत्तियों के भी दूर-दूर से कितना सुनहरा दिखता हूँ। एक तुम हो, जिसे फलों से लदने पर भी नीचा देखना पड़ रहा है।

आम ने फिर भी अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा, बाँस की सराहना भर कर दी।

एक आया यात्रियों का झुण्ड। ठहरने के लिए आश्रय की तलाश थी। सो फलों से लदा छायादार आम का पेड़ सबको सुहाया। डेरा डाल कर वे वहाँ रात्रि विराम करने लगे।

जरूरत आम की पड़ी—भोजन पकाने के लिए। नजर दौड़ाई तो पास में ही सूखा बाँस खड़ा दीखा, और काटा, जलाना आरम्भ कर दिया।

बाँस बड़बड़ाने लगा। पर आम ठहरे यात्रियों को सुख पाते देखकर सन्तोष की साँस लेता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनों कार्यक्रमों का प्राण-पण से निर्वाह

हमें प्रथम साक्षात्कार के समय मार्गदर्शक सत्ता द्वारा तीन कार्यक्रम दिए गये थे। सभी नियमोपनियमों के साथ २४वर्ष का २४ गायत्री महापुरश्चरण सम्पन्न किया जाना था। अखण्ड घृत दीपक को भी साथ-साथ निभाना था। अपनी पात्रता में क्रमशः कमी पूरी करने के साथ लोक-मंगल की भूमिका निभाने हेतु साहित्य सृजन करना दूसरा महत्वपूर्ण दायित्व था। इसके लिये गहन स्वाध्याय भी करना था, जो एकाग्रता सम्पादन की साधना थी। साथ ही जन-सम्पर्क का कार्य भी करना था ताकि भावी कार्य-क्षेत्र को दृष्टिगत रखते हुए हमारी संगठन क्षमता विकसित हो। तीसरा महत्वपूर्ण दायित्व था स्वतन्त्रता संग्राम में एक स्वयंसेवी सैनिक की भूमिका निभाना। देखा जाय तो सभी दायित्व शैली एवं स्वरूप की दृष्टि से परस्पर विरोधी थे। किन्तु साधना एवं स्वाध्याय की प्रगति में इनमें से कोई बाधक नहीं बने। जबकि इस बीच हमें दो बार हिमालय भी जाना पड़ा। अपितु सभी साथ-साथ सहज ही ऐसे सम्पन्न होते चले गए कि हमें स्वयं इनके क्रियान्वयन पर अब आश्चर्य होता है। इसका श्रेय उस दैवी मार्गदर्शक सत्ता को जाता है जिसने हमारे जीवन की बागडोर प्रारम्भ से ही अपने हाथों में ले ली थी एवं सतत् संरक्षण का आश्वासन दिया था।

महा पुरश्चरणों की शृंखला नियमित रूप से चलती रही। जिस दिन गुरुदेव के आदेश से उस साधना का शुभारम्भ किया था उसी दिन घृत दीप की अखण्ड-ज्योति भी स्थापित की। उसकी जिम्मेदारी हमारी धर्मपत्नी ने सम्भाली, जिन्हें हम भी माताजी के नाम से पुकारते हैं। छोटे बच्चे की तरह उस पर हर घड़ी ध्यान रखे जाने की आवश्यकता पड़ती थी। अन्यथा वह बच्चे की तरह मचल सकता था, बुझ सकता था। वह अखण्ड दीपक इतने लम्बे समय से बिना किसी व्यवधान के अब तक नियमित जलता रहा है। इसके प्रकाश में बैठकर जब भी साधना करते हैं तो मनःक्षेत्र में अनायास ही दिव्य भावनाएँ उठती रहती हैं। कभी किसी उलझन को सुलझाना अपनी सामान्य बुद्धि के लिए सम्भव नहीं होता, तो इस अखण्ड-ज्योति की प्रकाश किरणें अनायास ही उस उलझन को सुलझा देती हैं।

नित्य ६६ माला का जप, गायत्री माता के चित्र प्रतीक का धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत, पुष्प, जल से पूजन। जप के साथ-साथ प्रातःकाल के उदीयमान सविता देवता का ध्यान। अन्त में सूर्यार्घ्य दान। इतनी छोटी-सी विधि व्यवस्था अपनाई गई। उसके साथ बीज मन्त्र—सम्पुट आदि का कोई तान्त्रिक विधि-विधान जोड़ा नहीं गया। किन्तु श्रद्धा अटूट रही। सामने विद्यमान गायत्री माता के चित्र के प्रति असीम श्रद्धा उमड़ती रही। लगता रहा वे साक्षात सामने बैठी हैं। कभी-कभी उनके अंचल में मुँह छिपा कर प्रेमाश्रु बहाने के लिए मन उमड़ता। कभी ऐसा नहीं हुआ कि मन न लगा हो। कहीं अन्यत्र भागा हो। तन्मयता निरन्तर प्रगाढ़ स्तर की बनी रही। समय पूरा हो जाता तो अलग अलार्म बजता। अन्यथा उठने को जी ही नहीं करता था। उपासना क्रम में कभी एक दिन भी विघ्न न आया।

यही बात अध्ययन के सम्बन्ध में रही। उसके लिए अतिरिक्त समय न निकालना पड़ा। कांग्रेस कार्यों के लिए प्रायः काफी-काफी दूर चलना पड़ता। जब परामर्श या कार्यक्रम का समय आता तब पढ़ना बन्द हो जाता। जहाँ चलना आरम्भ हुआ वहीं, पढ़ना भी आरम्भ हो गया। पुस्तक साइज के ४० पन्ने प्रति घण्टे पढ़ने की स्पीड रही। कम से कम दो घण्टे नित्य पढ़ने के लिए मिल जाते। कभी-कभी ज्यादा भी। इस प्रकार २ घण्टे में ८० पृष्ठ। महीने में ४८०० पृष्ठ। साल भर में ५८ हजार पृष्ठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साठ वर्ष की कुल अवधि में ३५लाख पृष्ठ हमने मात्र अपनी अभिरुचि के पढ़े हैं। लगभग ३ हजार पृष्ठ नित्य विहंगम रूपसे पढ़ लेने की बात भी हमारे लिए स्नान भोजन की तरह आसान व सहज रही है। यह क्रम प्रायः ६०वर्ष से अधिक समय से चलता आ रहा है और इतने दिन में अनगिनत पृष्ठ उन पुस्तकों के पढ़ डाले जो हमारे लिए आवश्यक विषयों से सम्बन्धित थे। महापुरश्चरणों की समाप्ति के बाद समय अधिक मिलने लगा। तब हमने भारत के विभिन्न पुस्तकालयों में जाकर ग्रन्थों—पाण्डुलिपियों का अध्ययन किया। वह हमारे लिये अमूल्य निधि बन गयी।

मनोरंजन के लिए एक पन्ना भी कभी नहीं पढ़ा है। अपने विषयों में मानों प्रवीणता की उपाधि प्राप्त करनी हो ऐसी तन्मयता से पढ़ा है। इसलिए पढ़े हुए विषय मस्तिष्क में एकीभूत हो गये हैं। जब भी कोई लेख लिखते थे या पूर्व में वार्त्तालाप में किसी गम्भीर विषय पर चर्चा करते थे तो पढ़े हुए विषय अनायास ही स्मरण हो आते थे। लोग पीठ पीछे कहते हैं "यह तो चलता फिरता एनसाइक्लोपीडिया है।" अखण्ड-ज्योति पत्रिका के लेख पढ़ने वाले उसमें इतने सन्दर्भ पाते हैं कि लोग आश्चर्यचकित होकर रह जाते हैं और सोचते हैं कि एक लेख के लिए न जाने कितनी पुस्तकों और पत्रिकाओं से सामग्री इकट्ठी करके लिखा गया है। यही बात युग निर्माण योजना, युग शक्ति पत्रिका के बारे में है। पर सच बात इतनी ही है कि हमने जो भी पढ़ा है, उपयोगी पढ़ा है और पूरा मन लगाकर पढ़ा है। इसलिए समय पर सारे सन्दर्भ अनायास ही स्मृति पटल पर उठ आते हैं। यह वस्तुतः हमारी तन्मयता से की गयी साधना का चमत्कार है।

जन्मभूमि के गाँव में प्राथमिक पाठशाला थी। सरकारी स्कूल की दृष्टि से इतना ही पढ़ा है। संस्कृत हमारी वंश परम्परा में घुली हुई है। पिताजी संस्कृत के असाधारण प्रकाण्ड विद्वान थे। भाई भी। सबकी रुचि भी उसी ओर थी। फिर हमारा पैतृक व्यवसाय पुराणों की कथा कहना तथा पौरोहित्य रहा है सो उस कारण उसका भी समुचित ज्ञान हो गया। आचार्य तक के विद्यार्थियों को हमने पढ़ाया है, जबकि हमारी स्वयं की डिग्रीधारी योग्यता नहीं थी।

इसके बाद अन्य भाषाओं के पढ़ने की कहानी मनोरंजक है। जेल में लोहे के तसले पर कंकड़ की पेन्सिल से अंग्रेजी लिखना आरम्भ किया। एक दैनिक अंक "लीडर" अखबार का जेल में हाथ लग गया था। उसी से पढ़ना शुरू किया। साथियों से पूछताछ कर लेते, इस प्रकार एक वर्ष बाद जब जेल से छूटे तो अंग्रेजी की अच्छी-खासी योग्यता उपलब्ध हो गई। आपसी चर्चा से हर बार की जेलयात्रा में अंग्रेजी का शब्दकोश हमारा बढ़ता ही चला गया एवं क्रमशः व्याकरण भी सीख ली। बदले में हमने उन्हें संस्कृत एवं मुहावरों वाली हिन्दुस्तानी भाषा सिखा दी। अन्य भाषाओं की पत्रिकाएँ तथा शब्दकोष अपने आधार रहे हैं और ऐसे ही रास्ता चलते अन्यान्य भाषाएँ पढ़ ली हैं। गायत्री को बुद्धि की देवी कहा जाता है। दूसरों को वैसा लाभ मिला या नहीं। पर हमारे लिए ये चमत्कारी लाभ प्रत्यक्ष हैं। अखण्ड-ज्योति की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ने हिन्दी के प्राध्यापकों तक का मार्गदर्शन किया है। यह हम जब देखते हैं तो उस महाप्रज्ञा को ही इसका श्रेय देते हैं। अति व्यस्तता रहने पर भी विज्ञ की—ज्ञान की–विभूति इतनी मात्रा में हस्तगत हो गई, जिसमें हमें परिपूर्ण सन्तोष होता है और दूसरों को आश्चर्य।

साथ में तीसरा काम कांग्रेस में काम करने का रहा है। इससे उन की मूर्धन्य प्रतिभाओं से सम्पर्क साधने के अवसर अनायास ही आते रहे। सदा विनम्र और अनुशासन रत स्वयंसेवक की अपनी हैसियत रखी। इसलिए मूर्धन्य नेताओं की सेवा में किसी विनम्र स्वयं सेवक की जरूरत पड़ती तो हमें ही पेल दिया जाता रहा। आयु भी इसी योग्य थी। इसी सम्पर्क में हमने बड़ी से बड़ी विशेषताएँ सीखीं। अवसर मिला तो उनके साथ भी रहने का सुयोग मिला साबरमती आश्रम में गाँधी जी के साथ और पवनार आश्रम में विनोबा के साथ रहने का लाभ मिला है। दूसरे उनके समीप जीते हुए दर्शन मात्र करते हैं या रहकर लौट आते हैं जब कि हमने इन सम्पर्कों में बहुत कुछ पढ़ा और जाना है। इन सबकी स्मृतियों का उल्लेख करना तो यहाँ अप्रासंगिक होगा। पर कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जो हमारे लिए कल्पवृक्ष की तरह महत्वपूर्ण सिद्ध हुईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९३३ की बात है। कलकत्ता में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन था। उन दिनों कांग्रेस गैर कानूनी थी। जो भी जाते, पकड़े जाते। उसमें गोलीकाण्ड भी हुआ था। जिन्हें महत्वपूर्ण समझा गया, उन्हें बर्दवान स्टेशन पर पकड़ लिया गया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने में बनी गोरों के लिए बनाई गई एक विशेष जेल (आसनसोल) में भेज दिया गया। इसमें हम भी आगरा जिले के अपने तीन साथियों के साथ पकड़े गए। यहाँ हमारे साथ में मदनमोहन जी मालवीय के अलावा गाँधी जी के सुपुत्र देवीदास गांधी, श्री जवाहर लाल नेहरू की माता स्वरूपा रानी नेहरू, रफी अहमद किदवई, चन्द्रभान गुप्त, कन्हैयालाल खादी वाला, शोभालाल गुप्त, जगन प्रसाद रावत, गोपाल नारायण आदि मूर्धन्य लोग थे। वहाँ जब तक हम लोग रहे, सायंकाल महामना मालवीय जी का नित्य भाषण होता था। मालवीय जी व माता स्वरूपा रानी सबके साथ सगे बच्चों की तरह व्यवहार करते थे। एक दिन उनने अपने व्याख्यान में इस बात पर बहुत जोर दिया कि हमें आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए हर मर्द से एक पैसा और हर स्त्री से एक मुट्ठी अनाज के लिए माँग कर लाना चाहिए ताकि सभी यह समझें कि कांग्रेस हमारी है। हमारे पैसों से बनी हैं। सबको इसमें अपनापन लगेगा एवं मुट्ठी फण्ड ही इसका मूल आर्थिक आधार बन जाएगा। वह बात औरों के लिए महत्वपूर्ण न थी पर हमने उसे गाँठ बाँध लिया। ऋषियों का आधार यही "भिक्षा" थी। उसी के सहारे वे बड़े-बड़े गुरुकुल और आरण्यक चलाते थे। हमें भविष्य में बहुत बड़े काम करने के लिए गुरुदेव ने संकेत दिये थे। उनके लिए पैसा कहाँ से आयेगा, इसकी चिन्ता मन में बनी रहती थी। इस बार जेल में सूत्र हाथ लग गया। जेल से छूटने पर जब बड़े काम पूरे करने का उत्तरदायित्व कन्धे पर आया तब उसी फार्मूले का उपयोग किया। "दस पैसा प्रतिदिन या एक मुट्ठी अनाज" अंशदान के रूप में यही तरीका अपनाया और अब तक लाखों नहीं, करोड़ों रुपया खर्च कर या करा चुके हैं।

कांग्रेस अपनी गायत्री गंगोत्री की तरह जीवनधारा रही। जब स्वराज्य मिल गया तो मैंने उन्हीं कामों की और ध्यान दिया जिससे स्वराज्य की समग्रता सम्पन्न हो सके। राजनेताओं को देश की राजनैतिक और आर्थिक स्थिति सम्भालनी चाहिए। पर नैतिक क्रान्ति, बौद्धिक क्रान्ति और सामाजिक क्रान्ति उससे भी अधिक आवश्यक है, जिसे हमारे जैसे लोग ही सम्पन्न कर सकते हैं। यह धर्मतन्त्र का उत्तरदायित्व है।

अपने इस नये कार्यक्रम के लिए अपने सभी गुरुजनों से आदेश लिया और कांग्रेस का एक ही कार्यक्रम अपने जिम्मे रखा। "खादी धारण।" इसके अतिरिक्त उसके सक्रिय कार्यक्रमों से उसी दिन पीछे हट गए जिस दिन स्वराज्य मिला। इसके पीछे बापू का आशीर्वाद था, दैवी सत्ता का हमें मिला निर्देश था। प्रायः २० वर्ष लगातार काम करते रहने पर जब मित्रों ने स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी के नाते निर्वाह राशि लेने का फार्म भेजा तो हमने

> मनुष्य से प्रेम करना ईश्वर से प्रेम करना है। हमारे लिए देश-प्रेम और मानव-प्रेम में कोई अन्तर नहीं है। —महात्मा गाँधी

हँसकर स्पष्ट मना कर दिया। हमें राजनीति में श्रीराम मत्त या मत्तजी नाम से जाना जाता है। जो लोग जानते हैं, उस समय के मूर्धन्य जो जीवित हैं उन्हें विदित है कि आचार्य जी (मत्त जी) कांग्रेस के आधार स्तम्भ रहे हैं और कठिन से कठिन कामों में अग्रिम पंक्ति में खड़े रहे हैं। किन्तु जब श्रेय लेने का प्रश्न आया, उन्होंने स्पष्टतः स्वयं को पर्दे के पीछे रखा।

तीनों काम यथावत् पूरी तत्परता और तन्मयता के साथ सम्पन्न किये और साथ ही गुरुदेव जब-जब हिमालय बुलाते रहे तब-तब जाते रहे। बीच के दो आमन्त्रणों में उनने छै-छै महीने ही रोका। कहा—"कांग्रेस का कार्य स्वतन्त्रता प्राप्ति की दृष्टि से इन दिनों आवश्यक है, सो इधर तुम्हारा रुकना छै-छै महीने ही पर्याप्त होगा।" उन छह महीनों में हमसे क्या कराया गया एवं क्या कहा गया, यह सर्वसाधारण के लिए जानना जरूरी नहीं है। दृश्य जीवन के ही अगणित प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें हम अलौकिक एवं दैवी शक्ति की कृपा का प्रसाद मानते हैं उसे याद करते हुए कृतकृत्य होते रहते हैं। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलताओं के कुछ रहस्य सूत्र

स्वतन्त्रता संग्राम के प्रारम्भिक दिनों की बात है। तब तक मार्गदर्शक सत्ता से साक्षात्कार नहीं हुआ था। एक उत्साही स्वयं सेवक के रूप में गाँव में ही कांग्रेस का कार्यकर्त्ता था। उन दिनों देहातों में गाँधीजी को करामाती बाबा मानते थे और कहते थे अंग्रेज पकड़कर जेल में बन्द करते हैं, और वे अपनी करामात से बाहर निकल जाते हैं। हम तो उन्हें स्वतन्त्रता हेतु भारत में अवतरित देवदूत मानते थे।

ऐसी ही योगियों की कथा-किम्वदन्तियाँ और भी सुन रखी थीं। मन में आया कि योग सीखने के लिए गाँधी जी के पास ही चलना चाहिए। साबरमती अहमदाबाद के पते पर पत्र व्यवहार किया। कुछ समय आश्रम में रहने की आज्ञा माँगी। इसे सुयोग ही कहना चाहिए कि मुझे आज्ञा मिल गई, और दैनिक उपयोग के वस्त्र बिस्तर साथ लेकर अहमदाबाद जा पहुँचा। साबरमती आश्रम में अपना नाम दर्ज करा दिया।

दूसरे दिन से अपने लिए काम पूछा— ड्यूटी टट्टियाँ साफ करने एवं आँगन बुहारने की लगी। प्रायः प्रथम आगन्तुक को वहाँ यही शिक्षा दी जाती थी गन्दगी दूर करना और उसके स्थान पर स्वच्छता बनाना।

मैंने टट्टियाँ अपनी बुद्धि के अनुरूप साफ कीं। पर जब निरीक्षक आये तो उन्हें काम पसन्द नहीं आया। जो त्रुटियाँ रह गई थीं, सो बताई और कहा कि सफाई ऐसी होनी चाहिए, जैसी रसोई घर में होती है। दूसरी बार मैंने उनकी मर्जी जैसा काम कर दिया। नित्य का सिलसिला यही चलता। निरीक्षक की पसन्दगी का काम करने लगा। सूत कातने सम्बन्धी अन्य काम तो दिनचर्या में सम्मिलित थे ही।

एक दिन लकड़ी चीरने का काम दिया गया। चीर दी। निरीक्षक आये। उनने छोटे-छोटे टुकड़े बिखरे देखे और कहा—यह किसी के पैर में चुभ सकते हैं। सभी को उठाओ और पतले टुकड़ों को ईंधन में रखो, वैसा कर दिया। वह काम कई दिन हमसे कराया गया।

इसके बाद सूत सम्बन्धी काम, प्रार्थना, सफाई, व्यवस्था आदि के काम, कराये जाते रहे। प्रातः सायं जो सामूहिक प्रार्थना होती उसमें सम्मिलित होता रहा।

एक दिन मैंने पेड़ पर से दतौन के लिए लम्बी दातौन तोड़ ली और दाँत घिसने लगा। निरीक्षक थीं मीरा बहन। वे दूर से इसे देख रही थीं। पास आकर बोलीं—"इतनी लम्बी दातौन नहीं तोड़नी चाहिए। तोड़नी थी तो उसे ऐसे ही कूड़े की तरह नहीं डालना चाहिए। बचे टुकड़े को किसी और की आवश्यकता पूरी करने के लिए देना चाहिए था। पत्तियाँ कूड़े दान में डालनी चाहिए थीं और घिसते समय जो पानी मुँह से निकलता है वह फर्श पर नहीं, नाली में डाला जाना चाहिए। अन्यथा मुँह में कोई छूत हो तो दूसरे को लग सकती है। पानी अधिक खर्च नहीं करना चाहिए था।" मैंने भूल मानी और सुधारी और भविष्य में सावधानी बरतने का आश्वासन दिया, पर इतने से बड़ी सिखावन हाथ लग गयी। डायरी रोज लिखता और वह गाँधी जी के पास पहुँचती रहती।

इसी प्रकार के कार्यक्रमों में तीन महीने होने को आये। करामाती योगी बनने के उद्देश्य से आया था। दूसरा गाँधी बनना चाहता था, पर वैसी कोई साधना सीखने का कोई अवसर न मिला। जाने के दिन समीप आने, पर बहुत बेचैनी रहने लगी। एक दिन हिम्मत बाँधकर गान्धीजी के सेक्रेटरी महादेव भाई देसाई के दफ्तर में गया और संकोच पर नियन्त्रण करके आने का उद्देश्य कह सुनाया। देसाई जी हँसे और बोले—"भाई! हम तो करामाती योगी हैं नहीं। गाँधीजी हो सकते हैं। सो कल प्रातःकाल तुम उनके साथ टहलने चले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना और योगी बनने का राज पूछकर अपना समाधान कर लेना।" इस उत्तर से मुझे सन्तोष हो गया।

गाँधीजी प्रातःकाल नित्य टहलते समय किसी को साथ ले जाते थे। उसका समाधान भी हो जाता था व गाँधी जी का भ्रमण भी। प्रातःकाल ५ बजे मैं दरवाजे पर जा खड़ा हुआ और जैसे ही गाँधी जी आये उनके पीछे-पीछे चलने लगा। महादेव भाई ने उन्हें मेरी बात बता दी थी। गाँधी जी ने मुड़ कर पीछे देखा और अपनी टहलने वाली चाल में चल पड़े। रास्ते में पूछा—"तुम्हीं गाँधी जी बनने की योग साधना सीखने आये थे!" मैंने हाँ कह दिया। दूसरा प्रश्न पूछा गया—"वैसा कुछ सिखाया गया या नहीं?" मैंने तीन महीने का कार्य विवरण संक्षेप में सुना दिया। वे बोले—यही है गाँधी बनने की विद्या, जो तुम सीखते रहे?

जिज्ञासा समाधान न होते देख कर उनने टहलते-टहलते मुझे एक ऐतिहासिक घटना सुनाई। वैज्ञानिक थामस डेवी की एक घटना। वह लड़का एक गरीब घर में जन्मा। वैज्ञानिक बनने की इच्छा थी। विधिवत् वैज्ञानिक शिक्षा दिलाने की परिवार में परिस्थितियाँ न थीं। डेवी ने सुझाया, मुझे किसी वैज्ञानिक के यहाँ छोड़ दो। उसका घरेलू काम काज करता रहूँगा और जो वे सिखा दिया करेंगे, सीखता रहूँगा?

ऐसा सुयोग देखने के लिए उसकी माँ कितने ही वैज्ञानिकों के पास ले गई पर सभी ने ऐसा झंझट सिर पालने से स्पष्ट मना कर दिया। एक वैज्ञानिक ने कहा—"इसे कल लाना, काम का होगा तो रख लेंगे।"

डेवी की माँ उसे लेकर दूसरे दिन पहुँची। उस वैज्ञानिक ने हाथ में बुहारी थमाई और घर की सफाई करने को कहा। डेवी ने इतनी दिलचस्पी से बुहारी लगाई कि कोई कोना, छत, फर्नीचर, सामान गन्दा न रहा। सब वस्तुएँ सफाई के बाद इस तरह रखी कि वे सुसज्जित जैसी लगती थी। वैज्ञानिक ने ताड़ लिया कि इसमें काम के प्रति दिलचस्पी, तन्मयता और व्यवस्था का माद्दा है। इसे सिखाना सार्थक हो सकता है। यह इस गुण के कारण ही उपयोगी हो सकता है और वैज्ञानिक बन सकता है। लड़के को उनने पास में रख लिया। घरेलू काम करता रहा और पढ़ता रहा। क्रमशः उसकी मौलिक जिज्ञासु बुद्धि विकसित होने लगी एवं वह अन्ततः उच्च-कोटि का वैज्ञानिक बन गया। उसने कितने ही आविष्कार किये।

यह प्रसंग सुनाते हुए गाँधी जी ने कहा "यहाँ जो भी काम तुम से कराये गये हैं वे सभी ऐसे थे जिसमें काम के प्रति जिम्मेदारी और दिलचस्पी बढ़े। हमारे अन्दर यही विशेषता है। इसी के सहारे हमारी आदर्शवादिता उठाकर हमें यहाँ तक ले आई है। हमारी सफलता का इतना ही रहस्य है। तुम इस रास्ते पर चलोगे तो जो भी कार्य अपनाओगे उसमें प्रवीण और सफल होकर रहोगे। चाहे धर्मक्षेत्र हो, राजनीति अथवा अपना पारिवारिक जीवन, सफलता का यही एक राजमार्ग है।"

बात समाप्त हो गई। सच्चे योगाभ्यास का रहस्य

> सार्थक उपदेश वाणी से नहीं, अनुकरणीय आचरण से दिए जाते हैं।

मेरे हाथ लग गया कि मनुष्य को आदर्शवादी कार्यक्रम हाथ में लेने चाहिए। जो करना है उसे पूरी दिलचस्पी और जिम्मेदारी के साथ करना चाहिए। तीन महीने साबरमती आश्रम में रहकर मैंने इसी प्रक्रिया का अभ्यास किया। निरीक्षकों ने उसमें जो त्रुटियाँ रहती थीं वे ठीक कराईं।

मैं करामाती योगी बनने का उद्देश्य लेकर आया था। वह बचपन जैसी उमँग हवा में उड़ गई। ऐसा कोई योगी नहीं होता जो जादूगरों जैसी करामात दिखा सके। गाँधीजी भी वैसे नहीं थे। वे महापुरुष थे।

तीन महीने का समय पूरा हुआ, मैं सभी को विदाई का प्रणाम, अभिवादन करके घर लौट आया। गाँधीजी के बताए सूत्र गिरह बाँध लिए। आदर्शों को अपनाया जो काम हाथ में लिया उसे प्राण-पण से किया हमारी सफलताओं के मूल में दैवी अनुदानों के साथ वैयक्तिक पराक्रम की भी भूमिका रही है। इसी को विविध सफलताओं का रहस्य कहा जा सकता है।

☆

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम बुलावा-पग-पग पर खतरे

गुरुदेव द्वारा हमारी हिमालय बुलावे की बात मत्स्यावतार जैसी बढ़ती चली गई। पुराण की कथा है कि ब्रह्मा जी के कमण्डलु में कहीं से एक मछली का बच्चा आ गया। हथेली में आचमन के लिए कमण्डलु लिया तो वह देखते-देखते हथेली भर लम्बी हो गई। ब्रह्मा जी ने उसे घड़े में डाल दिया। क्षण भर में वह उससे भी दूनी हो गई। ब्रह्माजी ने उसे पास के तालाब में डाल दिया, उसमें भी वह समाई नहीं तब उसे समुद्र तक पहुँचाया गया। देखते-देखते उसने पूरे समुद्र को आच्छादित कर लिया। तब ब्रह्माजी को बोध हुआ। उस छोटी-सी मछली में अवतार होने की बात जानी, स्तुति की और आदेश माँगा। बात पूरी होने पर मत्स्यावतार अन्तर्धान हो गये और जिस कार्य के लिए वे प्रकट हुए थे। वह कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो गया।

हमारे साथ भी घटना क्रम ठीक इसी प्रकार चले हैं। आध्यात्मिक जीवन वहाँ से आरम्भ हुआ था जहाँ कि गुरुदेव ने परोक्ष रूप से महामना मालवीय जी से गुरु दीक्षा दिलवाई थी। यज्ञोपवीत पहनाया था और गायत्री मन्त्र की नियमित उपासना करने का विधि-विधान बताया था। छोटी उम्र थी पर उसे पत्थर की लकीर की तरह माना और विधिवत् निबाहा। कोई दिन ऐसा नहीं बीता जिसमें नागा हुई हो। साधना नहीं तो भोजन नहीं। इस सिद्धान्त को अपनाया। वह आज तक ठीक चला है और विश्वास है कि जीवन के अन्तिम दिन तक यह निश्चित रूप से निभेगा।

इसके बाद गुरुदेव का प्रकाश रूप से साक्षात्कार हुआ। उनने आत्मा को ब्राह्मण बनाने के निमित्त २४ वर्ष की गायत्री पुरश्चरण साधना बताई। वह भी ठीक समय पर पूरी हुई। इस बीच में बैटरी चार्ज कराने के लिए—परीक्षा देने के लिए बार-बार हिमालय आने का आदेश मिला। साथ ही हर यात्रा में एक-एक वर्ष या उससे कम दुर्गम हिमालय में ही रहने के निर्देश भी। वह क्रम भी ठीक प्रकार चला और परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर नया उत्तरदायित्व भी कन्धे पर लदा। इतना ही नहीं उसका निर्वाह करने के लिए अनुदान भी मिला, ताकि दुबला बच्चा लड़खड़ा न जाय। जहाँ गड़बड़ाने की स्थिति आई वहीं मार्गदर्शक ने गोदी में उठा लिया।

पूरा एक वर्ष होने भी न पाया था कि बेतार का तार हमारे अन्तराल में हिमालय का निमन्त्रण ले आया। चल पड़ने का बुलावा आ गया। उत्सुकता तो रहती थी पर जल्दी नहीं थी। जो नहीं देखा है उसे देखने की उत्कण्ठा, एवं जो अनुभव हस्तगत नहीं हुआ है, उसे उपलब्ध करने की आकांक्षा ही थी। साथ ही ऐसे मौसम में जिसमें दूसरे लोग उधर जाते नहीं, ठण्ड, आहार, सुनसान, हिंस्र जन्तुओं का सामना पड़ने जैसे कई भय भी मन में उपज उठते। पर अन्ततः विजय प्रगति की हुई। साहस जीता। संचित कुसंस्कारों में से एक अनजाना डर भी था। यह भी था कि सुरक्षित रहा जाय और सुविधा पूर्वक जिया जाय जबकि घर की परिस्थितियाँ ऐसी ही थीं। दोनों के बीच कौरव पाण्डवों की लड़ाई जैसा महाभारत चला। पर यह सब २४ घण्टे से अधिक न टिका। ठीक दूसरे दिन हम यात्रा के लिए चल दिये। परिवार को प्रयोजन की सूचना दे दी। विपरीत सलाह देने वाले भी चुप रहे। वे जानते थे कि इसके निश्चय बदलते नहीं।

कड़ी परीक्षा देना और बढ़िया वाला पुरस्कार पाना, यही सिलसिला हमारे जीवन में चलता रहा है। पुरस्कार के साथ अगला बड़ा कदम उठाने का प्रोत्साहन भी। हमारे मत्स्यावतार का यही क्रम चलता आया है।

प्रथम बार हिमालय जाना हुआ तो वह प्रथम सत्संग था। हिमालय दूर से तो पहले भी देखा था पर वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने पर किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, इसकी पूर्व जानकारी कुछ भी न थी। वह अनुभव प्रथम बार ही हुआ। सन्देश आने पर चलने की तैयारी की। मात्र देव प्रयाग से उत्तर काशी तक उन दिनों सड़क और मोटर की व्यवस्था थी। इसके बाद तो पूरा रास्ता पैदल का था ही, ऋषिकेश से देव प्रयाग भी पैदल यात्रा करनी होती थी। सामान कितना लेकर चलना चाहिए जो कन्धे और पीठ पर लादा जा सके, इसका अनुभव न था। सो कुछ ज्यादा ही ले लिया। लादकर चलना पड़ा तो प्रतीत हुआ कि यह भारी है। उतना हमारे जैसा पैदल यात्री लेकर न चल सकेगा। सो सामर्थ्य से बाहर की वस्तुएँ रास्ते में अन्य यात्रियों को बाँटते हुए केवल उतना रहने दिया जो अपने से चल सकता था एवं उपयोगी भी था।

इस यात्रा से गुरुदेव एक ही परीक्षा लेना चाहते थे कि विपरीत परिस्थितियों में जूझने लायक मनःस्थिति पकी या नहीं। सो यात्रा अपेक्षाकृत कठिन ही होती गई। दूसरा कोई होता तो घबरा गया होता, वापस लौट पड़ता, या हैरानी में बीमार पड़ गया होता। पर गुरुदेव यह जीवन सूत्र व्यवहार रूप में सिखाना चाहते थे कि मनःस्थिति मजबूत हो तो परिस्थितियों का सामना किया जा सकता है, उन्हें अनुकूल बनाया या सहा जा सकता है। महत्वपूर्ण सफलताओं के लिए आदमी को इतना ही मजबूत होना पड़ता है।

ऐसा बताया जाता है कि जब धरती का स्वर्ग, या हृदय कहा जाने वाला भाग देवताओं का निवास था तब ऋषि गोमुख से नीचे और ऋषीकेश से ऊपर रहते थे, पर हिमयुग के बाद परिस्थितियाँ एकदम बदल गई। देवताओं ने कारण शरीर धारण कर लिए और अन्तरिक्ष में विचरण करने लगे। पुरातन काल के ऋषि गोमुख से ऊपर चले गये। नीचे वाला हिमालय अब सैलानियों के लिए रह गया है। वहाँ कहीं-कहीं साधु बाबा जी की कुटियाँ तो मिलती हैं। पर जिन्हें ऋषि कहा जा सके ऐसों का मिलना कठिन है।

हमने यह भी सुन रखा था कि हिमालय की यात्रा में मार्ग में आने वाली गुफाओं में सिद्ध-योगी रहते हैं। वैसा कुछ नहीं मिला। पाया कि निर्वाह एवं आजीविका की दृष्टि से वह कठिनाइयों से भरा क्षेत्र है। इसलिए वहाँ मनमौजी लोग आते जाते तो हैं पर ठहरते नहीं। जो साधु सन्त मिले, उनसे भेंट वार्ता होने पर विदित हुआ कि वे भी कौतूहलवश या किसी से कुछ मिल जाने की आशा में ही आते थे। न उनका तत्वज्ञान बढ़ा चढ़ा था, न तपस्वी जैसी दिनचर्या थी। थोड़ी देर पास बैठने पर भी वे अपनी आवश्यकता व्यक्त करते थे। ऐसे लोग दूसरों को क्या देंगे, यह सोचकर सिद्ध पुरुषों की तलाश में अन्यों द्वारा जब-तब की गई यात्राएँ मजे की यात्रा भर रहीं, यही मानकर अपने कदम आगे बढ़ाते गए। यात्रियों को आध्यात्मिक सन्तोष समाधान तनिक भी नहीं होता होगा, यही सोचकर मन दुःखी रहा।

उनसे तो हमें चट्टियों पर दुकान लगाए हुए पहाड़ी दुकानदार अच्छे लगे। वे भोले और भले थे। आटा दाल, चांवल आदि खरीदने पर वे पकाने के बर्तन बिना किराया लिए—बिना गिने ऐसे ही उठा देते थे। माँगने-जाँचने का कोई धन्धा उनका नहीं था। अवसर चाय बेचते थे। बीड़ी, माचिस, चना, गुड़, सत्तू, आलू जैसी चीजें यात्रियों को उनसे मिल जाती थीं। यात्री श्रद्धालु तो होते थे, पर गरीब स्तर के थे। उनके काम की चीजें ही दुकानों पर बिकती थीं। कम्बल उसी क्षेत्र के बने हुए किराये पर रात काटने के लिए मिल जाते थे।

शीत ऋतु और पैदल चलना यह दोनों ही परीक्षाएँ कठिन थीं। फिर उस क्षेत्र में रहने वाले साधु सन्यासी उन दिनों गरम इलाकों में गुजारे की व्यवस्था करने नीचे उतर आते हैं। जहाँ ठण्ड अधिक है वहाँ के ग्रामवासी भी पशु चराने नीचे के इलाकों में उतर आते हैं। गाँवों में—झोंपड़ियों में सन्नाटा रहता है। ऐसी कठिन परि-स्थितियों में हमें उत्तर काशी से नन्दन वन तक की यात्रा पैदल चल कर पूरी करनी थी। हर दृष्टि से यह यात्रा बहुत कठिन थी।

स्थान नितान्त एकाकी। ठहरने खाने की कोई व्यवस्था नहीं, वन्य पशुओं का निर्भीक विचरण, यह सभी बातें काफी कष्टकर थीं। हवा उन दिनों काफी ठण्डी चलती थी। सूर्य ऊँचे पहाड़ों की छाया में छिपा रहने के कारण दस बजे के करीब दीखता है और दो बजे के करीब शिखरों के नीचे चला जाता है। शिखरों पर तो धूप दीखती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, पर जमीन पर मध्यम स्तर का अन्धेरा। रास्ते में कभी ही कोई भूला-भटका आदमी मिलता। जिन्हें कोई अति आवश्यक काम होता, किसी की मृत्यु हो जाती तो ही आने-जाने की आवश्यकता पड़ती। हर दृष्टि से वह क्षेत्र अपने लिए सुनसान था। सहचर के नाम पर थे,छाती में धड़कने वाला दिल या सोच विचार उठाने वाले सिर में अवस्थित मन। ऐसी दिशा में लम्बी यात्रा सम्भव है या असम्भव, यह परीक्षा अपनी ली जा रही थी। हृदय ने निश्चय किया जितनी साँस चलनी है उतने दिन अवश्य चलेगी। तब तक कोई मारने वाला नहीं। मस्तिष्क कहता, वृक्ष वनस्पतियों में भी तो जीवन है। उन पर पक्षी रहते हैं। पानी में जलचर मौजूद हैं। जंगल में वन्य पशु फिरते हैं। सभी नंगे बदन सभी एकाकी। जब इतने सारे प्राणी इस क्षेत्र में निवास करते हैं तो तुम्हारे लिए सब कुछ सुनसान कैसा? अपने को छोटा मत बनाओ। जब "वसुधैव कुटुम्बकम्" की बात मानते हो तब इतने सारे प्राणियों के रहते, तुम अकेले कैसे? मनुष्यों को ही क्यों प्राणी मानते हो? यह जीव-जन्तु क्या तुम्हारे अपने नहीं? फिर सूनापन कैसा?

हमारी यात्रा चलती रही। साथ-साथ चिन्तन भी चलता रहा। एकाकी रहने में मन पर दबाव पड़ता है। क्योंकि वह सदा से समूह में रहने का अभ्यासी है। एकाकीपन से उसे डर लगता है। अन्धेरा भी डर का एक बड़ा कारण है। मनुष्य दिन भर प्रकाश में रहता है। रात्रि को बत्तियों का प्रकाश जला लेता है। जब नींद आती है तब बिलकुल अन्धेरा होता है। उसमें भी डरने का उतना कारण नहीं, जितना कि सुनसान के अन्धेरे में होता है।

एकाकीपन में, विशेषतया अन्धेरे में मनुष्य के मस्तिष्क को डर लगता है। योगी को इस डर से निवृत्ति पानी चाहिए। "अभय" को अध्यात्म का अति महत्वपूर्ण गुण माना गया है। वह न छूटे तो फिर उसे गृहस्थ की तरह सरंजाम जुटाकर—सुरक्षा का प्रबन्ध करते हुए रहना पड़ता है। मन की कच्चाई बनी ही रहती है।

दूसरा संकट हिमालय क्षेत्र के एकाकीपन में यह है कि उस क्षेत्र में वन्य जीवों विशेषतया हिंस्र पशुओं का डर लगता है। कोलाहल रहित क्षेत्र में ही वे विचरण करते हैं। रात्रि ही उनका भोजन तलाशने का समय है। दिन में प्रतिरोध का सामना करने का डर उन्हें भी रहता है।

रात्रि में, एकाकी, अन्धेरे में हिंस्र पशुओं का मुकाबला होना एक संकट है। संकट क्या सीधी मौत से मुठभेड़ है। कोलाहल और भीड़ न होने पर हिंस्र पशु दिन में भी पानी पीने या शिकार तलाशने निकल पड़ते हैं। इन सभी परिस्थितियों का सामना हमें अपनी यात्रा में बराबर करना पड़ा।

यात्रा में जहाँ भी रात्रि बितानी पड़ी, वहाँ काले साँप रेंगते और मोटे अजगर फुफकारते बराबर मिलते रहे। छोटी जाति का सिंह उस क्षेत्र में अधिक होता है।

एक सन्त थे। जो उनके निकट पहुँचता उसकी वे सहायता करते। दिन भर गुफा में रहते। सूर्यास्त के उपरान्त ही कुछ समय के लिए गुफा से बाहर निकलते।

एक आपत्तिग्रस्त आया। उसने सन्त का पल्ला पकड़ लिया और बोला तब छोड़ूँगा जब अपना कष्ट दूर करा लूँगा।

सन्त ने छुड़ाते हुए कहा—पल्ला ईश्वर का पकड़ो। मनुष्य तो एक दूसरे की सीमित सहायता ही कर सकते हैं।

उसमें फुर्ती बबर शेर की तुलना में अधिक होती है। आकार के हिसाब से ताकत उसमें कम होती है। इसलिए छोटे जानवरों पर हाथ डालता है। शाकाहारियों में आक्रमणकारी पहाड़ी रीछ होता है। शिवालिक की पहाड़ियों एवं हिमालय के निचले इलाके में इर्द-गिर्द जंगली हाथी भी रहते हैं। इन सभी की प्रकृति यह होती है कि आँखों से आँखें न मिलें, उन्हें छेड़े जाने का भय न हो तो अपने रास्ते भी चले जाते हैं। अन्यथा तनिक भी भय या क्रोध का भाव मन में आने पर वे आक्रमण कर बैठते हैं।

अजगर, सर्प, बड़ी छिपकली (गोह), रीछ, तेन्दुए, चीते, हाथी, इनसे आये दिन यात्री को कई-कई बार पाला पड़ता है। समूह को देखकर वे रास्ता बचाकर निकल जाते हैं। पर जब कोई मनुष्य या पशु अकेला सामने से आता है तो वे बचते नहीं। सीधे रास्ते चलते जाते हैं। ऐसी दशा में मनुष्य को ही उनके लिए रास्ता छोड़ना पड़ता है। अन्यथा मुठभेड़ होने पर आक्रमण एक प्रकार से निश्चित ही समझना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे सामने सामने दिन और रात में मिलाकर दस से बीस बार मुकाबला हो जाता था। अकेला आदमी देखकर वे निर्भय होकर चलते थे और रास्ता नहीं छोड़ते थे। उनके लिए हमें ही बचना पड़ता था। यह घटनाक्रम लिखने और पढ़ने में तो सरल है पर व्यवहार में ऐसा वास्ता पड़ना अति कठिन है। कारण कि वे साक्षात मृत्यु के रूप में सामने आते थे, कभी-कभी साथ चलते या पीछे-पीछे चलते थे। शरीर को मौत सबसे डरावनी लगती है। हिंस्र पशु अथवा जिनकी आक्रमणकारी प्रकृति होती है ऐसे जंगली नर—नील गाय भी आक्रमणकारी होते हैं। भले ही वे आक्रमण न करें पर डर इतना ही लगता कि साक्षात् मौत के मुँह में जाने की घड़ी आ गई। जब तब कोई वास्ता पड़े तो एक बात भी है। पर प्रायः हर घण्टे एक बार मौत से भेंट होना और हर बार प्राण जाने का डर लगना, अत्यधिक कठिन परिस्थितियों का सामना करने की बात थी। दिल धड़कना आरम्भ होता। जब तक वह धड़कन बन्द न हो पाती, तब तक दूसरी नई मुसीबत सामने आ जाती और फिर नये सिरे से दिल धड़कने लगता। वे लोग एकाकी नहीं होते थे। कई-कई के झुण्ड सामने आ जाते। यदि हमला करते तो एक-एक बोटी नोंच ले जाते एवं कुछ ही क्षणों में अपना अस्तित्व समाप्त हो जाता।

किन्तु यहाँ भी विवेक समेटना पड़ा, साहस संजोना पड़ा। मौत बड़ी होती है पर जीवन से बड़ी नहीं होती। अभय और मैत्री भीतर हो तो हिंसकों की हिंसा भी ठण्डी पड़ जाती है और अपना स्वभाव बदल जाती है। पूरी यात्रा में प्रायः तीन चार सौ की संख्या में ऐसे डरावने मुकाबिले हुए। पर गड़बड़ाने वाले साहस को हर बार सम्भालना पड़ा। मैत्री और निश्चिन्तता की मुद्रा बनानी पड़ी। मृत्यु के सम्बन्ध में सोचना पड़ा कि उसका भी एक समय होता है। यदि यहीं—इसी प्रकार जीवन की इतिश्री होनी है तो फिर उसका डरते हुए क्यों?, हँसते हुए ही सामना क्यों न किया जाय? यही विचार उठे तो नहीं पर बल पूर्वक उठाने पड़े। पूरा रास्ता डरावना था। एकाकीपन—अन्धेरे और मृत्यु के दूत मिल-जुलकर डराने का प्रयत्न करते रहे और वापस लौट चलने की सलाह देते रहे। पर संकल्प शक्ति साथ देती रही और यात्रा आगे बढ़ती रही।

परीक्षा का एक प्रश्न पत्र यह था कि सुनसान का—अकेलेपन का डर लगता है क्या? कुछ ही दिनों में दिल मजबूत हो गया और उस क्षेत्र में रहने वाले प्राणी अपने लगने लगे। डर न जाने कहाँ चला गया। सूनापन सुहाने लगा। मन ने कहा प्रथम प्रश्न पत्र में उत्तीर्ण होने का सिलसिला चल पड़ा। आगे बढ़ने पर जो असमंजस होता है वह भी अब न रहेगा।

दूसरा प्रश्न पत्र था, शीत ऋतु का। सोचा कि जब मुँह नाक, आँखें, शिर, कान, हाथ खुले रहते हैं, अभ्यास से इन्हें शीत नहीं लगता तो तुम्हें ही क्यों लगना चाहिए।

स्वामी रामतीर्थ ने एक सिद्ध पुरुष की बड़ी प्रशंसा सुनी। वे उससे मिलने दुर्गम स्थान में पहुँचे।

आग्रह करके उनकी साधना सिद्धि की बात पूछी। उनने दो करामात दिखाई। एक नदी के जल पर चलने की· दूसरी आसमान में दूर तक उड़ने की।

कौतूहल तो बहुत हुआ पर रामतीर्थ का समाधान न हुआ। उनने कहा—भगवन् यह काम तो मछली और बतक भी कर सकती हैं। इतने भर कर लेने से क्या प्रयोजन साधा। जनहित के लिये इतना श्रम किया गया होता तो उससे अपना और दूसरों का कितना कल्याण होता। सिद्ध पुरुष निरुत्तर थे। रामतीर्थ वस्तुस्थिति से अवगत हो वापस लौट आये।

उत्तरी ध्रुव, नार्वे, फिनलैण्ड में हमेशा शून्य से नीचे तापमान रहता है। वहाँ एस्किमो तथा दूसरी जाति के लोग रहते हैं, तो इधर तो दस बारह हजार फुट की ही ऊँचाई है। यहाँ ठण्ड से बचने के उपाय ढूँढ़े जा सकते हैं। वे उधर के एक निवासी से मालूम भी हो गये। पहाड़ ऊपर ठण्डे रहते हैं पर उनमें जो गुफाएँ पाई जाती हैं वे अपेक्षाकृत गरम होती हैं। कुछ खास किस्म की झाड़ियाँ ऐसी होती हैं जो हरी होने पर भी जल जाती हैं। लांगड़ा, मार्चा आदि शाकों की पत्तियाँ जंगलों में उगी होती हैं, वे कच्ची भी खाई जा सकती हैं। भोजपत्र के तने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठी हुई गाँठों को उबाल लिया जाय तो ऐसी चाय बन जाती है, जिनसे ठण्डक दूर हो सके। पेट में घुटने और सिर लगाकर उकडू बैठ जाने पर भी ठण्डक कम लगती है। मानने पर ठण्डक अधिक लगती है। बच्चे थोड़े से कपड़ों में कहीं भी भागे-भागे फिरते हैं। उन्हें कोई हैरानी नहीं होती। ठण्ड मानने भर की है। उसमें अनभ्यस्त बूढ़े बीमारों की तो नहीं कहते, अन्यथा जवान आदमी ठण्डक से नहीं मर सकता। बात यह भी समझ में आ गई और इन सब उपायों को अपना लेने पर ठण्डक भी सहन होने लगी। फिर एक और बात है कि—ठण्डक-ठण्डक रटने की अपेक्षा मन में कोई और उत्साह भरा चिन्तन बिठा लिया जाय, तो भी काम चल जाता है। इतनी महत्वपूर्ण शिक्षाएँ उस क्षेत्र की समस्याओं का सामना करने के हल निकल आये।

बात वन्य पशुओं की—हिंस्र जन्तुओं की फिर रह गई। वे प्रायः रात को ही निकलते हैं, उनकी आँखें चमकती हैं। फिर मनुष्य से सभी डरते हैं, शेर भी। यदि स्वयं उनसे डरा न जाय उन्हें छेड़ा न जाय तो मनुष्य पर आक्रमण नहीं करते, उनके मित्र ही बनकर रहते हैं।

प्रारम्भ में हमें इस प्रकार का डर लगता था। फिर सरकस के सिखाने वालों की बात याद आई। वे उन्हें कितने करतब सिखा लेते हैं। तंजानिया की एक यूरोपियन महिला का वृत्तान्त पढ़ा था "बॉर्न फ्री", जिसका पति वन विभाग का कर्मचारी था। उसकी स्त्री ने पति द्वारा माँ-बाप से बिछुड़े दो शेर के बच्चे पाल रखे थे। और वे जवान हो जाने पर भी उसकी गोद में सोते रहते थे। अपने मन में यदि वजनदार निर्भयता या प्रेम भावना हो तो घने जंगलों में आनन्द से रहा जा सकता है। वनवासी भील लोग अक्सर उसी क्षेत्र में रहते हैं जिसमें हिंस्र पशु रहते हैं। उन्हें न डर लगता है और न जोखिम दीखता है। ऐसे-ऐसे उदाहरणों को स्मृति में रखते-रखते निर्भयता आ गई और विचारा कि एक दिन वह आवेगा, जब हम वन में कुटी बनाकर रहेंगे और गाय शेर एक घाट पर पानी पिया करेंगे।

मन कमजोर भी है और मना लिए जाने पर समर्थ भी। हमने उस क्षेत्र में पहुँचकर यात्रा जारी रखी और मन में से भय निकाल दिया। अनुकूल परिस्थिति की अपेक्षा करने के स्थान पर मनःस्थिति को मजबूत बनाने की बात सोची। इस दिशा में मन को ढालते चले गए और प्रतिकूलताएँ जो आरम्भ में बड़ी डरावनी लगती थीं, अब बिल्कुल सरल और स्वाभाविक सी लगने लगीं।

मन की कुटाई, पिटाई और ढलाई करते-करते वह बीस दिन की यात्रा में काबू में आ गया। वह क्षेत्र ऐसा लगने लगा मानों हम यहीं पैदा हुए हैं और यहीं मरना है।

गंगोत्री तक राहगीरों का बना हुआ भयंकर रास्ता है। गोमुख तक के लिए उन दिनों एक पगडण्डी थी। इसके बाद कठिनाई थी। तपोवन काफी ऊँचाई पर है।

ॐ श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥

—ऋग्वेद मं० १० अ० ११ सू० १४१

अर्थात्—श्रद्धा से अग्नि समिद्ध की जाती है। श्रद्धा से अग्नि में हविष्य का हवन किया जाता है। सम्पूर्ण लौकिक, पारलौकिक, अलौकिक सम्पत्तियों में श्रेष्ठ श्रद्धा ही है। यह तथ्य हम सर्वसाधारण के लिए घोषित करते हैं।

रास्ता भी नहीं है। अन्तःप्रेरणा या भाग्य भरोसे चलना पड़ता है। तपोवन का पठार चौरस है। फिर पहाड़ियों की एक ऊँची शृंखला है। इसके बाद नन्दन वन आता है। हमें यहीं बुलाया गया था। समय पर पहुँच गये। देखा तो गुरुदेव खड़े थे। प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। हमारी का भी—और उनका भी। वे पहली बार हमारे घर गए थे, इस बार हम उनके यहाँ आए। यह सिलसिला जीवन भर चलता रहे तो ही इस बँधे सूत्र की सार्थकता है।

तीन परीक्षाएँ इस बार होनी थी बिना साथी के काम चलाना—ऋतुओं के प्रकोप की तितीक्षा सहना—हिंस्र पशुओं के साथ रहते हुए विचलित न होना। तीनों में ही अपने को उत्तीर्ण समझा और परीक्षक ने वैसा ही माना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात-चीत का सिलसिला तो थोड़े ही समय में पूरा हो गया। "अध्यात्म शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रचण्ड मनोबल सम्पादित करना—प्रतिकूलताओं को दबोच कर अनुकूलता में ढाल लेना—सिंह व्याघ्र तो क्या मौत से भी न डरना, ऋषि कल्प आत्माओं के लिए तो यह स्थिति नितान्त आवश्यक है। तुम्हें ऐसी ही परिस्थितियों के बीच अपने जीवन का बहुत-सा भाग गुजारना है।"

उस समय की बात समाप्त हो गई। जिस गुफा में उनका निवास था, वहाँ तक ले गए। इशारे में बताये हुए स्थान पर सोने का उपक्रम किया तो वैसा ही किया। इतनी गहरी नींद आई कि नियत क्रम की अपेक्षा दूना तीन गुना समय लग गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। रास्ते की सारी थकान इस प्रकार दूर हो गई, मानों कहीं चलना ही नहीं पड़ा था।

वहीं बहते निर्झर में स्नान किया। सन्ध्या वन्दन भी। जीवन में पहली बार ब्रह्म कमल और देवकन्द देखा। ब्रह्म कमल ऐसा जिसकी सुगन्ध थोड़ी देर में ही नींद कहें या योग निद्रा ला देती है। देवकन्द वह जो जमीन में शकरकन्द की तरह निकलता है। सिंघाड़े जैसे स्वाद का। पका होने पर लगभग पाँच सेर का, जिससे एक सप्ताह तक क्षुधा निवारण का क्रम चल सकता है। गुरुदेव के यही दो प्रथम प्रत्यक्ष उपहार थे। एक शारीरिक थकान मिटाने के लिए और दूसरा मन में उमंग भरने के लिए।

इसके बाद तपोवन पर दृष्टि दौड़ाई। पूरे पठार पर मखमली फूलदार गलीचा-सा बिछा हुआ था। तब तक भारी बर्फ नहीं पड़ी थी। जब पड़ती है तब यह फूल सभी पककर जमीन पर फैल जाते हैं, अगले वर्ष उगने के लिए।

अब कल से छूटी हुई वार्त्ता आरम्भ हुई। कम समय में ही इतना सारगर्भित सुनने को मिला, कि यहाँ पहुँचने के सुयोग को हर दृष्टि से कृत-कृत्य माना।

—●—

महाभारत के दिनों रात्रि के समय आक्रमण नहीं होते थे और विरोधी दल के लोग भी आपस में मिल-जुल लेते थे।

एक रात्रि को दुर्योधन युधिष्ठिर के पास अपनी कुछ गुत्थियों का हल पूछने गया। वह जानता था, उनसे सही सलाह ही मिल सकती है।

दुर्योधन ने पूछा—हमारे दल में भीष्म पितामह जैसे मूर्धन्य सेनापति हैं। फिर भी हम हारते जाते हैं और पाण्डव जीतते हैं। लगता है हमारे सेनापति सच्चे मन से नहीं लड़ते।

युधिष्ठिर ने कहा—आप ठीक कहते हैं। नीति और अनीति का विचार हर किसी का उत्साह बढ़ाता तथा घटाता है। आपके दल के सैनिक यह अनुभव करते हैं कि वे अनीति के पक्ष में लड़ रहे हैं। इसलिए सहज ही उनका पराक्रम शिथिल पड़ जाता है। जबकि पाण्डव दल के लोग न्याय समर्थन की बात ध्यान में रहने से सच्चे मन से लड़ते हैं।

दुर्योधन निरुत्तर हो गया। उसने पलटकर फिर पूछा—'कि क्या कोई ऐसी तरकीब है कि हमारे सेनापति आत्मा की आवाज न सुनें और पूरे जोश से लड़ने लगें।'

युधिष्ठिर ने इसका समाधान भी बता दिया। इन लोगों को नियत वेतन के अतिरिक्त ऐसा भोजन कराया जाय जो अनीति से कमाया और मुफ्त में खिलाया गया हो।

दुर्योधन को यह बात जँच गई। उसने अधिक पाप से अर्जित धन निकाला और उसके व्यंजन बना-बनाकर खिलाना आरम्भ कर दिया। अब वे लोग अधिक उत्साह के साथ लड़ने लगे। आत्मा की पुकार अनीति के धन ने शिथिल कर दी। अन्न के साथ मन का सम्बन्ध कितना प्रगाढ़ है, यह इस घटना से जाना जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय की कन्दराओं में ऋषि सत्ता से साक्षात्कार

नन्दन वन में पहला दिन वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को निहारने, उसी में परम सत्ता की झाँकी देखने में निकल गया। पता ही नहीं चला कि कब सूरज ढला और रात्रि आ पहुँची। परोक्ष रूप से निर्देश मिला--समीपस्थ एक निर्धारित गुफा में जाकर सोने की व्यवस्था बनाने का। लग रहा था कि प्रयोजन सोने का नहीं, सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने का है ताकि स्थूल शरीर पर शीत का प्रकोप न हो सके। सम्भावना थी कि पुनः रात्रि को गुरुदेव के दर्शन होंगे। ऐसा हुआ भी।

उस रात्रि को गुफा में गुरुदेव सहसा आ पहुँचे। पूर्णिमा थी। चन्द्रमा का सुनहरा प्रकाश समूचे हिमालय पर फैल रहा था। उस दिन ऐसा लगा कि हिमालय सोने का है। दूर-दूर बरफ के टुकड़े, तथा बिन्दु बरस रहे थे वे ऐसा अनुभव कराते थे, मानो सोना बरस रहा है। मार्गदर्शक के आजाने से गर्मी का एक घेरा चारों ओर बन गया। अन्यथा रात्रि के समय इस विकट ठन्ड और हवा के झोकों में साधारणतया निकलना सम्भव न होता। दुस्साहस करने पर इस वातावरण में शरीर जकड़ या इंठ सकता था।

किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही यह अहैतुकी कृपा हुई है, यह मैंने पहले ही समझ लिया इसलिए इस काल में आने का कारण पूछने की आवश्यकता न पड़ी। पीछे-पीछे चल दिया। पैर जमीन से ऊपर उठते हुए चल रहे थे। आज यह जाना कि सिद्धियों में से ऊपर हवा में उड़ने की---अन्तरिक्ष में चलने की क्यों आवश्यकता पड़ती है। उन बर्फीले ऊबड़-खाबड़ हिम खण्डों पर चलना उससे कहीं अधिक कठिन था जितना कि पानी की सतह पर चलना। आज उन सिद्धियों की अच्छी परिस्थितियों में आवश्यकता भले ही न पड़े। पर उन दिनों हिमालय जैसे विकट क्षेत्रों में आवागमन की कठिनाई को समझने वालों के लिए आवश्यकता निश्चय ही पड़ती होगी।

मैं गुफा में से निकल कर स्वर्णिम और शीत से काँपते हुए हिमालय पर अधर ही अधर गुरुदेव के पीछे-पीछे उनकी पूँछ की तरह सटा हुआ चल रहा था। आज की यात्रा का उद्देश्य पुरातन ऋषियों की तपस्थलियों का दिग्दर्शन कराना था। स्थूल शरीर सभी ने त्याग दिये थे। पर सूक्ष्म शरीर उनमें से अधिकांश के बने हुए थे। उन्हें भेदकर किन्हीं-किन्हीं के कारण शरीर भी झलक रहे थे। नत मस्तक और करबद्ध नमन की मुद्रा अनायास ही बन गयी। आज मुझे हिमालय पर सूक्ष्म और कारण शरीरों से निवास करने वाले ऋषियों का दर्शन और परिचय कराया जाना था। मेरे लिए आज की रात्रि जीवन भर के सौभाग्यशाली क्षणों में सबसे अधिक महत्व की वेला थी।

उत्तराखण्ड क्षेत्र की कुछ गुफाएँ तो जब तब आते समय यात्रा के दौरान देखी थीं, पर देखी वही थीं जो यातायात की दृष्टि में सुलभ थीं। आज जाना कि जितना देखा है, उससे अनदेखा कहीं अधिक है। इनमें जो छोटी थी, वे तो वन्य पशुओं के काम आती थीं, पर जो बड़ी थी, साफ सुथरी और व्यवस्थित थीं, वे ऋषियों के सूक्ष्म शरीरों के निमित्त थीं। पूर्व अभ्यास के कारण वे अभी भी उनमें यदा कदा निवास करते हैं।

वे सभी उस दिन ध्यानमुद्रा में थे। गुरुदेव ने बताया कि वे प्रायः सदा इसी स्थिति में रहते हैं। अकारण ध्यान तोड़ते नहीं। मुझे एक-एक का नाम बताया और सूक्ष्म शरीर का दर्शन कराया गया। यही है सम्पदा, विशिष्ठता और विभूति सम्पदा, इस क्षेत्र की।

गुरुदेव के साथ मेरे आगमन की बात उन सभी को पूर्व से ही विदित थी। सो हम दोनों जहाँ भी जिस-जिस समय पहुँचे, उनके नेत्र खुल गए। चेहरों पर हलकी मुसकान झलकी और सिर उतना ही झुका, मानो वे अभिवादन का प्रत्युत्तर दे रहे हों। वार्तालाप किसी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ नहीं हुआ। सूक्ष्म शरीर का कुछ कहना होता है, तो वे बैखरी मध्यमा से नहीं, परा और पश्यन्ति वाणी से, कर्ण छिद्रों के माध्यम से नहीं, अन्तःकरण में उठी प्रेरणा के रूप में कहते हैं, पर आज दर्शन मात्र प्रयोजन था। कुछ कहना और सुनना नहीं था। उनकी बिरादरी में एक नया विद्यार्थी भर्ती होने आया, सो उसे जान लेने और जब जैसी सहायता करने की आवश्यकता समझें तब वैसी उपलब्ध करा देने का सूत्र जोड़ना ही उद्देश्य था। सम्भवतः यह उन्हें पहले ही बताया जा चुका होगा कि उनके अधूरे कामों को समय की अनुकूलता के अनुसार पूरा करने के लिए यह स्थूल शरीरधारी बालक अपने ढंग से क्या कुछ करने वाला है एवं अगले दिनों इसकी भूमिका क्या होगी।

सूक्ष्म शरीर से अन्तःप्रेरणाएँ उमंगाने और शक्ति धारा प्रदान करने का काम हो सकता है। पर जन साधारण को प्रत्यक्ष परामर्श देना और घटना क्रमों को घटित करना स्थूल शरीरों का ही काम है। इसलिए दिव्य शक्तियाँ किन्हीं स्थूल शरीरधारियों को भी अपने प्रयोजनों के लिए वाहन बनाती हैं। अभी तक मैं एक ही मार्गदर्शक का वाहन था, पर अब वे हिमालय वासी अन्य दिव्य आत्माएँ भी अपने वाहन का काम ले सकती थीं और तद्नुरूप प्रेरणा,योजना,एवं क्षमता प्रदान करती रह सकती थीं। गुरुदेव इसी भाव वाणी में मेरा परिचय उन सबसे करा रहे थे। वे सभी बिना लोकाचार, शिष्टाचार, निवाहे, बिना समय-क्षेप किये एक संकेत में उस अनुरोध की स्वीकृति दे रहे थे। आज रात्रि की दिव्य यात्रा इसी रूप में चलती रही। प्रभात होने से पूर्व ही वे मेरी स्थूल काया को निर्धारित गुफा में छोड़ कर अपने स्थान को वापस चले गए।

आज ऋषि लोक का पहली बार दर्शन हुआ। हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों—देवालय, सरोवरों, सरिताओं का दर्शन स्पर्श तो यात्रा काल में पहले से भी होता रहा। उस प्रदेश को ऋषि निवास का देवात्मा भी मानते रहे हैं, पर इससे पहले यह विदित न था कि किस ऋषि का किस भूमि से लगाव है। यह आज पहली बार देखा और अन्तिम बार भी। वापस छोड़ते समय मार्गदर्शक ने कह दिया कि इनके साथ अपनी ओर से सम्पर्क साधने का प्रयत्न मत करना। उनके कार्य में बाधा मत डालना। यदि किसी को कुछ निर्देशन करना होगा तो वैसा स्वयं ही करेंगे। हमारे साथ भी तो तुम्हारा यही अनुबन्ध है कि अपनी ओर से द्वार नहीं खटखटाओगे। जब हमें जिस प्रयोजन के लिए जरूरत पड़ा करेगी, स्वयं ही पहुँचा करेंगे और उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक साधन जुटा दिया करेंगे। यही बात आगे से तुम उन ऋषियों के सम्बन्ध में भी समझ सकते हो जिनके कि दर्शन प्रयोजन वश तुम्हें आज कराये गये हैं। इस दर्शन को कौतूहल भर मत मानना वरन् समझना कि हमारा अकेला ही निर्देश तुम्हारे लिए सीमित नहीं रहा। यह महाभाग भी उसी प्रकार अपने सभी प्रयोजन पूरा कराते रहेंगे जो स्थूल शरीर के अभाव में स्वयं नहीं कर सकते। जन सम्पर्क

आत्मा के खेत को ज्ञान के हल से जोतिये। उसमें श्रद्धा के बीज बोइए। इस खेती से जो फसल उगेगी, वह आपको महान बना देगी।

प्रायः तुम्हारे जैसे सत्पात्रों—वाहनों के माध्यम से कराने की ही परम्परा रही है। आगे से तुम इनके निर्देशनों को को भी हमारे आदेश की तरह ही शिरोधार्य करना और जो कहा जाय सो करने के लिए जुट पड़ना। मैं स्वीकृति सूचक संकेत के अतिरिक्त और कहता ही क्या। वे अन्तर्ध्यान हो गये।

यह मेरे जीवन का एक महत्वपूर्ण मोड़ था। यद्यपि इसके बाद भी हिमालय जाने का क्रम बराबर बना रहा एवं गन्तव्य भी वही है, फिर भी गुरुदेव के साथ विश्व-व्यवस्था का संचालन करने वाली परोक्ष ऋषि सत्ता का प्रथम दर्शन अन्तःस्थल पर अमिट छाप छोड़ गया। हमें अपने लक्ष्य, भावी जीवन क्रम, जीवनयात्रा में सहयोगी बनने वाली जाग्रत प्राणवान आत्माओं का आभास भी इसी यात्रा में हुआ। हिमालय की हमारी पहली यात्रा अनेकों ऐसे अनुभवों की कथा गाथा है जो अन्य अनेकों के लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमन्त्रण का प्रयोजन एवं भावी रूपरेखा का स्पष्टीकरण

नन्दन वन प्रवास का अगला दिन और भी विस्मय कारी था। पूर्व रात्रि में गुरुदेव के साथ ऋषिगणों के साक्षात्कार के दृश्य फिल्म की तरह आँखों के समक्ष घूम रहे थे। पुनः गुरुदेव की प्रतीक्षा थी—भावी निर्देशों के लिए। धूप जैसे ही नन्दन वन के मखमली कालीन पर फैलने लगी, ऐसा लगा स्वर्ग स्वयं धरती पर उतर आया हो। भाँति-भाँति के रंगीन फूल ठसाठस थे और चौरस पठार पर बिखरे हुए थे। दूर से देखने पर लगता था मानों एक गलीचा बिछा हो।

सहसा गुरुदेव का स्थूल शरीर रूप में आगमन हुआ। उन्होंने आवश्यकतानुसार पूर्व रात्रि के प्रतिकूल अब वैसा ही स्थूल शरीर बना लिया था जैसा कि प्रथम बार प्रकाश पुन्ज के रूप में पूजा घर में अवतरित होकर हमें दर्शन दिया था।

वार्त्तालाप क्रम आरम्भ करते हुए उन्होंने कहा—"हमें तुम्हारे पिछले सभी जन्मों की श्रद्धा और साहसिकता का पता था। अबकी बार यहाँ बुलाकर तीन परीक्षाएं लीं और जाँचा कि बड़े कामों का बजन उठाने लायक मनोभूमि तुम्हारी बनी या नहीं। इस पूरी यात्रा में तुम्हारे साथ रहे हैं और घटनाक्रम तथा उसके साथ उठती तुम्हारी प्रतिक्रिया को देखते रहे हैं और भी अधिक निश्चिन्तता हो गई। यदि स्थिति सुदृढ़ और विश्वस्त न रही होती तो इस क्षेत्र के निवासी सूक्ष्म शरीर धारी ऋषि गण तुम्हारे समक्ष प्रकट न हुए होते और मन की व्यथा न कहते। उनके कथन का प्रयोजन यही था कि जो काम छूटा हुआ है उसे पूरा किया जाय। समर्थ देखकर ही उनने अपने मनोभाव प्रकट किये। अन्यथा दीन, दुर्बल, असमर्थों के सामने इतने बड़े लोग अपना मन खोलते कहाँ हैं?"

"तुम्हारा समर्पण यदि सच्चा है तो शेष सारे जीवन की कार्य पद्धति बनाये देते हैं। इसे परिपूर्ण निष्ठा के साथ पूरी करना। प्रथम कार्यक्रम तो यही है कि २४ लक्ष्य गायत्री महामन्त्र के २४ पुरश्चरण चौबीस वर्ष में पूरे करो। इससे मजबूती में जो कमी रही होगी सो पूरी हो जायगी। बड़े और भारी काम करने के लिए बड़ी समर्थता चाहिए। उसी के निमित्त यह प्रथम कार्यक्रम सौंपा गया है। इसी के साथ-साथ दो कार्य और भी चलते रहेंगे। एक यह कि अपना अध्ययन जारी रखो। तुम्हें कलम उठानी है। आर्ष ग्रन्थों को अनुवाद प्रकाशन की व्यवस्था करके उसे सर्वसाधारण तक पहुँचना है। इससे देव संस्कृति की लुप्त प्राय कड़ियाँ जुड़ेंगी और भविष्य में विश्व संस्कृति का ढाँचा खड़ा करने में सहायता मिलेगी। इसके साथ ही जब तक स्थूल शरीर विद्यमान है तब तक मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण करने वाला सर्वसुलभ साहित्य विश्व वसुधा की सभी सम्भव भाषाओं में लिखा जाना है। यह कार्य तुम्हारी प्रथम साधना की शक्ति से सम्बन्ध है। इसमें समय आने पर तुम्हारी सहायता के लिए सुपात्र मनीषी आ जुटेंगे जो तुम्हारा छोड़ा काम पूरा करेंगे।

तीसरा कार्य स्वतन्त्रता संग्राम में एक सिपाही की तरह प्रत्यक्ष एवं पृष्ठभूमि में रहकर लड़ते रहने का है। यह सन १९४७ तक चलेगा। तब तक तुम्हारा पुरश्चरण भी बहुत कुछ पूरा होलेगा। यह प्रथम चरण है। इसकी सिद्धियाँ जन साधारण के सम्मुख प्रकट होंगी। इस समय के लक्षण ऐसे नहीं हैं, जिनसे यह प्रतीत हो कि अंग्रेज भारत को स्वतन्त्रता देकर सहज ही चले जायेंगे। किन्तु यह सफलता तुम्हारा अनुष्ठान पूरा होने के पूर्व ही मिलकर रहेगी। तब तक तुम्हारा ज्ञान इतना हो जायेगा जितना कि युग परिवर्तन और नव निर्माण के लिए किसी तत्ववेत्ता के पास होना चाहिए

पुरश्चरणों की समग्र सम्पन्नता तब होती है, जब उसका पूर्णाहुति यज्ञ भी किया जाय। चौबीस लाख पुर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्चरण का गायत्री महायज्ञ इतना बड़ा होना चाहिए, जिसमें २४ लाख मन्त्रों की आहुतियाँ हो सकें एवं तुम्हारा संगठन इस माध्यम से खड़ा हो जाय। यह भी तुम्हें ही करना है। इसमें लाखों रुपयों की राशि और लाखों की सहायक जन संख्या चाहिए। तुम यह मत सोचना कि हम अकेले हैं। पास में धन नहीं है। हम तुम्हारे साथ हैं। साथ ही तुम्हारी उपासना का प्रतिफल भी। इसलिए सन्देह करने की गुन्जायश नहीं है। समय आने पर सब हो जायगा। साथ ही सर्वसाधारण को यह भी विदित हो जायगा कि सच्चे साधक की सच्ची साधना का कितना चमत्कारी प्रतिफल होता है। यह तुम्हारे कार्यक्रम का प्रथम चरण है। अपना कर्त्तव्य पालन करते रहना। यह मत सोचना कि हमारी शक्ति नगण्य है। तुम्हारी कम सही। पर जब हम दो मिल जाते हैं तब एक और एक मिल कर ग्यारह होते हैं। और फिर यह तो दैवी सत्ता द्वारा संचालित कार्यक्रम है। इसमें सन्देह कैसा? समय आने पर सारी विधि व्यवस्था सामने आती जायगी। अभी से योजना बनाने और चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। अध्ययन जारी रखो। पुरश्चरण भी करते रहो। स्वतन्त्रता सैनिक का काम करो। अधिक आगे की बात सोचने में, व्यर्थ में मन में उद्विग्नता बढ़ेगी। अभी अपनी मातृभूमि में रहो और वहीं से प्रथम चरण के यह तीनों काम करो।

आगे की बात संकेत रूप में कहे देते हैं। साहित्य प्रकाशन द्वारा स्वाध्याय का और विशाल धर्म संगठन द्वारा सत्संग का—यह दो कार्य मथुरा रहकर करना पड़ेगा। पुरश्चरण की पूर्णाहुति भी वहीं होगी। प्रेस प्रकाशन भी वहीं से चलेगा। मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की प्रक्रिया सुनियोजित ढंग से वहीं से चलेगी। वह प्रयास एक ऐतिहासिक आन्दोलन होगा जैसा कि अब तक कहीं भी नहीं हुआ।

तीसरा चरण इन सूक्ष्म शरीरधारी ऋषियों की इच्छा पूरी करने का है। ऋषि परम्परा का बीजारोपण तुम्हें करना है। इसका विश्व व्यापी विस्तार अपने ढंग से होता रहेगा। यह कार्य सप्त ऋषियों की तपोभूमि सप्त सरोवर हरिद्वार में रहते हुए करना पड़ेगा। तीनों कार्य तीनों जगह उपयुक्त ढंग से चलते रहेंगे।

अभी संकेत किया है। आगे चलकर समयानुसार इन कार्यों की विस्तृत रूप रेखा हम यहाँ बुलाकर बताते रहेंगे। तीन बार बुलाने के यह तीन प्रयोजन होंगे।

चौथी बार तुम्हें भी चौथी भूमिका में जाना है और हमारे प्रयोजन का बोझ इस सदी के अन्तिम दशकों में अपने कंधों पर लेना है। तब सारे विश्व में उलझी हुई विषम समस्याओं के अत्यन्त कठिन और अत्यन्त व्यापक कार्य अपने कन्धे पर लेना होंगे। पूर्व घोषणा करने से कुछ लाभ नहीं। समयानुसार जो आवश्यक होगा, सो विदित भी होता चलेगा और सम्पन्न भी।"

इस बार की हमारी हिमालय यात्रा में मन में वह असमंजस बना हुआ था कि 'हिमालय की गुफाओं में सिद्ध पुरुष रहने और उनके दर्शन मात्र से विभूतियाँ मिलने की जन श्रुतियाँ प्रचलित हैं। हमें उनका कोई आधार नहीं मिला। वह बात ऐसे ही किम्बदन्ती मालूम पड़ती है।" था तो मन का भीतरी असमंजस। पर गुरुदेव ने उसे बिना कहे ही ताड़ लिया और कन्धे पर हाथ रख कर पूछा? "तुझे क्या जरुरत पड़ गई सिद्ध पुरुषों की? ऋषियों के सूक्ष्म शरीरों के दर्शन एवं हमसे मन नहीं भरा?"

अपने मन में अविश्वास जैसी बात! कोई दूसरा खोजने जैसी बात स्वप्न मे भी नहीं उठी थी। मात्र बाल कौतूहल मन में था। गुरुदेव ने इसे अविश्वास मान लिया होगा तो श्रद्धा क्षेत्र में हमारी कुपात्रता मानेंगे। यह विचार मन में आते ही स्तब्ध रह गया।

मन को पढ़ लेने वाले देवात्मा ने हँसते हुए कहा। वे हैं तो सही। पर दो बातें नई हो गई हैं। एक तो सड़कों की—वाहनों की सुविधा होने से यात्री अधिक आने लगे हैं। इससे उनकी साधना में विघ्न पड़ता है। दूसरे यह कि अन्यत्र जाने पर शरीर निर्वाह में असुविधा होती है। इसलिए उनने स्थूल शरीरों का परित्याग कर दिया है और सूक्ष्म शरीर धारण करके रहते हैं। जो किसी को दृष्टिगोचर भी न हो और उसके लिए निर्वाह साधनों की आवश्यकता भी न पड़े। इस कारण उन सभी ने शरीर ही नहीं स्थान भी बदल लिये हैं। स्थान ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहीं साधना के साथ जुड़े हुए कार्यक्रम भी बदल लिये हैं। जब सब कुछ परिवर्तन हो गया तो दृष्टिगोचर कैसे हों? फिर सत्पात्र साधकों का अभाव हो जाने के कारण वे कुपात्रों को दर्शन देने या उन पर की हुई अनुकम्पा में अपनी शक्ति गँवाना भी नहीं चाहते। ऐसी दशा में अन्य लोग जो तलाश करते हैं वह मिलना सम्भव नहीं। किसी के लिए भी सम्भव नहीं। तुम्हें अगलीबार पुनः हिमालय के सिद्ध पुरुषों की दर्शन झाँकी करा देंगे।"

परब्रह्म के अंशधर देवात्मा सूक्ष्म शरीर में किस प्रकार रहते हैं, इसका प्रथम परिचय हमने अपने मार्गदर्शक के रूप में घर पर ही प्राप्त कर लिया था। उनके हाथों में विधिवत् मेरी नाव सुपुर्द हो गयी थी। फिर भी बाल-बुद्धि अपना काम कर रही थी। हिमालय में अनेकों सिद्ध पुरुषों के निवास की जो बात सुन रखी थी, उस कौतूहल को देखने का जो मन था वह ऋषियों के दर्शन एवं मार्ग-दर्शक की सांत्वना से पूरा हो गया था। इस लालसा को पहले अपने अन्दर ही मन के किसी कोने में छिपाए फिरते थे। आज उसके पूरे होने व आगे भी दर्शन होते रहने का आश्वासन मिल गया था। सन्तोष तो पहले भी कम न था, पर अब वह प्रसन्नता और प्रफुल्लता के रूप में और भी अधिक बढ़ गया।

गुरुदेव ने आगे कहा कि आगे हम जब भी बुलावें तब समझना कि हमने ६ माह या एक वर्ष के लिए बुलाया है। तुम्हारा शरीर इस लायक बन गया है कि इधर की परिस्थितियों में निर्वाह कर सको। इस नये अभ्यास को परिपक्व करने के लिए इस निर्धारित अवधि में एक-एक करके तीन बार और इधर हिमालय में ही रहना चाहिए। तुम्हारे स्थूल शरीर के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता समझेंगे, हम प्रबन्ध करवा दिया करेंगे। फिर इसकी आवश्यकता इसलिए भी है कि स्थूल से सूक्ष्म में और सूक्ष्म से कारण शरीर में प्रवेश करने के लिए जो तितीक्षा करनी पड़ती है, सो होती चलेगी। शरीर को क्षुधा, पिपासा, शीत, ग्रीष्म, निद्रा, थकान व्यथित करती हैं। इन छह को घर पर रहकर जीतना कठिन है क्योंकि सारी सुविधाएँ वहाँ उपलब्ध रहने से यह प्रयोजन आसानी से पूरे होते रहते हैं और तप-तितिक्षाओं के लिए अवसर ही नहीं मिलता। इसी प्रकार मन पर छाये रहने वाले छै कषाय-कल्मष भी किसी न किसी घटना क्रम के साथ घटित होते रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन छै रिपुओं से जूझने के लिए आरण्यकों में रहकर इनसे निपटने का अभ्यास करना पड़ता है। तुम्हें घर रहकर यह अवसर भी न मिल सकेगा। इसलिए अभ्यास के लिए जन संकुल स्थान से अलग रहने से उस आन्तरिक मल्लयुद्ध में भी सरलता होती है। हिमालय में रहकर तुम शारीरिक तितीक्षा और मानसिक तपस्या करना। इस प्रकार तीन बार तीन वर्ष यहाँ आते रहने और शेष वर्षों में जन सम्पर्क में रहने से परीक्षा भी होती चलेगी कि जो अभ्यास हिमालय में रहकर किया था, वह परिपक्व हुआ या नहीं?

यह कार्यक्रम देवात्मा गुरुदेव ने ही बनाया, पर था मेरा इच्छित। इसे मनोकामना की पूर्ति कहना चाहिए। स्वाध्याय, सत्संग और मनन-चिन्तन से यह तथ्य भली प्रकार हृदयंगम हो गया था कि दसों इन्द्रिय प्रत्यक्ष और ग्यारहवीं अदृश्य मन इन सबका निग्रह कर लेने पर बिखराव से छुटकारा मिल जाता है और आत्म संयम का पराक्रम बन पड़ने पर मनुष्य की दुर्बलताएँ समाप्त हो जाती हैं और विभूतियाँ जग पड़ती हैं। सशरीर सिद्ध पुरुष होने का यही राजमार्ग है। इन्द्रिय निग्रह, अर्थ निग्रह, समय निग्रह और विचार निग्रह यह चार संयम हैं। इन्हें साधने वाले महामानव बन जाते हैं और काम क्रोध, लोभ, मोह इन चारों में मन को उबार लेने पर लौकिक सिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं।

मैं तपश्चर्या करना चाहता था। पर करता कैसे? समर्पित को स्वेच्छा आचरण की सुविधा कहाँ? जो मैं चाहता था, वह गुरुदेव के मुख से आदेश रूप में कहे जाने पर मैं फूला न समाया और उस क्रिया-कृत्य के लिए समय निर्धारित होने की प्रतीक्षा करने लगा।

गुरुदेव बोले—"अब वार्ता समाप्त हुई। तुम अब गंगोत्री चले जाओ। वहाँ तुम्हारे निवास, आहार आदि की व्यवस्था हमने कर दी है। भागीरथ शिला—गौरी कुण्ड पर बैठकर अपना साधना क्रम आरम्भ कर दो। एक साल पूरा हो जाय तब अपने घर लौट जाना। हम तुम्हारी देखभाल नियमित रूप से करते रहेंगे।"

(शेष पृष्ठ ४० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो मनों के मल्लयुद्ध में उत्कृष्ट की विजय

अपनी पहली यात्रा में ही सिद्ध पुरुषों—सन्तों के विषय में वस्तुस्थिति का पता चल गया। मैं स्वयं जिस भ्रम में था, वह दूर हो गया और दूसरे जो लोग मेरी ही तरह सोचते रहे होंगे उनके भ्रम का भी निराकरण करता रहा। अपने साक्षात्कार प्रसंग को याद रखते हुए दुहराया कि अपनी पात्रता पहले से ही अर्जित न कर ली हो तो उनसे भेंट हो जाना अशक्य है क्योंकि वे सूक्ष्म शरीर में होते हैं और उचित अधिकारी के सामने ही प्रकट होते हैं। यह जानकारियाँ पहले न थीं। अन्यों को भी तीर्थ-यात्रा कर लेने के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगा होगा।

हमारी हिमालय यात्रा का विवरण पूर्व में अखण्ड-ज्योति की लेखमाला में और बाद में "सुनसान के सहचर" पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। वह विवरण तो लम्बा है पर उसका सारांश थोड़ा ही है। अभावों और आशंकाओं के बीच प्रतिकूलताओं को किस तरह मनोबल के सहारे पार किया जा सकता है, इसका आभास उनमें मिल सकेगा। मन साथ दे तो सर्वसाधारण को संकट दीखने वाले प्रसंग किस प्रकार हँसी मजाक जैसे बन जाते हैं कुछ इसी प्रकार के विवरण उन छपे प्रसंगों में पाठकों को मिल सकते हैं। अध्यात्म मार्ग पर चलने वाले को मन इतना मजबूत तो बनाना ही पड़ता है।

पुस्तक बड़ी है, विवरण भी सुविस्तृत है। पर उसमें बातें थोड़ी सी हैं, साहित्यिक विवेचना ज्यादा है। हिमालय और गंगा तट क्यों साधना के लिए अधिक उपयुक्त हैं इसका कारण हमने उसमें दिया है। एकान्त में सूनेपन का जो भय लगता है, उसमें चिन्तन की दुर्बलता ही कारण है। मन मजबूत हो तो साथियों की तलाश क्यों करनी पड़े? उनके न मिलने पर एकाकीपन का डर क्यों लगे। जंगली पशु पक्षी अकेले रहते हैं। उनके लिए तो हिंस्र पशु-पक्षी भी आक्रमण करने को बैठे रहते हैं। फिर मनुष्य से तो सभी डरते हैं। साथ ही उसमें इतनी सूझ-बूझ भी होती है कि आत्म-रक्षा कर सके। चिन्तन भय की ओर मुड़े तो इस संसार में सब कुछ डरावना है। यदि साहस साथ दे तो हाथ-पैर, आँख मुख और मन, बुद्धि इतनों का निरन्तर साथ रहने पर डरने का क्या कारण हो सकता है? वन्य पशुओं में कुछ ही हिंसक होते हैं। फिर मनुष्य निर्भय रहे, उनके प्रति अन्तः से प्रेम भावना रखें तो खतरे का अवसर आने की कम ही सम्भावना रहती है। राजा हरिश्चन्द्र श्मशान की जलती चिताओं के बीच रहने की मेहतर की नौकरी करते थे। केन्या के मसाई शेरों के बीच ही झोंपड़े बनाकर रहते हैं। वनवासी आदिवासी सर्पों और व्याघ्रों के बीच ही रहते हैं। फिर कोई कारण नहीं कि सूझ-बूझ वाला आदमी वहाँ न रह सके, जहाँ खतरा समझा जा सकता है।

आत्मा परमात्मा के घर में एकाकी आता है। खाना, सोना, चलना भी अकेले ही होता है। भगवान के घर भी अकेले ही जाना पड़ता है। फिर अन्य अवसरों पर भी आपको परिष्कृत और भावुक मन के सहारे उल्लास अनुभव कराता रहे तो इसमें क्या आश्चर्य की बात है। अध्यात्म के प्रतिफल रूप में मन में इतना परिवर्त्तन तो दृष्टिगोचर होना ही चाहिए। शरीर को जैसे अभ्यास में ढालने का प्रयास किया जाता है, वह वैसा ही ढल जाता है। उत्तरी ध्रुव के ऐस्किमो केवल मछलियों के सहारे जिन्दगी गुजार देते हैं। दुर्गम हिमालय एवं आल्प्स् पर्वत के ऊँचे क्षेत्रों में रहने वाले अभावों के बावजूद स्वस्थ लम्बी जिन्दगी जीते हैं। पशु भी घास के सहारे गुजारा कर लेते हैं। मनुष्य भी यदि उपयोगी पत्तियाँ चुनकर अपना आहार निर्धारित कर ले तो अभ्यास व पड़ने तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही थोड़ी गड़बड़ रहती है। बाद में गाड़ी ढर्रे पर चलने लगती है। ऐसे-ऐसे अनेकों अनुभव हमें उस प्रथम हिमालय यात्रा में हुए और जो मन सर्वसाधारण को कहीं से कहीं खींचे-खींचे फिरता है, वह काबू में आ गया और कुकल्पनाएँ देने के स्थान पर आनन्द एवं उल्लास भरी अनुभूतियाँ अनायास ही देने लगा। संक्षेप में यही है हमारी "सुनसान के सहचर" पुस्तक का सार संक्षेप।

ऋतुओं की प्रतिकूलता से निपटने के लिए भगवान ने उपयुक्त माध्यम रखे हैं। जब इर्द-गिर्द बर्फ पड़ती है तब भी गुफाओं के भीतर समुचित गर्मी रहती है। गोमुख क्षेत्र की कुछ हरी झाड़ियाँ जलाने से जलने लगती हैं। रात्रि को प्रकाश दिखाने के लिए ऐसी ही एक वनौषधि झिलमिल जगमगाती रहती है। तपोवन और नन्दन वन में एक शकरकंद जैसा अत्यधिक मधुर स्वाद वाला 'देवकन्द' जमीन में पकता है। ऊपर तो वह घास जैसा दिखाई देता है पर भीतर से उसे उखाड़ने पर आकार में इतना बड़ा निकलता है कि कच्चा या भूनकर एक सप्ताह तक का गुजारा चल सकता है। भोज पत्र के तने की मोटी गाँठें होती हैं। उन्हें कूटकर चाय की तरह क्वाथ बना लिया जाय तो पीने पर ठण्ड में भी अच्छा-खासा पसीना आ जाता है। नमक डाल लिया जाय तो ठीक, अन्यथा बिना नमक के भी वह क्वाथ बड़ा स्वादिष्ट लगने लगता है। भोजपत्र का छिलका ऐसा होता है कि उसे बिछाने, ओढ़ने और पहनने के काम में आच्छादन रूप में लिया जा सकता है। यह बातें यहाँ इसलिए लिखनी पड़ रही हैं कि भगवान ने हर ऋतु की असह्यता से निपटने के लिए सारी व्यवस्था बनाकर रखी है। परेशान तो मनुष्य अपने मन की दुर्बलता से अथवा अभ्यस्त वस्तुओं की निर्भरता से होता है। यदि मनुष्य आत्म-निर्भर रहे तो तीन चौथाई समस्याएँ हल हो जाती हैं। एक चौथाई के लिए अन्य विकल्प ढूँढ़े जा सकते हैं और उनके सहारे समय काटने के अभ्यास किये जा सकते हैं। मनुष्य हर स्थिति में अपने को फिट कर सकता है। उसे तब हैरानी होती है, जब वह यह चाहता है कि अन्य सब लोग उसकी मर्जी के अनुरूप बन जायँ, परिस्थितियाँ अपने अनुकूल ढल जायँ। यदि अपने को बदल लें तो हर स्थिति से गुजरा और उल्लास युक्त बना रहा जा सकता है।

यह बातें पढ़ी और सुनीं तो पहले भी थीं पर अनुभव में इस वर्ष के अन्तर्गत ही आईं जो प्रथम हिमालय यात्रा में व्यवहार में लानी पड़ी। यह अभ्यास एक अच्छी-खासी तपश्चर्या थी, जिसने अपने ऊपर नियन्त्रण करने का भली प्रकार अभ्यास करा दिया। अब हमें विपरीत परिस्थितियों में भी गुजारा करने से परेशानी का अनुभव नहीं होता था। हर प्रतिकूलता को अनुकूलता की तरह अभ्यास में उतारते देर नहीं लगती।

एकाकी जीवन में काम, क्रोध, लोभ, मोह का कोई अवसर नहीं था। इसलिए उनसे निपटने का कोई झंझट सामने नहीं आया। परीक्षा के रूप में जो भय और प्रलोभन सामने आये उन्हें हँसी में उड़ा दिया गया। यहाँ स्वाभिमान भी न काम कर गया। सोचा "हम आत्मा हैं। प्रकाश पुंज और समर्थ। गिराने वाले भय और प्रलोभन हमें न तो गिरा सकते हैं न उलटा घसीट सकते हैं।" मन का निश्चय सुदृढ़ देखकर पतन और पराभव के जो भी अवसर आए, वे परास्त होकर वापस लौट गये। एक वर्ष के उस हिमालय निवास में जो ऐसे अवसर आये, उनका उल्लेख करना यहाँ इसलिए उपयुक्त नहीं समझा कि अभी हम जीवित हैं और अपनी चरित्र निष्ठा की ऊँचाई का वर्णन करने में कोई आत्म-श्लाघा की गन्ध सूँघ सकता है। यहाँ तो हमें मात्र इतना ही कहना है कि अध्यात्म पथ के पथिक को आये दिन भय और प्रलोभनों का दबाव सहना पड़ता है। इनसे जूझने के लिए हर पथिक को कमर कसकर तैयार रहना चाहिए। जो इतनी तैयारी न करेगा उसे उसी तरह पछताना पड़ेगा जिस प्रकार सरकस के संचालक और 'रिंग मास्टर' का पद बिना तैयारी किये कोई ऐसे ही सम्भाल ले और पीछे हाथ-पैर तोड़ लेने अथवा जान जोखिम में डालने का उपहास कराये।

उपासना, साधना और आराधना में—"साधना" ही प्रमुख है। उपासना का कर्मकाण्ड कोई नौकरी की तरह भी कर सकता है। आराधना—पुण्य परमार्थ को कहते हैं। जिसने अपने को साध लिया है, उसके लिए और कोई काम करने के लिए बचता ही नहीं। उत्कृष्टता सम्पन्न मन अपने लिए सबसे लाभदायक व्यवसाय पुण्य परमार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही देखता है। इसी में उसकी अभिरुचि और प्रवीणता बन जाती है। हिमालय के प्रथम वर्ष में हमें आत्म-संयम की—मनो निग्रह की साधना करनी पड़ी। जो कुछ चमत्कार हाथ लगे हैं, उसी के प्रतिफल हैं। उपासना तो समय काटने का एक व्यवसाय बन गया।

घर चार घण्टे नींद लिया करते थे। यहाँ उसे बढ़ाकर छै घण्टे कर दिया। कारण कि घर पर अनेकों स्तर के अनेक काम रहते थे। पर यहाँ तो दिन का प्रकाश हुए बिना मानसिक जप के अतिरिक्त और कुछ कर सकना ही सम्भव न था। पहाड़ों की ऊँचाई में प्रकाश देर से आता है और अन्धेरा जल्दी हो जाता है। इसलिये १२ घण्टे के अन्धेरे में छै घण्टे सोने के लिए और छै घण्टे उपासना के लिए पर्याप्त होने चाहिए। स्नान का बन्धन वहाँ नहीं रहा। मध्यान्ह को ही नहाना और कपड़े सुखाना सम्भव होता था। इसलिए परिस्थिति के अनुरूप दिनचर्या बनानी पड़ी। दिनचर्या के अनुरूप परिस्थितियाँ तो बन नहीं सकती थीं।

"प्रथम हिमालय यात्रा कैसी सम्पन्न हुई ?" इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि परिस्थितियों के अनुरूप मन को ढाल लेने का अभ्यास भली प्रकार कर लिया। इसे यों भी कह सकते हैं कि आधी मंजिल पार करली। इस प्रकार प्रथम वर्ष में दबाव तो अत्यधिक सहने पड़े तो भी कच्चा लोहा तेज आग की भट्टी में ऐसा लोहा बन गया जो आगे चलकर किसी भी काम आ सकने के योग्य बन गया।

पिछला जीवन विल्कुल दूसरे ही ढर्रे में ढला था। सुविधाओं और साधनों के सहारे गाड़ी लुढ़क रही थी। सब कुछ सीधा और सरल लग रहा था। पर हिमालय पहुँचते ही सब कुछ उलट गया। वहाँ की परिस्थितियाँ ऐसी थीं, जिनमें निभ सकना केवल उन्हीं के लिए सम्भव था जो छिड़ी लड़ाई के दिनों में कुछ ही समय की ट्रेनिंग लेकर सीधे मोर्चे पर चले जाते हैं और उस प्रकार के साहस का परिचय देते हैं जिसका इससे पूर्व कभी पाला नहीं पड़ा था।

प्रथम हिमालय यात्रा का प्रत्यक्ष प्रतिफल एक ही रहा कि अनगढ़ मन हार गया और हम जीत गए। प्रत्येक नई असुविधा को देखकर उसने नये बछड़े की तरह हल में चलने से कम आना-कानी नहीं की। किन्तु उसे कहीं भी समर्थन न मिला। असुविधाओं को उसने अनख तो माना और लौट चलने की इच्छा भी प्रकट का, किन्तु पाला ऐसे किसान से पड़ा था जो मरने-मारने पर उतारू था। आखिर मन को झक मारनी पड़ी और हल में चलने का अपना भाग्य अङ्गीकार करना पड़ा। यदि जी कच्चा पड़ा होता तो स्थिति वह नहीं बन पड़ती जो अब बन गई है। पूरे एक वर्ष नई-नई प्रतिकूलताएँ अनुभव होती रहीं, बार-बार ऐसे विकल्प उठते रहे जिसका अर्थ होता था कि इतनी कड़ी परीक्षा में पड़ने पर हमारा स्वास्थ्य विगड़ जायेगा। भविष्य की सांसारिक प्रगति का द्वार बन्द हो जायेगा। इसलिए समूची स्थिति पर पुनर्विचार करना चाहिए।

एक बार तो मन में ऐसा ही तमोगुणी विचार भी आया, जिसे छिपाना उचित नहीं होगा। वह यह कि जैसा बीसियों ढोंगियों ने हिमालय का नाम लेकर अपनी धर्म ध्वजा फहरा दी है, वैसा ही कुछ करके सिद्ध पुरुष बन जाना चाहिए और उस घोषणा के आधार पर जन्म भर गुलछर्रे उड़ाने चाहिए। ऐसे बीसियों आदमियों की चरित्र गाथा और ऐशो आराम भरी विडम्बना का हमें आद्योपान्त परिचय है। यह विचार उठा वैसे ही उसे तत्क्षण जूते के नीचे दवा दिया। समझ में आ गया कि मन की परीक्षा ली जा रही है। सोचा कि जब अपनी सामान्य प्रतिभा के बलबूते ऐशो-आराम के आडम्बर खड़े किये जा सकते हैं तो हिमालय को—सिद्ध पुरुषों को—सिद्धियों को भगवान को—तपश्चर्या को बदनाम करके आडम्बर रचने से क्या फ़ायदा ?

उस प्रथम वर्ष में मार्गदर्शक ऋषि सत्ता के साक्षात्कार ने मुझे आमूल-चूल बदल दिया। अनगढ़ मन के साथ नये परिष्कृत मन का मल्ल-युद्ध होता रहा और यह कहा जा सकता है कि परिणाम स्वरूप हम पूरी विजयश्री लेकर वापस लौटे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्म का ध्रुव केन्द्र — देवात्मा हिमालय

देवात्मा हिमालय, विशेषकर उत्तराखण्ड जिसे हिमालय का हृदय कहा जाता है, अध्यात्म विज्ञानियों की दृष्टि में दैवी चेतन सत्ता की निवास स्थली है। मोटी दृष्टि से वह बर्फ से आच्छादित एक पर्वत श्रृंखला है जो तिब्बत के पठार को भारतीय उप महाद्वीप से अलग करती है। आल्प्स् पर्वत की तरह ही स्थूल दृष्टि रखने वालों ने उसे एक हिम पर्वत माना है। जबकि भारतीय संस्कृति के विकास की दृष्टि से हिमालय का महत्वपूर्ण स्थान है।

पाठकों को यह जानकारी यहाँ दे देना अप्रासांगिक नहीं होगा कि हिमालय का आर्य संस्कृति के उत्थान में कितना महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह देवताओं, ऋषियों तपस्वियों की पुण्य स्थली रही है। इसी कारण इसे स्वर्ग कहा जाता हो तो यह गलत नहीं माना जाना चाहिए। ऐसे अनेकों भौगोलिक एवं नृतत्व विज्ञान सम्बन्धी तथ्य मिलते हैं जो इस मत का समर्थन करते हैं कि हिमालय का महत्व बृहत्तर भारत के सांस्कृतिक विकास के परिप्रेक्ष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए। इतिहासकारों ने लिखा है कि आर्य मध्य ऐशिया से हिमालय की तराइयों में होते हुए नीचे उतरे और आर्यावर्त्त में बस गये। आर्यावर्त्त गंगा यमुना का दोआबा कहलाता था। आरम्भ में उसकी सीमा त्रिवेणी संगम तक थी। पीछे वह गया क्षेत्र तक बढ़ गई।

इतिहास कारों के अनुसार आर्यों का राजा इन्द्र कहलाता था और उनका पुरोहित बृहस्पति। हिमालय का उत्तराखण्ड क्षेत्र इन देवजनों की राजधानी थी। इन्द्र के तत्वावधान में कार्य करने वाले अन्य देवता भी हिमालय के इसी उच्च शिखर भाग में रहते थे। तब हिमालय ऊँचा तो था पर इतना ऊँचा नहीं कि उसकी ठंडक असह्य हो और वृक्ष वनस्पति न होते हों। इन दिनों जो स्थिति गंगोत्री क्षेत्र की है लगभग वही उस क्षेत्र की थी जिसे देवलोक कहते थे। शासकों, विद्वानों और वैज्ञानिकों के समुदाय उसी क्षेत्र में रहते थे। मौसम इतना ठन्डा न था जितना वहाँ इन दिनों है।

अब से १७ हजार वर्ष पूर्व पिछला हिम युग आया था। पृथ्वी के बड़े भाग में बर्फ जम गई थी। समुद्रों में भी उथल-पुथल हुई थी कितने ही भूखण्डों में पानी भर गया था और महाद्वीप कट कर एक-दूसरे से अलग हो गये थे। भू-भागों में कुछ नीचे हो गये—कुछ नीचे-ऊँचे। इस उलट-पुलट का हिमालय पर भी असर पड़ा और मौसम पर भी। गंगोत्री और बद्रीनाथ शिखर ऊँचे उठ गये और वहाँ ठंडक की अधिकता से वृक्ष वनस्पतियों का भी अभाव हो गया। देव युग में ऐसा न था। मध्य ऐशिया से आर्यावर्त्त तक आवागमन की, रहन-सहन की सुविधा थी। इसी से आर्य मध्य ऐशिया छोड़कर आर्यवर्त्त के उपजाऊ क्षेत्र में आ बसे।

मध्य ऐशिया का वातावरण उन दिनों अच्छा न था। असुर स्तर के लोग बहु संख्या में उधर रहते थे। उनकी रीति-नीति का आर्यों से तालमेल न बैठता था। आयेदिन देवासुर संग्राम ठने रहते थे। अन्त में यह क्षेत्र उनने खाली कर दिया। अधिक अच्छी भूमि जो उनने तलाश कर ली थी। उत्तराखण्ड का अपेक्षाकृत ऊँचा क्षेत्र इस दृष्टि से भी उत्तम था कि वह सुरक्षा के मध्यवर्ती किले का काम करता था। असुरों से लड़ना होता तो उन्हें ऊपर बसे हुए लोग आसानी से रोक सकते थे और नीचे धकेल देते थे।

यह इतिहासकारों का प्रतिपादन है। इसकी पौराणिक गाथा में भी संगति मिल जाती है। देवताओं का स्वर्ग कहाँ था? इसके लिए अलंकारिक भाषा में उसे ऊपर आसमान में कोई लोक विशेष कहा गया है। ऊपर आसमान—अन्तरिक्ष में बसा हुआ। पर उस कथन की तथ्यात्मक श्रृंखला नहीं मिलती। मनुष्यों का स्वर्ग लोक से आवागमन किस प्रकार सम्भव हो सकता है? मरने के बाद स्वर्ग जाने की बात यदि ठीक है तो आये दिन वहाँ आवागमन कैसे बन पड़ेगा? तथ्य यही था कि गंगा का उद्गम जिस क्षेत्र में है और वही से कुछ आगे-पीछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरयू, यमुना आदि निकलती हैं, पंजाब के पंचनद जहाँ से निकलते हैं, उसी को तत्कालीन स्वर्ग कहा जा सकता है। अभी भी लेह, तिब्बत, आदि का मौसम ऐसा है, जहाँ मनुष्यों का आसानी से निर्वाह हो जाता है। पूर्व काल का देवताओं का स्वर्ग बद्रीनाथ से तिब्बत तक फैला हुआ था। इस क्षेत्र के निवासी मूर्धन्य स्तर के थे। वह विज्ञान की प्रत्येक धारा में पारंगत थे। तत्व दर्शन भी उनका प्रिय विषय था। उपयुक्त सभी विशेषताओं के रहने से उस क्षेत्र का नाम स्वर्ग और निवासियों के नाम उनकी विशिष्ठताओं के अनुरूप देवता कहा गया हो तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। यदि ब्रह्माण्ड में कहीं अन्यत्र बुद्धिमान प्राणी रहते होंगे तो उनके साथ भी उनकी घनिष्टता रही हो तो आश्चर्य नहीं। इस पृथ्वी पर यह चरम उत्कर्ष का क्षेत्र तो था ही। ज्ञान और विज्ञान का भण्डार होने के कारण इस प्रकार की उपमा दिया जाना कोई असंगत नहीं है। उनका लोक-लोकान्तरों की प्रतिभाओं के साथ आदान-प्रदान चलना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उन दिनों महान विद्याओं, कलाओं, विभूतियों का भण्डार उस क्षेत्र में रहने की बात समझ में भी आती है।

नारद जी स्वर्ग लोक में विष्णुजी से महत्वपूर्ण समस्याओं के सम्बन्ध में विचार विमर्श हेतु बहुधा आते जाते रहते थे। इस आवागमन में उन्हें प्रवीणता प्राप्त थी। पुराणों में और भी ऐसी कथाएँ हैं, जिनसे उपरोक्त तथ्य की पुष्टि होती है। असुरों के आक्रमण मध्य ऐशिया से देव समुदाय पर जब-जब हुए हैं तब-तब उनने आर्यावर्त्त के राजाओं को सहायता करने के लिए बुलाया है और वे प्रसन्नता पूर्वक पहुँचे भी हैं। राजा दशरथ एक बार इन्द्र के आमन्त्रण पर वहाँ गये थे। रथ की धुरी में गड़बड़ी पड़ जाने से उनकी पत्नी ने अपनी उँगली लगा कर यान को यथावत् चालू रहने योग्य बनाया था। इस साहसिकता के बदले दशरथ ने कैकेयी को दो वरदान देने का वचन दिया था। एकबार अर्जुन को इन्द्र ने बुलाया था। वे भी सहायता करने पहुँचे थे सहायता सफल हुई तो इन्द्र ने वहाँ की सर्वोत्तम सुन्दरी उर्वशी का उपहार में देना चाहा। अर्जुन के मनाकर देने पर इन्द्र ने दूसरा उपहार गाण्डीव धनुष के रूप में उन्हें दिया था। उस धनुष के बाण शब्द वेधी होते थे।

असुरों ने मध्य ऐशिया को छोड़कर देवताओं की सम्पदा पर कब्जा करने के लिए लंका को अपना अड्डा बनाया था और देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर को लूटकर लंका में सोने के मकान बना लिये थे। इस प्रकार देवताओं का स्वर्ग इस धरती पर होना ही सिद्ध होता है और भी कितनी ही कथाएँ इस प्रकार की हैं जिनमें स्वर्ग का वर्णन इसी रूप में आता है मानो वह पृथ्वी का ही कोई उत्कृष्ट भाग रहा हो। यह भी कहा जा सकता है कि अधिक विकसित सभ्यता के किन्हीं अन्तरिक्ष वासियों के साथ उन लोगों का आदान-प्रदान रहा हो। ऐसे अनेकों प्रमाण अभी भी उपलब्ध होते हैं।

हिमालय को कार्य क्षेत्र देवताओं ने बनाया हो इसके कई कारण थे। एक यह कि अधिक ऊँचाई होने से असुरों का वहाँ तक पहुँचना और आक्रमण करना सरल नहीं था। इस लिए देवासुर संग्राम आये दिन न होने की सुविधा देवताओं को मिलती थी। दूसरी यह कि उस क्षेत्र में अनेकों गुफाएँ हैं, जिनमें ताप मान सह्य रहता है। उनमें निवास करते हुए तत्वज्ञान और विज्ञान की शोधें एकान्त में---एकाग्रतापूर्वक करना सम्भव होता था। तीसरे यह कि उस क्षेत्र में संजीवनी बूटी जैसी मृतक को जीवित कर कर देने वाली जड़ी-बूटियाँ मिलती थीं। सोमरस यहीं उगता था। च्यवन जैसे को वृद्ध को युवा बना देने वाला अष्ट वर्ग यहीं था। संसार को अलभ्य जड़ी-बूटियों की दृष्टि से यह क्षेत्र अनुपम था व अभी भी है। उस समय स्वर्ण की खदानें भी इधर ही थीं। वातावरण में ऐसे तत्व थे जिन्हें अलौकिक कहा जा सके। इन कारणों से ऋषि गण इस क्षेत्र की गुफाओं में रहकर अनेकों सिद्धियों का उपार्जन करते थे। मानव शरीर ब्रह्माण्ड शरीर का संक्षिप्त संस्करण है। इसमें प्रकृति की---ब्रह्माण्ड की---महती शक्तियाँ बीज रूप में विद्यमान हैं। उन्हें उठाने और परिपक्व करने के लिए यह क्षेत्र सर्व सुविधा सम्पन्न है। ऋद्धियों और सिद्धियों का भाण्डागार इस क्षेत्र में रहकर सरलता पूर्वक अर्जित किया जा सकता है। इस लिए देवता ही नहीं, देव मानवों, सिद्ध पुरुषों का समुदाय भी इसी क्षेत्र में आकर निवास करता था। इतिहास पुराण इस बात के साक्षी है कि ऋषियों में से अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने अपनी योग साधना तपश्चर्या करके दुर्लभ विभूतियाँ यहीं अर्जित की थीं। उस उपार्जन का लाभ मनुष्य जाति को, विशेषतया आर्यावर्त्त क्षेत्र को निरन्तर मिलता रहा है। प्रसिद्ध है कि उधर के ऊबड़-खाबड़ नदी नालों को सुव्यवस्थित करके देवताओं ने भागीरथ के तत्वावधान में गंगा को स्वर्ग से नीचे उतारा था और जल के अभाव में पिछड़ा हुआ क्षेत्र हरीतिमा से भरपूर स्वर्ण सम्पदाओं का स्वामी आर्यावर्त्त बन गया था।

हिमालय के स्वर्ग केन्द्र की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यहाँ स्थूल शरीर को सूक्ष्म शरीर में विकसित कर लेना और उसे इच्छानुसार लम्बी अवधि तक जीवित बनाये रखना सम्भव था। सूक्ष्म और कारण शरीर को समर्थ बनाने के उपरान्त स्थूल शरीर के न रहने पर भी मनुष्य का अस्तित्व बना रहता है। तब उसे भूख, प्यास, निद्रा आदि की उन आवश्यकताओं को पूरा नहीं करना पड़ता, जो स्थूल शरीर के रहते अनिवार्य रूप से आवश्यक मानी जाती हैं। सूक्ष्म शरीर दृश्यमान न होते हुए भी स्थूल शरीर की तुलना में कहीं अधिक समर्थ एवं स्थिर रहता है। उसे शरीरगत आवश्यकताओं में ही लगाना पड़ता है। जो महान् उद्देश्य सामने है, उसे पूरा करने में बिना किसी विघ्न बाधा के लगे रहने में कोई विघ्न आड़े नहीं आता। स्थूल शरीर को स्वेच्छा पूर्वक परित्याग करके सूक्ष्म शरीर के रूप में अपनी सत्ता को बनाये रहना और जो काम करने हैं, उन्हें अनवरत रूप से चालू रख पाना सम्भव होता है। यह एक बहुत बड़ी सुविधा है। इसे उपलब्ध करने से लम्बे समय तक किसी प्रयोग को जारी रखा जा सकता है। स्थूल शरीर के न रहने पर साधारण मनुष्यों की गतिविधियाँ समाप्त हो जाती हैं किन्तु सूक्ष्म शरीर धारी अपनी गतिविधियाँ हजारों वर्षों तक जारी रखे रह सकता है।

जैसा कि पूर्व में बताया गया, अब से १७ हजार वर्ष पूर्व पिछला हिमयुग आया था। उस समय के ऋषि अपने सूक्ष्म शरीर से किन्हीं कन्दराओं, शिखरों, एवं दिव्य भूमियों पर विद्यमान हैं। सर्वसाधारण को वे नहीं दीखते। किन्तु जिन्हें अपना परिचय देना होता है या कुछ सहायता करनी होती है तब उस शरीर को प्रकट भी कर देते हैं। यह बहुत बड़ी बात है। इस सिद्धि के बल पर ही हिमालय के सिद्ध पुरुष हिमयुग से भी पूर्व की संचित अपनी ज्ञान सम्पदा को यथावत् बनाये हुए हैं। इसके बाद भी वे अपने तप प्रयोगों में संलग्न रहने के कारण अपेक्षाकृत और भी अधिक समर्थ हो गये हैं। हमारा साक्षात्कार इन्हीं ऋषिगणों से गुरुदेव ने कराया था।

पिछड़ों को बढ़ाना और गिरों को उठाना इन सिद्ध पुरुषों का प्रधान कार्य है। जो अध्यात्म मार्ग में बढ़ना चाहते हैं, उन्हें अध्यापकों की तरह पढ़ाना, अभिभावकों की तरह संरक्षण एवं सुविधा प्रदान करना इनका प्रमुख कार्य है। जब उन्हें संसार की सामयिक समस्याओं का समाधान करने के लिए स्वयं कोई बड़ा उत्तरदायित्व ओढ़ना होता है तो किसी शरीर में मनुष्य जन्म भी ले लेते हैं और अपना प्रयोजन पूरा होने पर उस शरीर को त्यागकर पुनः अपने सिद्ध स्वरूप में लौट जाते हैं।

भगवान निराकार हैं। वे शरीर धारण नहीं कर सकते। एक जगह जन्म लेने वाले को अन्यत्र से अपनी सत्ता समेटनी पड़ेगी। इसलिए वे अपने किसी अंशधर को वह काम सौंप देते हैं, जो उन्हें कराना है। यह अंशधर ही देवात्मा, ऋषि, अवतार, महापुरुष आदि कहलाते हैं और वे उन कामों को सम्पन्न करते हैं जो उन्हें सौंपे गये हैं। समय-समय पर ऐसे अंशधर ही प्रकट होते और वे कार्य पूरे कर दिखाते हैं, जो सामान्य मनुष्यों की सामर्थ्य से बाहर हैं।

इस पृथ्वी का आध्यात्मिक ध्रुव केन्द्र हिमालय है। इसे एक प्रकार से भगवान की विशेष शक्तिशाली सेना की छावनी समझा जाना चाहिए। सूक्ष्म शरीरधारी—अंशधर देवात्मा सिद्ध पुरुष प्रायः इसी क्षेत्र में रहते हैं। महाप्रभु ईसा कुछ समय के लिए इसी क्षेत्र में आये थे। यह ईसवी सदी के प्रारम्भ की बात है। यह उच्च स्तरीय आत्माओं का प्रशिक्षण विद्यालय रहा है। उन्हें आवश्यक अस्त्र-शस्त्र भी यहीं से मिल जाते हैं। जो सिद्धियाँ उनकी निज की उपार्जित नहीं होतीं, उन्हें यह सिद्ध पुरुष अपने विभूति भण्डार में से अभीष्ट उद्देश्य पूर्ति के लिए प्रदान करते हैं और वे भी चमत्कारी महापुरुषों की तरह लोकहित के—सामयिक समाधान इस प्रकार करते हैं कि दर्शकों को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। यही है हिमालय का वास्तविक स्वरूप जिसे स्पष्टतः अध्यात्म का ध्रुव केन्द्र मानना चाहिए। ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय हिमालय यात्रा एवं मथुरा के लिए प्रयाण

प्रथम परीक्षा देने के लिए हिमालय बुलाये जाने के आमन्त्रण को प्रायः दस वर्ष बीत गये। फिर बुलाये जाने की आवश्यकता नहीं समझी गई। उनके दर्शन उसी मुद्रा में होते रहे जैसे कि पहली बार हुए थे। "सब ठीक है" इतने ही शब्द कहकर प्रत्यक्ष सम्पर्क पूरा होता रहा। अन्तरात्मा में उनका समावेश निरन्तर होता रहा। कभी ऐसा अनुभव नहीं हुआ कि हम अकेले हैं। सदा दो साथ रहने जैसी अनुभूति होती रही। इस प्रकार दस वर्ष बीत गए।

स्वतन्त्रता संग्राम चल ही रहा था। इसी बीच ऋतु अनुकूल पाकर पुनः आदेश आया हिमालय पहुँचने का। दूसरे ही दिन चलने की तैयारी कर दी। आदेश की उपेक्षा करना, विलम्ब लगाना हमारे लिए सम्भव न था। जाने की जानकारी घर के सदस्यों को देकर प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में चल पड़ने की तैयारी कर दी। सड़क तब भी उत्तर काशी तक ही बनी थी। आगे के लिए निर्माण कार्य आरम्भ हो रहा था।

रास्ता अपना देखा हुआ था। ऋतु उतनी ठण्डी नहीं थी जितनी कि पिछली बार थी। रास्ते पर आने-जाने वाले मिलते रहे। चट्टियाँ (ठहरने की छोटी धर्मशालाएँ) भी सर्वथा खाली नहीं थीं। इस बार कोई कठिनाई नहीं हुई। सामान भी अपेक्षाकृत साथ में ज्यादा नहीं था। घर जैसी सुविधा तो कहाँ, किन्तु जिन परिस्थितियों में यात्रा करनी पड़ी, वह असह्य नहीं अनभ्यस्त भर थी। क्रम यथावत् चलता रहा।

पिछली बार जो तीन परीक्षाएँ ली गई थीं इस बार इनमें से एक से भी पाला नहीं पड़ा। जो परीक्षा ली जा चुकी है, उसी को बार-बार लेने की आवश्यकता भी नहीं समझी गई। गंगोत्री तक का रास्ता ऐसा था जिसके लिए किसी से पूछताछ नहीं करनी थी। गंगोत्री से गोमुख के १४ मील ही ऐसे हैं जिसका रास्ता वर्फ पिघलने के बाद हर साल बदल जाता है। चट्टानें टूट जाती हैं और इधर से उधर गिर पड़ती हैं। छोटे नाले भी चट्टानों से रास्ता रुक जाने के कारण अपना रास्ता इधर से उधर बदलते रहते हैं। नये वर्ष का रास्ता यों तो उस क्षेत्र से परिचित किसी जानकार को लेकर पूरा करना पड़ता था या फिर अपनी विशेष बुद्धि का सहारा लेकर अनुमान के आधार बढ़ते और रुकावट आ जाने पर लौट कर दूसरा रास्ता खोजने का क्रम चलता रहा। इस प्रकार गोमुख जा पहुँचे।

आगे के लिए गुरुदेव का सन्देश वाहक साथ जाना था। वह भी सूक्ष्म शरीरधारी था। छाया पुरुष यों वीरभद्र स्तर का था। समय-समय पर वे उसी से अनेकों काम लिया करते थे। जितनी बार हमें हिमालय जाना पड़ा तब गोमुख से नन्दन वन एवं और ऊँचाई तक तथा वापस गोमुख पहुँचाने का काम उसी के जिम्मे था। सो उस सहायक की सहायता से हम अपेक्षाकृत कम समय में और अधिक सरलता पूर्वक पहुँच गए। रास्ते भर दोनों ही मौन रहे।

नन्दन वन पहुँचते ही गुरुदेव का सूक्ष्म शरीर—प्रत्यक्ष रूप में सामने विद्यमान था। उनके प्रकट होते ही हमारी भावनाएँ उमड़ पड़ीं। आँखें बरस पड़ीं। होंठ काँपते रहे। नाक गीली होती रही। ऐसा लगता रहा मानों अपने ही शरीर का कोई खोया अंग फिर मिल गया हो और उसके अभाव में जो अपूर्णता रहती हो सो पूर्ण हो गई हो। उनका सिर पर हाथ रख देना हमारे प्रति अगाधप्रेम के प्रकटीकरण का प्रतीक था। अभिवादन आशीर्वाद का शिष्टाचार इतने से ही पूर्ण हो गया। गुरुदेव ने हमें संकेत किया, ऋषि सत्ता से पुनः मार्गदर्शन लिये जाने के विषय में। हृदय में रोमांच हो उठा।

हिमालय के जिस क्षेत्र का विवरण पूर्व में हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती का स्वर्ग बताते हुए किया है। सतयुग के प्रायः सभी ऋषि सूक्ष्म शरीरों से उसी क्षेत्र में निवास करते आए हैं। स्थान नियत करने की दृष्टि से सभी ने अपने-अपने लिए एक-एक गुफा निर्धारित करली है। वैसे शरीर चर्चा के लिए उन्हें स्थान नियत करने या साधन सामिग्री जुटाने की कोई आवश्यकता नहीं है। तो भी अपने-अपने निर्धारित क्रिया-कलाप पूरे करने तथा आवश्यकतानुसार परस्पर मिलते-जुलते रहने के लिए सभी ने एक-एक स्थान नियत कर लिए हैं।

पहली यात्रा में हम उन्हें प्रणाम भर कर पाए थे। अब दूसरी यात्रा में गुरुदेव हमें एक-एक करके उनसे अलग-अलग भेंट कराने ले गये। पहले केवल परोक्ष रूप में आशीर्वाद मिला था, अब उनका सन्देश सुनने की बारी थी। दीखने को वे हलके से प्रकाश पुञ्ज की तरह दीखते थे। पर जब अपना सूक्ष्म शरीर सही हो गया तो उन ऋषियों का सतयुग वाला शरीर भी यथावत् दीखने लगा। ऋषियों के शरीर की जैसी संसारी लोग कल्पना किया करते हैं वे लगभग वैसे ही थे। शिष्टाचार पाला गया। उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। उन्होंने हाथ का स्पर्श जैसा शिर पर रखा और उतने भर से ही रोमाञ्च हो उठा। आनन्द और उल्लास की उमँगें फूटने लगी।

बात काम की चली। हर एक ने परा वाणी में कहा कि हम स्थूल शरीर से जो गतिविधियाँ चलाते थे, वे अब पूरी तरह समाप्त हो गई हैं। फूटे हुए खण्डहरों के अवशेष जिस प्रकार पड़े होते हैं उसी तरह के वे स्थान पड़े हुए हैं। जब हम लोग दिव्य दृष्टि से उन क्षेत्रों की वर्त्तमान स्थिति देखते हैं, तब बड़ा कष्ट होता है। गंगोत्री से लेकर हरिद्वार तक का पूरा क्षेत्र ऋषि क्षेत्र था। उस एकान्त में मात्र तपश्चर्या की विधा ही पूरी होती थी।

उत्तर काशी में जैसा जमदग्नि का गुरुकुल आरण्यक था जहाँ-तहाँ वैसे अनेकों ऋषि आश्रम संव्याप्त थे। शेष ऋषि अपने-अपने हिस्से की शोध तपश्चर्याएँ करने में संलग्न रहते थे। देवताओं के स्थान यहाँ थे, जहाँ आज-कल हम लोग अब रहते हैं। हिमयुग के उपरान्त न केवल स्थान ही बदल गये वरन् गतिविधियाँ बदलीं तो क्या, पूरी तरह से समाप्त ही हो गईं, उनके चिन्ह भर शेष रह गए हैं।

उत्तराखण्ड में जहाँ-तहाँ देवी देवताओं के मन्दिर तो बन गये हैं ताकि उन पर धनराशि चढ़ती रहे और पुजारियों का गुजारा होता चले। पर इस बात को न कोई पूछने वाला है न बताने वाला कि ऋषि कौन थे? कहाँ थे? क्या करते थे? उसका कोई चिन्ह भी अब बाकी नहीं रहा। हम लोगों की दृष्टि में ऋषि परम्परा की तो अब एक प्रकार से प्रलय ही हो गई।

लगभग यही बात उन बीसियों ऋषियों की ओर से कही गई जिनसे हमारी भेंट कराई गई। विदाई देते समय उन सभी की आँखें डबडबाई सी दीखीं। लगा कि सभी व्यथित हैं। सभी का मन उदास और भारी है। पर हम क्या कहते? इतने ऋषि मिलकर जितना भार उठाते थे, उसे उठाने की अपनी सामर्थ्य भी तो नहीं है। उन सबका मन भारी देखकर अपना चित्त भी द्रवित हो गया। सोचते रहे। भगवान ने किसी लायक हमें बनाया होता तो इन देव पुरुषों को इतना व्यथित देखते हुए चुप्पी साधकर ऐसे ही वापस न लौट जाते। स्तब्धता अपने ऊपर भी छा गई और आँखें डबडबाने लगीं—प्रवाहित होने लगीं। इतने समर्थ ऋषि—इतने असहाय—इतने दुःखी—यह उनकी वेदना हमें बिच्छू के डंक की तरह पीड़ा देने लगी।

गुरुदेव की आत्मा और हमारी आत्मा साथ-साथ चल रही थी। दोनों एक दूसरे को देख रहे थे। साथ में उनके चेहरे पर भी उदासी छाई हुई थी। हे भगवान, कैसा विषम समय आया कि किसी ऋषि का कोई उत्तराधिकारी नहीं उपजा। सबका वंश नाश हो गया। ऋषि प्रवृत्तियों में से एक भी सजीव नहीं दीखती। करोड़ों की संख्या में ब्राह्मण हैं और लाखों की संख्या में सन्त। पर उनमें से दस-बीस भी जीवित रहे होते तो गाँधी और बुद्ध की तरह गजब दिखाकर रख देते। पर अब क्या हो? कौन करे? किस बलबूते पर करें?

राजकुमारी की आँखों से आँसू टपकने पर और इतना कहने पर कि "को वेदान् उद्धरस्मसि ?" अर्थात्—"वेदों का उद्धार कौन करेगा ?" इसके उत्तर में कुमारिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्ट ने कहा था कि—"अभी यह कुमारिल भूतल पर है। इस प्रकार विलाप न करो।" तब एक कुमारिल भट्ट जीवित था। उसने जो कहा था, सो कर दिखाया। पर आज तो कोई कहीं न ब्राह्मण है, न सन्त। ऋषियों की बात तो बहुत आगे की है। आज तो छद्म धारी ही चित्र-विचित्र रूप बनाये रंगे सियारों की तरह पूरे वन प्रदेश में हुँआ-हुँआ—करते फिर रहे हैं।

दूसरे दिन लौटने पर हमारे मन में इस प्रकार के विचार दिन भर उठते रहे। जिस गुफा में निवास था, दिन भर यही चिन्तन चलता रहा। लेकिन गुरुदेव उन्हें पूरी तरह पढ़ रहे थे, मेरी कसक उन्हें भी दुःख दे रही थी।

उनने कहा—"फिर ऐसा करो! अब की बार उन सबसे मिलने फिर से चलते हैं। कहना—आप लोग कहें तो उसका बीजारोपण तो मैं कर सकता हूँ। खाद पानी आप देंगे तो फसल उग पड़ेगी। अन्यथा प्रयास करने से अपना मन तो हलका होगा ही।"

"साथ में यह भी पूछना कि शुभारम्भ किस प्रकार किया जाय, इसकी रूपरेखा बतावें। मैं कुछ न कुछ अवश्य करूंगा। आप लोगों का अनुग्रह बरसेगा तो इस सूखे श्मशान में हरीतिमा उगेगी।"

गुरुदेव के आदेश पर तो मैं यह भी कह सकता था कि "जलती आग में जल मरूंगा। जो होना होगा, सो होता रहेगा। प्रतिज्ञा करने और उसे निभाने में प्राण की साक्षी देकर प्रण तो किया ही जा सकता है" यह विचार मन में उठ रहे थे। गुरुदेव उन्हें पढ़ रहे थे। अबकी बार मैंने देखा कि उनका चेहरा ब्रह्म कमल जैसा खिल गया।

दोनों स्तब्ध थे और प्रसन्न भी। पीछे लौट चलने और उन सभी ऋषियों से दुबारा मिलने का निश्चय हुआ जिनसे कि अभी-अभी विगत रात्रि ही मिलकर आये थे। दुबारा हम लोगों को वापस आया हुआ देखकर उनमें से प्रत्येक बारी-बारी प्रसन्न होता गया और आश्चर्यान्वित भी।

मैं तो हाथ जोड़े शिर नवाये मन्त्र-मुग्ध की तरह खड़ा रहा। गुरुदेव ने मेरी कामना, इच्छा और उमंग उन्हें परोक्षतः परावाणी में कह सुनाई। और कहा—"यह निर्जीव नहीं है। जो कहता है उसे करेगा भी। आप यह बताइए कि आपका जो कार्य छूटा हुआ है, उसका नये सिरे से बीजारोपण किस तरह हो। खाद पानी आप—हम लोग लगाते रहेंगे तो इसका उठाया हुआ कदम खाली नहीं जायेगा।

इसके बाद उनने गायत्री पुरश्चरण की पूर्ति पर मथुरा में होने वाले सहस्रकुण्डी पूर्णाहुति यज्ञ में इसी छाया रूप में पधारने का आमन्त्रण दिया और कहा यह बन्दर तो है, पर है हनुमान। यह रीछ तो है, पर है जाम्बवन्त। यह गिद्ध तो है, पर है जटायु। आप इसे निर्देश दीजिए और आशा कीजिए कि जो छूट गया है, जो टूट गया है, वह फिर से विनिर्मित होगा और अंकुर वृक्ष बनेगा। हम लोग निराश क्यों हों? इससे आशा क्यों न बाँधें, जब कि यह गत तीन जन्मों में दिये गए दायित्वों को निष्ठापूर्वक निभाता रहा है?

चर्चा एक से चल रही थी पर निमन्त्रण पहुँचते एक क्षण लगा और वे सभी एक-एक करके एकत्रित हो गये। निराशा गई, आशा बँधी और आगे का कार्यक्रम बना कि जो हम सब करते रहे हैं, उसका बीज एक खेत में बोया जाय और पौधशाला में एक पौध तैयार की जाय। उसके पौधे सर्वत्र लगेंगे और उद्यान लहलहाने लगेगा।

यह शान्ति-कुञ्ज बनाने की योजना थी, जो हमें मथुरा के निर्धारित निवास के बाद पूरी करनी थी। गायत्री नगर बसने और ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान का ढाँचा खड़ा किये जाने की योजना भी विस्तार से समझाई गयी। पूरे ध्यान से उसका एक-एक अक्षर हृदय पटल पर लिख लिया और निश्चय किया कि २४ लक्ष्य का पुरश्चरण पूरा होते ही इस कार्यक्रम की रूपरेखा बनेगी और चलेगी। निश्चय ही—अवश्य ही और जिसे गुरुदेव का संरक्षण प्राप्त हो, वह असफल रहे ऐसा हो ही नहीं सकता।

एक दिन और रुका। उसमें गुरुदेव ने पुरश्चरण की पूर्णाहुति का स्वरूप विस्तार से समझाया एवं कहा कि "पिछले वर्षों की स्थिति और घटनाक्रम को हम बारीकी से देखते रहे हैं और उसमें जहाँ कुछ अनुपयुक्त जंचा है, उसे ठीक करते रहे हैं। अब आगे क्या करना है उसी का स्वरूप समझाने के लिए इस बार बुलाया गया है। पुरश्चरण पूरा होने में अब बहुत समय नहीं रहा है। जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है उसे मथुरा जाकर पूरा करना चाहिए। अब तुम्हारे जीवन का दूसरा चरण मथुरा से आरम्भ होगा।

प्रयाग के बाद मथुरा ही देश का मध्य केन्द्र है। आवागमन की दृष्टि से वही सुविधाजनक भी है। स्वराज्य हो जाने के बाद तुम्हारा राजनैतिक उत्तरदायित्व तो पूरा हो जायगा, पर वह कार्य अभी पूरा नहीं होगा। राजनैतिक क्रान्ति तो होगी, आर्थिक क्रान्ति तथा उससे सम्बन्धित कार्य भी सरकार करेगी। किन्तु इसके बाद तीन क्रान्तियाँ और शेष हैं—जिन्हें धर्म तन्त्र के माध्यम से ही पूरा किया जाना है। उनके बिना पूर्णता न हो सकेगी। देश इसलिए पराधीन या जर्जर नहीं हुआ था कि यहाँ शूरवीर नहीं थे। आक्रमणकारियों को परास्त नहीं कर सकते थे। भीतरी दुर्बलताओं ने पतन-पराभव के गर्त में। धकेला। दूसरों ने तो उस दुर्बलता का लाभ भर उठाया।

नैतिक क्रान्ति—बौद्धिक क्रान्ति और सामाजिक क्रान्ति सम्पन्न की जानी है। इसके लिए उपयुक्त व्यक्तियों को संग्रह करना और जो करना है उससे सम्बन्धित विचारों को व्यक्त करना अभी से आवश्यक है। इसलिए तुम अपन घर-गाँव छोड़कर मथुरा जाने की तैयारी करो। वहा एक छोटा घर लेकर एक मासिक पत्रिका आरम्भ करो। साथ ही तीनों क्रान्तियों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकार देने का प्रकाशन भी। अभी तुम से इतना ही काम बनी पड़ेगा। थोड़े ही दिन उपरान्त तुम्हें दुर्वासा ऋषि की तपःस्थली में मथुरा के समीप एक भव्य गायत्री मन्दिर बनाना है। सह कर्मियों के आवागमन, निवास, ठहरने आदि के लिए। इसके उपरान्त २४ महापुरश्चरण के पूरे हो जाने की पूर्णाहुति स्वरूप एक महायज्ञ करना है। अनुष्ठानों की परम्परा जप के साथ यज्ञ करने की है। तुम्हारे २४ लक्ष्य के २४ अनुष्ठान पूरे होने जा रहे हैं। इसके लिए एक सहस्र कुण्डों की यज्ञशाला में—एक हजार मन्त्रिकों द्वारा २४ लाख आहुतियों का यज्ञ आयोजन किया जाना है। उसी अवसर पर ऐसा विशालकाय संगठन खड़ा हो जायगा। जिसके द्वारा तत्काल धर्मतन्त्र से जन जागृति का कार्य प्रारम्भ किया जा सके। यह अनुष्ठान की पूर्ति का प्रथम चरण है। लगभग २५ वर्षों में इस दायित्व की पूर्ति के उपरान्त तुम्हें सप्त सरोवर हरिद्वार जाना है। वहाँ रहकर वह कार्य पूरा करना है जिसके लिए ऋषियों की विस्मृत परम्पराओं को पुनर्जागृत करने हेतु तुमने स्वीकृति सूचक सम्मति दी थी।"

मथुरा की कार्य शैली, आदि से अन्त तक किस प्रकार सम्पन्न की जानी है, इसकी एक सुविस्तृत रूप रेखा उन्होंने आदि से अन्त तक समझायी। इसी बीच आर्ष साहित्य के अनुवाद, प्रकाशन, प्रचार की तथा गायत्री परिवार के संगठन और उसके सदस्यों को काम सौंपने की रूप रेखा उन्होंने बतादी।

जो आदेश हो रहा है, उसमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं रहने दी जायगी। यह मैंने प्रथम मिलन की तरह उन्हें आश्वासन दे दिया। पर एक ही सन्देह रहा कि इतने विशालकाय कार्य के लिए जो धन शक्ति और जन शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी, उसकी पूर्ति कहाँ से होगी?

मन को पढ़ रहे गुरुदेव हँस पड़े। "इन साधनों के लिए चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। जो तुम्हारे पास है, उसे बोना आरम्भ करो। इसकी फसल सौ गुनी होकर पक जायेगी और जो काम सौंपे गये हैं, उन सभी के पूरा हो जाने का सुयोग बन जायेगा। क्या हमारे पास है, उसे कैसे, कहाँ—बोया जाना है और उसकी फसल कब, किस प्रकार पकेगी, यह जानकारी भी उनने दे दी।

जो उन्होंने कहा—उसकी हर बात गाँठ बाँध ली। भूलने का तो प्रश्न ही नहीं था। भूला तब जाता है, जब उपेक्षा होती है। सेनापति का आदेश सैनिक कहाँ भूलता है? हमारे लिए भी अवज्ञा एवं उपेक्षा करने का कोई प्रश्न नहीं था।

वार्त्ता समाप्त हो गई। इस बार छै महीने ही हिमालय रुकने का आदेश हुआ। जहाँ रुकना था, वहाँ की सारी व्यवस्था बना दी गयी थी।

गुरुदेव के वीरभद्र ने हमें गोमुख पहुँचा दिया। वहाँ से हम निर्देशित स्थान पर जा पहुँचे और छै महीने पूरे कर लिए। लौटकर घर आये थे तो स्वास्थ्य पहले से भी अच्छा था। प्रसन्नता और गम्भीरता बढ़ गई थी, जो प्रतिभा के रूप में चेहरे के इर्द-गिर्द छाई हुई थी। लौटने पर जिनने भी देखा, उन सभी ने कहा—"लगता है, हिमालय में कहीं बड़ी सुख सुविधा का स्थान है। तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहीं जाते हो और स्वास्थ्य सम्वर्धन करके लौटते हो।" हमने हँसने के अतिरिक्त और कोई भी उत्तर नहीं दिया।

अब मथुरा जाने की तैयारी थी। एक बार दर्शन की दृष्टि से मथुरा देखा तो था पर वहाँ किसी से परिचय न था। चलकर पहुँचा गया और "अखण्ड-ज्योति" प्रकाशन के लायक एक छोटा मकान किराये पर लेने का निश्चय किया।

मकानों की उन दिनों भी किल्लत थी। बहुत ढूँढ़ने के बाद भी आवश्यकता के अनुरूप मिल नहीं रहा था। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते घीया मण्डी जा निकले। एक मकान खाली मिला। बहुत दिन से खाली पड़ा था। मालकिन एक बुढ़िया थी। किराया पूछा तो उसने पन्द्रह रुपया बताया और चाबी हाथ में थमादी। भीतर घुसकर देखा तो उसमें छोटे-बड़े कुल पन्द्रह कमरे थे। था तो जीर्ण-शीर्ण, पर एक रुपया कमरे के हिसाब से वह मँहगा किसी दृष्टि से न था। हमारे लिए काम चलाऊ भी था। पसन्द आ गया और एक महीने का किराया पेशगी पन्द्रह रुपया हाथ पर रख दिये। बुढ़िया बहुत प्रसन्न थी।

घर जाकर सभी सामान ले आये और पत्नी बच्चों समेत उसमें रहने लगे। सारे मुहल्ले में काना-फूसी होते सुनी। मानों हमारा वहाँ आना कोई आश्चर्य का विषय हो। पूछा तो लोगों ने बताया कि—"यह भुतहा मकान है। इसमें जो भी आया, जान गँवाकर गया। कोई टिका नहीं। हमने तो कितनों को ही आते और धन जन की भारी हानि उठाकर भागते हुए देखा। आप बाहर के नये आदमी हैं इसलिए धोखे में आ गए। अब बात आपके कान में डाल दी। यदि ऐसा न होता तो तीन मंजिला १५ कमरों का मकान वर्षों से क्या खाली पड़ा रहता। आप समझ-बूझकर भी उसमें रह रहे हैं। नुकसान उठाएँगे।"

इतना सस्ता और इतना उपयोगी मकान अन्यत्र मिल नहीं रहा था। हमने तो उसी में रहने का निश्चय किया। भुतहा होने की बात सच थी। रात भर छत के ऊपर धमा-चौकड़ी मचती रहती। ठठाने की, रोने की, लड़ने की आवाजें आतीं। उस मकान में बिजली तो थी नहीं। लालटेन जलाकर ऊपर गये तो कुछ स्त्री-पुरुष आकृतियाँ आगे कुछ पीछे भागते दीखे। पर साक्षात भेंट नहीं हुई। न उन्होंने हमें कोई नुकसान ही पहुँचाया। ऐसा घटना क्रम कोई दस दिन तक लगातार चलता रहा।

एक दिन हम रात को १ बजे के करीब ऊपर गये। लालटेन हाथ में थी। भागने वालों से रुकने के लिए कहा। वे रुक गये। हमने कहा—"आप बहुत दिन से इस घर में रहते आए हैं। ऐसा करें कि ऊपर की मंजिल के सात कमरों में आप लोग गुजारा करें। नीचे के आठ कमरों में हमारा काम चल जाएगा। इस प्रकार हम सब राजी-नामा करके रहें। न आप लोग परेशान हों और न हमें हैरान होना पड़े।" किसी ने उत्तर नहीं दिया। खड़े जरूर रहे। दूसरे दिन से पूरा घटनाक्रम बदल गया। हमने अपनी ओर से समझौते का पालन किया और वे सभी उस बात पर सहमत हो गये। छत पर कभी-कभी चलने-फिरने जैसी आवाजें तो सुनी गईं, पर ऐसा उपद्रव न हुआ जिससे हमारी नींद हराम होती, बच्चे डरते या काम में विघ्न पड़ता। घर में जो टूट-फूट थी, अपने पैसों से संभलवा ली। "अखण्ड-ज्योति" पत्रिका पुनः इसी घर से प्रकाशित होने लगी। परिजनों से पत्र व्यवहार यहीं आरम्भ किया। पहले वर्ष में ही दो हजार के करीब ग्राहक बन गये। ग्राहकों से पत्र व्यवहार करते और वार्त्तालाप के लिए बुलाते रहे। अध्ययन का क्रम तो रास्ता चलने के समय में चलता रहा। रोज टहलने जाते थे उसी समय में दो घण्टा नित्य पढ़ लेते। अनुष्ठान भी अपनी छोटी-सी पूजा की कोठरी में चलता रहता। काँग्रेस के काम के स्थान पर लेखन कार्य को अब गति दे दी। अखण्ड-ज्योति पत्रिका, आर्ष साहित्य का अनुवाद, धर्म तन्त्र से लोक-शिक्षण की रूपरेखा, इन्हीं विषयों पर लेखनी चल पड़ी। पत्रिका अपनी ही हैण्डप्रेस से छापते, शेष साहित्य दूसरी प्रेसों से छपा लेते। इस प्रकार ढर्रा तो चला। पर वह चिन्ता बराबर बनी रही कि अगले दिनों मथुरा में रहकर जो प्रकाशन का बड़ा काम करना है, प्रेस लगाना है; गायत्री तपोभूमि का भव्य भवन बनाना है, यज्ञ इतने विशाल रूप में करना है, जितना महाभारत के उपरान्त दूसरा नहीं हुआ, इन सब के लिए धन शक्ति और जन शक्ति कैसे जुटे? उसके लिए गुरुदेव का वही सन्देश आँखों के सामने आ खड़ा होता था कि "बोओ और काटो"। उसे अब समाज रूपी खेत में कार्यान्वित करना था। सच्चे अर्थों में अपरिग्रही ब्राह्मण बनना था। इसी कार्यक्रम की रूपरेखा मस्तिष्क में घूमने लगीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मथुरा के कुछ रहस्यमय प्रसंग

मथुरा में रहकर जिन गतिविधियों को चलाने के लिए हिमालय से आदेश हुआ था, उन्हें अपनी जानकारी की क्षमता द्वारा कर सकना कठिन था। न साधन, न साथी, न अनुभव, न कौशल। फिर इतने विशाल काम किस प्रकार बन पड़े ? हिम्मत टूटती सी देखकर मार्गदर्शक ने परोक्षतः लगाम हाथ में सम्भाली। हमारे शरीर भर का उपयोग हुआ। बाकी सब काम कठपुतली नचाने वाला बाजीगर स्वयं कराता रहा। लकड़ी के टुकड़े का श्रेय इतना ही है कि उसने तार मजबूती से जकड़ कर रखे और जिस प्रकार नाचने का संकेत हुआ—वैसा करने से इन्कार नहीं किया।

चार घन्टे नित्य लिखने के लिए निर्धारित किया। लगता रहा कि व्यास और गणेश का उदाहरण चल पड़ा। पुराण लेखन में व्यास बोलते गये थे और गणेश लिखते गये थे। ठीक वही यहाँ हुआ। आर्ष ग्रन्थों का अनुवाद कार्य अति कठिन है। चारों वेद, १०८ उपनिषदें, छहों दर्शन, चौबीसों स्मृतियां, आदि आदि सभी ग्रन्थों में हमारी कलम और उँगलियों का उपयोग हुआ। बोलती-लिखाती कोई और अदृश्य शक्ति रही। अन्यथा इतना कठिन काम इतनी जल्दी बन पड़ना सम्भव न था। फिर धर्म तन्त्र से लोक शिक्षण का प्रयोजन पूरा करने वाली सैकड़ों की संख्या में लिखी गई पुस्तकें मात्र एक व्यक्ति के बलबूते किस प्रकार होती रह सकती थीं। यह लेखन कार्य जिस दिन से आरम्भ हुआ, उस दिन से लेकर अब तक बन्द ही नहीं हुआ। वह बढ़ते-बढ़ते इतना होगया जितना हमारे शरीर का वजन है।

प्रकाशन के लिए प्रेस की जरूरत हुई। अपने बलबूते एक हैण्ड प्रेस का जुगाड़ किसी तरह जुटाया गया। जिसे काम कराना था, वह इतनी सी बाल क्रीड़ा को देखकर हँस पड़ा। प्रेस का विकास हुआ। ट्रेडिलें, सिलेण्डरे, ओटोमैटिक, आफसेटें एक के बाद एक आती चलीं गईं। उन सबकी कीमतें व प्रकाशित साहित्य की लागत लाखों को पार कर गई।

"अखण्ड-ज्योति" पत्रिका के अपने पुरुषार्थ से दो हजार तक ग्राहक बनने पर बात समाप्त हो गई थी। फिर मार्गदर्शक ने धक्का लगाया तो अब वह बढ़ते-बढ़ते डेढ़ लाख के करीब छपती है जो कि एक कीर्तिमान है। उसके और भी दस गुने बढ़ने की ही सम्भावना है। युग निर्माण योजना हिन्दी, युग शक्ति गायत्री गुजराती, युग शक्ति उड़िया आदि यह सब मिलाकर भी डेढ़ लाख के करीब हो जाती हैं। एक व्यक्ति द्वारा रचित इतनी उच्च-कोटि की, इतनी अधिक संख्या में बिना किसी का विज्ञापन स्वीकार किये, इतनी संख्या में पत्रिका छपती है और घाटा जेब में से न देना पड़ता हो, यह एक कीर्तिमान है, जैसा अपने देश में अन्यत्र उदाहरण नहीं ढूँढ़ा जा सकता।

गायत्री परिवार का संगठन करने निमित्त—महापुरश्चरण की पूर्णाहुति के बहाने जो हजार कुण्डीय यज्ञ मथुरा में हुआ था, उसके सम्बन्ध में यह कथन अत्युक्ति पूर्ण नहीं है कि इतना बड़ा आयोजन महाभारत के उपरान्त आज तक नहीं हुआ। इसका प्रत्यक्ष विवरण परिजन फरवरी ८५ अंक में पढ़ चुके हैं।

उसकी कुछ रहस्यमयी विशेषताएँ ऐसी थीं, जिनके सम्बन्ध में सही बात कदाचित ही किसी को मालूम हो। एक लाख नैष्ठिक गायत्री उपासक देश के कोने-कोने में से आमन्त्रित किये गये। वे सभी ऐसे थे जिनने धर्म तन्त्र में लोक शिक्षण का काम हाथोंहाथ सम्भाल लिया और इतना बड़ा गायत्री परिवार बन कर खड़ा हो गया जितने कि भारत के समस्त धार्मिक संगठन मिलकर भी पूरे नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते। इन व्यक्तियों से हमारा पूर्व परिचय बिलकुल न था। पर उन सबके पास निमन्त्रण पत्र पहुँचे और वे अपना मार्ग व्यय खर्च करके भागते चले आये। यह एक पहेली है जिसका समाधान ढूँढ़ पाना कठिन है।

दर्शकों की संख्या मिलाकर दसलाख तक प्रतिदिन पहुँचती रही। इन्हें सात मील के घेरे में ठहराया गया था। किसी को भूखा नहीं जाने दिया। किसी से भोजन का मूल्य नहीं माँगा गया। अपने पास खाद्य सामग्री मुट्ठी भर थी। इतनी, जो एक बार में बीस हजार के लिए भी पर्याप्त न होती। पर भण्डार अक्षय हो गया। पाँच दिन के आयोजन में प्रायः ५ लाख से अधिक खा गये। पीछे खाद्य सामग्री बच गई जो उपयुक्त व्यक्तियों को बिना मूल्य बाँटी गई।

व्यवस्था ऐसी अद्भुत रही, जैसी हजार कर्मचारी नौकर रखने पर भी नहीं कर सकते थे।

यह रहस्यमयी बातें हैं। आयोजन का प्रत्यक्ष विवरण तो हम दे चुके हैं। पर जो रहस्य था सो अपने तक ही सीमित रहा है। कोई यह अनुमान न लगा सका कि इतनी व्यवस्था, इतनी सामिग्री कहाँ से जुट सकी। यह सब अदृश्य सत्ता का खेल था। उसमें सूक्ष्म शरीर से वे ऋषि भी उपस्थित हुए थे जिनके दर्शन हमने प्रथम हिमालय यात्रा में किये थे। सभी सूक्ष्म एवं कारण शरीरधारी थे। इन सब कार्यों के पीछे जो शक्ति काम कर रही थी उसके सम्बन्ध में कोई तथ्य किसी को विदित नहीं। लोग इसे हमारी करामात कहते रहे, किन्तु भगवान साक्षी है कि हम जड़ भरत की तरह, मात्र दर्शक की तरह यह सारा खेल देखते रहे। जो शक्ति व्यवस्था बना रही थी उसके सम्बन्ध में कदाचित ही किसी को कुछ आभास हुआ हो।

तीसरा काम जो हमें मथुरा में करना था, वह था— गायत्री तपोभूमि का निर्माण। इतने बड़े संगठन के लिए इतने बड़े कार्यक्रम के लिए छोटी इमारत से काम नहीं चल सकता था। वह बनना आरम्भ हुई। निर्माण कार्य आरम्भ हुआ और हमारे आने के बाद भी अब तक बराबर चलता ही रहा है। प्रज्ञा नगर के रूप में विकसित विस्तृत हो गया है। जो मथुरा गये हैं, गायत्री तपोभूमि की इमारत और उसका प्रेस, अतिथि व्यवस्था देखकर आये हैं वे आश्चर्यचकित होकर रहे हैं। इतना सामान्य दीखने वाला आदमी किस प्रकार इतनी भव्य इमारत की व्यवस्था कर सकता है। इस रहस्य को जिन्हें जानना हो, उन्हें हमारी पीठ पर काम करने वाली शक्ति को ही इसका श्रेय देना होगा, व्यक्ति को नहीं। अर्जुन का रथ भगवान सारथी बनकर चला रहे थे। उन्हीं ने जिताया था। पर जीत का श्रेय अर्जुन को मिला और राज्याधिकारी पाण्डव बने। इसे कोई चाहे तो पाण्डवों का पुरुषार्थ--पराक्रम कह सकता है पर वस्तुतः बात वैसी थी नहीं। यदि होती तो द्रोपदी का चीर उनकी आँखों के सामने कैसे खींचा जाता। बनवास काल में जहाँ-तहाँ छिपे रहकर जिस-तिस की नगण्य-सी नौकरियाँ क्यों करते फिरते?

हमारी क्षमता नगण्य है, पर मथुरा जितने दिन रहे, वहाँ रहकर इतने सारे प्रकट और अप्रकट काम जो हम करते रहे, उसकी कथा आश्चर्यजनक है। उसका कोई लेखा-जोखा लेना चाहे तो तथ्यों को ध्यान में रखे और हमें नाचने वाली लकड़ी के टुकड़े से बनी कठपुतली के अतिरिक्त और कुछ न माने। ●

(पृष्ठ २७ का शेष)

गुरुदेव अदृश्य हो गये। हमें उनका दूत गोमुख तक पहुँचा गया। इसके बाद उनके बताये हुए स्थान पर वर्ष के शेष दिन पूरे किये।

समय पूरा होने पर हम वापस लौट पड़े। अबकी बार इधर से लौटते हुए उन कठिनाइयों में से एक भी सामने नहीं आई, जो जाते समय पग-पग पर हैरान कर रही थी। वे परीक्षाएँ थीं, सो पूरी हो जाने पर लौटते समय कठिनाइयों का सामना करना भी क्यों पड़ता।

हम एक वर्ष बाद घर लौट आए। वजन १८ पौण्ड बढ़ गया। चेहरा लाल और गोल हो गया था। शरीर गति शक्ति काफी बढ़ी हुई थी। हर समय प्रसन्नता छाई रहती थी।

लौटने पर लोगों ने गंगा जी का प्रसाद माँगा। सभी को गंगोत्री की रेती में से एक-एक चुटकी दे दी व गोमुख के जल का प्रसाद दे दिया। यही वहाँ से साथ लेकर भी लौटे थे। दीख सकने वाला प्रत्यक्ष प्रसाद यही एक ही था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मथुरा का विचार क्रांति अभियान एवं प्रयाण की तैयारी

मथुरा से ही उस विचार क्रान्ति अभियान ने जन्म लिया जिसके माध्यम से आज करोड़ों व्यक्तियों के मन-मस्तिष्कों को उलटने का संकल्प पूरा कर दिखाने का हमारा दावा आज सत्य होता दिखाई देता है। सहस्र कुण्डीय यज्ञ तो पूर्व जन्म से जुड़े उन परिजनों के समागम का एक माध्यम था, जिन्हें भावी जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। इस यज्ञ में एक लाख से भी अधिक लोगों ने समाज से, परिवार से एवं अपने अन्दर से बुराइयों को निकाल फेंकने की प्रतिज्ञाएँ लीं। यह यज्ञ नरमेध यज्ञ था। इसमें हमने समाज के लिये समर्पित लोकसेवियों की माँग की एवं समयानुसार हमें वे सभी सहायक उपलब्ध होते चले गए। यह सारा खेल उस अदृश्य बाजीगर द्वारा सम्पन्न होता ही हम मानते आये हैं, जिसने हमें माध्यम बना कर समग्र परिवर्त्तन का ढाँचा खड़ा कर दिखाया।

मथुरा में ही नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक क्रान्ति के लिए गाँव-गाँव आलोक वितरण करने एवं घर-घर अलख जगाने के लिये सर्वत्र गायत्री यज्ञ समेत युग निर्माण सम्मेलन के आयोजनों की एक व्यापक योजना बनाई गई। मथुरा के सहस्र कुण्डी यज्ञ के अवसर पर जो प्राणवान व्यक्ति आए थे उन्होंने अपने यहाँ एक शाखा संगठन खड़ा करने और एक ऐसा ही यज्ञ आयोजन करने का दायित्व अपने कन्धों पर लिया या ये कहें कि उस दिव्य वातावरण में अन्तःप्रेरणा ने उन्हें वह दायित्व सौंपा ताकि हर व्यक्ति न्यूनतम एक हजार विचारशील व्यक्तियों को अपने समीपवर्त्ती क्षेत्र में से ढूँढ़कर अपना सहयोगी बनाए। आयोजन चार-चार दिन के रखे गए। इनमें तीन दिन तीन क्रान्तियों की विस्तृत रूप रेखा और कार्य-पद्धति समझाने वाले संगीत और प्रवचन रखे गए। अन्तिम चौथे दिन यज्ञाग्नि के सम्मुख उन लोगों से व्रत धारण करने को कहा गया जो अवांछनीयताओं को छोड़ने और उचित परम्पराओं को अपनाने के तैयार लिए थे।

ऐसे आयोजन जहाँ तहाँ भी हुए, बहुत ही सफल रहे इनके मध्यम से प्रायः एक करोड़ व्यक्तियों ने मिशन की विचारधारा को सुना एवं लाखों व्यक्ति ऐसे थे जिनने अनैतिकताओं अन्धविश्वासों एवं कुरीतियों के परित्याग की प्रतिज्ञाएँ लीं। इन आयोजनों में से अधिकांश के बिना दहेज और धूमधाम के साथ विवाह हुए। मथुरा में एक और सौ कुण्डी यज्ञ में १०० आदर्श विवाह सम्पन्न कराए गये। तब से ये प्रचलन बराबर चलते आ रहे हैं और हर वर्ष इस प्रचार आन्दोलन से अनेकों व्यक्ति लाभ उठाते रहे हैं।

सहस्र कुण्डीय यज्ञ से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रसंगों की चर्चा हम अखण्ड-ज्योति के फरवरी अंक में कर चुके हैं। उससे जुड़े अनेकानेक रहस्यमय घटनाक्रमों का विवरण बताना अभी जनहित में उपयुक्त न होगा। इस काया को छोड़ने के बाद ही वह रहस्योद्घाटन हो, ऐसा प्रतिबन्ध हमारे मार्गदर्शक का है, सो हमने उसे दबी कलम से ही लिखा है। इस महान यज्ञ से हमें प्रत्यक्ष रूप से काफी कुछ मिला। एक बहुत बड़ा संगठन रातों रात गायत्री परिवार के रूप में खड़ा हो गया। युग निर्माण योजना के विचार क्रान्ति अभियान एवं धर्मतन्त्र से लोक शिक्षण के रूप में उसकी भावी भूमिका भी बन गयी। उन दिनों जिन-जिन स्थानों से आए व्यक्तियों ने अपने यहाँ शाखा स्थापित करने के संकल्प लिए, लगभग वहीं दो दशक बाद हमारे प्रज्ञा संस्थान एवं स्वाध्याय मण्डल विनिर्मित हुए। जिन स्थायी कार्य कर्त्ताओं ने हमारे मथुरा से आने के बाद प्रेस प्रकाशन, संगठन-प्रचार का दायित्व अपने कन्धों पर लिया, वे इसी महायज्ञसे उभर कर आये थे। सम्प्रति शांति कुंज में स्थायी रूप से कार्यरत बहुसंख्य स्वयं सेवकों की पृष्ठ भूमि में इस महायज्ञ अथवा इसके बाद देश भर में हुए आयोजनों की प्रमुख भूमिका रही है।

इससे हमारी स्वयं की संगठन सामर्थ्य विकसित हुई। हमने गायत्री तपोभूमि के सीमित परिकर में ही एक सप्ताह, नौ दिन एवं एक-एक माह के कई शिविर आयोजित किए। आत्मोन्नति के लिये पंचकोषी साधना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिविर, स्वास्थ्य सम्वर्धन हेतु कायाकल्प सत्र एवं संगठन विस्तार हेतु परामर्श एवं जीवन साधना सत्र उन कुछ प्रमुख आयोजनों में से हैं, जो हमने सहस्र एवं शतकुण्डी यज्ञ के बाद मथुरा में मार्गदर्शक के निर्देशानुसार सम्पन्न किए। गायत्री तपोभूमि में आने वाले परिजनों से जो हमें प्यार मिला, परस्पर आत्मीयता की भावना जो विकसित हुई, उसी ने एक विशाल गायत्री परिवार को जन्म दिया। यह वही गायत्री परिवार है जिसका हर सदस्य हमें पिता के रूप में—उँगली पकड़ कर चलाने वाले मार्गदर्शक के रूप में, घर-परिवार-मन की समस्याओं को सुलझाने वाले चिकित्सक के रूप में देखता आया है।

इसी स्नेह, सद्भाव के नाते हमें भी उनके यहाँ जाना पड़ा, जो हमारे यहाँ आये थे। कई स्थानों पर छोटे-छोटे यज्ञायोजन थे, कहीं सम्मेलन तो कहीं प्रबुद्ध समुदाय के बीच तर्क, तथ्य, प्रतिपादनों के आधार पर गोष्ठी आयोजन। हमने जब मथुरा छोड़कर हरिद्वार आने का निश्चय किया तो लगभग दो वर्ष तक लगातार पूरे भारत का दौरा करना पड़ा। पांच स्थानों पर तो उतने ही बड़े सहस्र कुण्डी यज्ञों का आयोजन था, जितना बड़ा मथुरा का सहस्र कुण्डी यज्ञ था। ये थे टाटानगर, महासमुन्द, बहराइच, भीलवाड़ा एवं पोरबन्दर। एक दिन में तीन-तीन स्थान पर रुकते हुए हमने हजारों मील का दौरा अपने अज्ञातवास पर जाने के पूर्व कर डाला। इस दौरे से हमारे हाथ लगे समर्पित समयदानी कार्यकर्त्ता। ऐसे अगणित व्यक्ति हमारे सम्पर्क में आये, जो पूर्व जन्म में ऋषि जीवन जी चुके थे। उनकी प्रसुप्त सामर्थ्य को पहचान कर हमने उन्हें परिवार से जोड़ा और इस प्रकार पारिवारिक सूत्रों से बँधा एक विशाल संगठन बनकर खड़ा हो गया।

मार्गदर्शक का आदेश वर्षों पूर्व मिल चुका था कि हमें ६ माह के प्रवास के लिए पुनः हिमालय जाना होगा पर पुनः मथुरा न लौटकर हमेशा के लिए वहाँ से मोह तोड़ते हुए हरिद्वार सप्त सरोवर में विश्वविद्यालय की तप स्थली में ऋषि परम्परा की स्थापना करनी होगी। अपना सारा दायित्व हमने क्रमशः धर्मपत्नी के कन्धों पर सौंपना काफी पूर्व से आरम्भ कर दिया था। वे पिछले बीच में से दो जन्मों में हमारी जीवन संगिनी बनकर रही ही थीं। इस जन्म में भी उन्होंने अभिन्न साथी—सहयोगी की भूमिका निभाई थी। वस्तुतः हमारी सफलता के मूल में उनके समर्पण—एक निष्ठ सेवा भाव को देखा जाना चाहिए। जो कुछ भी हमने चाहा, जिन प्रतिकूलताओं में जीवन जीने हेतु कहा, उन्होंने सहर्ष अपने को उस क्रम में ढाल लिया। हमारी पारिवारिक पृष्ठभूमि ग्रामीण जमींदार के घराने की थी तो उनकी एक धनी शहरी खानदान की। परन्तु जब घुलने का प्रश्न आया तो दोनों मिलकर एक हो गए। हमने अपने गाँव की भूमि विद्यालय हेतु दे दी एवं जमींदारी के बॉण्ड से मिली राशि गायत्री तपोभूमि के लिए जमीन खरीदने हेतु। तो उन्होंने अपने सभी जेवर तपोभूमि का भवन विनिर्मित होने के लिए दे दिए। यह त्याग-समर्पण उनका है, जिसने हमें इतनी बड़ी ऊँचाईयों तक पहुँचाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अपनी दूसरी हिमालय यात्रा में उन्होंने हमारी अनुपस्थिति में सम्पादन—संगठन की जिम्मेदारी सँभाली ही थी। अब हम १० वर्ष बाद १९७१ में एक बहुत बड़ा परिवार अपने पीछे छोड़कर हिमालय जा रहे थे। गायत्री परिवार को दृश्य रूप में एक संरक्षक चाहिए था, जो उन्हें स्नेह—ममत्व दे सके। उनकी दुःख भरी वेदना में आँसू पोंछने का कार्य माता ही कर सकती थी। माताजी ने यह जिम्मेदारी भलीभाँति सम्भाली। प्रवास पर जाने के ३ वर्ष पूर्व से ही हम लम्बे दौरे पर रहा करते थे। ऐसे में मथुरा आने वाले परिजनों से मिलकर उन्हें मार्गदर्शन देने, पत्रों द्वारा उन्हें दिलासा देने का कार्य वे अपने कन्धों पर ले चुकी थीं। हमारे सामाजिक जीवन जीने में हमें उनका सतत् सहयोग ही मिला। २०० रुपये में पाँच व्यक्तियों का गुजारा चलाने वाली माताजी स्वयं ही बता सकतीं हैं कि ऐसी कौन-सी विधा उनके पास थी, जिससे न केवल उन्होंने परिवार का भरण-पोषण किया, आने वालों का समुचित आतिथ्य सत्कार भी वे करती रहीं। किसी को निराश नहीं लौटने दिया।

मथुरा में जिया हमारा जीवन एक अमूल्य धरोहर के रूप में है। इससे न केवल हमारे भावी क्रान्तिकारी जीवन की नींव ढली अपितु क्रमशः प्रत्यक्ष पीछे हटने की स्थिति में दायित्व सँभाल सकने वाले मजबूत कन्धों वाले नर तत्व भी हमारे हाथ लगे। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरी हिमालय यात्रा—ऋषि परम्परा का बीजारोपण

मथुरा का कार्य सुचारु रूप से चल पड़ने के उपरान्त हिमालय से तीसरा बुलावा आया, जिसमें अगले चौथे कदम को उठाये जाने का संकेत था। समय भी काफी हो गया था। इस बार कार्य का दबाव अत्यधिक रहा और सफलता के साथ-साथ थकान बढ़ती गई थी। ऐसी परिस्थितियों में बैटरी चार्ज करने का यह निमन्त्रण हमारे लिए बहुत ही उत्साहवर्धक था।

निर्धारित दिन प्रयाण आरम्भ हो गया। देखे हुए रास्ते को पार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। फिर मौसम भी ऐसा रखा गया था जिसमें शीत के कड़े प्रकोप का सामना न करना पड़ता और एकाकीपन की प्रथम बार जैसी कठिनाई न पड़ती। गोमुख पहुँचने पर गुरुदेव के छाया पुरुष का मिलना और अत्यन्त सरलता पूर्वक नन्दन वन पहुँचा देने का क्रम पिछली बार जैसा ही रहा। सच्चे आत्मीय जनों का पारस्परिक मिलन कितना आनन्द उल्लास भरा होता है इसे भुक्त-भोगी ही जानते हैं। रास्ते भर जिस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करनी पड़ी वह आखिर आ ही गई। अभिवादन आशीर्वाद का क्रम चला और पीछे बहुमूल्य मार्गदर्शन का सिलसिला चल पड़ा।

अब की बार मथुरा छोड़कर हरिद्वार डेरा डालने का निर्देश मिला और कहा गया कि "वहाँ रहकर ऋषि परम्परा को पुनर्जीवित करने का कार्य आरम्भ करना है। तुम्हें याद है न, जब यहाँ प्रथम बार आये थे और हमने सूक्ष्म शरीरधारी इस क्षेत्र के ऋषियों का दर्शन कराया था। हर एक ने उनकी परम्परा लुप्त हो जाने पर दुःख प्रकट किया था और तुमने यह वचन दिया था कि इस कार्य को भी सम्पन्न करोगे। इस बार उसी निमित्त बुलाया गया है।

भगवान अशरीरी हैं। जब कभी उन्हें महत्वपूर्ण कार्य कराने होते हैं तो ऋषियों के द्वारा कराते हैं। महापुरुषों को वे बनाकर खड़े कर देते हैं। स्वयं तप करते रहते हैं और अपनी शक्ति देवात्माओं को देकर बड़े काम करा लेते हैं भगवान राम को विश्वामित्र अपने यहाँ यज्ञ रक्षा के बहाने ले गये थे और वहाँ बला—अतिबला विद्या—(गायत्री और सावित्री) की शिक्षा देकर उनके द्वारा असुरता का दुर्ग ढहाने तथा राम राज्य धर्मराज्य—की स्थापना का कार्य कराया था। कृष्ण भी संदीपन ऋषि के आश्रम में पढ़ने गये थे और वहाँ से गीता गायन, महाभारत निर्णय तथा सुदामा ऋषि की कार्य पद्धति को आगे बढ़ाने का निर्देशन लेकर वापस लौटे थे। समस्त पुराण इसी उल्लेख से भरे पड़े हैं कि ऋषियों के द्वारा महापुरुष उत्पन्न किये गये और उनकी सहायता से महान कार्य सम्पादित कराये गये। स्वयं तो वे शोध प्रयोजनों में और तप साधनाओं में संलग्न रहते ही थे। इसी कार्य को तुम्हें अब पूरा करना है।"

"गायत्री के मन्त्र दृष्टा विश्वामित्र थे। उनने सप्त सरोवर नामक स्थान पर रहकर गायत्री की पारंगतता प्राप्त की थी। वही स्थान तुम्हारे लिये भी नियत है। उपयोगी स्थान तुम्हें सरलता पूर्वक मिल जायगा। उसका नाम शान्ति-कुन्ज गायत्री तीर्थ रखना और उन सब कार्यों का बीजारोपण करना जिन्हें पुरातन काल के ऋषि गण स्थूल शरीर से करते रहे हैं। अब वे सूक्ष्म शरीर में है। इसलिए अभीष्ट प्रयोजन के लिए किसी शरीरधारी को माध्यम बनाने की आवश्यकता पड़ रही है। हमें भी तो ऐसी ही आवश्यकता पड़ी और तुम्हारे स्थूल शरीर को इसके लिए सत्पात्र देखकर सम्पर्क बनाया और अभीष्ट कार्यक्रमों में लगाया। यही इच्छा इन सभी ऋषियों की है। तुम उनकी परम्पराओं का नये सिरे से बीजारोपण करना। उन कार्यों में अपेक्षाकृत भारीपन रहेगा और कठिनाई भी अधिक रहेगी। किन्तु साथ ही एक अतिरिक्त लाभ भी है कि हमारा ही नहीं, उन सबका भी संरक्षण और अनुदान तुम्हें मिलता रहेगा। इसलिए कोई कार्य रुकेगा नहीं।"

जिन ऋषियों के छोड़े कार्य को हमें आगे बढ़ाना था, उसका संक्षिप्त विवरण बताते हुए उन्होंने कहा—विश्वामित्र परम्परा में गायत्री महामन्त्र की शक्ति से जन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन को अवगत कराना एवं एक सिद्ध पीठ—गायत्री तीर्थ का निर्माण करना है। व्यास परम्परा में—आर्ष साहित्य के अलावा अन्यान्य पक्षों पर साहित्य सृजन एवं प्रज्ञा पुराण के १८ खण्डों को लिखने का, पातंजलि परम्परा में—योग साधना के तत्वज्ञान के विस्तार का, परशुराम परम्परा में अनीति उन्मूलन हेतु जन-मानस के परिष्कार के वातावरण निर्माण का तथा भागीरथ परम्परा में ज्ञान गंगा को जन-जन तक पहुँचाने का दायित्व सोंपा गया। चरक परम्परा में वनौषधि पुनर्जीवन एवं वैज्ञानिक अनुसन्धान, याज्ञवल्क्य परम्परा में यज्ञ से मनोविकारों के शमन द्वारा समग्र चिकित्सा पद्धति का निर्धारण, जमदग्नि परम्परा में साधना आरण्यक का निर्माण एवं संस्कारों बीजारोपण, नारद परम्परा में सत्परामर्श—परिव्रजा के माध्यम से धर्म चेतना का विस्तार, आर्यभट्ट परम्परा में ज्योतिर्विज्ञान का नूतन अनुसन्धान, वशिष्ठ परम्परा में धर्मतन्त्र के माध्यम से राजतन्त्र का मार्गदर्शन, शंकराचार्य परम्परा में स्थान-स्थान पर प्रज्ञा संस्थानों के निर्माण का, पिप्पलाद परा रम्पमें आहार-कल्प के माध्यम से समग्र स्वास्थ्य सम्वर्धन एवं सूत-शौनिक परम्परा में स्थान-स्थान पर प्रज्ञायोजनों द्वारा लोक-शिक्षण की रूपरेखा के सूत्र हमें बताये गये। अथर्ववेदीय विज्ञान परम्परा में कणाद ऋषि प्रणीत वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धति के आधार पर ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान की रूपरेखा बनी।

हरिद्वार रहकर हमें क्या करना है और मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का समाधान कैसे करना है? यह हमें ऊपर बताए निर्देशों के अनुसार क्रम से विस्तारपूर्वक बता दिया गया। सभी बातें पहले की ही तरह गाँठ बाँध ली। पिछली बार मात्र गुरुदेव अकेले की ही इच्छाओं की पूर्ति का कार्य भार था। अबकी बार इतनों का बोझ लादकर चलना पड़ेगा। गधे को अधिक सावधानी रखनी पड़ेगी और अधिक मेहनत भी करनी पड़ेगी।

साथ ही इतना सब कर लेने पर चौथी बार आने और उससे भी बड़ा उत्तरदायित्व सम्भालने तथा स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म शरीर अपनाने का कदम बढ़ाना पड़ेगा। यह सब इस बार उनने स्पष्ट नहीं किया, मात्र संकेत ही दिया।

यह भी बताया कि हरिद्वार की कार्य पद्धति मथुरा के कार्यक्रम से बड़ी है। इसलिए उतार-चढ़ाव भी बहुत रहेंगे। असुरता के आक्रमण भी सहने पड़ेंगे, आदि-आदि बातें उन्होंने पूरी तरह समझा दीं। समय की विषमता को देखते हुए उस क्षेत्र में अधिक रुकना उन्हें उचित न लगा और एक वर्ष के स्थान पर छ महीने रहने का ही निर्देश दिया। कहाँ, किस प्रकार रहना और किस दिनचर्या का निर्वाह करना, यह उनने समझाकर बात समाप्त की और पिछली बार की भाँति ही अर्न्तध्यान होते हुए चलते-चलते यह कह गये कि "इस कार्य को सभी ऋषियों का सम्मिलित कार्य समझना, मात्र हमारा नहीं।" हमने भी विदाई का प्रणाम करते हुए इतना ही कहा कि "हमारे लिए आप ही समस्त देवताओं के, समस्त ऋषियों के और परब्रह्म के प्रतिनिधि हैं। आपके आदेश को इस शरीर के रहते टाला न जायेगा।"

बात समाप्त हुई। हम विदाई लेकर चल पड़े। छाया पुरुष (वीरभद्र) ने गोमुख तक पहुँचा दिया। आगे अपने पैरों से बताये हुए स्थान के लिए चल पड़े।

जिन-जिन स्थानों पर इन यात्राओं में हमें ठहरना पड़ा, उनका उल्लेख यहाँ इसलिये नहीं किया गया कि वे सभी दुर्गम हिमालय में गुफाओं के निवासी थे। समय-समय पर स्थान बदलते रहते थे। अब तो उनके शरीर भी समाप्त हो गये। ऐसी दशा में उल्लेख की आवश्यकता न रही।

लौटते हुए हरिद्वार उसी स्थान पर रुके, सप्त ऋषियों की तपोभूमि में, जिस स्थान का संकेत गुरुदेव ने किया था। काफी हिस्सा सुनसान पड़ा था और बिकाऊ भी था। जमीन पानी उगलती थी। पहले यहाँ गंगा बहती थी। यह स्थान सुहाया भी। जमीन के मालिक से चर्चा हुई और शेष जमीन का सौदा आसानी से पट गया। उसे खरीदने में लिखा-पढ़ी कराने में विलम्ब न हुआ। जमीन मिल जाने के उपरान्त यह देखना था कि वहाँ कहाँ, क्या बनाना है। यह भा एकाकी ही निर्णय करना पड़ा। सलाहकारों का परामर्श काम न आया क्योंकि उन्हें बहुत कोशिश करने पर भी यह नहीं समझाया जा सका कि यहाँ किस प्रयोजन के लिए किस आकार-प्रकार का निर्माण होना है। वह कार्य भी हमने ही पूरा किया। इस प्रकार शान्ति-कुञ्ज—गायत्री तीर्थ की स्थापना हुई। ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिकुन्ज-गायत्री तीर्थ

मथुरा से प्रयाण के बाद हिमालय से ६ माह बाद ही हम हरिद्वार उस स्थान पर लौट आए, जहाँ निर्धारित स्थान पर शान्ति-कुन्ज के एक छोटे से भवन में माताजी व उनके साथ रहने वाली कन्याओं के रहने योग्य निर्माण हम पूर्व में करा चुके थे। अब और जमीन लेने के उपरान्त पुनः निर्माण कार्य आरम्भ किया। इच्छा ऋषि आश्रम बनाने की थी। सर्वप्रथम अपने लिए, सहकर्मियों के लिए, अतिथियों के लिए निवास स्थान और भोजनालय बनाया गया।

यह आश्रम ऋषियों का—देवात्मा हिमालय का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए उत्तराखण्ड का गंगा का प्रतीक देवालय यहाँ बनाया गया। इसके अतिरिक्त सात प्रमुख तथा अन्यान्य वरिष्ठ ऋषियों की प्रतिमाओं की स्थापना का प्रबन्ध किया गया। आद्य शक्ति गायत्री का मन्दिर तथा जल कूपों का निर्माण कराया गया, प्रवचन कक्ष का भी। इस निर्माण में प्रायः दो वर्ष लग गये। अब निवास के योग्य आवश्यक व्यवस्था हो गई तब हम और माताजी ने नव निर्मित शांति-कुन्ज को अपनी तपःस्थली बनाया। साथ में अखण्ड-दीपक भी था। उसके लिए एक कोठरी और गायत्री प्रतिमा की स्थापना करने के लिए सुविधा पहले ही बन चुकी थी।

इस बंजर पड़ी भूमि के प्रसुप्त पड़े संस्कारों को जगाने के लिए २४ लक्ष्य के २४ अखण्ड पुरश्चरण कराये जाने थे। इसके लिए ६ कुमारिओं का प्रबन्ध किया गया। प्रारम्भ में चार घण्टे दिन में, चार घन्टे रात्रि में इनकी ड्यूटी थी। बाद में इनकी संख्या २७हो गयी। तब समय कम कर दिया गया। इन्हें दिन में माताजी पढ़ाती थीं। छै वर्ष उपरान्त इन सब को ग्रेजुएट—पोस्ट ग्रेजुएट स्तर की पढ़ाई आरम्भ कर दी गई। बीस और पच्चीस वर्ष की आयु के मध्य इन सबके सुयोग्य घरों और वरों के साथ विवाह कर दिये गये।

इसके पूर्व संगीत और प्रवचन का अतिरिक्त प्रशिक्षण क्रम भी चलाया गया। देश व्यापी नारी जागरण के लिए इन्हें मोटर गाड़ियों में पाँच-पाँच के जत्थे बनाकर भेजा गया। तब तक पढ़ने वाली कन्याओं की संख्या १०० से ऊपर हो गई थी। इनके दौरे का देश के नारी समाज पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

हरिद्वार से ही तेजस्वी कार्यकर्ताओं को ढालने का कार्य हाथ में लिया गया। इसके लिए प्राण प्रत्यावर्त्तन सत्र, एक-एक मास के युग शिल्पी सत्र एवं वानप्रस्थ सत्र भी लगाये गए। सामान्य उपासकों के लिए छोटे-बड़े गायत्री पुरश्चरणों की श्रृंखला भी चल पड़ी। गंगा का तट, हिमालय की छाया, दिव्य वातावरण, प्राणवान मार्ग दर्शन जैसी सुविधाओं की देखकर पुरश्चरण कर्ता भी सैकड़ों की संख्या में निरन्तर आने लगे। पूरा समय देने वाले वानप्रस्थों का प्रशिक्षण भी अलग से चलता रहा। दोनों प्रकार के साधकों के लिए भोजन का प्रबन्ध किया गया।

यह नई संख्या निरन्तर बढ़ती जाने लगी। ऋषि परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए इसकी आवश्यकता भी थी कि सुयोग्य आत्मदानी पूरा समय देकर हाथ में लिये हुए महान कार्य की पूर्ति के लिए आवश्यक आत्म बल संग्रह करें और उसके उपरान्त व्यापक कार्यक्रमों में जुट पड़ें।

बढ़ते हुए कार्य को देखकर गायत्री नगर में २४० क्वार्टर बनाने पड़े। एक हजार व्यक्तियों के प्रवचन में सम्मिलित हो सकने जितने बड़े आकार का प्रवचन हाल बनाना पड़ा। इस भूमि को अधिक संस्कारवान बनाना था। इसलिए नौ कुण्ड की यज्ञशाला में प्रातःकाल दो घन्टे यज्ञ किए जाने की व्यवस्था की, और आश्रम में स्थायी निवासियों तथा पुरश्चरण कर्त्ताओं का औसत जप इस अनुपात से निर्धारित किया गया कि हर दिन २४ लक्ष गायत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरश्चरण सम्पन्न होता रहे। आवश्यक कार्यों के लिए एक छोटा प्रेस भी लगाना पड़ा। इन सब कार्यों के लिए निर्माण कार्य अब तक एक प्रकार से बराबर ही चलता रहा। इसी बीच ब्रह्म वर्चस् शोध संस्थान के लिए भव्य भवन बनाना आरम्भ कर दिया था। इस सारे निर्माण में प्रायः चार वर्ष लग गए। इसी बीच वे कार्य आरम्भ कर दिये गए जिन्हें सम्पन्न करने से ऋषि परम्परा का पुनर्जीवन हो सकता था। जैसे-जैसे सुविधा बनती गई, वैसे-वैसे नये कार्य हाथ में लिये गये और कहने योग्य प्रगति स्तर तक पहुँचाये गये।

भगवान बुद्ध ने नालन्दा तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय स्तर के विहार बनाये थे और उनमें प्रशिक्षित करके कार्यकर्ता देश के कोने-कोने में तथा विदेशों में भेजे गये थे। धर्मचक्र प्रवर्त्तन की योजना तभी पूरी हो सकी थी।

भगवान आद्य शंकराचार्य ने देश के चार कोनों पर चार धाम बनाये थे और उनके माध्यम से देश में फैले हुए अनेक मत मतान्तरों को एक सूत्र में पिरोया था। दोनों ने अपने-अपने कार्य क्षेत्रों में एक कुम्भ स्तर के बड़े सम्मेलन समारोहों की व्यवस्था की थी ताकि जो ऋषियों के मुख्य-मुख्य सन्देश हों, वे आगन्तुकों द्वारा घर-घर पहुँचाये जा सकें।

इन दोनों के ही क्रिया-कलापों को हाथ में लिया गया। निश्चय किया गया कि गायत्री शक्ति पीठों, प्रज्ञा संस्थानों के नाम से देश के कोने-कोने में भव्य देवालय एवं कार्यालय बनाये जायें, जहाँ केन्द्र बनाकर समीपवर्त्ती क्षेत्रों में वे काम किये जा सकें, जिनको प्रज्ञा मिशन का प्रण संकल्प कहा जा सके।

बात असम्भव लगती थी। किन्तु प्राणवान परिजनों को शक्ति पीठ निर्माण के संकल्प दिये गये तो २४०० भवन दो वर्ष के भीतर बन गये। उस क्षेत्र के कार्यकर्त्ता उसे केन्द्र मानकर युग चेतना का आलोक वितरण करने और घर-घर अलख जगाने के काम में जुट पड़े। यह एक इतना बड़ा और इतना अद्भुत कार्य है जिसकी तुलना में ईसाई मिशनरियों के द्वारा किये गए निर्माण कार्य भी फीके पड़ जाते हैं। हमारे निर्माणों में जन-जन का अल्पांश लगा है अतः वह सबको अपना लगता है, जबकि चर्च, अन्यान्य बड़े मन्दिर बड़ी धनराशियों से बनाए जाते हैं।

इसके अतिरिक्त चल प्रज्ञापीठों की योजना बनी। एक कार्यकर्ता एक संस्था चला सकता है। यह चल गाड़ियाँ हैं। इन्हें कार्यकर्ता अपने नगर तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में धकेल कर ले जाते हैं। पुस्तकों के अतिरिक्त आवश्यक सामान भी उसकी कोठी में भरा रहता है। यह चल पुस्तकालय अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक रहे, इसलिए वे दो वर्ष में १२ हजार की संख्या में बन गये। स्थिर प्रज्ञा पीठों और चल प्रज्ञा संस्थानों के माध्यम से हर दिन प्रायः एक लाख व्यक्ति इनसे प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

इसके अतिरिक्त उपरोक्त हर संस्था का वार्षिकोत्सव करने का निश्चय किया गया जिसमें उस क्षेत्र के न्यूनतम एक हजार कार्यकर्ता एकत्रित हों। चार दिन सम्मेलन चले। नये वर्ष का सन्देश सुनाने के लिए हरिद्वार से प्रचारक मण्डलियाँ कन्याओं की टोलियों के समान ही भेजने का प्रबन्ध किया गया, जिनमें ४ गायक और एक वक्ता भेजे गये। पाँच प्रचारकों की टोली के लिए जीप गाड़ियों का प्रबन्ध करना पड़ा ताकि कार्यकर्ताओं के बिस्तर, कपड़े, संगीत उपकरण, लाउडस्पीकर आदि सभी सामान भली प्रकार जा सके। ड्राइवर भी अपना ही कार्यकर्ता होता है ताकि वह भी छठे प्रचारक का काम दे सके। अब हर प्रचारक को जीप व कार ड्राइविंग सिखाने की व्यवस्था की गई है, ताकि इस प्रयोजन के लिए बाहर के आदमी न तलाशने पड़े।

मथुरा रहकर महत्वपूर्ण साहित्य लिखा जा चुका था। हरिद्वार आकर प्रज्ञा पुराण का मूल उपनिषद पक्ष संस्कृत व कथा टीका सहित हिन्दी में १८ खण्डों को लिखने का निश्चय किया गया। इसके अतिरिक्त एक फोल्डर आठ पेज का नित्य लिखने का निश्चय किया गया जिनके माध्यम से सभी ऋषियों की कार्यपद्धति से सभी प्रज्ञा पुत्रों को अवगत कराया जा सके और उन्हें करने में संलग्न होने की प्रेरणा मिल सके। अब तक इस प्रकार के ४०० फोल्डर लिखे जा चुके हैं। लक्ष्य एक हजार का है। उनको भारत की अन्य भाषाओं में अनुवाद कराने का प्रबन्ध चल पड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की सभी भाषाओं और सभी मत-मतान्तरों को पढ़ाने और उनके माध्यम से हर क्षेत्र में कार्यकर्त्ता तैयार करने के लिए एक अलग भाषा एवं धर्म विद्यालय शान्ति-कुञ्ज में ही इसी वर्ष बनकर तैयार हुआ है और ठीक तरह चल पड़ा है।

उपरोक्त कार्यक्रमों को लेकर जो भी कार्यकर्त्ता देश-व्यापी दौरा करते हैं, वे मिशन के प्रायः १० लाख कार्य-कर्त्ताओं में उन क्षेत्रों में प्रेरणाएँ भरने का काम करते हैं, जहाँ वे जाते हैं। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, विहार, मध्य प्रदेश, हिमांचल प्रदेश, हरियाणा महाराष्ट्र, गुजरात एवं उड़ीसा इन क्षेत्रों में संगठन पूरी तरह सुव्यवस्थित हो गया है। अब देश का जो भाग प्रचार क्षेत्र में भाषा व्यव-धान के कारण सम्मिलित करना नहीं बन पड़ा है उन्हें भी एकाध वर्ष में पूरी कर लेने की योजना है।

प्रवासी भारतीय प्रायः ७४ देशों में बिखरे हुए हैं। उनकी संख्या भी तीन करोड़ के करीब हैं। उन तक व अन्य देशवासियों तक मिशन के विचारों को फैलाने की योजना बड़ी सफलता पूर्वक आरम्भ हुई है। आगे चलकर कई सुयोग्य कार्यकर्त्ताओं के माध्यम से कई राष्ट्रों में प्रज्ञा आलोक पहुँचाना सम्भव बन पड़ेगा। कदाचित् ही कोई देश अब ऐसा शेष रहा हो जहाँ प्रवासी भारतीय रहते हों और मिशन का संगठन न बना हो।

ऊपर की पंक्तियों में ऋषियों की कार्य पद्धति को जहाँ जिस प्रकार व्यापक बनाना सम्भव हुआ है वहाँ उसके लिए प्रायः एक हजार आत्मदानी कार्यकर्त्ता निर-न्तर कार्यरत रहकर काम कर रहे हैं। इसके लिए ऋषि जमदग्नि का गुरुकुल आरण्यक यहाँ नियमित रूप से चलता है।

चरक परम्परा का पुनरुद्धार किया गया है। दुर्लभ जड़ी-बूटियों का शान्ति-कुंज में उद्यान लगाया गया है। और उनमें हजारों वर्षों में क्या अन्तर आया है, यह बहु-मूल्य मशीनों से जाँच पड़ताल की जा रही है। एक औषधि का एक बार में प्रयोग करने की एक विशिष्ट पद्धति यहाँ क्रियान्वित की जा रही है, जो अत्यधिक सफल हुई है।

युग शिल्पी विद्यालय के माध्यम से सुगम संगीत की शिक्षा हजारों व्यक्ति प्राप्त कर चुके हैं और अपने-अपने यहाँ ढपली जैसे छोटे से माध्यम द्वारा संगीत विद्यालय चलाकर युग गायक तैयार कर रहे हैं।

पृथ्वी अन्तर्ग्रही वातावरण से प्रभावित होती है। उसकी जानकारी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हर पाँच हजार वर्ष पीछे ज्योतिष गणित को सुधारने की आवश्यकता होती है। आर्यभट्ट की इस विधा को नूतन जीवन प्रदान करने के लिए प्राचीन काल के उपकरणों वाली समग्र वेध-शाला विनिर्मित की गई है। और नेपच्यून, प्लेटो, यूरेनस ग्रहों के वेध समेत हर वर्ष दृश्य गणित पंचांग प्रकाशित होता है। यह अपने ढंग का एक अनोखा प्रयोग है।

अब प्रकाश चित्र विज्ञान का नया कार्य हाथ में लिया गया है। अब तक सभी संस्थानों में स्लाइड प्रोजेक्टर पहुँ-चाये गये थे। उन्ही से काम चल रहा था। अब वीडियो क्षेत्र में प्रवेश किया गया है। उनके माध्यम से कविताओं के आधार पर प्रेरक फिल्में बनायी जा रही हैं। देश के विद्वानों, मनीषियों मूर्धन्यों नेताओं के दृश्य प्रवचन टेप कराकर उनकी छवि समेत सन्देश घर-घर पहुँचाये जा रहे हैं। भविष्य में मिशन के कार्यक्रमों का उद्देश्य, स्वरूप और प्रयोग समझाने वाली फिल्में बनाने की बड़ी योजना है जो जल्दी ही कार्यान्वित होने जा रही है।

शान्ति-कुञ्ज मिशन का सबसे महत्वपूर्ण सृजन है "ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान"। इस प्रयोगशाला द्वारा अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय करने के लिए बहुमूल्य यन्त्र उपकरणों वाली प्रयोगशाला बनाई गई है। कार्य-कर्त्ताओं में आधुनिक आयुर्विज्ञान एवं पुरातन आयुर्वेद विधा के ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट हैं। विज्ञान की अन्य विधाओं में निष्णात उत्साही कार्यकर्त्ता हैं, जिनकी रुचि अध्यात्म परक है। इसमें विशेष रूप से यज्ञ विज्ञान पर शोध की जा रही है। इस आधार पर यज्ञ विज्ञान की शारीरिक, मानसिक रोगों की निवृत्ति में—पशुओं और वनस्पतियों के लिए लाभदायक सिद्ध करने में, वायुमण्डल और वातावरण के संशोधन में इसकी उपयोगिता जाँची जा रही है, जो अब तक बहुत ही उत्साह वर्धक सिद्ध हुई है।

यहाँ सभी सत्रों में आने वालों की स्वास्थ्य परीक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जाती है। उसी के अनुरूप उन्हें साधना करने का निर्देश दिया जाता है। अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय पर इस प्रकार शोध करने वाली विश्व की यह पहली एवं स्वयं में अनुपम प्रयोगशाला है।

इसके अतिरिक्त भी सामयिक प्रगति के लिए जन-साधारण को जो प्रोत्साहन दिए जाने हैं उनकी अनेकों शिक्षाएँ यहीं दी जाती हैं। अगले दिनों और भी बड़े काम हाथ में लिए जाने हैं।

गायत्री परिवार के लाखों व्यक्ति उत्तराखण्ड की यात्रा करने के लिए जाते समय शान्ति-कुञ्ज के दर्शन करते हुए यहाँ की रज मस्तिष्क पर लगाते हुए तीर्थयात्रा आरम्भ करते हैं। बच्चों के अन्न प्राशन, नामकरण, मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि संस्कार यहाँ आकर कराते हैं। क्योंकि परिजन इसे सिद्धपीठ मानते है। पूर्वजों के श्राद्ध तर्पण कराने का भी यहाँ प्रवन्ध है। जन्म-दिन, विवाह दिन मनाने हर वर्ष प्रमुख परिजन यहाँ आते हैं। बिना दहेज की शादियाँ हर वर्ष यहाँ व तपोभूमि में होती हैं। इससे परिजनों को सुविधा भी बहुत रहती है, इस खर्चीली कुरीति से भी पीछा छूटता है।

जब पिछली बार हम हिमालय गये थे और हरिद्वार जाने और शान्ति-कुञ्ज रहकर ऋषियों की कार्य पद्धति को पुनर्जीवन देने का काम हमें सोंपा गया था तब यह असमंजस था कि इतना बड़ा कार्य हाथ में लेने में न केवल विपुल धन की आवश्यकता है, वरन् इसमें कार्यकर्त्ता भी उच्च श्रेणी के चाहिए। वे कहाँ मिलेंगे ? सभी संस्थाओं के पास वेतन भोगी हैं। वे भी चिन्ह पूजा करते हैं। हमें ऐसे जीवनदानी कहाँ से मिलेंगे ? पर आश्चर्य है कि शान्ति-कुञ्ज में—ब्रह्मवर्चस में इन दिनों रहने वाले कार्य कर्त्ता ऐसे हैं जो अपनी बड़ी-बड़ी पोस्टों से स्वेच्छा से त्यागपत्र देकर आए हैं। सभी ग्रेजुएट पोस्ट ग्रेजुएट स्तर के अथवा प्रखर प्रतिभा सम्पन्न हैं। इनमें से कुछ तो मिशन के चौके में भोजन करते हैं। कुछ उसकी लागत भी अपनी जमा धनराशि के व्याज से चुकाते रहते हैं। कुछ के पास पेन्शन आदि का प्रवन्ध भी है। भावावेश में आने जाने वालों का क्रम चलता रहता है पर जो मिशन के सूत्र संचालक व मूलभूत उद्देश्य को समझते हैं, वे स्थायी बनकर टिकते व काम करते हैं। खुशी की बात है कि ऐसे भावनाशील नैष्ठिक परिजन सतत आते व संस्था से जुड़ते चले जा रहे हैं।

गुजारा अपनी जेब से एवं काम दिन-रात स्वयंसेवक की तरह मिशन का, ऐसा उदाहरण अन्य संस्थाओं में चिराग लेकर ढूँढ़ना पड़ेगा। यह सौभाग्य मात्र शान्ति-कुञ्ज को मिला है कि उसके पास एम० ए०, एम० एस सी०, एम० डी०, एम० एस०, पी० एच० डी०, आयुर्वेदाचार्य, संस्कृत आचार्य स्तर के कार्यकर्त्ता हैं। उनकी नम्रता, सेवा भावना श्रमशीलता एवं निष्ठा देखते ही बनती हैं। जबकि वरीयता योग्यता एवं प्रतिभा को दी जाती है, डिग्री को नहीं, ऐसा परिकर जुड़ना इस मिशन का बहुत बड़ा सौभाग्य है।

> वन प्रदेश में भयंकर आँधी आने पर वे वृक्ष उखड़ जाते हैं जो एकाकी खड़े हैं। भले ही वे कितने ही विशाल क्यों न हों। इसके विपरीत घने उगे हुए पेड़ एक दूसरे के साथ सट कर रहने के कारण उस दबाव को सहज, सहन कर लेते हैं अन्धड़ उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं पाते। यह सघनता एवं सहकारिता का चमत्कार है।

जो काम अब तक हुआ है उसमें पैसे की याचना नहीं करनी पड़ी। मालवीय जी का मन्त्र मुट्ठी भर अन्न और दस पैसा नित्य देने का सन्देश मिल जाने से ही इतना बड़ा कार्य सम्पन्न हो गया। आगे इसकी और भी प्रगति होने की सम्भावना है। हम जन्मभूमि छोड़कर आए, वहाँ हाईस्कूल—फिर इण्टर कालेज एवं अस्पताल चल पड़ा। मथुरा का कार्य हमारे सामने की अपेक्षा उत्तराधिकारियों द्वारा दूना कर दिया गया है। हमारे हाथ का कार्य क्रमशः अब दूसरे समर्थ व्यक्तियों के कन्धों पर जा रहा है। पर मन में विश्वास है कि वह घटेगा नहीं। ऋषियों का जो कार्य आरम्भ करना और बढ़ाना हमारे जिम्मे था, वह अगले दिनों घटेगा नहीं, प्रज्ञावतार की अवतरण बेला में मत्स्यावतार की तरह बढ़ता-फैलता ही चला जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषियों की पुरातन योजनाओं का शुभारम्भ एवं क्रियान्वयन

अपने समय में विभिन्न ऋषिगणों ने अपने हिस्से के काम सम्भाले और पूरे किये थे। उन दिनों ऐसी परिस्थितियाँ, अवसर और इतना अवकाश भी था कि समय की आवश्यकता के अनुरूप अपने-अपने कार्यों को वे धैर्यपूर्वक उचित समय में सम्पन्न करते रह सकें। पर अब तो आपत्तिकाल है। इन दिनों अनेकों काम एक ही समय में द्रुतगति से निपटाने हैं। घर में अग्निकाण्ड हो तो जितना बुझाने का प्रयास बन पड़े उसे स्वयं करते हुए बच्चों को, कपड़ों को, धनराशि को निकालने—ढोने का काम साथ-साथ ही चलता है। हमें ऐसे ही आपत्तिकाल का सामना करना पड़ा है और ऋषियों द्वारा हमारी हिमालय यात्रा में सौंपे गये कार्यों में से प्रायः प्रत्येक को एक ही समय में सम्भालना पड़ा है। एक ही समय में हमें इसके लिए बहुमुखी जीवन जीना पड़ा है। इसके लिए प्रेरणा, दिशा और सहायता हमारे समर्थ मार्गदर्शक की मिली हैं और शरीर से जो कुछ भी हम कर सकते थे, उसे पूरी तत्परता और तन्मयता के साथ सम्पन्न किया है। उसमें पूरी-पूरी ईमानदारी का समावेश किया है। फलतः वे सभी कार्य इस प्रकार सम्पन्न होते चले हैं मानो वे किये हुए ही रखे हों। कृष्ण का रथ चलाना और अर्जुन का गाण्डीव उठाना पुरातन इतिहास होते हुए भी हमें अपने सन्दर्भ में चरितार्थ होते दीखता रहा है।

युग परिवर्तन जैसा महान कार्य होता तो भगवान की इच्छा, योजना एवं क्षमता के आधार पर ही है पर उसका श्रेय वे ऋषि कल्प जीवन्मुक्त आत्माओं को देते रहते हैं। यही उनकी साधना का—पात्रता का सर्वोत्तम उपहार है। हमें भी इसी प्रकार का श्रेय उपहार देने की भूमिका बनी और हम कृतकृत्य हो गये। हमें सुदूर भविष्य की झाँकी अभी से दिखाई पड़ती है, इसी कारण हमें यह लिख सकने में संकोच रंचमात्र भी नहीं होता।

अब पुरातन काल के ऋषियों में से किसी का भी स्थूल शरीर नहीं है, पर सूक्ष्म शरीर से उनकी चेतना निर्धारित स्थानों में मौजूद है। सभी से हमारा परिचय कराया गया और कहा गया कि इन्हीं के पद चिन्हों पर चलना है। इन्हीं की कार्य पद्धति अपनानी, देवात्मा हिमालय के प्रतीक स्वरूप शान्तिकुञ्ज हरिद्वार में एक आश्रम बनाना और ऋषि परम्परा को इस प्रकार कार्यान्वित करना है, जिससे युग परिवर्तन की प्रक्रिया का गतिचक्र सुव्यवस्थित रूप से चल पड़े।

जिन ऋषियों, तपः पूत महामानवों ने कभी हिमालय में रहकर विभिन्न कार्य किये थे, उनका स्मरण हमें मार्गदर्शक सत्ता ने तीसरी यात्रा में बार-बार दिलाया था। इनमें थे, भागीरथ (गंगोत्री), परशुराम (यमुनोत्री), चरक (केदारनाथ), व्यास (बद्रीनाथ), याज्ञवल्क्य (त्रियुगीनारायण), नारद (गुप्तकाशी), आद्य शंकराचार्य (ज्योति मठ), जमदग्नि (उत्तरकाशी), पातंजलि (रुद्र प्रयाग), वशिष्ठ (देवप्रयाग), पिप्पलाद, सूत शौनिक, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न (ऋषिकेश), दक्ष प्रजापति, कणाद एवं विश्वामित्र सहित सभी सप्त ऋषिगण। इसके अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु, सन्त ज्ञानेश्वर एवं तुलसीदास जी के कर्त्तव्यों की झाँकी दिखाकर भगवान बुद्ध के परिव्रजा-धर्मचक्र प्रवर्त्तन अभियान को युगानुकूल परिस्थितियों में संगीत, संकीर्तन एवं प्रज्ञा पुराण कथा के माध्यम से देश-विदेश में फैलाने एवं प्रज्ञावतार द्वारा बुद्धावतार का उत्तरार्ध पूरा किए जाने का भी निर्देश था। समर्थ रामदास के रूप में जन्मलेकर जिस प्रकार व्यायामशालाओं महावीर मन्दिरों की स्थापना सोलहवीं सदी में हमसे कराई गयी थी, उसी को नूतन अभिनव रूप में प्रज्ञा संस्थानों, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों, ज्ञानमन्दिर स्वाध्याय मण्डलों द्वारा सम्पन्न किए जाने के संकेत मार्गदर्शक द्वारा हिमालय प्रवास में ही दे दिये गए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवात्मा हिमालय का प्रतीक प्रतिनिधि शान्ति कुञ्ज को बना देने का जो निर्देश मिला वह कार्य साधारण नहीं श्रम एवं धन साध्य था। सहयोगियों की सहायता पर निर्भर भी। इसके अतिरिक्त अध्यात्म के उस ध्रुव केन्द्र में सूक्ष्म शरीर से निवास करने वाले ऋषियों की आत्मा का आह्वान करके प्राण प्रतिष्ठा का संयोग भी बिठाना था। यह सभी कार्य ऐसे हैं, जिन्हें देवालय परम्परा में अद्भुत एवं अनुपम कहा जा सकता है। देवताओं के मन्दिर अनेक जगह बने हैं। वे भिन्न-भिन्न भी हैं। एक ही जगह सारे देवताओं की स्थापना का तो कहीं सुयोग हो भी सकता है, पर समस्त देवात्माओं ऋषियों की एक जगह प्राण प्रतिष्ठा हुई हो ऐसा तो संसार भर में अन्यत्र कहीं भी नहीं है। फिर इससे भी बड़ी बात यह है कि ऋषियों के क्रिया-कलापों की गतिविधियों का न केवल चिन्ह पूजा के रूप में वरन् यथार्थता के रूप में भी यहाँ न केवल दर्शन वरन् परिचय भी प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार शान्ति-कुञ्ज ब्रह्मवर्चस गायत्री तीर्थ एकत्र प्रकार से प्रायः सभी ऋषियों के क्रिया कलापों का प्रतिनिधित्व करता है।

भगवान राम ने लंका विजय और रामराज्य स्थापना के निमित्त मंगलाचरण रूप में रामेश्वरम् पर शिव प्रतीक की स्थापना की थी। हमारा सौभाग्य है कि हमें युग परिवर्तन हेतु संघर्ष एवं सृजन प्रयोजन के लिए देवात्मा हिमालय की प्रतिमा प्राण प्रतिष्ठा समेत करने का आदेश मिला। शान्ति कुञ्ज में देवात्मा हिमालय का भव्य मन्दिर पाँचों प्रयागों, पाँचों काशियों, पाँचों सरिताओं और पाँचों सरोवरों समेत देखा जा सकता है। इसमें सभी ऋषियों के स्थानों के भी दिव्य दर्शन हैं। इसे अपने ढंग का अद्भुत एवं अनुपम देवालय कहा जा सकता है। जिसने हिमालय के उन दुर्गम क्षेत्रों के कभी दर्शन न किये हों, वे इस लघु संस्करण के दर्शन से ही वही लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

जमदग्नि पुत्र परशुराम के फरसे ने अनेकों उद्धत उच्छृंखलों के सिर काटे थे। यह वर्णन अलंकारिक भी हो सकता है। उन्होंने यमुनोत्री में तपश्चर्या कर प्रखरता की साधना की एवं सृजनात्मक क्रान्ति का मोर्चा सम्भाला। जो व्यक्ति तत्कालीन समाज के निर्माण में बाधक अनीति में लिप्त थे, उनकी वृत्तियों का उन्होंने उन्मूलन किया। दुष्ट और भ्रष्ट जनमानस के प्रवाह को उलट कर सीधा करने का पुरुषार्थ उन्होंने निभाया। इसी आधार पर उन्हें भगवान शिव से "परशु" (फरसा) प्राप्त हुआ। उत्तरार्ध में उन्होंने फरसा फेंककर फावड़ा थामा एवं स्थूल दृष्टि से वृक्षारोपण तथा सूक्ष्मतः रचनात्मक सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण किया। शान्ति-कुञ्ज से चलने वाली लेखनी ने वाणी ने उसी परशु की भूमिका निभाई एवं असंख्यों की मान्यताओं, भावनाओं, विचारणाओं एवं गतिविधियों में आमूल-चूल परिवर्त्तन कर दिया है।

भागीरथ ने जल दुर्भिक्ष के निवारण हेतु कठोर तप करके स्वर्ग से गंगा को धरती पर लाने में सफलता प्राप्त की थी। भागीरथ शिला गंगोत्री के समीपस्थ है। गंगा उन्हीं के तप पुरुषार्थ से अवतरित हुई, इसलिए भागीरथी कहलाई। लोक मंगल के प्रयोजन हेतु प्रचण्ड पुरुषार्थ करके भागीरथ दैवी कसौटी पर खरे उतरे एवं भगवान शिव के कृपा पात्र बने। आज आस्थाओं का दुर्भिक्ष चारों ओर संव्याप्त है। इसे दिव्य ज्ञान की धारा ज्ञान गंगा से ही मिटाया जा सकता है। बौद्धिक और भावनात्मक काल के निवारणार्थ शान्ति-कुञ्ज से ज्ञान गंगा का जो अविरल प्रवाह बहा है, उससे आशा बँधती है कि दुर्भिक्ष मिटेगा, सद्भावना का विस्तार चहुँ ओर होगा।

चरक ऋषि ने केदारनाथ क्षेत्र के दुर्गम क्षेत्रों में वनौषधियों की शोध करके रोग ग्रस्तों को निरोग करने वाली संजीवनी खोज निकाली थी। शास्त्र कथन है कि ऋषि चरक औषधियों से वार्त्ता करके उनके गुण पूछते व समुचित समय में उन्हें एकत्र कर उन पर अनुसंधान करते थे। जीवनी शक्ति सम्वर्धन, मनोविकार शमन एवं व्यवहारिक गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्त्तन करने वाले गुण रखने वाली अनेकों औषधियाँ इसी अनुसंधान की देन हैं। शान्ति-कुञ्ज में दुर्लभ औषधियों को खोज निकालने, उनके गुण प्रभाव को आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रों से जाँचने का जो प्रयोग चलता है, उसने आयुर्वेद को एक प्रकार से पुनर्जीवित किया है। सही औषधि के एकाकी प्रयोग से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे निरोग रह दीर्घायुष्य बना जा सकता है, यह अनुसंधान इस ऋषि परम्परा के पुनर्जीवन हेतु किये जा रहे प्रयासों की एक कड़ी है।

महर्षि व्यास ने नर एवं नारायण पर्वत के मध्य वसुधारा जल प्रपात के समीप व्यास गुफा में गणेशजी की सहायता से पुराण लेखन का कार्य किया था। उच्चस्तरीय कार्य हेतु एकाकी, शान्त, सतोगुणी वातावरण ही अभीष्ट था। आज की परिस्थितियों में, जबकि प्रेरणादायी साहित्य का अभाव है, पुरातन ग्रन्थ लुप्त हो चले, शान्तिकुञ्ज में विराजमान तन्त्री ने आज से पच्चीस वर्ष पूर्व ही चारों वेद अठारह पुराण, १०८ उपनिषद, छहों दर्शन, चौबीस गीताएँ, आरण्यक, ब्राह्मण आदि ग्रन्थों का भाष्य कर सर्वसाधारण के लिये सुलभ एवं व्यावहारिक बनाकर रख दिया था। साथ ही जनसाधारण की हर समस्या पर व्यावहारिक समाधान परक युगानुकूल साहित्य सतत् लिखा है, जिसने लाखों व्यक्तियों के मन-मस्तिष्क को प्रभावित कर सही दिशा दी है। प्रज्ञापुराण के १८ खण्ड नवीनतम सृजन है, जिसमें कथा साहित्य के माध्यम से उपनिषद-दर्शन को जन-सुलभ बनाया गया है।

पातंजलि ने रुद्र प्रयाग में अलकनन्दा एवं मन्दाकिनी के संगम स्थल पर योग विज्ञान के विभिन्न प्रयोगों का आविष्कार और प्रचलन किया था। उन्होंने प्रमाणित किया कि मानवी काया निहित सूक्ष्म शक्ति संस्थानों में अगणित आत्मिक ऊर्जा का भण्डार है। इस शरीर तन्त्र के ऊर्जा केन्द्रों को प्रसुप्ति से जागृति में लाकर मनुष्य देवमानव बन सकता है, रिद्धि-सिद्धि सम्पन्न बन सकता है। शान्ति-कुञ्ज में योग साधना के विभिन्न अनुशासनों योगत्रयी, कायाकल्प एवं आसन-प्राणायाम के माध्यम से इस मार्ग पर चलने वाले जिज्ञासु साधकों की बहुमूल्य यन्त्र उपकरणों से शारीरिक-मानसिक परीक्षा सुयोग्य चिकित्सकों से कराने के उपरान्त साधना लाभ दिया जाता है एवं भावी जीवन सम्बन्धी दिशाधारा प्रदान की जाती है।

याज्ञवल्क्य ने त्रियुगीनारायण में यज्ञ विद्या का अन्वेषण किया था और उनके भेद-उपभेदों का परिणाम मनुष्य एवं समग्र जीव जगत के स्वास्थ्य सम्वर्धन हेतु, वातावरण शोधन, वनस्पति सम्वर्धन एवं पर्जन्य वर्षण के रूप में जाँचा परखा था। हिमालय के इस दुर्गम स्थान पर सम्प्रति एक यज्ञकुण्ड में अखण्ड अग्नि है जिसे शिव-पार्वती विवाह के समय से प्रज्वलित माना जाता है। यह उस परम्परा की प्रतीक अग्नि शिखा है। आज यज्ञ विज्ञान की लुप्त प्राय श्रृंखला को फिर से खोजकर समय के अनुरूप अन्वेषण करने का दायित्व ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान ने अपने कन्धों पर लिया है। यज्ञोपचार पद्धति (यज्ञोपैथी) के अनुसंधान हेतु समय के अनुरूप एक सर्वांगपूर्ण प्रयोगशाला आधुनिक उपकरणों से युक्त ब्रह्मवर्चस प्रांगण के मध्य में विद्यमान है। वनौषधि यजन से शारीरिक, मानसिक रोगों के उपचार, मनोविकार शमन जीवनीशक्ति वर्धन, प्राणवान पर्जन्य की वर्षा एवं पर्यावरण सन्तुलन जैसे प्रयोगों के निष्कर्ष देखकर जिज्ञासुओं को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

विश्वामित्र गायत्री महामन्त्र के दृष्टा, नूतन सृष्टि के सृजेता माने गये हैं। उनने सप्तर्षियों सहित जिस क्षेत्र में तप करके आद्यशक्ति का साक्षात्कार किया था, वह पावन भूमि यही गायत्री तीर्थ—शान्ति कुञ्ज की है, जिसे हमारे मार्गदर्शक ने दिव्य चक्षु प्रदान करके दर्शन कराये थे एवं आश्रम निर्माण हेतु प्रेरित किया था। विश्वामित्र की सृजन साधना के सूक्ष्म संस्कार यहाँ सघन हैं। महाप्रज्ञा को युग शक्ति का रूप देने, उनकी चौबीस मूर्तियों की स्थापना कर सारे राष्ट्र एवं विश्व में आद्य शक्ति का वसुधैव कुटुम्बकम् एवं सद्बुद्धि की प्रेरणा वाला सन्देश यहीं से उद्घोषित हुआ। अनेकों साधकों ने यहाँ गायत्री अनुष्ठान किए हैं एवं आत्मिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है। शब्द शक्ति एवं सावित्री विधा पर वैज्ञानिक अनुसंधान विश्वामित्र परम्परा का ही पुनर्जीवन है।

जमदग्नि का गुरुकुल—आरण्यक उत्तरकाशी में स्थित था एवं बालकों वानप्रस्थों की समग्र शिक्षा व्यवस्था का भण्डागार था। अल्पकालीन साधना, प्रायश्चित्य, संस्कार आदि कराने एवं प्रौढ़ों के वानप्रस्थ शिक्षण की यहाँ समुचित व्यवस्था थी। प्रखर व्यक्तित्वों को उत्पादन, वानप्रस्थ—परिव्रजा हेतु लोकसेवियों का शिक्षण, गुरुकुल में बालकों को नैतिक शिक्षण तथा युग शिल्पी विद्यालय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज निर्माण की विधा का समग्र शिक्षण इस ऋषि परम्परा को आगे बढ़ाने हेतु शान्ति कुञ्ज द्वारा संचालित ऐसे ही क्रिया कलाप हैं।

देवर्षि नारद ने गुप्त काशी में तपस्या की थी। वे निरन्तर अपने वीणावादन से जन-जागरण में निरत रहते थे। उन्होंने सत्परामर्श द्वारा भक्ति भावनाओं को प्रसुप्ति से प्रौढ़ता तक समुन्नत किया था। शान्ति कुञ्ज के युग-गायन शिक्षण विद्यालय ने अब तक हजारों ऐसे परिव्राजक प्रशिक्षित किए हैं। वे एकाकी अपने-अपने क्षेत्रों में एवं समूह में जीप टोली द्वारा भ्रमण कर नारद परम्परा का ही अनुकरण कर रहे हैं।

देव प्रयाग में राम को योग वासिष्ठ का उपदेश देने वाले वशिष्ठ ऋषि धर्म और राजनीति का समन्वय करके चलते थे। शान्ति कुञ्ज के सूत्र धार ने सन १९३० से सन् १९४७ तक आजादी की लड़ाई लड़ी है। जेल में कठोर यातनाएँ सही हैं। बाद में साहित्य के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र का मार्गदर्शन किया है। धर्म और राजनीति के समन्वय साहचर्य के लिए जो बन पड़ा है, हम उसे पूरे मनोयोग से करते रहे हैं।

आद्य शंकराचार्य ने ज्योतिर्मठ में तप किया एवं चार धामों की स्थापना देश के चार कोनों पर की। विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय एवं धार्मिक संस्थानों के माध्यम से जन जागरण उनका लक्ष्य था। शान्ति-कुञ्ज के तत्वावधान में २४०० गायत्री शक्ति पीठें विनिर्मित हुई हैं, जहाँ से धर्म धारणा को समुन्नत करने का कार्य निरन्त चलता रहता है। इसके अतिरिक्त बिना इमारत वाले चल प्रज्ञा संस्थानों एवं स्वाध्याय मण्डलों द्वारा सारे देश में चेतना केन्द्रों का जाल बिछाया गया है। ये सभी चार धामों की परम्परा में अपने-अपने क्षेत्रों में युग चेतना का आलोक वितरण कर रहे हैं।

ऋषि पिप्पलाद ने ऋषिकेश के समीप ही अन्न के मन पर प्रभाव का अनुसंधान किया था। वे पीपल वृक्ष के फलों पर निर्वाह करके आत्म संयम द्वारा ऋषित्व पा सके। हमने चौबीस वर्ष तक जौ की रोटी एवं छाछ पर रहकर गायत्री अनुष्ठान किए। तदुपरान्त आजीवन आहार उबले अन्न शाक ही रहे। अभी भी उबले अन्न एवं हरी वनस्पतियों के कल्प प्रयोगों की प्रतिक्रिया की जांच-पड़ताल शान्ति कुञ्ज में अमृताशन शोध के नाम से चलती रहती है। ऋषि केश में ही सूत शौनिक कथा-पुराण वाचन से ज्ञान सत्र जगह-जगह लगाते थे। प्रज्ञा पुराणों का कथा वाचन इतना लोकप्रिय हुआ है कि लोग इसे युग पुराण कहते हैं। तीन भाग इसके छप चुके, पन्द्रह और प्रकाशित होना हैं।

हर की पैड़ी हरिद्वार में सर्व मेध यज्ञ में हर्षवर्धन ने अपनी सारी सम्पदा तक्षशिला विश्वविद्यालय निर्माण हेतु दान कर दी थी। शान्ति-कुंज के सूत्रधार ने अपनी लाखों की सम्पदा गायत्री तपोभूमि तथा जन्मभूमि में विद्यालय निर्माण हेतु दे दी। स्वयं या सन्तान के लिए इनमें से एक पैसा भी नहीं रखा। इसी परम्परा को अब शान्ति कुञ्ज से स्थायी रूप से जुड़ते जा रहे लोक सेवी निभा रहे हैं।

कणाद ऋषि ने अथर्ववेदीय शोध परम्परा के अन्तर्गत अपने समय में अणु विज्ञान का एवं वैज्ञानिक अध्यात्म वाद का अनुसंधान किया था। बुद्धिवादी पीढ़ी के गले उतारने के लिए समय के अनुरूप अब आप्त वचनों के साथ-साथ तर्क, तथ्य एवं प्रमाण भी अनिवार्य हैं। ब्रह्म-वर्चस् शोध संस्थान में अध्यात्म-देव एवं विज्ञान-दैत्य के समन्वय का समुन्द्र मन्थन चल रहा है। दार्शनिक अनुसंधान ही नहीं, वैज्ञानिक प्रमाणों का प्रस्तुतिकरण भी इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसकी उपलब्धियों के प्रति संसार बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाये बैठा है।

बुद्ध के परिव्राजक संसार भर में धर्म चक्र प्रवर्तन हेतु दीक्षा लेकर निकले थे। शान्ति-कुञ्ज में मात्र अपने देश में धर्मधारणा के विस्तार हेतु ही नहीं, संसार के सभी देशों में देव संस्कृति का सन्देश पहुँचाने हेतु परिव्राजक दीक्षित होते हैं। वहाँ से आये परिजनों को यहाँ धर्म चेतना से अनुप्राणित किया जाता है। भारत में ही प्रायः एक लाख प्रज्ञापुत्र प्रवृज्या में निरत रह घर-घर अलख जगाने का कार्य कर रहे हैं।

आर्यभट्ट ने सौर-मण्डल के ग्रह-उपग्रहों का ग्रह गणित कर यह जाना था कि पृथ्वी के साथ सौर परिवार का क्या आदान-प्रदान क्रम है और इस आधार पर धरित्री का वातावरण एवं प्राणी समुदाय कैसे प्रभावित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। शांति कुन्ज में एक समग्र वेधशाला बनायी गयी है एवं आधुनिक यन्त्रों का उसके साथ समन्वय स्थापित कर ज्योति विज्ञान का अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। दृष्य गणित पंचांग यहाँ की एक अनौखी देन है।

चैतन्य महाप्रभु, सन्त ज्ञानेश्वर, समर्थ गुरु रामदास, प्राणनाथ महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस आदि सभी मध्य कालीन सन्तों की धर्मधारणा विस्तार परम्परा का अनुसरण शान्ति-कुन्ज में किया गया है।

सबसे महत्वपूर्ण प्रसंग यह है कि इस आश्रम का वातावरण इतने प्रबल संस्कारों से युक्त है कि सहज ही व्यक्ति अध्यात्म की ओर प्रेरित होता चला जाता है। यह सूक्ष्म सत्ताधारी ऋषियों की यहाँ उपस्थिति की ही परिणति है। वे अपने द्वारा सम्पन्न क्रियाओं का यह पुनर्जीवन देखते होंगे तो निश्चय ही प्रसन्न होकर भावभरा आशीर्वाद देते होंगे। ऋषियों के तप प्रताप से ही यह धरती देवमानवों से धन्य हुई है। वाल्मीकि आश्रममें लवकुश एवं कण्व आश्रम में चक्रवर्ती भरत विकसित हुए। कृष्ण-रुक्मणी ने बद्रीनारायण में तप करके कृष्ण सदृश्य प्रद्युम्न को जन्म दिया। पवन एवं अंजनी ने तपस्वी पूर्पा के आश्रम में बजरंग बली को जन्म दिया। यह हिमालय क्षेत्र में बन पड़ी तप साधना के ही चमत्कारी वरदान थे।

संस्कारवान क्षेत्र एवं तपस्वियों के सम्पर्क लाभ के अनेकों विवरण हैं। स्वाति बूँद पड़ने से सीप में मोती बनते हैं, बांस में वंशलोचन एवं केले में कपूर। चन्दन के निकटवर्त्ती झाड़-झंखार भी उतने ही सुगन्धित हो जाते हैं। पारस स्पर्श कर लोहा सोना बन जाता है। हमारे मार्गदर्शक सूक्ष्म शरीर से पृथ्वी के स्वर्ग इसी हिमालय क्षेत्र में शताब्दियों से रहते आए हैं, जिसके द्वार पर हम बैठे हैं। हमारी बैटरी चार्ज करने के लिए समय-समय पर वे बुलाते रहते हैं। जब भी उन्हें नया काम सौंपना हुआ है, तब नई शक्ति देने, हमें वहीं बुलाया गया है और लौटने पर हमें नया शक्ति भण्डार भरकर वापस आने का अनुभव हुआ है।

हम प्रज्ञा पुत्रों को—जागृतात्माओं को युग परिवर्त्तन में रीछ वानरों की, ग्वाल बालों की, भूमिका निभाने की क्षमता अर्जित करने के लिए शिक्षण पाने या साधना करने के निमित्त बहुधा शान्ति कुन्ज बुलाते रहते हैं। इस क्षेत्र की अपनी विशेषता है। गंगा की गोद, हिमालय की छाया, प्राण चेतना से भरा-पूरा वातावरण एवं दिव्य संरक्षण यहाँ उपलब्ध है। इसमें थोड़े समय भी निवास करने वाले अपने में काया कल्प जैसा परिवर्त्तन हुआ अनुभव करते हैं। उन्हें लगता है कि वस्तुतः किसी जाग्रत तीर्थ में निवास करके अभिनव चेतना उपलब्ध करके वे वापस लौट रहे हैं। यह एक प्रकार का आध्यात्मिक सैनिटोरियम है।

साठ वर्ष से जल रहा अखण्ड दीपक, नौ कुण्ड की यज्ञशाला में नित्य दो घण्टे यज्ञ, दोनों नवरात्रियों में २४-२४ लक्ष के गायत्री महापुरश्चरण, साधना आरण्यक में नित्य गायत्री उपासकों द्वारा नियमित अनुष्ठान, इन सब बातों से ऐसा दिव्य वातावरण यहाँ विनिर्मित होता है जैसा मलयागिरि में चन्दन वृक्षों की मनभावन सुगन्ध का। बिना साधना किए भी यहाँ वैसा ही आनन्द आता है मानो यह समय तप साधना में बीता। शान्ति कुन्ज गायत्री तीर्थ की विशेषता यहाँ सतत् दिव्य अनुभूति होने की है। यह संस्कारित सिद्ध पीठ है क्योंकि यहाँ सूक्ष्प शरीरधारी वे सभी ऋषि क्रिया-कलापों के रूप में विद्यमान हैं, जिनका वर्णन यहाँ किया गया। ●

समुद्र टिटिहरी के अण्डे बहा ले गया। अनुरोध करने पर भी वापस करने को तैयार न हुआ। टिटिहरी चोंच में बालू भर-भर कर समुद्र में डालने लगी। अगस्त ऋषि यह दृश्य देख रहे थे। कारण पूछने पर उसने ऋषि को सारी बात बता दी। और कहा अण्डा मिलने या जीवन जाने तक मेरा प्रयास चलता रहेगा।

ऐसे संकल्पवान की सहायता करने का अगस्त का मन हुआ। उनने तीन चुल्लू में समुद्र पी लिया। घबराकर उसने अण्डे वापस कर दिये। तब उसे त्राण मिला। संकल्पवान, साहसी और कर्मठ आदर्शवादियों को सहयोगियों की कमी नहीं रहती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने जीवन भर बोया एवं काटा

हिमालय यात्रा से हरिद्वार लौटकर आने के वाद जव आश्रम का प्रारम्भिक ढाँचा वनकर तैयार हुआ तो विस्तार हेतु साधनों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। समय की विषमता ऐसी थी कि जिससे जूझने के लिए हमें कितने ही साधनों, व्यक्तित्वों एवं पराक्रमों की आवश्यकता अपेक्षित थी। दो काम करने थे—एक संघर्ष, दूसरा सृजन। संघर्ष उन अवाँछनीयताओं से, जो अव तक की संचित सभ्यता, प्रगति और संस्कृति को निगल जाने के लिये मुँह वाँयें खड़ी हैं। सृजन उसका जो भविष्य को उज्ज्वल एवं सुख-शान्ति से भरा-पूरा वना सके। दोनों ही कार्यों का प्रयोग समूचे धरातल पर निवास करने वाले ५०० करोड़ मनुष्यों के लिए करना ठहरा था, इसलिए विस्तार क्रम, अनायास ही अधिक हो जाता है।

निज के लिए हमें कुछ भी न करना था। पेट भरने के लिए जिस स्रष्टा ने कीट-पतंगों तक के लिए व्यवस्था वना रखी है, वह हमें क्यों भूखा रहने देगा। भूखे उठते तो सव हैं, पर खाली पेट सोता कोई नहीं। इस विश्वास ने निजी कामनाओं का आरम्भ में ही समापन कर दिया। न लोभ ने कभी सताया, न मोह ने। वासना, तृष्णा और अहन्ता में से कोई भी भव बन्धन वँधकर पीछे न लग सकी। जो करना था, भगवान के लिए करना था, गुरुदेव के निर्देशन पर करना था। उन्होंने संघर्ष और सृजन के दो ही काम, सौंपे थे, सो उन्हें करने में सदा उत्साह ही रहा। टाल-मटोल करने की न प्रवृत्ति थी और न कभी इच्छा हुई। जो करना, सो तत्परता और तन्मयता से करना, यह आदत जन्मदान दिव्य अनुदान के रूप में मिली और अद्यावधि यथावत् वनी रही।

जिन साधनों की नव सृजन के लिए आवश्यकता थी, वे कहाँ से मिलें, कहाँ से आवें? इस प्रश्न के उत्तर में मार्गदर्शक ने हमें हमेशा एक ही तरीका वताया था कि 'वोओ और काटो''। मक्का और वाजरा का एक वीज जव पौदा वनकर फलता है तो एक के वदले सौ नहीं वरन् उससे भी अधिक मिलता है। द्रौपदी ने किसी सन्त को अपनी साड़ी फाड़कर दी थी, जिससे उन्होंने लंगोटी वनाकर अपना काम चलाया था।—वही आड़े समय में इतनी लम्बी वनी कि उस साड़ियों के गट्ठे को सिर पर रखकर भगवान को स्वयं भागकर आना पड़ा। ''जो तुझे पाना है, उसे वोना आरम्भ कर दे।''—यही वीज मन्त्र हमें वताया और अपनाया गया। प्रतिफल ठीक वैसा ही निकला जैसा कि संकेत किया गया।

शरीर, वुद्धि और भावनाएँ स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के साथ भगवान सवको देते हैं। धन स्व उपार्जित होता है। कोई हाथों-हाथ कमाते हैं तो कोई पूर्व संचित सम्पदा को उत्तराधिकार में पाते हैं। हमने कमाया तो नहीं था पर उत्तराधिकार में अवश्य समुचित मात्रा में पाया। इन सवको वो देने और समय पर काट लेने के लायक गुंजाइश थी, सो विना समय गँवाये उस प्रयोजन में अपने को लगा दिया।

रात में भगवान का भजन कर लेना और दिन भर विराट् ब्रह्म के लिए—विश्व मानव के लिए समय और श्रम नियोजित रखना, यह शरीर साधना के रूप में निर्धारित किया गया।

वुद्धि दिन भर जागने में ही नहीं, रात्रि के सपने में भी लोक मंगल की विधाएँ विनिर्मित करने में लगी रही। अपने निज के लिए सुविधा सम्पदा कमाने का ताना-वाना वुनने की कभी इच्छा ही नहीं हुई। अपनी भावनाएँ सदा विराट् के लिए लगी रहीं। प्रेम, किसी वस्तु या व्यक्ति से नहीं, आदर्शों से किया। गिरों को उठाने और पिछड़ों को वढ़ाने की ही भावनाएँ सतत् उमड़ती रहीं।

इस विराट् को ही हमने अपना भगवान माना। अर्जुन के दिव्य चक्षु ने इसी विराट के दर्शन किये थे। यशोदा ने कृष्ण के मुँह में सृष्टा का यही स्वरूप देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। राम ने पालने में पड़े-पड़े माता कौशल्या को अपना यही रूप दिखाया था और काक भुशुण्डि इसी स्वरूप की झाँकी करके धन्य हुए थे।

हमने भी अपने पास जो कुछ था, उसी विराट् ब्रह्म को—विश्व मानव को सौंप दिया। बोने के लिए इससे उर्वर खेत दूसरा कोई हो नहीं सकता था। वह समयानुसार फला-फूला। हमारे कोठे भर दिये गए। सौंपे गये दो कामों के लिए जितने साधनों की जरूरत थी, वे सभी उसी में जुट गए।

शरीर जन्मजात दुर्बल था। शारीरिक बनावट की दृष्टि से उसे दुर्बल कह सकते हैं, जीवनी शक्ति तो प्रचण्ड थी ही। जवानी में बिना शाक, घी दूध के २४ वर्ष तक जौ की रोटी और छाछ लेते रहने से वह और कृश हो गया था। पर जब बोने काटने की विधा अपनाई तो पचहत्तर वर्ष की इस उम्र में वह इतना सुदृढ़ है कि कुछ ही दिन पूर्व उसने एक बिगड़ैल साँड को कन्धे का सहारा देकर चित्त पटक दिया और उससे भागते ही बना।

सर्वविदित है ही कि अनीति एवं आतंक के पक्षधर एक किराये के हत्यारे ने एक वर्ष पूर्व पाँच बोर की रिवाल्वर से लगातार हम पर फायर किये और उसकी सभी गोलियाँ नलियों में उलझी रह गईं। रिवाल्वर उससे भय के मारे वहीं गिर गयी। अबकी बार वह छुरेबाजी पर उतर आया। छुरे चलते रहे। खून बहता रहा। पर भौंके गए सारे प्रहार शरीर में सीधे न घुसकर तिरछे फिसलकर निकल गए। डाक्टरों ने जख्म सी दिये और कुछ ही सप्ताह में शरीर ज्यों का त्यों हो गया।

इसे परीक्षा का एक घटनाक्रम ही कहना चाहिए कि पाँच बोर का लोडेड रिवाल्वर शातिर हाथों से भी काम न कर सके। जानवर काटने के छुरे के बारह प्रहार मात्र प्रमाण के निशान छोड़कर अच्छे हो गए। आक्रमणकारी अपने बम से स्वयं घायल होकर जेल जा बैठा। जिसके आदेश से उसने यह किया था, उसे फाँसी की सजा घोषित हुई। असुरता के आक्रमण असफल हुए। एक उच्चस्तरीय दैवी प्रयास को निष्फल कर देना सम्भव न हो सका। मारने वाले से बचाने वाला बड़ा सिद्ध हुआ।

इन दिनों एक से पाँच करने की सूक्ष्मीकरण विधा चल रही है। इसलिए क्षीणता तो आई है। तो भी बाहर से काया ऐसी है, जिसे जितने दिन चाहें जीवित रखा जा सके। पर हम जान-बूझकर इसे इस स्थिति में रखेंगे नहीं। कारण कि सूक्ष्म शरीर से अधिक काम लिया जा सकता है और स्थूल शरीर उसमें किसी कदर बाधा ही डालता है।

शरीर की जीवनी शक्ति असाधारण रही है। उसके द्वारा दस गुना काम लिया गया है। शंकराचार्य, विवेकानन्द बत्तीस पैंतीस वर्ष जिये, पर ३५० वर्ष के बराबर काम कर सके। हमने ७५ वर्षों में विभिन्न स्तर के इतने काम किये हैं कि उनका लेखा-जोखा लेने पर वे ७५० वर्ष से कम में होते सम्भव प्रतीत नहीं होते। यह सारा समय नव सृजन की एक से एक अधिक सफल भूमिकाएँ बनाने में लगा है। निष्क्रिय, निष्प्रयोजन कभी नहीं खाली रहा।

बुद्धि को भगवान के खेत में बोया और वह असाधारण प्रतिभा बनकर प्रकटी। अभी तक लिखा हुआ साहित्य इतना है जिसे शरीर के वजन से तोला जा सके। यह सभी उच्च कोटि का है। आर्ष ग्रन्थों के अनुवाद से लेकर प्रज्ञा युग की भावी पृष्ठभूमि बनाने वाला ही सब कुछ लिखा गया है। आगे का सन् २००० तक का हमने अभी से लिखकर रख दिया है।

अध्यात्म को विज्ञान से मिलाने की योजना—कल्पना में तो कइयों के मन में थी पर उसे कोई कार्यान्वित न कर सका। इस असम्भव को सम्भव होते देखना हो तो ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान में आकर अपनी आँखों से स्वयं देखना चाहिए। जो सम्भावनाएँ सामने हैं उन्हें देखते हुए कहा जा सकता है कि अगले दिनों अध्यात्म की रूपरेखा विशुद्ध विज्ञान परक बनकर रहेगी।

छोटे-छोटे देश अपनी पंच वर्षीय योजनाएँ बनाने के लिए आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाते हैं। पर समस्त विश्व की काया-कल्प योजना का चिन्तन और क्रियान्वयन जिस प्रकार शान्ति-कुन्ज के तत्वावधान में चल रहा है, उसे एक शब्द में अद्भुत एवं अनुपम ही कहा जा सकता है।

भावनाएँ हमने पिछड़ों के लिए समर्पित की हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव ने भी यही किया था। उनके साथ चित्र-विचित्र समुदाय रहता था और सर्पों तक को वे गले लगाते थे। उसी राह पर हमें भी चलते रहना पड़ा है। हम पर छुरा रिवाल्वर चलाने वाले को पकड़ने वाले जब दौड़ रहे थे, पुलिस भी लगी हुई थी। सभी को हमने वापस बुला लिया और घातक को जल्दी ही भाग जाने का अवसर दिया। जीवन में ऐस अनेकों प्रसंग आए हैं, जब प्रतिपक्षी अपनी ओर से कुछ कमी न रहने देने पर भी मात्र हँसने और हँसाने के रूप में प्रतिदान पाते रहे हैं।

हमने जितना प्यार लोगों से किया है, उससे सौ गुनी संख्या और मात्रा में लोग हमारे ऊपर प्यार लुटाते रहे हैं। निर्देशों पर चलते रहे हैं और घाटा उठाने तथा कष्ट सहने में पीछे नहीं रहे हैं। कुछ दिन पूर्व प्रज्ञा संस्थान बनाने का स्वजनों को आदेश किया तो दो वर्ष के भीतर २४०० गायत्री शक्ति पीठों की भव्य इमारतें बन कर खड़ी हो गई और उसमें लाखों रुपयों की राशि रकम खप गई। बिना इमारत के १२ हजार प्रज्ञा संस्थान बने सो अलग। छुरा लगा तो सहानुभूति में इतनी बड़ी संख्या स्वजनों की उमड़ी, मानों मनुष्यों का आँधी तूफान आया हो। इनमें से हर एक बदला लेने के लिए आतुरता व्यक्त कर रहा था। हमने—माताजी ने सभी को दुलारकर दूसरी दिशा में मोड़ा। यह हमारे प्रति प्यार की—सघन आत्मीयता की ही अभिव्यक्ति तो है।

हमने जीवन भर प्यार खरीदा बँटोरा और लुटाया है। इसका एक नमूना हमारी धर्मपत्नी, जिन्हें हम माताजी कहकर सम्बोधित करते हैं, की भावनाएँ पढ़कर कोई भी समझ सकता है। वे काया और छाया की तरह साथ रही हैं और एक प्राण दो शरीर की तरह हमारे हर काम में हर घड़ी हाथ बँटाती रही है।

पशु-पक्षियों तक का हमने ऐसा प्यार पाया है कि वे स्वजन सहचर की तरह आगे-पीछे फिरते रहे हैं। लोगों ने आश्चर्य से देखा है कि सामान्यतः जो प्राणी मनुष्य से सर्वथा दूर रहते हैं वे किस तरह कन्धे पर बैठते, पीछे-पीछे फिरते और चुपके से बिस्तर में आ सोते हैं। ऐसे दृश्य हजारों ने हजारों की संख्या में देखे और आश्चर्यचकित रह गये हैं। यह और कुछ नहीं प्रेम का प्रतिदान मात्र था।

धन की हमें समय-समय पर भारी आवश्यकता पड़ती रही है। गायत्री तपोभूमि, शान्ति-कुंज और ब्रह्मवर्चस् की इमारतें करोड़ों रुपया मूल्य की है। मनुष्य के आगे हाथ न पसारने का व्रत निबाहते हुए अयाचक व्रत—निबाहते हुए यह सारी आवश्यकताएँ पूरी हुई हैं। पूरा समय काम करने वालों की संख्या एक हजार से ऊपर है। इनकी आजीविका की ब्राह्मणोचित व्यवस्था बराबर चलती रहती है। इनमें योग्यता की दृष्टि से इतने ऊँचे स्तर के लोग हैं कि अन्य किसी सामाजिक संस्था में कदाचित् ही इस स्तर के और इतने लोग हों। इनमें अनेकों ऐसे हैं जो समाज की नहीं, अपनी ही जमा-पूँजी के ब्याज से अपना खर्च चलाते व मिशन की सेवा करते हैं।

महर्षि रमण से एक दिन पूछा गया कि जानवरों में सबसे ज्यादा खतरनाक कौन होते हैं? तो उन्होंने मनुष्यों की ओर इशारा करते हुए कहा—"जंगलियों में निन्दक और घरेलुओं में चापलूस।"

प्रेस, प्रकाशन, प्रचार में संलग्न जीप गाड़ियाँ तथा अन्यान्य खर्चे ऐसे हैं, जो समयानुसार बिना किसी कठिनाई के पूरे होते रहते हैं। यह वह फसल है जो अपने पास की एक-एक पाई को भगवान के खेत में बो देने के उपरान्त हमें मिली है। इस फसल पर हमें गर्व है। जमींदारी समाप्त होने पर जो धनराशि मिली, वह गायत्री तपोभूमि निर्माण में दे दी। पूर्वजों की छोड़ी जमीन किसी कुटुम्बी को न देकर जन्मभूमि में हाईस्कूल और अस्पताल बनाने में लगादी। हम व्यक्तिगत रूप से खाली हाथ हैं पर योजनाएँ ऐसी चलाते हैं जैसी लखपति करोड़पतियों के लिए भी सम्भव नहीं हैं। यह सब हमारे मार्गदर्शक के उस सूत्र के कारण सम्भव हो पाया है, जिसमें उन्होंने कहा था—"जमा मत करो, बिखेर दो। बोओ और काटो।" सत्प्रवृत्तियों का उद्यान जो प्रज्ञा परिवार के रूप में लहलहाता दृश्यमान होता है, उसकी पृष्ठभूमि इसी सूत्र संकेत के आधार पर बनी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथा और अन्तिम निर्देशन

चौथी बार गत वर्ष पुनः हमे एक सप्ताह के लिए हिमालय बुलाया गया। संदेश पूर्ववत् सन्देश रूप में आया। आज्ञा के परिपालन में विलम्ब कहाँ होना था। हमारा शरीर सौंपे हुए कार्यक्रमों में खटता रहा है, किन्तु मन सदैव दुर्गम हिमालय अपने गुरु के पास रहा है। कहने में संकोच होता है पर प्रतीत ऐसा भी होता है कि गुरुदेव का शरीर हिमालय रहता है और मन हमारे इर्द-गिर्द मँडराता रहता है। उनकी वाणी अन्तराल में प्रेरणा बनकर गूँजती रहती है। उसी चाबी के कसे जाने पर हृदय और मस्तिष्क का पेण्डुलम धड़कता और उछलता रहता है।

यात्रा पहली तीनों बार की ही तरह कठिन रही। इस बार साधक की परिपक्वता के कारण सूक्ष्म शरीर को आने का निर्देश मिला था। उसी काया को एक साथ तीन परीक्षाओं को पुनः देना था। साधना क्षेत्र में एक बार उत्तीर्ण हो जाने पर पिसे को पीसना भर रह जाता है। मार्ग देखा-भाला था। दिनचर्या बनी बनाई थी। गोमुख से साथ मिल जाना और तपोवन तक सहज जा पहुँचना यही क्रम पुनः चला। उनका सूक्ष्म शरीर कहाँ रहता है, क्या करता है यह हमने कभी नहीं पूछा। हमें तो भेंट का स्थान मालूम है—मखमली गलीचा। ब्रह्म कमल की पहचान हो गई थी। उसी को ढूँढ़ लेते और उसी को प्रथम मिलन पर गुरुदेव के चरणों पर चढ़ा देते। अभिवन्दन—आशीर्वाद के शिष्टाचार में तनिक भी देर न लगती और काम की बात तुरन्त आरम्भ हो जाती। यही प्रकरण इस बार भी दुहराया गया। रास्ते में मन सोचता आया कि जब भी जितनी बार भी बुलाया गया है, तभी पुराना स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा है। इस बार भी सम्भवतः वैसा ही होगा। शान्ति-कुञ्ज छोड़ने के उपरान्त सम्भवतः अब इसी ऋषि प्रदेश में आने का आदेश मिलेगा और इस बार कोई काम पिछले अन्य कामों की तुलना में बड़े कदम के रूप में उठाना होगा। यह रास्ते के संकल्प विकल्प थे। अब तो प्रत्यक्ष भेंट हो रही थी।

अब तक के कार्यों पर उनने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। हमने इतना ही कहा—"काम आप करते हैं और श्रेय मुझ जैसे वानर को देते हैं। समग्र समर्पण कर देने के उपरान्त यह शरीर और मन दीखने भर के लिए ही अलग है। वस्तुतः यह सब कुछ आपकी ही सम्पदा है। जब जैसा चाहते हैं, तब वैसा तोड़ मरोड़कर आप ही उपयोग कर लेते हैं।"

गुरुदेव ने कहा—"अब तक जो बताया और कराया गया है, वह नितान्त स्थानीय था और सामान्य भी। ऐसा जिसे वरिष्ठ मानव कर सकते हैं, भूतकाल में करते भी रहे हैं। तुम अगला काम सम्भालोगे तो वह सारे कार्य दूसरे तुम्हारे अनुवर्ती लोग आसानी से करते रहेंगे। जो प्रथम कदम बढ़ाता है, उसे अग्रणी होने का श्रेय मिलता है। पीछे तो ग्रह नक्षत्र भी—सौर मण्डल के सदस्य भी अपनी-अपनी कक्षा पर बिना किसी कठिनाई के ढर्रा चला ही रहे हैं।

अगला काम इससे भी बड़ा है। स्थूल वायु मण्डल और सूक्ष्म वातावरण, इन दिनों इतने विषाक्त हो गये हैं, जिससे मानवी गरिमा ही नहीं, सत्ता भी संकट में पड़ गयी है। भविष्य बहुत भयानक दीखता है। इससे परोक्षतः लड़ने के लिए हमें-तुम्हें वह सब कुछ करना पड़ेगा जिसे अद्भुत एवं अलौकिक कहा जा सके।

धरती का घेरा—वायु-जल और जमीन तीनों ही विषाक्त हो रहे हैं। वैज्ञानिक कुशलता के साथ अर्थ लोलुपता के मिल जाने से चल पड़े यन्त्रीकरण ने सर्वत्र विष बिखेर दिया है और ऐसी स्थिति पैदा करदी है. जिसमें दुर्बलता, रुग्णता और अकाल मृत्यु का जोखिम हर किसी के शिर पर मँडराने लगा है। अणु आयुधों के अनाड़ियों के हाथों प्रयोगों का खतरा इतना बड़ा है कि उसके तनिक से व्यतिक्रम पर सब कुछ भस्मसात हो सकता है। प्रजा की उत्पत्ति बरसाती घास-पात की तरह हो रही है। यह खायेंगे क्या ? रहेंगे कहाँ ?, इन सब विपत्तियों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभीषिकाओं से विषाक्त वायुमण्डल धरती को नरक बना देगा।

जिस हवा में लोग साँस ले रहे हैं वह ऐसी है, जिसमें जो भी साँस लेता है, वह अचिन्त्य चिन्तन अपनाता और दुष्कर्म करता है। दुर्मतिजन्य दुर्गति हाथों-हाथ सामने आती जाती है। यह अदृश्य लोक में भर गए विकृत वातावरण का प्रतिफल है। इस स्थिति में जो भी रहेगा, नर पशु और नर पिशाच जैसे क्रिया-कृत्य करेगा। भगवान की इस सर्वोत्तम कृति धरती और मानवी सत्ता को इस प्रकार नरक बनते देखने में व्यथा होती है। महाविनाश की सम्भावना से कष्ट होता है। इस स्थिति को बदलने; इस समस्या का समाधान करने के लिए भारी गोवर्धन पर्वत उठाना पड़ेगा, लम्बा समुद्र छलांगना पड़ेगा। इसके लिए वामन जैसे बड़े कदम उठाने के लिए तुम्हें बुलाया गया है।

इसके लिए तुम्हें एक से पाँच बनकर पाँच मोर्चों पर लड़ना पड़ेगा। कुन्ती के समान अपनी एकाकी सत्ता को निचोड़कर पाँच देवपुत्रों को जन्म देना होगा जिन्हें भिन्न-भिन्न मोर्चों पर भिन्न भूमिका प्रस्तुत करनी पड़ेगी।

मैंने बात के बीच में विक्षेप करते हुए कहा—"यह तो आपने परिस्थितियों की बात कही। इतना सोचना और समस्या का समाधान खोजना आप बड़ों का काम है। मुझ बालक को तो काम बता दीजिए और सदा की तरह कठपुतली के तारों को अपनी उँगलियों में बाँधकर नाच नचाते रहिए। परामर्श मत कीजिए। समर्पित को तो केवल आदेश चाहिए। पहले भी आपने जब कोई मूक आदेश स्थूलतः या सूक्ष्म सन्देश के रूप में भेजा है, उसमें हमने अपनी ओर से कोई ननुनच नहीं की। चौबीस गायत्री के महापुरुश्चरणों के सम्पादन से लेकर स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने तक, लेखनी पकड़ने से लेकर विराट् यज्ञायोजन तक एवं विशाल संगठन खड़ा करने से लेकर करोड़ों की स्थापनाएँ करने तक आपकी आज्ञा, संरक्षण एवं मार्गदर्शन ने ही सारी भूमिका निभाई है। दृश्य रूप में हम भले ही सबके समक्ष रहे हों, हमारा अन्तःकरण जानता है कि यह सब कराने वाली सत्ता कौन है? फिर इसमें हमारा सुझाव कैसा, सलाह कैसी? परिस्थितियों के सन्दर्भ में आपका जो भी निर्देश होगा, वह करेंगे। इस शरीर का एक-एक कण, रक्त की एक-एक बूंद, चिन्तन-अन्तःकरण आपको—विश्व मानवता को समर्पित है।" उनने प्रसन्न वदन स्वीकारोक्ति प्रकट की एवं परावाणी से निर्देश व्यक्त करने का उन्होंने संकेत किया।

बात जो विवेचना स्तर की चल रही थी सो समाप्त हो गई और सार संकेत के रूप में जो करना था सो कहा जाने लगा।

"तुम्हें एक से पाँच बनना है। पाँच रामदूतों की तरह, पाँच पाण्डवों की तरह काम पाँच तरह से करने हैं; इसलिए इसी शरीर को पाँच बनाना है। एक पेड़ पर पाँच पक्षी रह सकते हैं। तुम अपने को पाँच बनालो। इसे "सूक्ष्मीकरण" कहते हैं। पाँच शरीर सूक्ष्म रहेंगे क्योंकि व्यापक क्षेत्र को सम्भालना सूक्ष्म सत्ता से ही बन पड़ता है। जब तक वे पाँचों परिपक्व होकर अपने स्वतन्त्र काम न सम्भाल सकें, तब तक इसी शरीर से उनका परिपोषण करते रहो। इसमें एक वर्ष भी लग सकता है एवं अधिक समय भी। जब वे समर्थ हो जायँ तो उन्हें अपना काम करने हेतु मुक्त कर देना। समय आने पर तुम्हारे दृश्यमान स्थूल शरीर की छुट्टी हो जाएगी।"

यह दिशा निर्देशन हो गया। करना क्या है? कैसे करना है?, इसका प्रसंग उन्होंने अपनी वाणी में समझा दिया। इसका विवरण बताने का आदेश नहीं है। जो कहा गया है, उसे कर रहे हैं। संक्षेप में इसे इतना ही समझना पर्याप्त होगा। (१) वायुमण्डल का संशोधन। (२) वातावरण का परिष्कार। (३) नवयुग का निर्माण। (४) महाविनाश का निरस्तीकरण समापन। (५) देव मानवों का उत्पादन-अभिवर्धन।

"यह पाँचों काम किस प्रकार करने होंगे, इसके लिए अपनी सत्ता को पाँच भागों में कैसे विभाजित करना होगा, भागीरथ और दधीचि की भूमिका किस प्रकार निभानी होगी, इसके लिए लौकिक क्रिया-कलापों से विराम लेना होगा। बिखराव को समेटना पड़ेगा। यही है—सूक्ष्मीकरण।"

"इसके लिए जो करना होगा, समय-समय पर बताते रहेंगे। योजना को असफल बनाने के लिए, इस शरीर को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त करने के लिए जो दानवी प्रहार होंगे उससे बचाते चलेंगे। पूर्व में हुए आसुरी आक्रमण की पुनरावृत्ति कभी भी किसी भी रूप में सज्जनों-परिजनों पर प्रहार आदि के रूप में हो सकती है। पहले की तरह सबमें हमारा संरक्षण साथ रहेगा। अब तक जो काम तुम्हारे जिम्मे दिया है, उन्हें अपने समर्थ सुयोग्य परिजनों के सुपुर्द करते चलना, ताकि मिशन के किसी काम की चिन्ता या जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर न रहे। जिस महा परिवर्त्तन का ढाँचा हमारे मन में है उसे पूरा तो नहीं बताते पर उसे समयानुसार प्रकट करते रहेंगे। ऐसे विषम समय में उस रण-नीति को समय से पूर्व प्रकट करने से उद्देश्य की हानि होगी।"

इस बार हमें अधिक समय रोका नहीं गया। बैटरी चार्ज करके बहुत दिनों तक काम चलाने वाली बात नहीं बनी। उन्होंने कहा कि "हमारी ऊर्जा अब तुम्हारे पीछे अदृश्य रूप में चलती रहेगी। अब हमें एवं जिनकी आवश्यकता होगी, उन ऋषियों को तुम्हारे साथ सदैव रहना और हाथ बँटाते रहना पड़ेगा। तुम्हें किसी अभाव का, आत्मिक ऊर्जा की कमी का कभी अनुभव नहीं होगा। वस्तुतः यह ५ गुनी और बढ़ जाएगी।"

हमें विदाई दी गई और शान्ति-कुन्ज लौट आए। अपना कार्यक्रम घोषित करने की तो आज्ञा नहीं मिली है पर पंचकोषों को विकसित करके पाँच वीरभद्र कैसे परिपक्व किए जा सकते हैं और उनसे किस प्रकार क्या काम लिया जा सकता है, उसके विज्ञान को हम प्रकट कर रहे हैं और करते रहेंगे। इन दिनों हमारा एकान्त सेवन चल रहा है, ताकि बिखराव को रोक कर एक केन्द्र पर पूरी शक्ति का संचय किया जा सके।

इन दिनों हम कभी शान्ति-कुन्ज, कभी मोर्चों पर, कभी हिमालय रहेंगे। स्थान, प्रवास, समय सम्बन्धी घोषणा अप्रासंगिक है और रणनीति के सिद्धान्तों के प्रतिकूल भी, अतः हमने उसे पर्दे के पीछे ही रहने दिया है।

अभी भी मोहवश अनेकों परिजन हमारे स्थूल शरीर की बाबत पूछ बैठते हैं। इस शरीर ने गत एक वर्ष में अपने भिन्न-भिन्न रूपों में क्या किया, यह हम अभी बताने की स्थिति में नहीं हैं। क्रमशः जैसे समय आएगा, सभी वास्तविकता को जानेंगे। स्थूल शरीर से क्या बनता-बिगड़ता है। वह तो यहाँ सामान्यावस्था में रहकर भी सूक्ष्म रूप में कहीं और अवस्थित हो सकता है। मोटी दृष्टि यह भेद नहीं कर सकती और है भी यह बात सही कि यह विज्ञान सम्मत एवं शक्य नहीं है। यही कारण है कि मौन एकाकी साधना के नाते हमने जान-बूझकर, हृदय पर पत्थर रखकर परिजनों व अपने बीच एक रहस्य भरा पर्दा डाल लिया है। हमारा लौकिक—दृश्य रूप जिन्होंने देखा है, वे भली-भाँति समझते हैं कि एकाकी, अपने परिजनों से स्थूल दृष्टि से दूर रहकर हमें कैसा लगता होगा? हम भी मनुष्य हैं, हमारी भी भाव सम्वेदनाएँ हैं, दिल हमारा भी धड़कता है। परन्तु मानव होने से बड़ा धर्म वह है जो हमें अपने गुरुदेव ने सौंपा है।

इतना स्पष्ट करने व पूर्व में बिताए एक वर्ष का प्रारूप बताकर हम परिजनों से यह कह देना चाहते हैं कि किसी भी स्थिति में हम किसी से भी दूर नहीं हैं। सूक्ष्म होकर तो हम उनके और भी निकट हैं। अभी तो यह देह है। गुरुदेव का यह आश्वासन भी कि हमें अपना यह स्वरूप पाँच वीरभद्रों सहित बनाए रखना है। ऐसे में उन्हें अपने अन्तः में, साधना काल की अवधि में, दिन-रात सोते-जागते, पर हितार्थाय कार्यरत रहते, अपनी जिम्मेदारी निबाहते हुए सतत् अपने समीप हमारी—आदर्शों की समुच्चय परम सत्ता के प्रतिनिधि की उपस्थिति एवं संरक्षण का अनुभव करना चाहिए। दर्शन न मिले इसलिए निराश नहीं होना चाहिए। ●

चन्द्रमा ने डाँटकर कहा—"सिन्धुराज ! तुम्हें सारा जल अपने उदर में समेटते लाज नहीं आई। सारी नदियों का जल पीकर भी तुम्हें सन्तोष नहीं।"

समुद्र ने गम्भीर होकर कहा—"ऐसा न कहें देव ! यदि अनावश्यकों से लेकर संसार में जल-वृष्टि का उत्तरदायित्व पूरा न करें तो सृष्टि कैसे चले। शशि को अपने कथन पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने सिर झुका लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरभद्र यह करने में जुटेंगे

हमारी जिज्ञासाओं एवं उत्सुकताओं का समाधान गुरुदेव प्रायः हमारे अन्तराल में बैठकर ही किया करते हैं। उनकी आत्मा हमें अपने समीप ही दृष्टिगोचर होती रहती है। आर्ष ग्रन्थों के अनुवाद से लेकर प्रज्ञा पुराण की संरचना तक जिस प्रकार लेखन प्रयोजन में उनका मार्ग दर्शन अध्यापक और विद्यार्थी जैसा रहा है, हमारी वाणी भी उन्हीं की सिखावन को दुहराती रही है। घोड़ा जिस प्रकार सवार के संकेतों पर दिशा और चाल बदलता रहता है, वही प्रक्रिया हमारे साथ भी कार्यान्वित होती रही है।

बैटरी चार्ज करने के लिए जब हिमालय बुलाते हैं, तब भी वे कुछ विशेष कहते नहीं। सेनीटोरियम में जिस प्रकार किसी दुर्बल का स्वास्थ्य सुधर जाता है, वही उपलब्धियाँ हमें हिमालय जाने पर हस्तगत होती हैं। वार्तालाप का प्रयोग अनेकों प्रसंगों में होता रहता है।

इस बार सूक्ष्मीकरण की प्रक्रिया और साधना विधि तो ठीक तरह समझ में आ गई और जिस प्रकार कुन्ती ने अपने शरीर में से देव सन्तानें जन्मी थीं ठीक उसी प्रकार अपनी काया में विद्यमान पाँच कोशों, अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों को पाँच वीर भद्रों के रूप में विकसित करना पड़ेगा, इसकी साधना विधि भी समझ में आ गई। जब तक वे पाँचों पूर्ण समर्थ न हो जाय, तब तक वर्तमान स्थूल शरीर को उनके घोंसले की तरह बनाये रहने का भी आदेश है और अपनी दृश्य स्थूल जिम्मेदारियाँ दूसरों को हस्तान्तरित करने की दृष्टि से अभी शान्ति-कुंज ही रहने का निर्देश है।

यह सब स्पष्ट हो गया। साधना विधान भी उनका निर्देश मिलते ही आरम्भ कर दिया।

अब प्रश्न यह रहा कि पाँच वीरभद्रों को काम क्या सौंपना पड़ेगा और किस प्रकार वे क्या करेंगे। उसका उत्तर भी अधिक जिज्ञासा रहने के कारण अब मिल गया। इससे निश्चिन्तता भी हुई और प्रसन्नता भी।

इस संसार में आज भी ऐसी कितनी ही प्रतिभाए हैं जो दिशा पलट जाने पर अभी जो कर रही हैं, उसकी तुलना में अत्यन्त महत्व पूर्ण कार्य करने लगेंगी। उलटे को उलटकर सीधा करने के लिए जिस प्रचण्ड शक्ति की आवश्यकता होती है। उसी को हमारे अंग, अंश वीरभद्र करने लगेंगे। प्रतिभाओं की सोचने की यदि दिशा बदली जा सके तो उनका परिवर्त्तन चमत्कारी जैसा हो सकता है।

नारद ने पार्वती, ध्रुव, प्रह्लाद, बाल्मीकी, सावित्री आदि की जीवन दिशा बदली, तो वे जिन परिस्थितियों में रह रहे थे, उसे लात मार कर दूसरी दिशा में चल पड़े और संसार के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण बन गये। भगवान बुद्ध ने आनन्द, कुमार जीव, अंगुलिमाल, अम्बपाली, अशोक, हर्षवर्धन संघ मित्रा आदि का मन बदल दिया तो वे जो कुछ कर रहे थे, उसके ठीक उलटा करने लगे और विश्व विख्यात हो गये। विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को एक मामूली राजा नहीं रहने दिया वरन् इतना वरेण्य बना दिया कि उनकी लीला अभिनय देखने मात्र से गांधी जी विश्व बंद्य हो गए। महाकृपण भामाशाह को सन्त विठोबा ने अन्तःप्रेरणा दी और उनका सारा धन महाराणा प्रताप के लिए उगलवा लिया। आद्य-शंकराचार्य की प्रेरणा से मान्धाता ने चारों धामों के मठ बना दिये। अहिल्याबाई को एक सन्त ने प्रेरणा देकर कितने ही मन्दिरों घाटों का जीर्णोद्धार करा लिया और दुर्गम स्थानों पर नये देवालय बनाने के संकल्प को पूर्ण कर दिखाने के लिए सहमत कर लिया। समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को वह काम करने की अन्तःप्रेरणा दी जिसे वे अपनी इच्छा से कदाचित ही कर पाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकृष्ण परमहंस थे, जिन्होंने नरेन्द्र के पीछे पड़कर उसे विवेकानन्द बना दिया। राजा गोपीचन्द का मन वैराग्य में लगा देने का श्रेय सन्त भर्तृहरि को था।

ऐसे उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है, जिसमें कितनी ही प्रतिभाओं को किन्हीं मनस्वी आत्म वेत्ताओं ने बदलकर कुछ से कुछ बना दिया। उनकी अनुकम्पा न हुई होती तो वे जीवन भर अपने उसी पुराने ढर्रे पर लुढ़कते रहते, जिस पर कि उनका परिवार चल रहा था।

हमारी अपनी बात भी ठीक ऐसी ही है। यदि गुरुदेव ने उलट न दिया होता तो हम अपने पारिवारिक जनों की तरह पौरोहित्य का धन्धा कर रहे होते या किसी और काम में लगे रहते। उस स्थान पर पहुँच ही न पाते, जिस पर कि हम अब पहुँच गये हैं।

इन दिनों युग परिवर्त्तन के लिए कई प्रकार की प्रतिभाएँ चाहिए। विद्वानों की आवश्यकता है, जो लोगों को अपने तर्क प्रमाणों से सोचने की नई पद्धति प्रदान कर सके। कलाकारों की आवश्यकता है, जो चैतन्य महाप्रभु, मीरा, सूर, कबीर की भावनाओं को इस प्रकार लहरा सकें, जैसे सपेरा साँप को लहराता रहता है। धनवानों की जरूरत है, जो अपने पैसे को विलास में खर्च करने की अपेक्षा सम्राट अशोक की तरह अपना सर्वस्व समय की आवश्यकता पूरी करने के लिए लुटा सकें। राजनीतिज्ञों की जरूरत है जो गांधी, रूसो और कार्लमार्क्स, लेनिन की तरह अपने सम्पर्क के प्रजाजनों को ऐसे मार्ग पर चला सकें, जिसकी पहले कभी भी आशा नहीं की गई थी।

भावनाशीलों का क्या कहना? सन्त सज्जनों ने न जाने कितनों को अपने सम्पर्क से लोहे जैसे लोगों को पारस की भूमिका निभाते हुए कुछ से कुछ बना दिया।

हमारे वीरभद्र अब यही करेंगे। हमने भी यही किया है। लाखों लोगों की विचारणा और क्रिया पद्धति में आमूल-चूल परिवर्त्तन किया है और उन्हें गाँधी के सत्याग्रहियों की तरह, विनोबा के भूदानियों की तरह, बुद्ध के परिव्राजकों की तरह अपना सर्वस्व लुटा देने के लिए तैयार कर दिया। प्रज्ञापुत्रों की इतनी बड़ी सेना हनुमान के अनुयायी वानरों की भूमिका निभाती है। इस छोटे से जीवन में अपनी प्रत्यक्ष क्रियाओं के द्वारा जहाँ भी रहे, वहीं चमत्कार खड़े कर दिये तो कोई कारण नहीं कि हमारी ही आत्मा के टुकड़े जिसके पीछे लगे, उसे भूत-पलीत की तरह तोड़ मरोड़ कर न रख दें।

अगले दिनों अनेकों दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन की आवश्यक पड़ेगी। उसके लिए ऐसे गाण्डीव धारियों की, जो अर्जुन की तरह कौरवों की अक्षौहिणी सेनाओं को धराशायी कर दे आवश्यकता पड़ेगी। ऐसे हनुमानों की जरूरत होगी जो एक लाख पूत—सवा लाख नाती वाली लंका को पूँछ से जलाकर खाक कर दे। ऐसे परिवर्त्तन अन्तराल बदलने भर से हो सकते हैं। अमेरिका के अब्राहा-लिंकन और जार्ज वाशिंगटन बहुत गई-गुजरी हैसियत के

> अच्छी योजना बनना, जो करना है उसे पर अच्छी तरह विचार करना, अभीष्ट के अनुरूप साधना जुटाना जितना आवश्यक है, उतना ही यह भी है कि जो किया जाना है, उसे ऊँचे मन और पूरे परिश्रम के साथ सम्पन्न किया जाय।

परिवारों में जन्मे थे, पर वे अपने जीवन प्रवाह को पलट कर अमेरिका के राष्ट्रपति बन गये।

प्रतिभा हीनों की बात जाने दीजिए, वे तो अपनी क्षमता और बुद्धिमत्ता को चोरी, डकैती, ठगी जैसे नीच कर्मों में भी लगा सकते हैं, पर जिनमें भावना भर हो वे अपने साधारण पराक्रम से समय को उलटकर कहीं से कहीं ले जा सकते हैं। स्वामी दयानन्द, श्रद्धानन्द, रामतीर्थ जैसों के कितने ही उदाहरण सामने हैं, जिनकी दिशाधारा बदली तो वे असंख्यों को बदलने में समर्थ हो गये।

इन दिनों प्रतिभाएँ विलासिता में, संग्रह में, अहंकार की पूर्ति में निरत हैं। इसी निमित्त वे अपनी क्षमता और सम्पन्नता को विसर्जित करती रहती हैं। यदि इनमें से थोड़ी-सी भी अपना ढर्रा बदल दे तो गीता प्रेस वाले जय दयाल गोयन्दका की तरह ऐसे साधन खड़े कर सकती हैं जिन्हें अद्भुत और अनुपम कहा जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन प्रतिभा किस प्रकार बदली जानी है और उससे क्या काम लिया जाना है, यही निर्धारण उच्च भूमिका से होता रहेगा। अभी जो लोग विश्व युद्ध छेड़ने और संसार को तहस-नहस कर देने की बात सोचते हैं, उनके दिमाग बदलेंगे तो विनाश प्रयोजनों में लगने वाली बुद्धि, शक्ति और सम्पदा को विकास प्रयोजनों की दिशा में मोड़ देंगे। इतने भर से परिस्थितियाँ बदल कर कहीं से कहीं चली जायेंगी। प्रवृत्तियाँ एवं दिशाएँ बदल जाने से मनुष्य के कर्तृत्व कुछ से कुछ हो जाते हैं और जो श्रेय मार्ग पर कदम बढ़ाते हैं उनके पीछे भगवान की शक्ति सहायता के लिए निश्चित रूप से विद्यमान रहती है। बाबा साहब आमटे की तरह वे अपंगों का विश्व विद्यालय कुष्ठ औषधालय बना सकते हैं। हीरालाल शास्त्री की तरह वनस्थली बालिका विद्यालय खड़े कर सकती है। लक्ष्मीबाई की तरह कन्या गुरुकुल खड़े कर सकती है।

मानवी बुद्धि की भ्रष्टता ने उसकी गतिविधियों को भ्रष्ट, पापी, अपराधी स्तर की बना दिया है। जो कमाते हैं, वे हाथोंहाथ अवांछनीय कार्यों में नष्ट हो जाता है। सिर पर बदनामी और पाप का टोकरा ही फूटता है। इस समुदाय के विचारों को कोई पलट सके, रीति-नीति और दिशाधारा में बदल सकें, तो यही लोग इतने महान बन सकते हैं, ऐसे महान कार्य कर सकते हैं कि उनका अनुकरण करते हुए लाखों धन्य हो सकें और जमाना बदलता हुआ देख सकें।

इन दिनों हमारी जो सूक्ष्मीकरण साधना चल रही है, उसके माध्यम से जो अदृश्य महाबली उत्पन्न किये जा रहे हैं, वे चुपके-चुपके असंख्य अन्तःकरणों में घुसेंगे, उनकी अनीति को छुड़ा कर मानेंगे और ऐसे मणि-माणिक्य छोड़ कर आवेंगे जिससे वे स्वयं धन्य बना सकें और "समय परिवर्तन" जो अभी कठिन दीखता है, कल सरल बना सकें।

हजरत मूसा सिनाई पर्वत पर खड़े थे तो उनने समीप वाली झाड़ी पर एक प्रकाश पुंज घिरा देखा। वे सकपका गये और बोले—तुम कौन हो। बोलो तो। प्रकाश में से आवाज आई—मैं वही हूँ—जो मैं हूँ।

रहस्य को न समझ पाने के कारण मूसा बे तरह घबराये—सन्न रह गये। गला सूख गया।

अजूबा एक और भी हुआ कि देखते-देखते एक भयंकर सर्प, आग जैसी फुसकारें मारता हुआ सामने आ खड़ा हुआ। अब डर और भी बढ़ गया। नसों का खून जमने लगा।

इतने में किसी ने कड़क कर कहा—"मूसा डरो मत, हिम्मत करो, आगे बढ़ो और उस सर्प को कसकर पकड़ लो।"

उनने हिम्मत दिखाई और सचमुच ही साँप को कसकर पकड़ लिया। पकड़ने में देर नहीं हुई कि साँप लकड़ी का डन्डा भर बनकर रह गया।

डन्डा बने साँप की जाँच परख करने के लिए हजरत ने उससे एक चट्टान खटखटाई। इतने भर से एक निर्मल झरना उसमें से फूट पड़ा और ठण्डे पानी की धार बहने लगी।

हिम्मत बढ़ी तो उनने डन्डे को लाल समुद्र पर पटका। देखते-देखते समुद्र दो हिस्से में बट गया आर बीच में से सूखी जमीन निकल आई। जिस पर आबादी बसी और खुशहाली फूटी।

"टेन कमाण्डमेण्ट्स" की इस कथा में कठिनाई के सर्प को पकड़ने के लिए हिम्मत दिखाने का निर्देशन है। जो कर सकते हैं वे ही झरने बहाने और आबादी के लिए जमीन निकालने जैसी सफलताएँ प्राप्त करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह भयावह घटाटोप तिरोहित होगा

अगला समय संकटों से भरा-परा है, इस बात को विभिन्न मूर्धन्यों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार विभिन्न प्रकार से जोरदार शब्दों में कहा है।

ईसाई धर्म ग्रन्थ बाइबिल में जिस "सैविन टाइम्स" में प्रलय काल जैसी विपत्ति आने का उल्लेख किया है, उसका ठीक समय यही है। इस्लाम धर्मों में चौदहवीं सदी के महान संकट का उल्लेख है। भविष्य पुराण में इन्हीं दिनों महत्ती विपत्ति टूट पड़ने का संकेत है। सिखों के गुरु ग्रन्थ साहब में भी ऐसी ही अनेकों भविष्यवाणियाँ हैं। कवि सूरदास ने इन्हीं दिनों विपत्ति आने का इशारा किया है मिश्र के पिरामिडों में भी ऐसे ही शिलालेख पाये गये हैं।

अनेकों भारतीय भविष्य वक्ताओं ने इन दिनों भयंकर उथल-पुथल के कारण अध्यात्म आधार पर और दृश्य गणित ज्योतिष के सहारे ऐसी ही सम्भावनाएँ व्यक्त की हैं।

पाश्चात्य देशों में जिन भविष्य वक्ताओं की धाक है और जिनकी भविष्य वाणियाँ ९९ प्रतिशत सही निकलती रही हैं, उनमें जीन डिक्सन, प्रो० हरार, एण्डरसन, जॉन-बावेरी, कीरो, आर्थर क्लार्क, नोस्ट्राडेमस, मदर शिप्टन आनन्दाचार्य आदि ने इस समय के सम्बन्ध में जो सम्भावनाएँ व्यक्त की हैं, वे भयावह हैं। कोरिया में पिछले दिनों समस्त संसार के दैवज्ञों का एक सम्मेलन हुआ था, उसमें भी डरावनी सम्भावनाओं की ही आगाही व्यक्त की गयी थी। टोरोन्टो कनाडा में—संसार भर के भविष्य विज्ञान विशेषज्ञों (फ्यूचरॉण्टालाजीस्टो) का एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें वर्त्तमान परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करते हुए कहा था कि बुरे दिन अति समीप आ गये। ग्रह-नक्षत्रों से पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव को समझने वालों ने इन दिनों सूर्य पर बढ़ते धब्बों और लगातार पड़ने वाले सूर्य ग्रहणों को धरती निवासियों के लिए हानिकारक बताया है। इन दिनों सन् ८५ में उदय होने वाला "हैली" धूम्रकेतु की विषैली गैसों का परिणाम पृथ्वी वासियों के लिए हानिकारक बताया गया है।

सामान्य बुद्धि के लोग भी जानते हैं कि अन्धा-धुन्ध बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए अगले दिनों अन्न जल तो क्या, सड़कों पर चलने को रास्ता तक न मिलेगा। औद्योगीकरण की भरमार से मशीनें हवा और पानी भी कम पड़ रहा है और विषाक्त हो चला है। खनिज तेल और धातुएँ, कोयला, पचास वर्ष तक के लिए नहीं है। अणु परीक्षणों से उत्पन्न विकिरण से अगली पीढ़ी और वर्त्तमान जन समुदाय को कैन्सर जैसे भयानक रोगों की भरमार होने का भय है। कहीं अणु युद्ध हो गया तो इससे न केवल मनुष्य वरन् अन्य प्राणियों और वनस्पतियों का भी सफाया हो जायगा। असन्तुलित हुए तापमान से ध्रुवों की बर्फ पिघल पड़ने, समुद्र में तूफान आने और हिमयुग के लौट पड़ने की सम्भावना बताई जा रही है। और भी अनेक प्रकार के संकटों के अनेकानेक कारण विद्यमान हैं। इस सन्दर्भ का साहित्य इकट्ठा करना हो तो उनसे ऐसी सम्भावनाएँ सुनिश्चित दिखाई पड़ती हैं, जिनके कारण इन वर्षों में भयानक उथल-पुथल हो। सन् २००० में युग परिवर्त्तन की जो घोषणा है, ऐसे समय में भी विकाश से पूर्व विनाश की—ढलाई से पूर्व गलाई की सम्भावना का अनुमान लगाया जाता है। किसी भी पहलू से विचार किया जाय; प्रत्यक्षदर्शी और भावनाशील मनीषी—भविष्य वक्ता इन दिनों विश्व संकट को अधिकाधिक गहरा होता देखते हैं।

पत्रकारों और राजनैतिज्ञों के क्षेत्र में इस बार एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यधिक चिन्ता यह संव्याप्त है कि इन दिनों जैसा संकट मनुष्य जाति के सामने है, वैसा मानवी उत्पत्ति के समय में कभी भी नहीं आया। शान्ति परिषद आदि अनेक संस्थाएं इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि महाविनाश का जो संकट शिर पर छाया हुआ है, वह किसी प्रकार टले। छुटपुट लड़ाइयाँ तो विभिन्न क्षेत्रों में होती ही रहती हैं। शीत युद्ध किसी भी दिन महाविनाश के रूप में विकसित हो सकता है, यह अनुमान कोई भी लगा सकता है।

भूतकाल में भी देवासुर संग्राम होते रहे हैं, पर जन-जीवन के सर्वनाश की प्रत्यक्ष सम्भावना का, सर्वसम्मत ऐसा अवसर इससे पूर्व कभी भी नहीं आया।

इन संकटों को ऋषि-कल्प सूक्ष्म धारी आत्माएं भली प्रकार देख और समझ रही हैं। ऐसे अवसर में वे मौन नहीं बैठी रह सकतीं। ऋषियों के तप स्वर्ग, मुक्ति एवं सिद्धि प्राप्त करने के लिए नहीं होते। यह उपलब्धियाँ तो आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने वाले स्थूल शरीरधारी भी प्राप्त कर लेते हैं। यह महामानवों को प्राप्त होने वाली विभूतियाँ हैं। ऋषियों को भगवान का कार्य सम्भालना पड़ता है और वे उसी प्रयास को लक्ष्य मानकर संलग्न रहते हैं।

हमारे ऊपर जिन ऋषि का—दैवी सत्ता का अनुग्रह है, उनने सभी कार्य लोक मंगल के निमित्त कराये हैं। आरम्भिक २४ महापुरश्चरण भी इसी निमित्त कराये हैं कि आत्मिक समर्थता इस स्तर की प्राप्त हो सके, जिसके सहारे लोक-कल्याण के अति महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करने में कठिनाई न पड़े।

विश्व के ऊपर छाये हुए महान संकटों को टालने के लिए उन्हें चिन्ता है। चिन्ता ही नहीं प्रयास भी किये हैं। इन्हीं प्रयासों में एक हमारे व्यक्तित्व को पवित्रता और प्रखरता से भर देना भी है। आध्यात्मिक सामर्थ्य इसी आधार पर विकसित होती हैं।

उपासना का वर्त्तमान चरण सूक्ष्मीकरण के रूप में चल रहा है। इस प्रक्रिया के पीछे किसी व्यक्ति विशेष की ख्याति, सम्पदा, वरिष्ठता या विभूति नहीं है। एकमात्र प्रयोजन यही है कि मानवी सत्ता और गरिमा के लड़खड़ाते हुए पैर स्थिर हो सकें। पाँच वीरभद्रों के कन्धों पर वे अपना उद्देश्य लादकर उसे सम्पन्न भी कर सकते हैं। हनुमान के कन्धों पर राम और लक्ष्मण दोनों बैठे फिरते थे। यह श्रेष्ठता प्रदान करना भर है। इसे माध्यम का चयन कह सकते हैं। एक गाण्डीव धनुष के आधार पर किस प्रकार इतना विशालकाय महाभारत लड़ा जा सकता था। इसे सामान्य बुद्धि से असम्भव ही कहा जा सकता है। पर भगवान की जो इच्छा होती है, वह तो किसी न किसी प्रकार पूरी होकर रहती है। महाबली हिरण्याक्ष को शूकर भगवान ने फाड़-चीरकर रख दिया था, उसमें भी भगवान की ही इच्छा थी।

इस बार भी हमारी निज की अनुभूति है कि असुरता द्वारा उत्पन्न हुई—विभीषिकाओं को सफल नहीं होने दिया जायेगा। परिवर्त्तन इस प्रकार होगा कि जो लोग इस महाविनाश में संलग्न हैं, इसकी संरचना कर रहे हैं, वे उलट जायेंगे या उनके उलट देने वाले नए पैदा हो जायेंगे। विश्व-शान्ति में भारत की निश्चित ही कोई बड़ी भूमिका हो सकती है।

> एकान्त सेवन का उद्देश्य है, जन समुदाय के साथ उपयोगी आदान-प्रदान की क्षमता का अर्जन।

समस्त संसार के मूर्धन्यों शक्तिवानों और विचारवानों की आशंका एक ही है कि विनाश होने जा रहा है। हमारा अकेले का कथन यह है कि उलटे को उलटकर सीधा किया जायेगा। हमारे भविष्य कथन को अभी ही बड़ी गम्भीरता पूर्वक समझ लिया जाय। विनाश की घटाओं को प्रचण्ड वायु का तूफानी प्रवाह अगले दिनों उड़ाकर कहीं से कहीं ले जायेगा और अन्धेरा चीरते हुए प्रकाश से भरा वातावरण दृष्टिगोचर होगा। यह ऋषियों के पराक्रम से ही सम्भावित है और इसमें कुछ दृश्यमान एवं कुछ परोक्ष भूमिका हमारी भी हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फरवरी अंक में विस्तार से छप चुका है। जिन्हें अत्यधिक समयाभाव है, वे दस दिन वाले संक्षिप्त सत्रों में आकर काम चलाऊ रूप-रेखा तो समझ ही सकते हैं। विस्तृत प्रशिक्षण बाद में कभी लिया जा सकता है। जिन्हें युग-धर्म के निर्वाह की कुछ उमंगें उठती हों, उन्हें इन अभिनव सत्रों में से किसी में सम्मिलित होने की चेष्टा करनी ही चाहिए।

अनभ्यस्त कार्य सरल होने पर भी कठिन लगते हैं। उन्हें अपनाते समय मन अचकचाता है और अनेक व्यवधान पड़ने की कल्पना करता है, पर जब प्रयोग चल पड़ता है तो सर्कस में काम करने वाले कलाकारों की तरह लोगों को अति कठिन दीखने वाले कार्य भी सरल हो जाते हैं। आत्मोत्कर्ष और लोकमंगल की सम्मिश्रित गतिविधियाँ अपनाने के संबंध में भी यही बात है। जब तक उन्हें प्रयोग में लाने का साहस नहीं जुटता तभी तक वे कठिन लगते हैं। पर जब उस दिशा में कदम उठते हैं और रस आने लगता है तो फिर वे इतने लोकप्रिय लगने लगते हैं कि किये बिना रहा ही नहीं जाता। न बन पड़ने पर ऐसा लगता है, मानो कोई अपराध बन पड़ा।

अखण्ड-ज्योति परिजनों की विशिष्टता देखते हुए उनके कंधों पर नव सृजन के कुछ उत्तरदायित्व सौंपे गये हैं, जिनमें से चार अनिवार्य स्तर के हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। इन चारों में भी यदि किसी को प्राथमिकता देनी हो तो वह नारी-जागरण अभियान है, कारण कि उससे कर्त्ता को सीधा और तत्काल लाभ मिलता है। गृह संचालिकाएँ यदि उत्कृष्ट प्रगतिशीलता अपनाने लगें तो उसका प्रभाव समूचे पारिवारिक वातावरण पर पड़ना निश्चित है। जो औरों से कहा जाता व कराया जाता है, वह अपने घर से ही क्यों न आरम्भ किया जाय? अपने घर की महिलाओं को ही आगे धकेला जा सके तो निश्चित ही इसका प्रभाव सम्पर्क क्षेत्र पर पड़े बिना न रहेगा। देखते-देखते उस आधार पर सत्प्रवृत्ति संवर्धन और दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन का सशक्त वातावरण बनेगा। माँझी अपनी नाव खेता है, स्वयं पार उतरता है और उसमें बिठाकर अनेको ऐसों को पार करता है जो अपने बलबूते नदी पार करने में समर्थ न थे।

परिजन अपने समविचार वालों को ढूँढ कर उनमें से पाँच के साथ संगठन का ताल-मेल बिठाये और उस मण्डली द्वारा निर्धारित कार्यों को पूरा करने की योजना बने। उसे पूरा करने के लिए योजनाबद्ध रूप से कार्यरत रहने का क्रम चले।

यह परीक्षा की बेला है। प्रस्तुत समय को युग चेतना का अरुणोदय काल कह सकते हैं। यह अवसर गँवाया नहीं जाना चाहिए। स्वार्थ और परमार्थ की समन्वित इस विधि व्यवस्था को अपनाना चाहिए जो चार सूत्री योजना के रूप में इन पृष्ठों पर प्रस्तुत है।

> **अथो खल्वाहु काममय एवाअयं पुरुष इति। स यथा कामो भवति तत्क्रतुर्भवति। यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते। यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते।**
>
> **-बृहदारण्यक ३०।४।४।५**
>
> **यह मनुष्य भावना-मय है। जैसी कामना करता है वैसे विचार आने लगते हैं। जैसे विचार उठते हैं वैसा निश्चय करता है। जैसा निश्चय करता है वैसे काम होने लगते हैं। जैसे काम करता है वैसा फल भोगता है।**

जिनको गृह कार्यों से अवकाश मिल सकता हो, वे शाँति-कुंज आकर पूरा समय व्यापक क्षेत्र में युगान्तरीय चेतना जगाने में संलग्न होने का साहस करें। जिनकी वैसी स्थिति नहीं है, वे अपने निजी जीवनचर्या को इस प्रकार बनायें जिसमें इन निर्धारणों को कार्यान्वित करने के लिए अधिकाधिक श्रम, समय, मनोयोग एवं साधनों का समावेश हो सके। ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं. एम.टी.आर.९८
रजि. नं. आर.एन.२१६२ / ५२

केवल वार्षिक ग्राहकों के लिये अखण्ड-ज्योति मासिक
लाइसेन्स संख्या एम.टी.आर.८
डाक व्यय की पहले अदायगी किए बिना
डाक में डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त

मेरे दीपक! जलते रहना।

जब तक करुणा पिघल न जाये, चाव दरस के पलते रहना।
जब तक मिले न प्रभु का मंदिर, दीपक तब तक जलते रहना।।

निकल पड़े तो मंजिल पाना, मानवत्व का स्वाभिमान है।
मन चाहा पा लेने में ही, इस जीवन की रही शान है।।
जब तक मिले न लक्ष्य अनश्वर, राही! पथ पर चलते रहना।
जब तक मिले न प्रभु का मन्दिर---------------------

उस गागर की उमर बड़ी है, पनघट पर निशान जो छोड़े।
जल धारा भी वही श्रेष्ठ है, जो धरती अम्बर को जोड़े।।
जब तक बुझे न प्यास सिंधु की, हिमगिरि तुम नित गलते रहना
जब तक मिले न प्रभु का मन्दिर---------------------

नहीं अंधेरा नियति हमारी, हम चिर ज्योति पुंज के सुत हैं।
हमको सतत प्रकाश चाहिए, मूल्य चुकाने हित प्रस्तुत हैं।।
जब तक मिले न सविता भास्वर, मेरे प्राण पिघलते रहना।
जब तब मिले न प्रभु का मन्दिर, दीपक तब तक जलते रहना।।

माया वर्मा

सम्पादक - भगवती देवी शर्मा प्रकाशक मुद्रक - मृत्युंजय शर्मा, अखण्ड ज्योति संस्थान द्वारा
जन जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

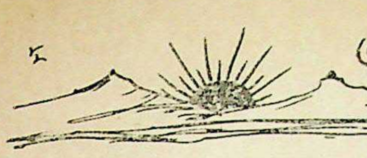

नवयुग का आगमन अति निकट है

जो संकट इन दिनों सामने खड़े दृष्टिगोचर हो रहे हैं, विज्ञजनों ने जिन सम्भावनाओं का अनुमान लगाया है, वे काल्पनिक नहीं हैं। विभीषिकाएँ वास्तविक हैं, इतने पर भी विश्वासियों को यह विश्वास करना चाहिए कि समय चक्र को बदला जायगा और जो संकट सामने खड़े दीखते हैं, उन्हें उलटा जायेगा।

सामान्य स्तर के लोगों की इच्छा शक्ति भी काम करती है। जनमत का भी दबाव पड़ता है। जिन लोगों के हाथ में इन दिनों विश्व की परिस्थितियाँ बिगाड़ने की क्षमता है, उन्हें जागृत लोकमत के सामने झुकना ही पड़ेगा। लोकमत को जागृत करने का अभियान "प्रज्ञा-आन्दोलन" द्वारा चल रहा है। यह क्रमशः बढ़ता और सशक्त होता जायेगा। इसका दबाव हर प्रभावशाली क्षेत्र के समर्थ व्यक्तियों पर पड़ेगा और उनका मन बदलेगा कि अपने कौशल, चातुर्य को विनाश की योजनाएँ बनाने की अपेक्षा विकाश के निमित्त लगाना चाहिए। प्रतिभा एक महान शक्ति है। वह जिधर भी अग्रसर होती है, उधर ही चमत्कार प्रस्तुत करती जाती है।

वर्तमान समस्याएँ एक-दूसरे से गुँथी हुई हैं। एक से दूसरी का घनिष्ठ सम्बन्ध है, चाहे वह पर्यावरण हो अथवा युद्ध सामग्री का जमाव, बढ़ती अनीति—दुराचार हो अथवा अकाल—महामारी जैसी दैवी आपदाएँ। एक को सुलझा लिया जाय और बाकी सब उलझी पड़ी रहें, ऐसा नहीं हो सकता। समाधान एकमुश्त खोजने पड़ेंगे और यदि इच्छा सच्ची है तो उनके हल निकल कर ही रहेंगे।

शक्तियों में दो ही प्रमुख हैं। इन्हीं के माध्यम से कुछ बनता या बिगड़ता है। एक शस्त्र बल-धन बल। दूसरा बुद्धि बल-संगठन बल। पिछले बहुत समय से शस्त्र बल और धनबल के आधार पर मनुष्य को गिराया और अनुचित रीति से दबाया और जो मन आया, सो कराया जाता रहा है। यही दानवी शक्ति है। अगले दिनों दैवी शक्ति को आगे आना है और बुद्धिबल तथा संगठन बल का प्रभाव अनुभव कराना है। सही दिशा में चलने पर यह दैवी सामर्थ्य क्या कुछ कर दिखा सकती है, इसकी अनुभूति सबको करानी है।

न्याय की प्रतिष्ठा हो, नीति को सब ओर से मान्यता मिले, सब लोग हिलमिल कर रहें और मिल बाँटकर खायें, इस सिद्धान्त को जन भावना द्वारा सच्चे मन से स्वीकारा जायेगा, तो दिशा मिलेगी, उपाय सूझेंगे, नयी योजनाएँ बनेंगी, प्रयास चलेंगे और अन्ततः लक्ष्य तक पहुँचने का उपाय बन ही जायेगा।

"आत्मवत् सर्व भूतेषु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" यह दो ही सिद्धान्त ऐसे हैं, जिन्हें अपना लिये जाने के उपरान्त तत्काल यह सूझ पड़ेगा कि इन दिनों किन अवांछनीयताओं को अपनाया गया है और उन्हें छोड़ने के लिए क्या साहस अपनाना पड़ेगा, किस स्तर का संघर्ष करना पड़ेगा। मनुष्य की सामर्थ्य अपार है। वह जिसे करने की यदि ठान ले और उसे औचित्य के आधार पर अपनाले तो कोई कठिन कार्य ऐसा नहीं है, जिसे पूरा न किया जा सके। नव निर्माण का प्रश्न भी ऐसा ही है। मनुष्य कुछ बनाने पर उतारू हो तो वह क्या नहीं बना सकता? मिश्र के पिरामिड, चीन की दीवार, ताजमहल, स्वेज तथा पनामा की नहर, पीसा की मीनार उसी के प्रयासों से ही तो बन पड़े हैं। जलयान, थलयान, नभ यान के रूप में उसी की सूझ-बूझ दौड़ती है। नवयुग निर्माण के लिए प्रतिभाशाली लोगों को लोकमत के दबाव से विवश यदि किया जाय तो कोई कारण नहीं कि "मनुष्य में देवत्व" के उदय और "धरती पर स्वर्ग" के अवतरण की प्रक्रिया कुछ ही समय में सरलतापूर्वक सम्पन्न न की जा सकें।

अगले दिनों एक विश्व, एक भाषा, एक धर्म, एक संस्कृति का प्रावधान बनने जा रहा है। जाति, लिंग, वर्ण और धन के आधार पर बरती जाने वाली विषमता का अन्त समय अब निकट आ गया। इसके लिए जो कुछ करना आवश्यक है, वह सूझेगा भी और विचारशील लोगों के द्वारा पराक्रम पूर्वक किया भी जाएगा। यह समय निकट है। इसकी हम सब उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर सकते हैं। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

केवल वार्षिक ग्राहकों के लिये।
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० एम. टी. आर. ९८
रजि० नं० आर एन. २१६२/५२

'अखण्ड-ज्योति मासिक'
लाइसेन्स संख्या एम. टी. आर. ८
डाक व्यय की पहले अदायगी किए बिना
डाक में डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त

दीप के स्वर

इतना हलका बनूँ, मृत्यु को ले जाना भारी हो जाये।
ऐसा फूल खिले डाली पर माली देखे तोड़ न पाये।।
इतनी गन्ध उड़े जीवन से गन्ध मिले चन्दन के बन को।
अपना मन इतना मथने दो ईर्ष्या हो सागर मन्थन को।।
मेरी तृप्ति प्यास बन बैठी मेरा जीवन हुआ पराया।
इतना दर्द दिया दुःखियों ने अपने जैसा दुःखी न पाया।।
इतनी भक्ति मुझे दो शंकर दुनियाँ तुमको भजना भूले।
इतनी शक्ति मिले पीड़ा का आँसू आसमान को छू ले।।
जो जीवन से ऊब चुके हैं उन हारों को हार चाहिए।
तलवारें धड़कन बन जायें मुझको इतना प्यार चाहिए।।
मुझको उनके पग छूने दो जो अंगारों पर चलते हैं।
मिले धूलि में फूल बने कुछ, कुछ दीपक बनकर जलते हैं।।
मुझसे मेरे दुःख न छीनो जीवन भारी हो जायेगा।
मिट्टी में यदि मिला न मैं तो फूल कहाँ से खिल पायेगा।।
दीपों को यदि स्वर मिल जाता, सबके गीत व्यर्थ हो जाते।
ऐसा दाता बने न कोई जिससे मैं याचक बन जाऊँ।।
इतना मेरा बने न कोई अपने आँसू रोक न पाऊँ।
इतनी दया न करना कोई भिक्षा में सीता को हर लूँ।।
उनको जगा रहा गीतों से जो मिट्टी में मिले पड़े हैं।
फूलों के दुश्मन हम तुम हैं काँटे पथ में व्यर्थ खड़े हैं।।
आँसू तू भी छोड़ चला क्यों मेरा तू है और कौन है।
जाग न पाये सुख से सोये इसीलिए मेदनी मौन है।।
जो मिट्टी में सुख से सोये मुझको उनसे बहुत प्यार है।
मुझको उनसे उनको मुझसे बहुत प्यार है किन्तु हार है।।
वे अपने कैसे पहचानूँ जो अब रूप बदल मिलते हैं।
उन फूलों से बात करा दो जो मिट्टी में मिल खिलते हैं।।

—अज्ञात

सम्पादक—भगवती देवी शर्मा प्रकाशक व मुद्रक—मृत्युञ्जय शर्मा, अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा
जन जागरण प्रेस मथुरा ३-८-१९८३ में मुद्रित।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड ज्योति

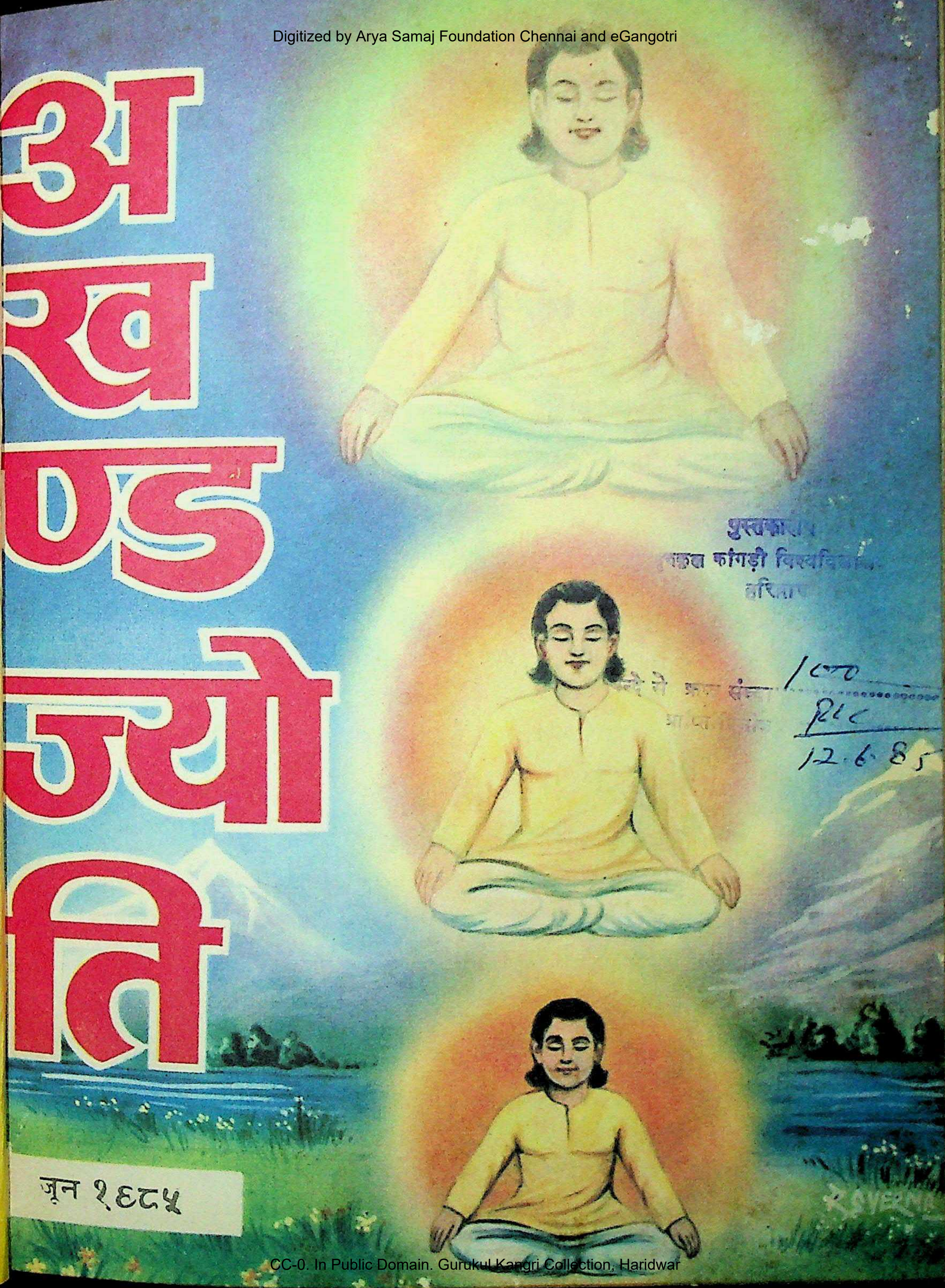

जून १९८५

पुस्तकालय
कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार
100
12.6.85

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषतया आपके लिए

हीरक जयन्ती के इस वर्ष में हम प्रज्ञा परिजनों के प्रति आत्मीयता भरी शुभकामनाएँ भेजते हैं। साथ ही उस सहयोग का कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करते हैं, जिसके कारण युगान्तरीय चेतना का आलोक करोड़ों तक पहुँच सकना सम्भव हो सका। इन दिनों हम उनकी विशेष रूप से ढूँढ खोज करने में संलग्न हैं, जिन्हें हमारी परम्परा को अपने मजबूत कन्धों पर वहन करना है।

आशा की जाती है कि इस ढूँढ खोज के फलस्वरूप ऐसे बहुमूल्य मणिमुक्तक मिल सकेंगे जो युग परिवर्तन की इस प्रभात बेला में अपनी सत्ता से उषाकाल जैसी अरुणिमा बखेर सकें।

कृपया इन दिनों विशेष रूप से विचार करें कि युग के अग्रदूतों में आपकी गणना हो सकती है या नहीं?

श्रीराम शर्मा आचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

वर्ष ४८ | अङ्क ६ | जून १९८५ | वार्षिक २०) | आजीवन २००)

विधाता के बहुमूल्य उपहार

एक सच्चे मित्र की तरह जीवन का हर प्रभात तुम्हारे लिए अभिनव उपहार लेकर आता है। वह चाहता है कि आप उसके उपहारों को उत्साह पूर्वक ग्रहण करें। उससे उज्ज्वल भविष्य का श्रृंगार करें। उसकी प्रतीक्षा रहती है कि कब नया दिन आये और कब इससे भी अच्छा उपहार भेंट करें। साथ ही जो दिया गया है उसका महत्व समझें और आदर पूर्वक ग्रहण करें।

किन्तु जो दिया गया है उसका मूल्य नहीं समझा जाता और कूड़े-करकट की तरह फेंक दिया जाता है तो निराश होकर लौट जाता है। बार-बार अवज्ञा होने पर वह पुनः अपरिचित राही की तरह आता है और निराश होकर लौट जाता है।

ईश्वर ने मनुष्य को अपार सम्पदाओं से भरा-पूरा जीवन दिया है पर वह पोटली बाँध कर नहीं, एक-एक खण्ड के रूप में गिन-गिनकर। नया खण्ड देने से पहले पुराने का ब्यौरा पूछता है कि उसका क्या हुआ? जो उत्साह भरा ब्यौरा बताते हैं वे नये मूल्यवान खण्ड पाते हैं। दानी मित्र तब बहुत निराश होता है जब देखता है कि उसके पिछले अनुदान धूल में फेंक दिये गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलाकार का प्रतिशोध

मरण शैया पर पड़े हुए पिता ने अपने पुत्र की ओर कातर दृष्टि से देखा। बैजू ने कहा—'तात ! मैं आपकी जीते जी तो कोई विशेष सेवा नहीं कर पाया बताइए अब क्या आदेश है ?"

'बेटा ! मुझे इस समय अपनी एक ही इच्छा कचोट रही है। अपने संगीत दर्प से तानसेन ने मुझे बड़ा अपमानित किया था और मैं उसका बदला····नहीं····ले सका।' यह कहकर बैजू के पिता ने दम तोड़ दिया।

बदला मैं लूँगा—निश्चय कर उसने अपने पिता की मृतदेह की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करा दी। श्मशान में भी अपने पिता की राख को हाथ में लेकर उसने कसम खाई कि मैं बदला लेकर रहूँगा।

रात का घना अन्धकार था। तानसेन के महल की चहार दीवारी फांद कर बैजू अन्दर घुस गया। हाथ में परशु की तेजधार, अन्धेरे में भी चमक रही थी। वह तानसेन के शयन कक्ष की ओर बढ़ा। दरवाजे की झिरझिरी से झाँक कर देखा . सब लोग निद्रा मग्न थे तानसेन देवी सरस्वती की प्रतिमा के आगे बैठा कुछ पढ़ रहा था।

सरस्वती की शान्त और वरदहस्त उठाए प्रतिमा को देखकर बैजू के हृदय में विचार मन्थन होने लगा। अन्तःकरण में स्फुरणाएँ उठने लगीं—'प्रतिशोध ऐसा प्रतिशोध, किस कामका जिसमें अपना और भी पतन हो। माना कि तानसेन तो सङ्गीत दर्प में पिताजी को अपमानित कर बैठा तो क्या मैं भी अपने बल और छल-छद्म के दर्प में उसे मारकर उसका बदला लूँ। क्या प्रतिशोध का दूसरा मार्ग नहीं है ? हो सकता है ? ऐसा हीन प्रतिशोध मुझे नहीं लेना। देवी माँ मुझे सद्‌बुद्धि दे।' और वह बिना प्रतिशोध लिए ही घर लौट आया। वस्तुतः ऐसे प्रतिशोध से क्या लाभ जो मनुष्य को दानवी—प्रवृत्तियों में लगा दे।

बैजू ने घर आते-आते रास्ते में संगीत साधना का निश्चय किया और अपनी साधना तथा सिद्धि की प्रखरता के आधार पर तानसेन को परास्त कर प्रतिशोध लेने का विचार किया। वीणा और वाद्य यन्त्र लेकर देवी सरस्वती के सम्मुख बैठा बैजू अहर्निश सङ्गीत साधना में लगा रहने लगा।

संगीत के स्वरों में झंकृत वीणा के साथ-साथ उसकी हृदय तन्त्री भी बजने लगी और बैजू के गीतों का आराध्य सर्वनियामक परमात्मा हो गया। अपनी साधन तन्मयता में वह खाने पीने की सुध तक भूल जाता। लोगों ने उसे बावरा कह कर सम्बोधित करना शुरू कर दिया। उसके गीतों और स्वरों को जो भी सुनता, ईश्वर भक्ति की तरंगें मन में उठने लगतीं।

बैजूबावरा की ख्याति फैलने लगी। होते-होते सम्राट अकबर तक उसकी प्रशंसा पहुँची। अकबर की दृष्टि में तो तानसेन के समान और कोई गायक ही नहीं था परन्तु जब सुना कि बैजू बावरा भी बहुत अच्छा गाता है तो स्वाभाविक ही उसका जी भी गायन सुनने के लिए मचल उठा।

अकबर ने दूत को भेजा बैजू बावरा को दरबार में उपस्थित होने के लिए। परन्तु दूत अकेला ही लौट आया और बोला—महाराज ! आपको गीत सुनना है तो उसकी झोंपड़ी पर जायें।

दरबारियों समेत राजा बैजू बावरा की झोंपड़ी पर पहुँचे और बैजू ने अपनी स्वर लहरी छेड़ी। सब मन्त्रमुग्ध हो उठे। तानसेन ने अपनी पराजय को अब प्रत्यक्षतः स्वीकार कर लिया—जहाँपनाह ! मैं आपको खुश करने के लिए गाता हूँ और बैजू ईश्वर को खुश करने के लिए। ईश्वर की तुलना में आपकी सत्ता की संगति कहाँ बैठेगी। जो अन्तर ईश्वर और आप में है वही अन्तर बैजू और मुझ में है।

ईश्वर भक्ति के प्रसाद स्वरूप बैजू के मन से प्रतिशोध या विकार की भावना नष्ट हो चुकी थी। उसे ध्यान भी नहीं था कि "मुझे तानसेन को पराजित करना था" फिर भी उसका प्रतिशोध-सही अर्थों में पूरा हो चुका था क्योंकि उसके परम सखा तानसेन का संगीत दर्प टूट चुका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकार और निराकार उपासना की पृष्ठभूमि

भगवत् उपासना में जो कुछ करना होता है अपने लिए ही करना होता है। भगवान को न किसी वस्तु की आवश्यकता है और न उन्हें प्रसन्न करने के लिए कुछ देने का उपक्रम बन सकता है। तो भी नियत समय पर नियत उपासना का उपक्रम करते रहने की आवश्यकता होती है। ताकि मन को उसका अभ्यास बन पड़े और धीरे-धीरे वह परिपक्व होता चले, साँचे में ढलता चले।

उपासना का प्रथम चरण है--निकटवर्ती वातावरण में भगवान की उपस्थिति विशेष रूप से अनुभव करना, भगवान सर्वव्यापी हैं। रंच मात्र भी स्थान उनकी उपस्थिति से खाली नहीं। पर यह व्यापक भावना असीम वातावरण में अभ्यास में नहीं उतरती। जहाँ उपासना के लिए बैठा गया है उनमें बस उपस्थिति को विशेष रूपसे अनुभव करने के लिए मन को अभ्यास डालना पड़ता है। इसका तरीका यह है कि जैसे किसी सम्मानित अतिथि के आगमन पर स्थान को स्वच्छ करते हैं। अतिथि सत्कार हेतु जो उपचार किये जाते हैं वे पूरी तरह तो नहीं हो सकते तो भी उनकी चिन्ह पूजा कर लेनी चाहिए। देवताओं के अतिथि सत्कार के लिए षोडषोपचार या पंचोपचार की परम्परा है। यह तभी हो सकती है जब इष्टदेव की कोई साकार छवि, चित्र अथवा प्रतिभा के रूप में स्थापित की जाय। यह एक मानसिक घेरा बन्दी है जिसमें भगवान की उपस्थिति विशेष रूप से मानी जाती है। यही उपस्थिति दर्शन मात्र से ठीक प्रकार नहीं बन पाती। इसलिए अतिथि सत्कार के षोडषोपचार या पंचोपचारों के माध्यम से समर्पण करना पड़ता है। धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत, पुष्प अर्घ्य, पादम आचमन आदि का समर्पण इन उपचारों की परिधि में आ जाता है। स्थापित चित्र प्रतिमा का स्वागत सत्कार करने का प्रयोजन इतना ही है कि मन की मान्यता इस सीमित क्षेत्र में विशेष उपस्थिति का भाव अंगीकार कर ले।

उपासना में भक्ति का समावेश आवश्यक है। भगवान हमारे समीप हैं या हम भगवान के समीप हैं, यह कोरी कल्पना मात्र रहने से काम नहीं चलता। उसके साथ घनिष्ट आत्मीयता का रिश्ता जोड़ना होता है, जिसके प्रति प्रेम भावना और श्रद्धा की अभिव्यक्ति की जा सके। यह रिश्ता अपने से बड़े का होना चाहिए। माता-पिता, स्वामी, सखा आदि। छोटा रिश्ता मानने से श्रद्धा की अभिव्यक्ति कठिन पड़ती है। सन्तान, सेवक, पत्नी आदि के रिश्ते स्थापित करने से काम नहीं चलता। वैसे भगवान निराकार होने से उसके साथ मानवी रिश्तेदारी ठीक तरह निभती नहीं। वह एकांगी रहती है। तो भी उपस्थिति अनुभव करने और सदा ही घनिष्ठता भरी प्रेम की अनुभूति करने के लिए मानवी स्वभाव के अनुरूप ऐसी स्थापना किये बिना प्रेम की सघनता बनती भी नहीं और निभती भी नहीं।

इतना कर लेने पर स्थापना वाला चरण पूरा होता है। यह साकार उपासना के लिए तो आवश्यक है ही, निराकार मान्यता वाले भी इतना कर लें तो कुछ हर्जा नहीं। सीमित के साथ घनिष्ठता की स्थापना सुविधाजनक रहती है।

इसके आगे के चरण में भगवान की साकार और निराकार मान्यता के—उपासना के दो अध्याय आरम्भ होते हैं। दोनों में से जो भी रुचि कर हो, उसे चुन लेना चाहिए। ध्यान का केन्द्रीकरण करने की दृष्टि से साकार उपासना का चयन उत्तम रहता है। इष्टदेव को जिस भी रूप में जिस भी रिश्ते में चुना हो उसके साथ सघन निकटता की अनुभूति करनी चाहिए। भक्ति योग इसके बिना चरितार्थ नहीं होगा। प्रेम व्यवहार में जितनी अधिकतम निकटता होगी, उतनी ही घनिष्ठता का रसास्वादन बन पड़ेगा और उपासना में आनन्द आने लगेगा।

यह निकटता इस स्तर की होनी चाहिए कि इष्टदेव की विशेषताएँ अपने में प्रवेश करने लगें। भगवान मन को अपनी विशेषताओं से भरे दे रहे हैं, यह निकटता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप है। आग ईंधन को अपने जैसा बना लेती है। नाला नदी में घुलकर नदी जैसा हो सकता है। दीपक और पतंगा आपस में लिपटते हैं तो दोनों एक रूप हो जाते हैं। पेड़ से लिपट कर बेल उतनी ही ऊँची चढ़ जाती है, जितना पेड़ होता है। पारस छूकर लोहा, लोहा नहीं रहता वरन् सोना हो जाता है। भगवान से लिपट कर भक्त को भगवान जैसा महान होना चाहिए। उसकी स्थिति असाधारण हो जानी चाहिए, देव मानव जैसी। प्रेमाभिव्यक्ति की इस परिणति की भी पूरी-पूरी अनुभूति होनी चाहिए।

भगवान को निकटतम अनुभव करना, यही उपासना है। अध्यापक सबसे पास वाले लड़के को पढ़ाने का नम्बर लगाता है। पंक्ति में पहले स्थान पर बैठे हुए को भोजन पहले परोसा जाता है। भगवान के निकटस्थ होने से दिव्य विशेषताएँ मिल भी रही हैं, साथ ही चौकीदारी भी हो रही है कि कोई दोष-दुर्गुण चिपका न रह जाय। पुलिस सामने हो तो जेबकतरा अपनी उस्तादी बन्द कर देता है। इसी प्रकार जब भगवान की निकटता बन गई तो सर्वदर्शी, सर्वव्यापी भगवान की उपस्थिति में हेय चिन्तन, हेय चरित्र, हेय व्यवहार करने की सूझ भी नहीं सूझेगी। दण्ड देने वाला सामने जो खड़ा है। सिखाने वाला सटकर जो खड़ा है। इस प्रकार की भावनाएँ उठें तो समझना चाहिए कि साकार उपासना ठीक चल रही है, अन्यथा भिखारी का, जेवकट का बाना पहन कर भगवान के पास जाया गया तो उसे निकृष्टता के कारण दुत्कार सहनी पड़ेगी। माता गोद में बच्चे को तब उठाती है, जब उसे अच्छी तरह धो लेती है। मलमूत्र से सना होने पर एवं उसे प्यारा होने पर भी गोदी में नहीं उठाया जाता। साकार उपासना के जितने भी फलितार्थ हैं, वे देवमानव बनाने वाले हैं। गन्दगी चिपटाये रहने पर तरह-तरह की मनोकामनाओं का ताना-बाना बुनना, पुरुषार्थ किये बिना लोभ लूटकर खजाने भर लेना यह तो उपासना के सिद्धान्त के विपरीत ही हो जाता है।

इसके उपरान्त तीसरा चरण निराकार साधना है। साकार प्रतिमाएँ सभी कल्पित होती हैं। राम रहीम के जैसे चित्र बनाये गये, जैसी प्रतिमाएँ गढ़ी गई हैं वे मनुष्य की अपनी कल्पना भर हैं। इस तथ्य से अवगत होने पर मन उस अवास्तविक के प्रति जमता नहीं और वास्तविकता खोजना ही वास्तविक उपासना है। सर्वव्यापी निराकार के अतिरिक्त वह किसी और के प्रति हो ही नहीं सकती। निराकार का भी कोई ध्यान तो चाहिए अन्यथा मन के जमने का कोई आधार ही न रहेगा। प्रकाश ज्योति को इस चरण में प्रयुक्त किया जाता है। प्रातःकाल का उदीयमान स्वर्णिम सूर्य ध्यान के लिए उपयुक्त बैठता है। दोपहर का सूर्य अत्यन्त प्रखर होने के कारण नेत्रों की पकड़ में नहीं आता। प्रकाश की तीव्रता से आँखों को नुकसान भी पहुँचता है इसलिए गायत्री महामन्त्र का ध्यान सविता के रूप में किया जाता है। सविता प्रातःकाल के उदीयमान स्वर्णिम सूर्य को कहते हैं। इस ध्यान का अभ्यास आसानी से किया जा सकता है। उगते सूर्य के सम्मुख बैठकर क्षण भर नेत्र खोलना और फिर बन्द करके उस ध्यान को यथास्थान जमाते रहने की क्रिया से दो चार दिन में ही मन सविता का ध्यान करने का अभ्यस्त हो जाता है फिर सूर्य के सम्मुख बैठने या आँखों से देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

उदीयमान सूर्य की दिव्य किरणें अपने शरीर में भीतर तक घुसती चली जाती है और अपनी राशनी तथा गर्मी से अंग-प्रत्यंगों को प्रभावित करती हैं। यह ध्यान निराकार साधना के लिए निर्धारित है। सूर्य किरणें स्थूल शरीर में प्रवेश करके उसमें ओजस भर देती हैं। आरोग्य बलिष्ठता तथा दीर्घजीवन का लाभ बरसाती हैं। इन्द्रियों में जो विषय विकार हैं, उन्हें जला देती हैं। दुष्कर्म करने में, दुर्व्यसनों में लिप्त होने की जो बुरी आदतें थीं वे इस सविता के प्रकाश से जलभुन कर नष्ट हो जाती हैं।

यह स्थूल शरीर का ध्यान हुआ। अब सूक्ष्म शरीर की बारी आती है। सविता का तेजस् सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है और दूरदर्शी विवेकशीलता मेधा को मस्तिष्क में भर देता है। मस्तिष्क ही सूक्ष्म शरीर है। मानसिक दोष-दुर्गुणों में अगणित नाम आते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर यह षट् रिपु मनःक्षेत्र में ही अपना घोंसला बनाये छिपे रहते हैं। कुकल्पनाएँ यहीं से उठती हैं। जब प्रातःकाल सविता की किरणों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है तो एक ओर मेधा, बुद्धि का बाहुल्य बरसता है दूसरी ओर मानसिक दुर्गुणों को भी जलाकर नष्ट करता है। जिस प्रकार अन्धकार दूर होते ही निशाचर भाग खड़े होते हैं उसी प्रकार मनोविकारों का इस प्रक्रिया से अन्त होता है।

तीसरा शरीर कारण शरीर है। कारण शरीर अर्थात् अन्तःकरण, भावनाएँ, मान्यताएँ, विचारणाएँ, इच्छाएँ यह चारों अन्तःकरण में बसती हैं। व्यक्तित्व इन्हीं के आधार पर विनिर्मित होता है। इस क्षेत्र में सविता की किरणें जब प्रवेश करती हैं तो अपनी ऊष्मा तथा आभा से इन चारों क्षमताओं को उत्तेजित एवं परिष्कृत करती हैं। साथ ही इन विशेषताओं के प्रतिकूल जो दुर्भावनाएँ हैं, उन्हें जलाकर समाप्त करती हैं। प्रज्ञा का उदय होना जीवन में अभिनव चेतना का उदय होना है। व्यक्ति अब कुछ नये स्तर की दिशाधारा में रुचि लेता है, उन्हें अपनाता है और इस प्रकार का नवनिर्माण करता है मानों सविता पुत्र का ही जन्म हुआ है और उसी की विशेषताओं का समावेश अपने में किया है।

तीन शरीरों में सविता की तीन ऊर्जाओं को प्रवेश का अभ्यास एक-एक करके करने में सुविधा रहती है। जब स्थूल शरीर का अभ्यास पूरा हो जाय, तब तक अगले अभ्यास के लिए रुकना चाहिए। इसके बाद सूक्ष्म शरीर का अभ्यास अपनाये रहा जाय और कारण शरीर की साधना के लिए चरण बढ़ाया जाय तो तब जब सूक्ष्म शरीर परिपक्व हो जाय। इनमें एक-एक महीना भी लगाया जा सकता है। इसके बाद फिर इनकी पुनरावृत्ति आरम्भ कर देनी है। निराकार साधना का क्रम जिनने अपनाया है उन्हें वह आजीवन चलाना है। इसी प्रकार बनता है कि उलट-पुलट कर एक महीना तीनों शरीरों में ऊर्जा प्रकाश की, सविता की स्थापना का क्रम चलाते रहा जाय।

रुचि परिवर्तन की दृष्टि से यह भी अच्छा है कि कुछ समय साकार और कुछ समय निराकार का प्रयोग करके देखा जाय। दोनों में से जो जिसे जितना रुचि कर लगे उसे उतने समय प्रयोग में लेते रहा जाय, बाद में बदल दिया जाय।

भगवान साकार भी हैं और निराकार भी। सर्वव्यापी होने के कारण वे निराकार हैं और समस्त प्राणियों में—समस्त दृश्यमान पदार्थों में अपना आकार प्रकट करने के कारण वे साकार भी हैं। शरीर में काया साकार है और उसके भीतर प्राण चेतना निराकार है। दोनों के समन्वय से ही यह ब्रह्माण्ड चल रहा है। इसलिए इसमें मतभेद या विवाद का कोई कारण नहीं है। उपासना करते समय भी इन दोनों का उपयोग हो सकता है। फिर भी सुविधा की दृष्टि से पहले साकार का और पीछे निराकार का अभ्यास किया जाय तो सरलता रहेगी। यह तथ्य सभी धर्म सम्प्रदायों पर समान रूप से लागू होता है।

सम्राट अशोक कलिंग विजय करके लम्बी अवधि बाद घर लौटे। इस बार राज्यारोहन का उत्सव बड़े शानदार ढंग से मनाया जा रहा था।

अशोक अपनी माता का बहुत सम्मान करते थे। इस अवसर पर उनका विशेष आशीर्वाद पाने के लिए वे उनके कक्ष में पहुँचे। और सँक्षेप का अपना प्रयोजन तथा कलिंग देश के ढाई लाख शत्रुओं का वध करने का विवरण कह सुनाया।

राजमाता फफक-फफक कर रोने लगीं। बोलीं उन मारे ढाई लाखों में एक तू भी रहा होता तो मेरे ऊपर और तेरे परिवार पर कैसी बीतती ?

माता के रुदन से अशोक का दृष्टिकोण उलट गया। उन्होंने उत्सव आयोजन को रद्द कर दिया। अहिंसा के मार्ग पर चलने के लिए वह भगवान बुद्ध का उपदेश लेने पहुँचा। और जो कमाया था तथागत को सौंप दिया।

माता की करुणा का था यह चमत्कार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित्रनिष्ठा की परख

पुरन्ध्र एक सद्-गृहस्थ था। परिवार के सभी सदस्य नीति धर्म और कर्त्तव्य का पालन करते। घर में न कोई कमी थी न शोक-सन्ताप। सज्जनों के बीच उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी।

पाप से यह न देखा गया। वह उस परिवार के इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहा किसी के मन में दुर्भावना पनपाये और किसी के आचरण में दुष्प्रवृत्ति बढ़ाये। पर सफलता न मिली। बहुत दिन उसे ऐसे ही बीत गये।

प्रयत्नों की निष्फलता पर पाप देव खिन्न बैठे थे। दुःख का कारण उनकी पत्नी दरिद्रता ने पूछा, तो व्यथा कह सुनाई। पत्नी ने पति की प्रसन्नता के लिए एक कुचक्र रचा और उनके कान में कह दिया। पाप की बाछें खिल गईं वे दूसरे दिन स्वयं ब्राह्मण और पत्नी को युवा कन्या का वेष बनाकर पुरन्ध्र गृह की ओर चल पड़े।

ब्राह्मण ने पुरन्ध्र से कहा—मुझे तुरन्त लम्बी यात्रा पर जाना है। मार्ग भयंकर है। रातों रात चलना पड़ेगा। आप कन्या को अपने पास रख लें। लौटने पर इसे ले जाऊँगा।

पुरन्ध्र ने अतिथि धर्म निवाहा और सहज स्वभाव उस अनुरोध को स्वीकार कर लिया। कन्या परिवार के सदस्यों की तरह रहने लगी।

कन्या ने पुरन्ध्र से सम्पर्क बढ़ाना आरम्भ किया। वार्तालाप से लेकर समीप बैठने और कामों में हाथ बटाने का सिलसिला चल पड़ा ब्राह्मण लौटा नहीं।

काना-फूसी चली, सन्देह पनपे, आक्षेप लगे। परिवार का स्नेह सौजन्य घटा और अश्रद्धा बढ़ गई। फलतः कुटुम्ब में फूट पड़ी, सहयोग सद्भाव की कमी से व्यवस्था लड़खड़ाने लगी पास-पड़ौस में प्रशंसा के स्थान पर निन्दा होने लगी।

पुरन्ध्र ने स्वप्न देखा कि सौभाग्य लक्ष्मी रूठकर जा रही है। अनुनय विनय उनने सुनी ही नहीं।

कुछ समय बाद दूसरा स्वप्न आया—यश लक्ष्मी के विदा होने का। रोका तो, पर रुकी ही नहीं। तीसरी बार के स्वप्न में कुल लक्ष्मी ने भी बिस्तर बाँधा और वह भी विदा हो गई। जाने वाला रुकता भी कहाँ है?

परिवार हर दृष्टि से जर्जर होता जा रहा था। पुरन्ध्र चिन्तित रहने लगे पर करते भी क्या? ब्राह्मण की धरोहर को कहाँ फेंक दें। उनके मन में कोई पाप नहीं था। बालक हँसता हुआ पास आये तो उसे झड़का कैसे जाय? लोकापवाद एक ओर—कर्तव्य दूसरी ओर। उनने सभी घाटे सहकर भी कर्तव्य धर्म के निर्वाह को उचित समझा और ब्राह्मण के न लौटने तक कन्या को घर में आश्रय देते रहने का ही निश्चय रखा।

> विषमावस्थिते दैवे पौरुषेऽफलतां गते।
> विषादयन्ति नात्मानं सन्त्वापाश्रयिणों नराः।।
>
> दुर्दैव आ पड़ने पर और विफल-प्रयत्न होने पर भी धीर पुरुष उत्साह हीन होकर दुःखी नहीं होते।

एक रात को स्वप्न में धर्म को देखा और वे भी चलने की तैयारी में थे। अब पुरन्ध्र से न रहा गया, वे कड़क कर बोले। सौभाग्य लक्ष्मी, यश लक्ष्मी, कुल लक्ष्मी को मैंने इसलिए नहीं रोका कि धर्म मेरे साथ है तो अकेले रहने पर भी मैं बहुत हूँ। वे भ्रमवश गईं पर आप तो घट-घट के ज्ञाता हो मैं कर्तव्य पर दृढ़ हूँ तो आप मुझे किस कारण छोड़ते हैं।

धर्म के पैर रुक गये। उनने जाने का विचार छोड़ दिया—"ठीक है, तुमने मुझे नहीं छोड़ा तो मैं ही तुम्हें क्यों छोड़ूँगा।" वे ठहर गये तो कुल लक्ष्मी, भाग्य लक्ष्मी और यश लक्ष्मी भी लौट आईं।

पाप परास्त हो गया। वह ब्राह्मण रूप में आया और कन्या बनी हुई पत्नी को साथ लेकर खिन्न मन से परास्त हो वापस लौट गया। स्थिति फिर पूर्ववत् हो गई। अन्ततः नीतिमत्ता की—ब्राह्मण की निष्ठा की विजय हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिमान ही नहीं, प्रज्ञावान भी बनें

बुद्धिमानी की कमी नहीं। उसका उपार्जन भी सरल है। स्कूलों के रूप में विभिन्न व्यवसाइयों के साथ रहकर अनुभव अर्जित करने के रूप में उसे आसानी से खरीदा जा सकता है। सांसारिक जानकारियों के बदले पैसा अधिक कमाया जा सकता है, लोग धाक मानते हैं और प्रशंसा भी करते हैं। वकील, इन्जीनियर, प्रोफेसर, दलाल कलाकार आदि बुद्धिजीवी कहलाते हैं। उनकी आजीविका बुद्धिगत परिश्रम पर ही निर्भर रहती है। सेल्समैनों की चतुरता मालिकों को भी निहालकर देती है और अपने को कमीशन के अनुसार से मालामाल बना देती है। विभिन्न विषयों के जानकार बुद्धिजीवी या बुद्धिमान कहलाते हैं। पढ़ाई की फीस और निजी मेहनत खर्च करके कोई भी बुद्धिमान बन सकता है।

प्रज्ञावान का रास्ता दूसरा है उसे पढ़ा लिखा तो होना चाहिए। अनुभवी भी। और साथ ही दूरदर्शी विवेकशीलता भी उसकी अन्तरात्मा में श्रद्धा बन कर जमी होनी चाहिए। उचित और अनुचित का अन्तर करना आना चाहिए और तात्कालिक लाभ की दूरगामी परिणामों का अनुमान लगा सकने की प्रवीणता भी होनी चाहिए। प्रज्ञावान को मात्र उचित कार्यों में न्याय नीति के अनुसार खरे कामों में ही हाथ डालना होता है। समर्थन भी उन्हीं का करना होता है और किसी को परामर्श देना हो तो भी इसी कसौटी पर कसने के बाद जो खरा और सही प्रतीत हो वही करना पड़ता है। मात्र दूसरों के लिए ही नहीं प्रज्ञा का अनुशासन सर्वप्रथम अपने ऊपर लागू होता है। कष्ट सहकर भी घाटा उठाकर भी, मूर्ख कहा कर भी मात्र उसी मार्ग पर चलना होता है जो मानवी गरिमा के उपयुक्त है। जिन्हें करने के लिए अन्तरात्मा की सहमति प्राप्त है।

बुद्धिमानी के लिए ऐसे कोई बन्धन स्वीकार आवश्यक नहीं। तात्कालिक लाभ ही उसके लिए सब कुछ है। इस प्रयोजन के लिए वह भला-बुरा कुछ भी कर सकती है। अन्तरात्मा का दबाव मानने की इसे कुछ भी आवश्यकता नहीं होती। यदि वह वकील है जो सर्वथा झूठे मुकदमे को भी सफल बनाने के लिए जी जान एक कर सकता है। यदि वह अफसर है तो खुद का और अपने दोस्त का फायदा कराने के लिए कुछ भी तरकीब बता सकता है। यदि वह डाक्टर है तो सम्पन्न मरीजों को अपने घर आने का और सौदा करने का इशारा कर सकता है। इन्जीनियर के लिए निर्माण कार्य में सीमेण्ट की जगह रेत भर देने में चतुरता मानी जायगी। बुद्धिमान के सामने एक ही कसौटी है—सफलता—फिर चाहे किन्हीं भी नैतिक मूल्यों का हनन होता हो।

आज सर्वत्र बुद्धिमानी की ही प्रशंसा है, उन्हीं की आवश्यकता भी। उन्हीं की माँग सर्वत्र है। बुद्धिमत्ता पहले भी थी पर अब वही सबसे बढ़कर हो गई है। उन्हीं का शासन में प्रवेश है। वे ही मिल कारखाने चलाते हैं। पहले दिन कारखाना खड़ा करना, दूसरे दिन दिवाला निकाल देना और तीसरे दिन नये नाम से नयी फर्म खड़ी कर देना उनके बाँये हाथ का खेल है। वे हजार की कमाई पीछे एक रुपया निकाल कर संगमरमर का मन्दिर बनाते हैं और गली मुहल्लों में अपने धर्मात्मा होने का ढोल पिटवाते हैं। जय-जय कार इन्हीं की होती है। किसी सभा सोसाइटी में जाते हैं तो उद्घाटन कर्ता चेयरमैन वे ही होते हैं और मालाओं से लद जाते हैं।

बुद्धिमान के लिए दशों दिशा खुली हुई हैं। उन पर कोई रोक-टोक नहीं। नियन्त्रण वे किसी का नहीं मानते। कोई नीति मर्यादा उन्हें बाधित नहीं करती। जिस पर कोई नियन्त्रण लागू होता हो वह बुद्धिमान कैसा। वही जीवन युक्त होता है, बुद्धिमत्ता देवी की उपासना से उसे यह अभय दान मिला हुआ है। दूसरों को धर्मोपदेश देने में वह प्रवीण पारंगत है। इतने भर से यह आवश्यकता पूरी हो जाती है कि उन शिक्षाओं को अपने पास तक न फटकने दे।

प्रज्ञावान् बहुत करके घाटे के काम करते हैं। गान्धी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध, विवेकानन्द सुभाष की तरह अपनी योग्यता के बल पर नहीं के बराबर कमा पाते हैं। पर उनकी उच्च-स्तरीय सफलता अन्ततः उन्हें कृत-कृत्य बना देती है। शंकराचार्य और चाणक्य यदि अपनी विद्या के बल पर कहीं नौकरी प्राप्त करना चाहते तो कहीं अच्छा कमा लेते। अरविन्द को अच्छा वेतन मिल जाता पर वे भटकते ही रहे। किन्तु उनकी भटकन भी इतनी मूल्यवान रही जिस पर अशर्फियाँ निछावर की जा सकती हैं।

प्रज्ञा की आँखें न सफलता पर रुकती हैं न सम्पन्नता पर। लाभ के अवसर चुकाते रहने पर वे मूर्ख भी कहलाते थे। पर वह मूर्खता भी होती इतनी शानदार है उसकी तुलना में बुद्धिमत्ता तराजू के पासंग जितनी भी नहीं रहती। ईश्वर चन्द विद्या सागर ने अपनी अपेक्षा तरक्की के अवसर दूसरों को दिला दिये। जो कमाते थे उसमें से चौथाई में परिवार का गुजारा चलाते थे। शेष जरुरत मन्द विद्यार्थियों की शिक्षा रुकने न देने के लिए खर्च कर देते थे। ऐसे होते हैं प्रज्ञावान्।

यह विश्व वसुधा प्रज्ञावानों से कृत-कृत्य हुई हैं। उन्हीं ने संकटग्रस्त मनुष्यता को दलदल में से खींच कर किनारे पर लगाया है। समय की उलझनों को सुलझा सकने का श्रेय प्राप्त किया है। आत्म सन्तोष निरन्तर अनुभव करते रहे हैं। लोक सम्मान और सहयोग उन पर लदा रहा है और दैवा अनुग्रह की आकाश पुष्प वर्षा होती रही है। इतना पाकर बुद्धिमानी की तुलना कम समृद्धशाली रहना उन्हें अखरा नहीं है।

बुद्धिमानों की बस्ती ढूँढ़नी हो तो वे हर नगर में जेलखानों को जाकर देख सकते हैं। उसमें एक से एक बढ़कर चतुर लोग बन्द पाये जायँगे। ठगी, लूट, हत्या जैसे अपराध कर सकना हर किसी का काम नहीं है। साधारण व्यक्ति तो अपने निज की वस्तुओं की रखवाली नहीं कर सकता। फिर दूसरों पर सफाई के साथ हाथ साफ कर सकना साधारण काम कैसे माना जा सकता है। डाकू और हत्यारे बुद्धिमानी की कसौटी पर ऊँचे नम्बर ही पा सकते। पकड़े तो उनमें से सौ पीछे कोई एक जाता है अन्यथा खाद्य पदार्थों में मिलावट करने वालों से लेकर नकली दवाओं पर असली का लेविल लगाकर बेचने वाले बुद्धिमानों की संख्या कम नहीं है। टैक्स चुराने वाले और काला धन, पाखानों के झरोखों में बन्द करके रख लेने वालों की चतुरता इतनी अधिक है जितने आकाश में तारे।

बुद्धिमत्ता और प्रज्ञा का अन्तर सभी जानते हैं। उनमें एक आरम्भ में फलती है दूसरी अन्त में। एक को हथेली पर जमने वाली जादूगरों की सरसों कहा जा सकता है और दूसरी को मीठे आमों की बगीची लगाने के लिए धैर्य, साहस और दूरदर्शिता भी चाहिए। उसकी

> तमस्युपरते स्वान्ते तेजः पुंजं ददर्श सः।
>
> ध्यान के अभ्यास से अज्ञानान्धकार के विनष्ट हो जाने से हृदय में तेज पुंज (आत्मा) का अनुभव होने लगता है।

आमदनी पीढ़ियों तक मीठे फलों का रसास्वादन कराती और गुजारे लायक आमदनी देती रहती है। किन्तु बाजीगर द्वारा हथेली पर जमाई गई सरसों का तेल कितनों ने शरीर पर मला और बालों में लगाया है यह ठीक से नहीं कहा जा सकता।

कोई समय था जब इस देश में प्रज्ञावान देव मानव रहते थे और अपनी गतिविधियों से न केवल इस भारत भूमि को वरन् समूचे संसार को धन्य बनाते थे। तब प्रताप और शिवाजी जैसे बलिदायी व्रतशीलों की कमी नहीं थी। भामाशाह, हर्षवर्धन, अशोक जैसे सत्प्रयोजनों के लिए अपनी जेबें पूरी तरह खाली कर देने वालों की कमी नहीं रही पर आज तो वह समय चला गया। आज तो हर जगह बुद्धिमानी का बोलबाला है। वह अपने पास न हो तो कहीं से भी पैसा देकर खरीदी जा सकती है। हायरी बुद्धिमत्ता और हायरी प्रज्ञाशीलता, तुम्हारा समय कितना बदल गया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगः कर्मसु कौशलम्

मानव जीवन की संरचना इस प्रकार हुई है कि उसे निरन्तर कार्यरत रहना पड़ता है। रात्रि को शरीर की उथली परत ही विश्राम करती है। भीतर के सभी तन्त्र अनवरत रूप से काम में जुटे रहते हैं। श्वास-प्रश्वास, रक्ताभिसरण, आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष आदि क्रम क्षण भर के लिए भी चैन नहीं लेता। मस्तिष्क की ऊपरी परत ही निद्रा का लाभ ले पाती है। अचेतन और सुपर-चेतन दोनों ही परतें बिना विराम का नाम लिए जन्म से लेकर मरण पर्यन्त अपना काम करती रहती हैं। धड़कन एक क्षण के लिए रुक जाय तो जीवन लीला की समाप्ति ही समझनी चाहिए।

आहार, पाचन क्षमता का उत्पादन यह एक पूरा चक्र है। इसकी एक कड़ी कभी टूट जाय तो समझना चाहिए कि गाड़ी दल-दल में फँस गयी अथवा खाई में गिरकर उलट गयी। आहार से रक्त बनता है इसमें पेट आँतें आदि का परिश्रम तो मुख्य है ही, पर इसके अतिरिक्त अन्यान्य सभी अवयवों को श्रम करना पड़ता है। न किया जाय तो पाचन लड़खड़ा जायगा और क्रिया शक्ति कुण्ठित होगी। जो हिस्सा निकम्मा पड़ा रहेगा वह जंग खाये पुर्जे की तरह क्षीण होता चला जायगा। इसलिए जीवन व्यवस्था में कर्म को नितान्त आवश्यक माना गया है। खाली दिमाग तो शैतान की दुकान होता है। ठाली शरीर भी निस्तेज, दुर्बल और रुग्ण रहने लगता है।

मनुष्य समेत सभी जीव जन्तुओं को कार्यरत रहना अनिवार्य हो जाय, इसलिए प्रकृति ने उन्हें आहार जुटाने और वंश चलाने के दो कार्य ऐसे सौंपे हैं जिनके बहाने शरीर और मन को कुछ न कुछ ताना-बाना बुनना पड़ता है। भाग-दौड़ में निरत रहना पड़ता है। यह शरीर की निर्वाह श्रृंखला के साथ जुड़ी हुई कर्म व्यवस्था हुई। अन्य प्राणियों का काम इस दौड़-धूप से भी चलता रहता है पर मनुष्य इस स्तर से बहुत आगे है। उसकी अन्यान्य आवश्यकतायें तथा जिम्मेदारी भी है। और वे सभी ऐसी हैं जो बढ़ा-चढ़ा कार्य कौशल चाहती हैं। इसके लिए उसे अनेक प्रकार के प्रशिक्षण प्राप्त करने पड़ते हैं और अतिरिक्त कार्यक्रम बनाने पड़ते हैं। शरीर का काम क्षुधा निवारण भर से नहीं चल पाता। वर्त्तमान संसार की उलझी हुई परिस्थितियों में सही तरीके से पार जाने के लिए विद्या, प्रतिभा, कुशलता, दूरदर्शिता आदि का संग्रह करना पड़ता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसका पूरा जीवन परिवार तथा समाज के साथ गुंथा हुआ है। इसमें पग-पग पर नीतिमत्ता, उदारता एवं जिम्मेदारी का प्रयोग करना पड़ता है। अनीति का प्रचलन भी कम नहीं है उसके दाँव पेचों से अपने को बचाने एवं आक्रमणों से पीछा छुड़ाने के लिए अनेक प्रकार के दाँव पेच समझने होते हैं। पेट प्रजनन तक सीमित न रहना हो, उन्नतिशील जीवन जीना हो, सन्तोष, उत्साह और उल्लास अर्जित करना हो तो वे कार्यक्रम भी अपनाने पड़ते हैं जिन्हें उत्कृष्ट एवं आदर्शमय कहते हैं।

मनुष्य यों सर्वत्र स्वतन्त्र मालूम पड़ता है। वह भले बुरे जैसे भी चाहे काम कर सकता है। इतने पर भी वह कृत्यों के परिणाम भुगतने के लिए प्रकृति व्यवस्था के अनुरूप बाधित है। अनेकानेक जिम्मेदारियों से बँधा हुआ है। कर्त्तव्यों के परिपालन से बाधित है। पशु-पक्षी प्रकृति प्रेरणा का अनुसरण करने मात्र से अपनी जीवनचर्या एक क्रमबद्ध ढाँचे के अनुसार पूरी कर लेते हैं। पर मनुष्य का काम इतने भर से नहीं चलता। उसे आत्मा की पुकार सुननी पड़ती है। सामाजिक अनुबन्धों का निर्वाह और वर्जनाओं का प्रतिपादन करना होता है। प्रशंसा और प्रतिष्ठा का ध्यान रखना होता है। निन्दा, भर्त्सना, उपहास से बचना होता है। मात्र शरीर ही नहीं परिवार का भरण-पोषण चरित्र स्तर एवं भविष्य बनाना होता है। यह सब कार्य अनायास ही नहीं हो जाते इनके लिए समुचित जागरूकता बरतनी पड़ती है और कठोर श्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना होता है। यह सारा [illegible] कर्त्तव्य बनता है। कर्त्तव्य पालन से ही उत्तरदायित्वों का निर्वाह होता है और जीवन सन्तोष व्यक्त कर सकने योग्य बनता है इसकी उपेक्षा करने वाले दुत्कारे जाते और जहाँ-तहाँ धिक्कार सहते हैं।

कर्त्तव्य को शास्त्रकारों की भाषा में धर्म कहा गया है। जो दायित्वों का ठीक तरह निर्वाह करता है वह धर्मात्मा है और जो उनकी अवज्ञा करता है वह अधर्मी है। धर्मात्मा पुण्य फल प्राप्त करके प्रत्यक्ष में सुखी रहते हैं और परोक्ष में स्वर्ग सन्तोष का लाभ लेते हैं। अधर्मियों के लिए प्रत्यक्षतः दुःख दुष्परिणाम सामने रहते हैं और परोक्ष में आत्म-प्रताड़ना का—विरोध विग्रह का नरक भुगतना पड़ता है।

आर्षजनों का अभिमत है कि कर्म ही ईश्वर पूजा है। यहाँ कर्म का अर्थ मात्र श्रम नहीं वरन् सत्कर्मों का अवलम्बन है। हर विवेकशील व्यक्ति के लिए उचित है कि वह आजीविका कमाते समय ईमानदारी का ध्यान रखे उसका व्यतिरेक न होने दे। खर्च करते समय समझदारी का उपयोग करे। ऐसा न हो कि अपव्यय अपनाया जाय और उसकी पूर्ति के लिए कुकृत्यों का आश्रय लिया जाय।

निजी जीवन शरीर और परिवार तक सीमित है। इसमें आजीविका उपार्जन और उसके उपयोग में औचित्य का समावेश तो प्रमुख है ही। साथ ही यह तथ्य भी जुड़ता है कि शरीर और सम्बद्ध परिकर में से कोई कुमार्गगामी न बनने पाये। इसके अतिरिक्त धर्म की दूसरी मंजिल आती है जिसे पुण्य या परमार्थ कहते हैं। यह सामाजिक प्रचलनों में औचित्य का अधिकाधिक समावेश करने—सत्प्रवृत्तियों को सींचने और कुप्रथाओं का उन्मूलन करने वाले कदमों को उठाने का प्रयास है। यह उतना ही आवश्यक है जितना शरीर और परिवार का निर्वाह। मनुष्य की प्रगति और अवनति बहुत करके समाज की सुव्यवस्था पर निर्भर है। वातावरण में गन्दगी भरती जा रही हो तो एक व्यक्ति की सज्जनता भी उस माहौल में जीवित न रह सकेगी। श्रेष्ठ वातावरण में सामान्य व्यक्ति की सज्जनता भी उस माहौल में जीवित न रह सकेगी। श्रेष्ठ वातावरण में सामान्य व्यक्ति भी सुधरने और उठने लगते हैं। मनुष्य समाज का ऋणी है। अधिकांश सुविधायें उसे दूसरों के सहयोग से ही मिली हैं। यहाँ तक कि बोलना पढ़ना जैसी आरम्भिक योग्यतायें भी दूसरों के अनुग्रह से ही मिली हैं। ऐसी दशा में उसे अपने को समाज का ऋणी मानना चाहिए और उसे श्रेष्ठ समुचित बनाने का प्रयत्न करना अपना परम पवित्र कर्त्तव्य मानना चाहिए। यही पुण्य परमार्थ है। यही विराट ब्रह्म की यथार्थवादी सेवा पूजा है। इस प्रयोजन के लिए भी हमारी क्षमता का एक बड़ा अंश नियोजित रहना चाहिए।

नित्य कर्म में ईश्वर उपासना के लिए एक निर्धारित समय रहना चाहिए। आत्मा की श्रेष्ठताओं का समुच्चय परमात्मा है। हम उसके निकटतम पहुँचते जायँ—घनिष्ट तक बनते जाय, यही भजन भाव एक प्रकार का आध्यात्मिक व्यायाम माना जाना चाहिए। अन्तःकरण की पवित्रता अक्षुण्ण बनाये रहने के लिए यह आवश्यक है। जैसे मलीनता के शोधन हेतु शरीर को नहलाने, कपड़ों को धोना, कमरे को बुहारना, वर्त्तनों का माजना आवश्यक है। इसी प्रकार ईश्वर की पवित्रता और प्रखरता का प्रभाव आत्मा पर अधिकाधिक आच्छादित करने के लिए हमारे नित्य कर्म में उपासना सम्मिलित रहनी चाहिए।

उपरोक्त सभी कर्त्तव्य कर्म एक से एक अधिक आवश्यक हैं। इनमें से एक की भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए और न ऐसा सोचना चाहिए कि किसी एक का पालन करने से काम चल जायगा। मनुष्य जीवन का एक क्षण भी बेकार या बर्बाद नहीं होना चाहिए। खाली दिमाग शैतान की दुकान होती है और खाली समय मनुष्य के ऊपर पतन और पराभव थोपता है। इसलिए कर्त्तव्य कर्म में हमें निरन्तर संलग्न रहना चाहिए। व्यस्तता ही जीवन में श्रेय का समावेश करती है। जो भी काम हाथ के नीचे है उसे पूरी दिलचस्पी के साथ किया जाना चाहिए। उसे सही तरीके से पूरा करना, अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न मानना चाहिए। बेगार भुगतने की तरह आधे अधूरे मन या श्रम से किया हुआ काम हर दृष्टि से काना-कुबड़ा और फूहड़ होता है। उसका बाजारू मूल्य तो कम होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है साथ ही जिसने किया है उसे अनगढ़ माना जाता है। बया पक्षी कैसा सुन्दर घोंसला बनाता है। यह उसके मनोयोग का फल है उसमें रहकर सुखी तो वह पक्षी ही रहता है पर राह चलते दर्शक उसकी प्रशंसा करते जाते हैं। बेगार भुगतने के लिए कबूतर छितरे हुये तिनकों का फूहड़ घोंसला बनाता है। जरा-सी हवा चलते ही वह अण्डे बच्चों समेत जमीन पर आ गिरता है। बेचारे को दुबारा मेहनत करनी पड़ती है। साथ ही हँसी होने और गालियाँ पड़ने की बेइज्जती मुफ्त में ही होती रहती है। मनुष्य को अपने हर काम में कबूतर जैसा फूहड़पन न दिखाकर बया जैसी मुस्तैदी दिलचस्पी का परिचय देना चाहिए। जिम्मेदारी से काम करने वालों की कुशलता दिन-दिन बढ़ती जाती है और समय आने पर वे अपने विषय के प्रवीण पारंगत कहलाने लगते हैं।

गीताकार ने काम को कर्मयोग कहा है और इसे मनोयोग पूर्वक करने से योग सिद्धि की बात कही है। उस कथन में एक बड़ी मार्मिक बात यह है कि लाभ-हानि की चिन्ता न करके कर्म को परिपूर्ण श्रद्धा के साथ करना चाहिए। काम को आगा-पीछा सोचकर तो करना ही चाहिए पर करते समय खिलाड़ी की मनोवृत्ति रहनी चाहिए। खिलाड़ी बीसियों बार हारते जीतते रहते हैं पर मन भारी नहीं होने देते। दोनों ही स्थितियों में मुस्कराते रहते हैं। काम की सफलता अपने हाथ में नहीं। कई बार परिस्थितियाँ ऐसी बन पड़ती हैं कि समझदारी से काम करने पर भी असफलता सामने आ खड़ी होती है। यदि कर्त्ता की तबियत छोटी है तो वह हिम्मत हार बैठेगा और भविष्य में उससे कुछ करते-धरते न बन पड़ेगा। इसी तरह किसी प्रकार बन्दर के हाथ अदरक लग गया और स्वल्प प्रयास में बड़ी सफलता मिल गयी तो अहंकार का ठिकाना न रहेगा। और उस असन्तुलित मनःस्थिति में आगे ठोकर खायेगा। इसलिए गीताकार ने कर्मयोगी के लिए परामर्श दिया है कि वह सचाई के साथ किये गये कर्म को ही प्रसन्नता का परिपूर्ण माध्यम समझें। ऐसी मनःस्थिति होने पर सफलता के अहंकार और असफलता के पाश्चात्ताप से बचाव हो जाता है। ऐसी सन्तुलित मनःस्थिति एक प्रकार की योग विभूति है। जब कर्म करने में ही अपनी पूर्ण प्रसन्नता मान ली गयी तो सफलता की राह नहीं जोतनी पड़ती और सचाई के साथ किया हुआ प्रत्येक कार्य अपने आप में सफलता देने वाली प्रसन्नता जैसा अनुभव होता है। ऐसी निरन्तर हर हालत में प्रसन्न रहने की विद्या जिसे हाथ लग गयी समझना चाहिए कि वह मन का विजेता हो गया और उन हाथों से जो भी काम होगा वह शानदार होगा इसका निश्चय हो गया।

यदि हमारे सभी कार्य लोक मंगल की दृष्टि से—कर्त्तव्य भावना की पूर्ति का लक्ष्य रखकर किये गये हैं तो वे उच्च भावना के अनुरूप पुण्य फलदायक ही होंगे। इन भावनाओं के रहते उनमें दुष्टता का समावेश नहीं हो सकता। कोई व्यावहारिक ज्ञान की कमी से त्रुटि रह भी जायगी तो उस कृत्य को दूषित नहीं कहा जायगा। स्वार्थ बुद्धि से किया गया परमार्थ भी व्यवसाय बन जाता है। यह तथ्य जिसकी समझ में आ गया, उसका कर्त्तव्य परायण जीवन एक प्रकार से योगियों जैसा हो जाता है।

योग के कितने ही प्रयोग उपचार हैं। उनमें से एक अति सरल और अति व्यावहारिक कर्मयोग है। उसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों का साथ-साथ निर्वाह होता है। लोक और परलोक दोनों सधते हैं। संसार की सेवा और आत्म-कल्याण दोनों का समान रूप से समावेश हो जाता है। निठल्ले बैठे रहना तो ऐसे भी किसी के लिए सम्भव नहीं प्रकृति किसी को ठाली बैठने नहीं देती और शरीर और मन की संरचना ही ऐसी ही है जिसमें कुछ न कुछ किये बिना काम ही न चले, चैन ही न पड़े। ऐसी दशा में समय काटने वाले निरुद्देश्य काम ज्यों-त्यों करके करने की अपेक्षा यही अच्छा है कि अपने हर काम में उच्च उद्देश्य का समावेश किया जाय और उसे पूरी तन्मयता तथा तत्परता के साथ सम्पन्न किया जाय। कोई यह न समझे कि अधिक काम करने में व्यस्त रहने से शरीर या मन को क्षति उठानी पड़ेगी। कर्मयोगी की सन्तुष्टि एवं प्रसन्नता उसे हर क्षेत्र में प्रगतिशील एवं सम्पन्न बनाती है। इसलिए कर्म को धर्म समझकर उसे परिपूर्ण श्रद्धा के साथ करना ही श्रेयस्कर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्त्र की जीवन दर्शन पाठशाला

ज्यां पाल सार्त्र (फ्रांस) संसार के माने हुए दार्शनिक थे। उनने सारा जीवन परमार्थ प्रयोजनों में लगाया। साथ ही जीवन को आनन्द से भरा-पूरा बनाने के लिए उनने अपने अनुभवों का सार संक्षेप भी अनेक लेखों में लिखा है। उनके सामने कठिनाइयाँ भी कम नहीं रहीं। पर एक दिन के लिए भी कभी किसी ने उन्हें खिन्न, उद्विग्न या उदास नहीं देखा। वे परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाते थे और दूसरों को भी वैसी ही शिक्षा देते थे। उनकी शिक्षाओं ने अनेकों के मुरझाये जीवनों में उल्लास भरी किरणें उत्पन्न करने में सफलता पाई।

सार्त्र की एक आँख आरम्भ से ही खराब थी। दूसरी पर अत्यधिक दबाव न डालने के लिए डाक्टरों ने सलाह दी तो भी वे शिक्षा से वंचित नहीं रहे। पढ़कर सुना देने हेतु उनने अपने घर के लोगों को सहमत कर लिया। इसके उपलक्ष में कृतज्ञता व्यक्त करने और दूसरों के सामने प्रशंसा करने में कभी उनने कोताही न की। कर्कश और रूखा स्वभाव होने पर जो लाभ उठाना उनके लिए कठिन पड़ता वह उन्हें सरलता पूर्वक उपलब्ध होता रहा और उनने अपनी स्मरण शक्ति पर पूरा जोर देकर स्नातकोत्तर परीक्षा अच्छे डिवीजन में पास कर ली एवं अपने काम में जुट गये। लेखन कार्य में भी वे दूसरों की सहायता लेते रहे। साथ ही जीवन दर्शन पर अति महत्वपूर्ण पुस्तकों का सृजन करते रहे। आँखों के अभाव में जो कठिनाई किसी को हो सकती है वे सभी उनके सामने थीं। पर इसके कारण न तो कभी उनने चेहरे पर उदासी आने दी, न निराशा व्यक्त की और न अपना काम रोका। बुढ़ापे में दूसरी आँख ने भी जवाब दे दिया था पर वे इस पर भी सदा यही कहते रहे कि संसार में करोड़ों आँखें मेरी हैं। सहायता करने को इच्छुक और उत्सुक लोगों की कमी नहीं। मात्र हम अपनी कर्कशता के कारण ही उस सहयोग का लाभ नहीं उठा पाते।

सार्त्र सदैव मित्रों से घिरे रहते थे। उपयोगी ज्ञान का आदान-प्रदान क्रम वे सदा ही चलाते रहते। उनके मित्रों में वृद्ध कम थे और युवक अधिक। इसका कारण वे बताते, मैं युवक जो हूँ। फिर अपने साथियों की संख्या अपनी आयु वालों के साथ ही क्यों न बढ़ाऊँ। उन्हें बूढ़ों (मानसिक दृष्टि से) के प्रति चिढ़ थी। कारण कि वे सदा अपने अच्छे भूतकाल का बरदान करते रहते हैं और भविष्य को आशंकाओं से भरा अनुभव करते रहते हैं। जबकि बुढ़ापे में मनुष्य का आयुष्य और अनुभव परिपक्व होने के कारण वह अधिक उपयोगी होना चाहिए एवं जो उपयोगी है उसका मस्तिष्क उज्ज्वल होना चाहिए। सार्त्र ने परामर्श के लिए कई घण्टों का समय निर्धारित रखा था। उसमें वे उन्हीं प्रसंगों को छेड़ते थे जिसमें कठिनाइयों के बीच प्रसन्नता से रह सकना और सफलता के मार्ग पर चल सकना सम्भव हुआ हो। ऐसे घटनाक्रमों के लिए उनकी स्मृति एक विश्व कोष मानी जाती थी। जो भी परामर्श वे देते थे उनके पीछे सिद्धान्त की विवेचना थोड़ी और घटनाक्रमों की लड़ी बहुत लम्बी होती थी। उदाहरणों के माध्यम से वे यह गले उतरते थे कि साधन सम्पन्न व्यक्ति किस प्रकार अपनी क्षमताओं को सत्प्रयोजनों में लगाकर अपने क्षेत्र में प्रशंसा के पात्र बने। साथ ही उन्हें ऐसी घटनाओं की स्मृति भी कम नहीं थीं जिनमें कठिनाइयों से घिरे हुए लोगों ने अपने धैर्य, साहस और अनवरत प्रयत्न के आधार पर इतना कुछ कर दिखाया जितना कि साधन सम्पन्न लोगों के लिए भी सम्भव नहीं थे। मनुष्य का पराक्रम कितना सामर्थ्यवान है और किसी को भी किस प्रकार आगे बढ़ाने ऊँचा उठाने में कारगर हो सकता है, इसके रहस्य वे इतने अच्छे ढंग से समझाते थे कि किसी को उस परामर्श प्रतिपादन में सन्देह न रह जाता था। उनकी मित्र मण्डली में से एक भी ऐसा नहीं था जो अपने को अनेकों के लिए अनुकरणीय न बना सका हो। एक मित्र दूसरे अनेक मित्रों को साथ लेकर आता था। इस प्रकार उनकी नियत समय पर चलने वाली वार्त्ता एक प्रकार से जीवन दर्शन की पाठशाला बन गई थी। सुकरात भी ऐसी ही शिक्षा विधि के लिए प्रख्यात थे। सार्त्र को सुकरात का बीसवीं सदी संस्करण माना जा सकता है। ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर एक है—अनेक नहीं

इस सृष्टि का सृष्टा एक ही है। वही उत्पादन, अभिवर्धन तथा परिवर्तन की सारी प्रक्रियाएँ अपनी योजनानुसार सम्पन्न करता है। न उसका कोई साझीदार और न सहायक। मकड़ी जब चाहती है अपने मुँह के पानी से ही जाला बना देती है और जब उसका मन आता है जाले को समेटकर गोली की तरह निगल लेती है। शास्त्रकारों ने बताया है कि अनादिकाल में वह—परब्रह्म—अकेला था। अकेलपन उसे खला। इच्छा हुई कि एक से बहुत हो जाऊँ। इस इच्छा ने ही सृष्टि का रूप-धारण कर लिया। इस प्रकार एक से बहुत बनने की इच्छा पूरी हो गई इस सृजन के कण-कण में वह समा गया। लहरों पर चमकने वाले सूर्य की तरह वह अनेकाधा दृष्टिगोचर होने लगा। प्राणियों को माया ने भर माया और वे अहन्ताग्रस्त होकर अपनी-अपनी प्रथक स्वार्थपरता से ग्रस्त होकर निजी इच्छा आवश्यकताओं के अनुरूप क्रिया-कृत्य करने लगे। यह भूल गये कि हम एक ही उद्गम से प्रादुर्भूत हुए हैं और परस्पर सहोदर भाई के सदृश्य हैं। सबका स्वार्थ संयुक्त है। एक की सत्ता भिन्न-भिन्न प्रकार की हो गई और समझा जाने लगा कि जो जिस देवी-देवता की पूजा-पत्री करेगा वह उसी को अपना समझेगा और उसी की हिमायत करेगा। इतना ही नहीं जो अपने यजमान का उपेक्षा पात्र या विरोधी होगा उसे त्रास देने से भी न चूकेगा। यह मान्यता है आज के बहुदैववाद की। इस प्रकार सृष्टा का ही खण्ड विभाजन नहीं हुआ वरन् अपने-अपने कुल वंश ग्राम नगर के भी पृथक-पृथक देवी-देवता बन गये। प्रगति सामूहिक है। इसलिए हिल-मिलकर रहना चाहिए और मिल-बाँटकर खाना चाहिए सुखों को बाँट देना और दुःखों को बँटा लेना ही श्रेयष्कर है। उनमें आदमी स्वार्थान्ध हो जाता है और अपनी सुविधा के लिए दूसरों की असुविधा पर ध्यान नहीं देता।

विभाजन और संकीर्णता इतने तक ही सीमित नहीं रही। परमेश्वर का भी बँटवारा कर लिया गया। अनेकों देवी देवता बनकर खड़े हो गये। उनकी आकृति ही नहीं प्रकृति भी अपने को न पूजने—दूसरे को पूजने पर वे देवता रुष्ट होने और त्रास देने पर उतारू होने लगे। बहुदैववाद के आरम्भिक दिनों में तीन ही प्रमुख थे ब्रह्मा, विष्णु, महेश और उनकी पत्नियाँ सरस्वती, लक्ष्मी, काली। इसके बाद तो नित नये देवता उपजने लगे। देवताओं की संख्या अगणित हो गई और देवियों की भी। उनकी चित्र-विचित्र फरमाइशें भी गढ़ी गई। इनमें से कुछ शाकाहारी थे कुछ मांसाहारी। कुछ क्रोधी, कुछ शान्त मिजाज। कुछ तो प्रेत पितर ही देवी-देवता बन बैठे। इनकी संख्या हजारों लाखों तक जा पहुँची। इस सन्दर्भ में पिछड़ी जातियों ने देव रचना का काम बहुत उत्साह से बढ़ाया। शारीरिक मानसिक बीमारियों को उन्हीं के रुष्ट होने का कारण माना जाने लगा। उपचार यही था कि किसी मध्यवर्ती ओझा की मारफत समाधान करने के लिए उनकी रिश्वत का पता लगाना। इस समाधान में अक्सर खाने-पीने की वस्तुओं की याचना होती थी। विशेष कर पशु-पक्षियों के बलिदान की। इनका कोई स्थान विशेष बना हो तो वहाँ पहुँचकर धोक देने की (प्रणाम करना)। घर में नई बहू आने या नया बच्चा पैदा होने पर कुल देवता की दर्शन झाँकी करने जाना भी आवश्यक समझा जाने लगा। इस प्रकार देवता का 'मूड' ठीक रखना भी हर परिवार के लिए आवश्यक जैसा बन गया। यह छोटी समझी जाने वाली बिरादरियों की बात हुई। बड़ी बिरादरियों के देवता अपेक्षाकृत अधिक शानदार, ठाट-बाट वाले, बड़े देवी-देवताओं के भक्त बनने में अपनी प्रतिष्ठा समझने लगे। उनकी पूजा पंडित पुरोहित द्वारा दुर्गा शप्तशती पाठ, शिव महिमा रुद्री आदि का पाठ, हवन, पूजन जैसे उपचार और उनमें से अपने लिए जिन्हें चुना गया हो उनके दर्शन झाँकी करने का सिलसिला चलना। बहुदैववाद के पीछे अनेका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेक कथा कहानियाँ जोड़ी गई और उनकी प्रसन्नता से मिलने वाले लाभों का—उनकी नाराजी से मिलने वाले त्रासों की माहात्म्य गाथाएँ गढ़ ली गईं। कितने ही देवताओं का किन्हीं पर्व त्यौहारों के साथ सम्बन्ध जोड़ दिया गया। कईयों के स्थान विशेष पर जाना आवश्यक माना गया। इनमें से कुछ पुराने बने रहे और कितने ही नये बन कर खड़े हो गये। कई उपेक्षित होते चले गये और कई एकदम नये विनिर्मित होकर प्रख्यात हो गये।

यह बहुदेववाद हिन्दुओं के छोटे बड़े वर्गों में तो है ही। अन्य देशों और धर्मों के पिछड़े वर्गों में भी उसी भाँति प्रचलित है। अफ्रीका के दक्षिण पूर्व एशिया के, दक्षिण अमेरिका के पिछड़े वर्गों में यह प्रचलन बहुत अधिक है समझदार समुदाय तो क्रमशः अब इस जंजाल से अपना पीछा छुड़ाते जा रहे हैं।

इस्लाम और ईसाई सम्प्रदायों में ऐकेश्वरवाद है। तो भी उनमें पीर, औलिया, पैगम्बर पूजते हैं और उनकी जियारत के लिए जाते हैं। जैन और बौद्ध धर्मों में तीर्थंकरों की लगभग वैसी ही कट्टर मान्यता है। हिन्दुओं के भाँति उनके भी तीर्थ हैं और स्थापित प्रतिमाओं के अनेकानेक नाम हैं। उनकी विशेषताएँ अपनी-अपनी कही गई हैं। मनौती इन सभी की मानी जाती है। हमारा अमुक काम बन जाय तो दर्शन करने आने या भेंट चढ़ाने का पूर्व संकल्प किया जाता है यही मनौती है। इसे पेशगी रिश्वत की शर्तबन्दी भी कहा जा सकता है। एक की सफलता सुनकर दूसरा लालायित होता है और महात्म्य तथा मनौती का प्रचलन निरन्तर बढ़ता जाता है।

इस सन्दर्भ में पुनर्विचार करने की आवश्यकता है अन्यथा यह भ्रम जंजाल बढ़ता ही जायगा और अकारण लोगों में भय तथा लालच का भाव बढ़ता जायगा अनास्था बढ़ेगी सो अलग। उन देवताओं के ऐजेन्टों तथा पुजारियों के पौ बारह होते रहेंगे और बेचारे भावुक लोग अन्ध श्रद्धा के कारण अपनी जेब कटाते रहेंगे।

समझा जाना चाहिए कि ईश्वर एक है। उसकी व्यवस्था में अनेक साझीदार नहीं हो सकते। धर्म सम्प्रदायों की मान्यता के कारण उसके आकार-प्रकार भी अनेक प्रकार के नहीं हो सके। सम्प्रदायों में ईश्वर की आकृति और प्रकृति अनेक प्रकार की मानी गई है। यदि यह सच मानी जाय तो इनमें से किसी एक को सच्चा और बाकी सबको झूठा कहना पड़ेगा। किस को सही और कितनों को गलत माना जाय। यह बड़ा टेढ़ा प्रश्न है। फिर इसकी कोई कसौटी भी नहीं है। मान्यताएँ श्रद्धा पर अवलम्बित हैं। वह श्रद्धा पैगम्बरों और ऋषियों के कथनों पर आधारित है। उनके प्रति पूज्य भाव रखते हुए भी यह निर्णय करना कठिन है कि परस्पर विरोधी इन प्रतिपादनों में कौन सही और कौन गलत है। ऐसी दशा में किसी सत्यान्वेषी के लिए भारी कठिनाई उपस्थिति होती है कि इस विरोध विडम्बनाओं में से किसे ग्राह्य और किसे अग्राह्य करें।

तत्व-दर्शन और विवेक बुद्धि के आधार पर यह मानना पड़ता है कि परमेश्वर एक है। सम्प्रदायों की मान्यताओं के अनुसार उसके स्वरूप और विधान सही नहीं हो सकते। यह उनकी अपनी-अपनी ऐसी मान्यताएँ हैं जो मानने वालों की निजी मान्यता पर अवलम्बित हैं।

व्यापक शक्ति को निराकार होना चाहिए। जिसका आकार होगा वह एक देशीय और सीमित रहेगा। कहा भी गया है—'न तस्य प्रतिमा अस्ति" अर्थात् "उसकी कोई प्रतिमा नहीं है।" न स्वरूप न छवि। आप्त वचनों का एक और भी कथन ऐसा ही अभेद्य है। उसमें कहा गया है—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' अर्थात एक ही परमेश्वर को विद्वानों ने बहुत प्रकार से कहा है। यहाँ अन्धों द्वारा हाथी का एक-एक अंग पकड़कर उसे उसी आकृति का बताये जाने वाली कहानी याद आ जाती है।

ईश्वर की प्रसन्नता अप्रसन्नता का आधार नैतिक नियमों का पालन करना ही हो सकता है। नाराज उससे होगा जो चारित्रिक मर्यादाओं का उल्लंघन करेगा। दूसरा आधार पुण्य परमार्थ है। पिछड़ों को आगे बढ़ाना और गिरों को ऊँचा उठाना—समाज में सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन करना यही पुण्य परमार्थ की परिभाषा है। यह मान्यता हर सम्प्रदायों और हर दर्शन द्वारा परस्पर से सर्वमान्य की गई है। विवाद पुण्य-परमार्थ की परिभाषाओं से आरम्भ होता है जिसे दूरदर्शी विवेकशीलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कसौटी पर कसने के अलावा यथार्थता का अनुमान लगाने का और कोई आधार नहीं है।

ईश्वर की पूजा से उसकी प्रसन्नता और न करने से अप्रसन्नता मानी जाने की बात के पीछे भी एक ही रहस्य प्रतीत होता है कि निर्धारित कर्मकाण्डों के सहारे मनुष्य आत्म-परिष्कार और लोक-कल्याण की सत्प्रवृत्तियों के प्रति अधिकाधिक निष्ठावान बने। आमतौर से लोग न्यायशील सर्वव्यापी परमात्मा को भूल जाते हैं और निर्भय होकर कुकर्म करने लगते हैं। कर्मफल की सुनिश्चितता को संदिग्ध मानते हैं। इस भ्रम के निराकरण में ईश्वर स्मरण का, उसके पूजा विधान का अन्तःकरण पर उपयोगी प्रभाव पड़ सकता है और मनुष्य अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश कर सकता है। प्रार्थना मन्त्रों में न्यूनाधिक मात्रा में ऐसे संकेत भी हैं।

चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपहारों को ईश्वर के सम्मुख उपस्थित करने की पूजा प्रक्रिया का यही रहस्य है। इन वस्तुओं में जो श्रेष्ठताएँ हैं उन्हें अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न किया जाय और यह माना जाय कि जल रूपी सरसता, पुष्प जैसी कोमलता, नैवेद्य जैसी मिठास, दीपक जैसी स्वयं जलकर प्रकाश करने की प्रक्रिया, चन्दन की भाँति वातावरण महँकाने जैसी सत्प्रवृत्तियाँ अपने में उत्पन्न करनी चाहिए और श्रेष्ठ व्यक्तित्व को भगवान के चरणों में अर्पित करने की भावना सुविकसित करनी चाहिए। अन्य उपहार भी भेंट किये जाते रहे हों तो उन्हें एक प्रकार का आत्म-प्रशिक्षण समझा जाना चाहिए। भगवान को किसी के स्तवन या उपहार की कोई आवश्यकता नहीं है। पूजा उपासना की समूची प्रक्रिया संकेत रूप में अपने व्यक्तित्व को पवित्र एवं प्रखर बनाने के लिए प्रशिक्षण प्रक्रिया है। जो इतना कर सकेंगे वे सृष्टा का अनुग्रह प्राप्त कर सकेंगे और महामानव, ऋषि, देवता बनने की दिशा में अग्रसर होंगे। उन्हें आत्मसन्तोष और जन सम्मान एवं सहयोग की कमी न रहेगी।

अन्य देशों में प्रचलित भगवानों या देवताओं की आकृति-प्रकृति का निर्धारण किस आधार पर हुआ है इसका कारण तो विदित नहीं है पर भारत के देवताओं को सत्प्रवृत्तियों का प्रतीक मानकर उनकी आकृतियों का गठन किया गया है। जैसे शिव की आकृति में शिर से गंगा का निकलना अर्थात् ज्ञान की धारा प्रवाहित होना। मस्तक पर चन्द्रमा अर्थात् सौम्य शीतलता का होना। गले में मुण्डों की माला अर्थात् मौत को स्मरण रखना। गले में सर्प अर्थात् दुष्टजनों को भी गले से लगाकर उनकी प्रकृति बदलना। नन्दी वाहन—अर्थात् परिश्रमी और सौम्य प्रकृति के प्रति अनुराग होना कमर में सिंह चर्म अर्थात् अनाचारियों का दमन करना। हाथ में त्रिशूल अर्थात् अभाव, अज्ञान और अनाचार का उच्छेदन करना। हाथ में डमरू अर्थात् संगीत उल्लास को पसन्द करना। आदि आदि।

ब्रह्माजी के चार मुख—वेद में निहित ज्ञान की चार धाराओं का प्रसारण, चार प्रसंग, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। कमल पुष्प पर विराजमान अर्थात् सर्वोत्तम पुष्पित आधार की पसन्दगी, इन प्रतीकों के परिचायक हैं।

विष्णु की चार भुजाओं में चार आयुध हैं। शंख अर्थात् जागरण का उद्घोष। चक्र अर्थात् गतिशीलता प्रगति। गदा—पराक्रम—संघर्ष के उपयुक्त शौर्य पराक्रम। पद्म अर्थात खिले कमल जैसी सुगन्ध और शोभा की अवधारणा। गले में वैजन्तीमाला अर्थात् धर्म धारणा। सिर पर मुकुट अर्थात् शासन की स्थिति सुव्यवस्थित रहना आदि।

देवियों में सरस्वती, लक्ष्मी और काली की प्रमुखता है। इनके वाहनों तथा आयुधों में भी ऐसे ही संकेत, सन्देश सन्निहित हैं जिनसे यह प्रेरणा ली जा सकती है कि मनुष्य को अन्य किन विशेषताओं विभूतियों को अपने व्यक्तित्व में विकसित समाविष्ट करनी चाहिए।

यथा—"सरस्वती" वाहन हंस, नीर क्षीर विवेक। हाथ में वीणा पुस्तक। संगीत और साहित्य की कलाकारिता। "लक्ष्मी"—हाथियों द्वारा पूजन। धनवान बनने के लिए हाथियों जैसी बुद्धिमत्ता, बलिष्ठता और उचाई। "काली"—का वाहन सिंह, पराक्रम, साहस, आयुध, तलवार त्रिशूल आदि। आसुरों को निरस्त करने के लिए आवश्यक उपकरणों का धारण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार सभी देवी-देवताओं की आकृति-प्रकृति, बाहन, आयुध आदि के पीछे ऐसे संकेत और सन्देश हैं जिनका विकसित व्यक्तित्व में समावेश होना चाहिए। यह सब आत्म शिक्षण है। जिस प्रकार बाल कक्षाओं में, अ-अमरूद। आ-आम। इ-इमली। ई-ईख। उ-उल्लू। ऊ-ऊँट। के चित्र बनाकर स्वर और व्यंजन की वर्णमाला याद कराई जाती है, ठीक उसी प्रकार देवी-देवताओं की चित्र-विचित्र आकृतियों आयुधों, वाहनों, उपकरणों द्वारा आस्तिकजनों को यह प्रशिक्षण मिलता है कि आस्तिकता का अर्थ श्रेष्ठ सद्गुणों का महत्व समझना और अपने में धारण करना है। यह प्रतीक मात्र है। अनेक मुख, अनेक हाथ वाले देवी-देवताओं का होना विवेकशीलता द्वारा स्वीकार्य नहीं हो सकता। भारत कवियों कलाकारों का देश रहा है। यहाँ के तत्वदर्शियों ने सर्वसाधारण की सामान्य बुद्धि को चित्रकारिता के माध्यम से मानवी गरिमा और उत्कृष्टता के लिए आवश्यक धारणाओं और प्रयासों के सम्बन्ध में रहस्यमय चित्रों में चित्रित किया है। उनका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि निराकार, सर्वव्यापी और न्यायकारी परमेश्वर की सृष्टि व्यवस्था में कोई साझीदार भी है और वे मात्र मनुहार, उपहार, उपचार के आधार पर प्रसन्न अप्रसन्न होते रहते हैं। पात्रता कुपात्रता का विचार किये बिना शाप वरदान देते रहते हैं। रुष्ट और प्रसन्न होते रहते हैं। ऐसी मान्यताएँ—अन्धविश्वास में गिनी जायगीं और उन्हें अपनाने वालों को भ्रमित करेगी। वास्तविकता को कोसों दूर ले जा पटकेंगी। हममें से प्रत्येक को यथार्थवादी और तत्वदर्शी होना चाहिए। ईश्वर सम्बन्धी विविध विधि कथाओं, लीलाओं ओर पूजा उपचारों का प्रचलन इसीलिए है कि हर व्यक्ति विश्व के नियामक और उसके सुनिश्चित विधि-विधान को समझकर चरित्रवान बने और पुण्य-परमार्थ में निरत रहे।

यदि इन मान्यताओं से विरत रहा जाय तो नास्तिकता उपजेगी और मनुष्य स्वेच्छाचारी उद्दण्ड और अनाचारी बनने लगेगा। कुकर्म करने और कुमार्ग अपनाने वाले,समाज दण्ड और राजदण्ड से बच सकते हैं, इन दोनों को ही चकमा दे सकते हैं, पर जिनने आस्तिकता की मान्यता स्वीकार की है उन्हें यह विश्वास बना रहेगा कि घट-घट वासी और सर्वत्र विद्यमान परमेश्वर की दृष्टि से हमारी कृतियाँ छिपी नहीं रह सकती और साथ ही तद्नुरूप "दंड पुरस्कार की परिणति भी फलित हुए बिना नहीं रह सकती। इसलिए आस्तिकता का समूचा ढाँचा खड़ा किया गया है ताकि मनुष्य मानवी गरिमा के प्रतिनिष्ठावान रहे और वह करे जो उसके लिए करने योग्य है। उस मार्ग पर कदम न बढ़ाये जिससे सृष्टा को सृष्टि को, अन्तरात्मा को खिन्न होना पड़े।

परमेश्वर की अनेक शक्तियों व्यवस्थाओं और गतिविधियों को यदि चित्र-विचित्र देवी-देवता माना जाय तो इस अलंकारिक मान्यता में कोई हर्ज नहीं है, पर सृष्टि व्यवस्था में साझीदारी करने वाले स्वतन्त्र अस्तित्व के देवी-देवताओं की मान्यता से मुँह मोड़ लेना ही सत्य और तथ्य को अपनाने की विवेक शीलता है।

लक्ष्मी जी देवताओं के आलस्य प्रमाद से दुःखी होकर दानवों के यहाँ चली गई दानव सम्पन्न हो गये और देवता दरिद्रों की तरह दुःखी रहने लगे।

विष्णु भगवान ने इस अनर्थ को देखा, और लक्ष्मी जी को बुला कर स्थान परिवर्तन का कारण पूछा।

लक्ष्मी जी ने कहा—देव, भूल गये आपने जब मेरा वरण किया था तब मेरा पूरा नाम उद्योग लक्ष्मी था। उद्योगी ही मुझे प्रिय है। आप जब तक उद्योगी हैं तभी तक मैं आपके पास हूँ। प्रमाद बरतेंगे तो आप को छोड़ कर अपने पितृ गृह समुद्र में वापस लौट जाऊँगी। फिर देवताओं की तो बात ही क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोनिग्रह और कामुकता का निराकरण

अपना चेहरा अपनी आँखों से देख सकना सम्भव नहीं, पर वह दर्पण में प्रतिबिम्ब रूप से सहज ही देखा जा सकता है। मन सूक्ष्म है। उसकी स्थिति और प्रकृति की जाँच-पड़ताल करने के लिए वासना तृष्णा और अहंता के स्तर को परखते हुए यह जाना जा सकता है कि व्यक्ति का मानसिक स्तर क्या है?

आत्मा का शासन क्षेत्र मन है। आत्मा की पवित्रता और प्रखरता किस स्तर तक ऊँची उठ सकी, इस प्रगति का लेखा-जोखा इस आधार पर मिलता है कि मन को निग्रहीत और सुनियोजित करने में कितनी सफलता प्राप्त हुई। मन का स्तर किस हद तक परिमार्जित हुआ इसे जाँचने के लिए तृष्णा और अहंता के सूक्ष्म क्षेत्र पर कसौटी लगाने से पहले वासना की प्रत्यक्षता की स्थिति समझना सरल है।

शरीर पर मन का आधिपत्य है और आत्मा का मन पर। मन कहाँ, क्या, कौतुक रच रहा है इसके लिए इन्द्रियाँ ही परीक्षा क्षेत्र हैं। इन्हें नियन्त्रित करना ही मोटे तौर से मनोनिग्रह की सच्ची कसौटी है। इन्द्रियों के साथ लौकिक मन गुँथा हुआ है। व्यक्तिगत चरित्र और चिन्तन का स्वरूप समझने के लिए यह देखना होता है कि इन्द्रियों की वासना वृत्ति को उच्छृंखलता बरतने की छूट तो नहीं मिल गई है। इन्द्रियों का गणना क्रम स्वादेन्द्रिय से होता है, इसके बाद ही कामेन्द्रियाँ आती हैं। पाण्डवों में थे तो पाँच। पर पराक्रम की दृष्टि से अर्जुन और भीम मूर्धन्य माने गए हैं। इसी प्रकार मनोनिग्रह के प्रसंग में इन्द्रिय दमन की साधना करने वालों को दो मोर्चे फतह करने की प्रमुखता देनी होती है। जीभ का चटोरापन काबू में आ गया तो समझना चाहिए कि प्रथम चरण सही रूप से उठ गया। इसके साथ ही संयम युग्म में दूसरा चरण कामेन्द्रिय पर अनुशासन स्थापित करने का है। दोनों ने यदि शालीनता अपना ली हो तो समझना चाहिए कि मनोनिग्रह का प्रत्यक्ष, आरम्भिक और कठिन भाग पूरा हो गया। अब तृष्णा और अहन्ता पर अंकुश लगाना भी कठिन न रहेगा।

रसना का नियन्त्रण स्वाद जीतने से होता है। खाद्य पदार्थों में शकर, नमक मसाले और चिकनाई मिलाने से आहार के अनेकों ललचाने वाले आकार-प्रकार बनते हैं। मिष्ठान्न पकवान और चाट-नमकीन जैसा आकर्षण उपरोक्त मिश्रणों में ही होता है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी होना तो दूर नितान्त हानिकर ही है। इनकी आदत नशेबाजी जैसी पीछे पड़ जाती है और फिर छुड़ाये नहीं छूटती। इनके साथ कड़ाई बरतनी पड़ती है। संकल्प की कड़ाई। जैसे व्रत उपवासों के दिनों बरतनी पड़ती है कि नियम भंग करने से पाप पड़ेगा। बदनामी होगी। व्रत टूटेगा। देवता अप्रसन्न होंगे। पुण्यफल से वंचित रहना पड़ेगा। आदि-आदि। अस्वाद व्रत का पालन लम्बे समय तक क्रिया जाय तो फिर वह भी अभ्यास में आ जाता है। सादी रोटी चबा-चबाकर खाई जाय तो वह बिना दाल शाक के भी बड़ी स्वादिष्ट लगने लगती है। इसी प्रकार शाक दाल आदि के सम्बन्ध में भी है वे भी कुछ दिन के अभ्यास से अपने स्वाद विशेष से मनभावन लगने लगते हैं। जब अफीम तमाखू शराब जैसे कड़ुए पदार्थ कुछ दिन की आदत से स्वभाव के अंग बन जाते हैं और उनके बिना काम नहीं चलता तो कोई कारण नहीं कि अभ्यास से अस्वाद आहार प्रिय न लगने लगे। स्वभाव का अंग न बन जाय। यह मात्र निग्रहीत मन के अभ्यास पर निर्भर है।

दूसरा प्रसंग कामेन्द्रिय का है उसमें स्त्री की छवि में उत्तेजक आकर्षण देखने और रतिक्रिया की स्मृति को मस्तिष्क में घुमाने से उच्छृंखलता उत्पन्न होती है और वैसा अवसर बार-बार प्राप्त करने के लिए मन करता है। रति कर्म का योग तो जब-तब ही बैठता है। अनेक उत्तेजक मुद्राएँ जो मस्तिष्क में घूमती हैं, उनकी निकटता तक सम्भव नहीं हो पाती। शरीर स्पर्श तक कठिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वे छवियाँ और उनके साथ अठखेलियाँ मात्र कल्पना चित्रों के रूप में ही मनःक्षेत्र में निरन्तर छाई रहतीं हैं। यह मानसिक व्यभिचार ही मस्तिष्क को अधिक उद्वेलित करता है। किसी उपयोगी काम में चिन्तन को केन्द्रीभूत नहीं करने देता। इसलिए कहा गया है कि यौनाचार का प्रत्यक्ष व्यवहार तो कुछ मिनटों में ही समाप्त हो जाता है पर शृंगारिक अश्लील चिन्तन ढेरों समय उन्माद की तरह छाया रहता है। ऐसी स्थिति में वह मनोविकार बन जाता है और उससे शरीर की अपेक्षा मन को अधिक क्षति पहुँचती है।

कई अविवाहित, विधुर अथवा तथाकथित ब्रह्मचारी प्रत्यक्ष काम सेवन से बचे रहने पर भी ब्रह्मचर्य के लाभ से कोसों दूर रहते हैं। उनकी आकृति प्रकृति मनोदशा और तन्दुरुस्ती गये बीते स्तर की देखी जाती है। इसका कारण एक ही है मन पर उन्माद की तरह कामुकता का बुखार चढ़ा रहना और चिन्ता, क्रोध, भय आदि मनोविकारों की तरह शारीरिक और मानसिक ढाँचे को लड़खड़ा देना। इसीलिए अविवाहितों की शारीरिक एवं मानसिक तन्दुरुस्ती विवाहितों की तुलना में और भी अधिक गई बीती देखी जाती है। इसका कारण कामुक चिन्तन का उन्माद मनोभूमि पर छाया रहता है।

इस प्रेत पिशाच से कैसे पीछा छूटे? उसका उत्तर भी मन को समझाने में सहमत करने पर निर्भर है। युवा शरीरों की शृंगारिक सज्जा, देखने या स्मरण करने में उद्वेग उत्पन्न होता है। पर इस समुदाय को संसार में—आँखों से सर्वथा प्रथक नहीं किया जा सकता। जहाँ तक हो सके ऐसी छवियों की निकटता के अवसर चुकाने चाहिए। घरों में ऐसे चित्र नहीं टाँगने चाहिए। इन दिनों ऐसे कैलेण्डर खूब छपते हैं और मनचले लोग घरों में उत्साह पूर्वक उन्हें टाँगते हैं। अश्लील चित्रों और कामुक विवरणों वाला साहित्य भी खूब बिकता है। जो कमजोर मनोभूमि पर बड़ा घातक प्रभाव डालता है। सिनेमाओं में ऐसे कृत्य गायनों, हाव-भावों की भरमार रहती है। इसके अतिरिक्त यौनाचार के चित्र एवं ब्लू फिल्मों के रूप में जहर गैर कानूनी होते हुए भी लुक-छिपकर खूब बिकता है। ऐसे उपकरणों की विषाक्त परिणति को समझते हुए साँप-बिच्छू की तरह दूर रहने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए पर यह सामयिक एवं अधूरे प्रयत्न मात्र हैं।

होना यह चाहिए कि अपने परिवार की माता, बहिन या पुत्री की स्वस्थ और वयस्क छवियाँ मस्तिष्क में बिठानी चाहिए। यदि अन्य किसी महिला का कल्पना चित्र मस्तिष्क में आये तो उन्हीं पारिवारिक सम्बन्धों वाली महिलाओं का चित्र उस अन्य कल्पना चित्र के स्थान पर अड़ा देना चाहिए। हममें से प्रत्येक का निजी एवं सगे सम्बन्धों का परिवार होता है। उनमें बहिनें और पुत्रियाँ कुछ न कुछ ऐसी होती हैं जिनकी छवि उत्तेजक हो। इतने पर भी अपने मन में उनके प्रति कोई अश्लील विचार नहीं उठते। बहिनें राखी बाँधती हैं, उनमें से प्रायः युवा ही होती हैं। बेटियों का कन्यादान देते उन्हें पढ़ाते लिखाते एवं बुलाते चलाते हैं। इस सम्पर्क में कोई गर्हित विचार पास भी नहीं फटकने पाता। यहाँ तक कि इन सगी बहिन बेटियों की ओर कोई पास-पड़ौस वाला लड़का कुदृष्टि से देखता है तो उसका सिर तोड़ने के लिए प्रतिशोध से भभक उठते हैं। ठीक ऐसी ही कल्पना हमें उन सभी छवियों के साथ जोड़नी चाहिए जो अश्लील वेष-भूषा या भाव भंगिमा के साथ हमारे मनःक्षेत्र में प्रवेश करती है।

यों आवश्यक तो यह भी है कि युवा लड़कियों को उत्तेजक वेष-भूषा बनाने से रोका जाय। उन्हें सादा जीवन उच्च विचार की महत्ता बताई जाय। प्राचीन-काल के उन प्रचलनों का स्मरण दिलाया जाय जिनमें युवतियाँ लज्जा को अपनी कुलीनता का चिन्ह मानती थीं—नीची आँखें करके चलती थीं और सीना, पेट, पैर आदि को इस प्रकार कपड़ों से ढककर रखती थीं, जिससे किसी की कुदृष्टि न पड़े। इस सम्बन्ध में उच्छृंखल प्रचलन जैसे-जैसे हुआ है वैसे-वैसे बलात्कार, अपहरण, छेड़-छाड़, व्यभिचार की घटनाएँ अनेक गुनी बढ़ गई हैं। अच्छा हो हम अपनी बहिन बेटियों को और प्रभाव क्षेत्र की लड़कियों को इस कुप्रचलन को अपनाने से बचायें जो प्रकारान्तर से रास्ता चलने वालों की आँखों में अकारण ही विषाक्तता उभारता और अनुचित आक्रामक कदम उठाने के लिए आमन्त्रित करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य बात असत्य नियन्त्रण की है। हर युवती को वेश्या समझने और उसके साथ अश्लील सम्बन्ध बनाने की कल्पना करना भी जननेन्द्रियों का दुराचार है। हमें इस कल्पना से मन को बचाना चाहिए। साथ ही यौनाचार के घृणित पक्ष को मन से सदा बाहर करते रहना चाहिए। मल, मूत्र के अतिरिक्त अन्य छिद्रों से कफ भी निकलता है। आँख से कीचड़, नाक और गले से कफ भी कई बार बाहर आता है। वह देखने में कितना घृणित और चित्त को खराब करने वाला होता है। मल मूत्र के स्थान शरीर भर में सब में कुरूप होते हैं। उन्हें दृष्टि से ओझल रखने के लिए प्रकृति ने घने बालों से ढक रखा है। यह संरचना सोद्देश्य है। मूत्र प्रवाहित करते रहने के कारण वे दुर्गन्धित भी होते हैं। इसके अतिरिक्त मासिक धर्म में कई-कई दिन तक रक्त प्रवाहित होता है। आजकल कामोचार की मर्यादा भंग करने या दूसरे मानसिक कारणों से अधिकांश युवतियों को श्वेत प्रदर की शिकायत भी रहती है और वह प्रवाह तीसों दिन चलता ही रहता है। इन घिनौने स्रावों की, प्रकृति द्वारा बनाई भोंडी बनावट की यदि घृणा उत्पादक दृष्टि से यथार्थवादी कल्पना की जाय तो सहज ही उस ओर आकर्षण उत्पन्न होने के स्थान पर विरक्ति होती है और मन अकारण उन प्रसंगों की ओर दौड़ लगाना बन्द कर देता है।

ब्रह्मचर्य की महत्ता समझने के लिए हनुमान, भीष्म पितामह, शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द आदि की छवियाँ मस्तिष्क में घुमानी चाहिए। व्यभिचारी किस प्रकार हर दृष्टि से खोखले हो जाते हैं। इसकी भी कल्पना करनी चाहिए। साथ ही दोनों के मध्य बनने वाली आकाश-पाताल जैसी खाई को अपनी मान्यता में स्थान देना चाहिए। पत्नी को सगा भाई मानकर उसकी उपयोगिता एक दूसरे को अधिक समुन्नत सुसंस्कारी, संयमी शालीन बनाने की दृष्टि से समझना चाहिए। धर्मपत्नी को भी रमणी, कामिनी की दृष्टि से देखा जाता रहेगा तो वह भी नागिन, बाघिन की तरह तप तेज को नष्ट करेगी। फिर बाहर की अन्यान्य महिलाओं के बारे में कुकल्पना करने के दुष्परिणामों का तो कहना ही क्या? यहाँ जो बात पुरुषों को नारी के सम्बन्ध में कही गई है। ठीक वही नारी को नर के सम्बन्ध में समझनी चाहिए।

●

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जिन दिनों बीजापुर जेल में थे, बड़ी यातनापूर्ण मानसिक स्थिति से गुजर रहे थे। उन्हें ५ वर्ष की सजा मिली थी, एवं उसमें छूट की कोई सम्भावना नहीं थी उन्होंने एक लेख में लिखा है कि एक मृतात्मा ने, जिसे स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के कारण उसी जेल में १८५७ के दिनों फाँसी लगी थी—उन्हें साकार रूप में आकर कई बार कहा—"तुम शीघ्र ही जेल से मुक्त हो जाओगे पर घर की हालत ठीक होने पर व तुम्हारा मानसिक संतुलन बनने पर फिर १ वर्ष के लिये जेल जाओगे।" चार-पाँच दिन ऐसा चला व फिर वैसा ही हुआ जैसा उसने कहा था। नमक सत्याग्रह में वे फिर गिरफ्तार हुए एवं एक वर्ष बाद छूटकर फिर आन्दोलन में शामिल हो गए। इस घटना से उनका सूक्ष्म जगत व उसके अस्तित्व पर दृढ़ विश्वास बैठ गया। उनका कथन था कि लोकमान्य तिलक की आत्मा अक्सर उन्हें प्रेरणा देने आती थी व कहती थी कि मातृभूमि के लिये संघर्ष करने वालों को अदृश्य जगत में विद्यमान आत्माएं सतत् सहयोग देती रहेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसकान - एक जादू भरा कला कौशल

ऐसी प्रकृति किन्हीं विरलों की ही रही जो हँसते रहे और दूसरों को हँसाते रहे । हलकी मुसकान वाला चेहरा देखकर दर्शकों की वाछें खिल उठती हैं । जो ठठाका मारकर हँसना तो कभी-कभी अपमान, उपहास या व्यंग का कारण भी समझा जाता है पर मन्द मुसकान में न मनुष्य की शालीनता घटती है और न किसी को अन्यथा अभिप्राय निकालने का अवसर मिलता है । ऐसे मनुष्य कम ही होते हैं पर जो होते हैं वे अपनी इस प्रसन्नता अभिव्यक्ति से समूचे सम्पर्क क्षेत्र को उल्लसित बनाये रहते हैं । जिनने इस आदत का महत्व न समझा हो उन्हें समझना चाहिए और धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते हुए इस प्रवृत्ति को विकसित करना चाहिए । ऐसा व्यक्ति सर्वप्रिय बनता है । उसके समीप रहने के लिए सबका मन चलता है । आँखों के आगे से हट जाने पर सूना-सूना लगता है ।

प्रसन्न मुख मुद्रा की पूर्णता तभी है जब उसके साथ प्रशंसा और सहानुभूति की अभिव्यक्तियाँ भी निकलती रहें । संसार में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जिसमें अच्छाइयों का सर्वथा अभाव हो । ढूँढ़ने पर हर किसी में कुछ न कुछ विशेषता मिल जाती है । चर्चा का प्रसंग आने पर उन्हीं को व्यक्त करना चाहिए । दोष-दुर्गुणों को एकान्त में अथवा अच्छी मुख-मुद्रा देखकर ही करना चाहिए । ताकि वह स्वस्थ मनःस्थिति में उस पर विचार करने तथा सुधरने के लिए प्रयत्न कर सके,

कई व्यक्तियों का स्वभाव गम्भीर रहने का होता है । वे उदास या निराश प्रतीत होते हैं अथवा चिन्ता मग्न लगते हैं । इस प्रकृति के लोगों को कोई दार्शनिक विद्वान या कार्यों में व्यस्त भले ही मान ले पर उसके साथ सहज सम्बन्ध बनाने का मन नहीं होता । डर रहता है कि कुछ कहने पर वे न जाने उसका क्या अर्थ लगा बैठें और झिड़क न दें या निरुत्तर रहकर अपनी गम्भीरता और भी अधिक रहस्यमय न बना ले ।

तुनक मिजाज लोगों की संख्या भी कम नहीं होती । यह जल्दबाज और छिद्रान्वेषी होते हैं । हर काम में हर व्यक्ति में, हर परामर्श में वे दुर्भाव छिपा ढूँढ़ते हैं और अन्तरंग भी अहंकार की मात्रा बढ़ी-चढ़ी होने के कारण उबल पड़ते हैं या व्यंग करते हैं । उनकी भवें हर समय चढ़ी रहती हैं । ऐसे नर-नारियों से निपटना टेढ़ी खीर है । फिर भी बच्चों को फुसलाने की तरह आरम्भ में उनका रुझान टटोलकर उनके अनुरूप 'ठकुर सुहाती' कहनी चाहिए और फिर जैसे-जैसे पारा नीचे उतरता जाय वह बात कहनी चाहिए जो उनके, अपने और सबके हित की है । ऐसे लोग फुसलाने पर प्रसन्न और उदार भी हो जाते हैं और अच्छी मुद्रा में होने पर बात मान भी लेते हैं ।

मनुष्य का सम्पर्क सभी तरह के लोगों से पड़ता है । घर में भी कई प्रकृति के लोग होते हैं उनके साथ विचार विनिमय करने में सबसे बड़ी समस्या उनके मूड—स्वभाव की होती है । कइयों के बड़े विचित्र स्वभाव होते हैं । कुछ इच्छा के विपरीत कह देने पर या कल्पना से स्थिति को कुछ से कुछ समझकर तुनक जाते हैं और कठिनाई से पटरी पर आते हैं । ऐसे लोगों से जो कहना हो उनका पारा नीचे आने पर ही कहना चाहिए अन्यथा वे सही परामर्श को भी अवज्ञा समझकर उबल भी पड़ते हैं । हर स्थिति में अपना निर्वाह करने के लिए अच्छा तरीका यह है कि अपना मन हलका रखा जाय और मन्द मुसकान चेहरे पर बनाये रखने का अभ्यास करना चाहिए ।

प्रसन्न मुख मुद्रा मनुष्य का सर्वोत्तम गुण है । इसके लिए किन्हीं लाभदायक या अनुकूल उपलब्धियों की आवश्यकता नहीं । मात्र कुछ दिन के अभ्यास में यह विभूति हाथ लग जाती है । ऐसा मनुष्य कैसे ही वातावरण में—कैसे ही लोगों के बीच क्यों न रहे वह अनेकों आक्रोशों से बचता रहता है । दूसरों को अनुकूल बनाने उन्हें प्रतिकूल से अनुकूल बनाने में भी ऐसे ही लोग सफल होते हैं । ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोहम् जप- हंस योग

उपासना की समग्रता में जप, ध्यान, और भाव इन तीनों के समन्वय की आवश्यकता होती है। पूजा अर्चा को प्रतीक परिचर्या माना जाता है। प्रतिमा की दर्शन झाँकी एवं नमन वन्दन के अतिरिक्त धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत, जल आदि के समर्पण को स्मरण प्रक्रिया के अन्तर्गत लिया जाता है। लोग भगवान को भूले रहते हैं। यह स्मरण नहीं रखते कि सर्वव्यापी और न्यायकारी भगवान सर्वत्र समाया हुआ है वह हमारे चरित्र और चिन्तन को बारीकी से देखता है और इसी आधार पर आक्रोश एवं उपहार जन्य प्रतिक्रिया व्यक्त करता रहता है। भगवान है। इतना मान लेना पर्याप्त नहीं। उसकी प्रतिमा का दर्शन करने या नाम जपने भर से उद्धार हो जाता है यह मान्यता भी अपूर्ण है। आस्तिकता तभी सार्थक होती है जब भगवान को अपनी जीवनचर्या में स्थान दिया जाय। अपने गुण, कर्म, स्वभाव में उसकी प्रेरणा के अनुरूप गतिविधियों का समन्वय किया जाय। यह कार्य नाम लेने या प्रतिमा की झाँकी करने भर से पूरा नहीं होता। चिन्तन और मनन में यह तथ्य भी समाविष्ट रहना चाहिए कि व्यक्तित्व का निर्धारण एवं विकास इस प्रकार किया जाय, जिससे उसका अनुशासन निभे और प्रसन्नता भरा अनुग्रह हस्तगत हो। देवालयों, तीर्थ स्थानों की दर्शन झाँकी इस तथ्य की स्मृति पटल पर गहराई के साथ जमाये रहने के लिए की जाती है। यह सामान्य क्रम है जिसे उसे जितनी अधिक बार चरितार्थ कर सकना सम्भव हो उतना करना चाहिए।

इससे अगला कदम उपासना का है। उसमें नाम जप, ध्यान और भाव का समन्वय होना चाहिए। इसके निमित्त विभिन्न धर्म समुदायों में भिन्न-भिन्न प्रकार के उपाय उपचार बताये गये हैं, पर एक साधना ऐसी है जिसे मत-मतान्तरों से ऊपर सार्वभौम अथवा सर्वजनीन कहा जा सकता है।

वह है सोहम् साधना। इसे हंसयोग भी कहा गया है। यह अनायास ही सधता रहता है, किन्तु लोग इसे भूले रहते हैं। इसे स्मृति पटल पर जागृत कर लिया जाय और अभ्यास में उतार लिया जाय तो बिना किसी अतिरिक्त कर्मकाण्ड के यह साधना स्वयमेव चल पड़ती है।

नासिका मार्ग से श्वास प्रश्वास क्रिया अनायास ही चलती रहती है। पर इसकी ओर किसी का ध्यान विशेष रूप से नहीं जाता। जब उसे व्यवस्थित कर लिया जाता है तो वह भगवद् भक्ति की सर्वांगपूर्ण साधना बन जाती हैं। श्वास-प्रश्वास के साथ एक सूक्ष्म ध्वनि होती है। वह सहज ही सुनने में नहीं आती। ध्यान एकाग्र करने पर कुछ समय में तीन शब्द उभरने लगते हैं। साँस खींचते समय 'सो' और छोड़ते समय 'हम्' की ध्वनि होती है। थोड़े अभ्यास से ही कुछ दिनों में इन ध्वनियों की अनुभूति होने लगती है।

प्राणायाम के तीन पक्ष हैं (१) साँस खींचने को—पूरक (२) साँस रोकने को—कुम्भक और साँस छोड़ने को—रेचक कहते हैं। सोहम् साधना में यह तीनों ही क्रियाएँ होती रहती हैं और 'शब्दब्रह्म' की साधना भी। साँस लेते समय "सो"। रोकते समय (अ-इ) अर्ध आधार और छोड़ते समय 'हम्' की ध्वनि होती है उसे यह कुछ समय के अभ्यास से अनुभव में प्रत्यक्ष उतरने लगते हैं।

बाँस की पोली नली में होकर हवा भीतर जाती है तो सीटी बजने जैसी ध्वनि होती है उसी को 'सो' समझना चाहिए और नाक के साँस छोड़ते समय सभी जीवधारियों की नासिका से 'हम्' शब्द स्पष्ट होता है। साँप की फुसकार में—यह शब्द अधिक स्पष्ट होता है। जिसे फुसकार कहते हैं। साँस खींचने और निकालने के बीच में एक स्वल्प अवधि का विराम होता है। उसे (अ) (ऽ) आधा अ कहा जा सकता है। छोड़ते समय की ध्वनि' "हम" जैसी प्रतीत होती है। इस प्रकार तीनों क्रियाओं को मिलकर 'सोऽहम्' शब्द बन जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोहम् को उल्टा कर देने पर 'हंस' बन जाते हैं इसलिए इसे हंसयोग भी कहते हैं।

'सः' का अर्थ है—वह। अहम् का अर्थ होता है मैं। पूरे सोहम् शब्द का अर्थ होता है। "वह मैं हूँ" वेदान्त का सार इन्हीं शब्दों में सन्निहित है। सोऽहम् शिवोऽहम् सच्चिदानन्दोऽहम्' आदि शब्द इसी के पर्यायवाची हैं. तत्वमसि—अयमात्मा ब्रह्म—प्रज्ञा—'ब्रह्म' शब्दों में उद्-बोधन कराया गया है कि तू ही ब्रह्म है। यह आत्मा ही ब्रह्म है। मैं शिव हूँ—मैं सच्चिदानन्द हूँ। यह शब्दाकार मात्र है। सबका अर्थ एक ही है—"मैं वह (परब्रह्म) हूँ। इसमें आत्मा और परमात्मा की एकता का भाव सन्निहित है। इसे अद्वैत भाव भी कह सकते हैं।

भक्त और भगवान को दो मानते हुए की जाने वाली प्रार्थना को द्वैत कहते हैं। पूजा प्रयोजन में प्रयुक्त होने वाले कर्मकाण्ड एवं वस्तु विनियोग को अलग मानने से त्रैत सिद्धान्त बन जाता है। अद्वैत भाव में अपने आपको भगवत् समर्पण करना होता है और जिस प्रकार आग ईंधन—नदी नाला मिलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार अद्वैत भाव की साधना में भक्त और भगवान दोनों मिलकर एकत्व का अनुभव करते हैं। जिस प्रकार नमक या शकर पानी में घुलकर एक रूप हो जाता है यह समर्पण भाव अद्वैत है।

भगवान के प्रति "त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव" की भावना रखकर आराध्य प्रभु के सम्मुख प्रार्थना करने की प्रक्रिया द्वैत है और धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, पुष्प का समर्पण करते हुए आत्म निवेदन करने की प्रक्रिया त्रैत है। प्रकृति पदार्थों का पूजा में समावेश हो जाने से वह त्रैत भावना बन जाती है। उपासना के यही तीन उपचार हैं। भक्त अपनी-अपनी भावना के अनुरूप इनमें से किसी का भी चयन कर सकते हैं।

'सोहम्' उपासना को यों अद्वैत कहा जाता है। क्योंकि उसमें [स—वह] अहम्(मैं) होने के समन्वय का समर्पण का एकाकार होने के भाव हैं। किन्तु तत्व दर्शन के तीनों प्रयोजनों के अनुरूप भी इसका अर्थ हो सकता है। स—वह—अहम्—मैं, मैं और वह दोनों की स्थिति अलग-अलग मान लेने पर यह द्वैत हो जाएगा और इस ध्वनि के साथ सांस का आवागमन प्रकृति पदार्थ है इसलिए यह त्रैत भी हो सकता है। भक्त को अपनी मान्यता और भावना के अनुरूप इनमें से किसी को भी अपना लेने की गुंजायश है।

जब सांस भीतर जा रही हो तब 'सो' का व्रत, भीतर रुक रही हो वह (अ) का और जब उसे बाहर निकाला हो तब 'हम' ध्वनि का ध्यान करना चाहिए। इन शब्दों को मुख से बोलने की आवश्यकता नहीं है। मात्र श्वास के आवागमन पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है और साथ ही यह भावना की जाती है कि इस आवा-गमन के साथ दोनों शब्दों की ध्वनि हो रही है।

सांस पूरी ली जाय। जितनी फेफड़ों में गुन्जायश है उतनी सांस भरी जाए। पूरी सांस भरने से पेट भी फूलने लगता है। सांस रोकने का समय—खींचने की तुलना में आधा होना चाहिए। इसके बाद सांस निकाली जाये तो समय उतना लगना चाहिए जितना कि खींचने में लगाया था। इस स्थिति में जहां फेंफड़े—सीना सरकता है वहाँ पेट भी भीतर घुस जाता है। इसे पूरी सांस लेना कह सकते है। यह प्रक्रिया स्वांसोच्छवास की दृष्टि से भी एक उपयोगी व्यायाम जैसी है। आम-तौर से लोग अधूरी सांस लेते हैं इससे फेंफड़े का थोड़ा ही अंश काम में आता है और शेष निष्क्रिय पड़ा रहता है उसमें क्षय आदि के कीटाणु जमा हो जाते है कड़ी मेहनत करने पर दमफूल जाता है, साँस अधूरी जाने से उनके साथ शरीर को समग्र मात्रा में मिलने वाली'आक्सिजन भी नहीं मिलती है। यह कई हानियां हैं जो गहरा सांस लेने से दूर होती हैं। शारीरिक दृष्टि से सोहम् साधना एक अच्छा श्वास व्यायाम है इसके अतिरिक्त वह उपासना तो है ही।

श्वास के आवागमन के साथ-साथ ध्वनि का ध्यान करना, एकाग्रता साधने का योगाभ्यास है। सांस के आवागमन पर और उसके साथ आने वाली ध्वनि पर मन को एकाग्र करने से ध्यान योग की साधना हो जाती है। ध्यान से मन का बिखराव दूर होता है और प्रकृति को एक केन्द्र पर केन्द्रित करने से उससे एक विशेष मानसिक शक्ति उत्पन्न होती है उससे जिस भी प्रयोजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए—जिस भी केन्द्र पर केन्द्रित किया जाय उसी में जागृति—स्फुरणा उत्पन्न होती है। मस्तिष्कीय प्रसुप्त क्षमताओं को—षट्चक्रों को—तीन ग्रन्थियों को—जिस भी केन्द्र पर केन्द्रित किया जाय वही सजग हो उठता है और उसके अन्तर्गत जिन सिद्धियों का समावेश है उनमें तेजस्विता आती है।

सोहम् साधना के लिए किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है। न समय का न स्थान का। स्नान जैसा भी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। जब भी अवकाश हो, सुविधा हो, भाग दौड़ का काम न हो, मस्तिष्क चिन्ताओं से खाली हो। तभी इसे आरम्भ कर सकते हैं। यों हर उपासना के लिए स्वच्छता, नियत समय, स्थिर मन के नियम हैं। सुगन्धित वस्तुओं से वातावरण को प्रसन्नतादायक बनाने की विधि है। वे अगर सुविधापूर्वक बन सकें तो श्रेष्ठ। अन्यथा रात्रि को आँख खुलने पर बिस्तर पर पड़े-पड़े भी इसे किया जा सकता है। यों मेरुदण्ड को सीधा रखकर पद्मासन से बैठना हर साधना में उपयुक्त माना जाता है, पर इस हंसयोग में उन सबका अनिवार्य प्रतिबन्ध नहीं है।

एकाग्रता के लिए हर साँस पर ध्यान और उससे भी गहराई में उतर कर सूक्ष्म ध्वनि का श्रवण इन दो प्रयोजनों के अतिरिक्त तीसरा भाव पक्ष है जिसमें वह अनुभूति जुड़ी हुई है कि "मैं वह हूँ" अर्थात् आत्मा, परमात्मा के साथ एकीभूत हो रही है इसके निमित्त वह सच्चे मन से आत्मसमर्पण कर रही है। यह समर्पण इतना गहरा है कि दोनों के मिलन से एक की सत्ता मिट जाती है और दूसरे की ही रह जाती है। दीपक जलता है तो लौ के प्रज्वलन में मात्र बत्ती ही दृष्टिगोचर होती है तेज तो नीचे पैंदे में पड़ा अपनी सत्ता बत्ती के माध्यम से प्रकाश रूप में समाप्त ही करता चला जाता है।

सोऽहम् साधना को हंसयोग कहते है। इसमे शब्दों को उलट कर, सोहम् का हंस तो बना ही है। साथ ही भगवान के २४ अवतारों में एक अवतार हंस भी है जिसका रहस्य ही नीर क्षीर विवेक। कहते है कि दूध और पानी मिलाकर सामने रखने पर हंस उसमें से पानी का अंश छोड़ देता है और मात्र दूध ही ग्रहण करता है। इस उदाहरण में साधक के लिए प्रेरणा है कि मात्र औचित्य को ही ग्रहण करें। संसार में भला-बुरा सब कुछ मिला जुला है। विवेक के अभाव में लोग सब कुछ अपनाते रहते हैं। जिससे भी स्वार्थ सिद्ध होता है उसी को कर गुजरते है। छोड़ने और ग्रहण करने में औचित्य की कसौटी लगाना आवश्यक नहीं समझते। हंसयोग की साधना में साधक को हर कदम फूँक-फूँक कर धरना होता है और मात्र उचित ही अंगीकृत करना होता है। अनुचित चाहे कितना ही आकर्षक क्यों न हो, उससे कितना ही लाभ क्यों न दीख पड़ता हो, पर उसे विषवत् त्यागना होता है। 'सोहम्' साधना को अजपा जप या अजपा गायत्री कहा जाता है। इसे जीवात्मा अनायास ही अहर्निशि जपता रहता है। श्वास-प्रश्वास द्वारा। किन्तु वह ध्यान एवं भाव के अभाव में प्रसुप्त स्तर की रहती है और उनका कोई प्रतिफल नहीं मिलता जिस भूमि पर भ्रमण कर रहे हैं उसके नीचे भले ही बहुमूल्य खजाना दबा पड़ा हो, पर जानकारी के अभाव में उसे न तो निकालने का प्रयत्न बन पड़ता है और न सदुपयोग की योजना के अभाव को कोई लाभ मिलता है।

गायत्री को आद्य शक्ति और मन्त्रों में शिरोमणि कहा गया है। उसका अपना विधि-विधान भी है और संस्कृत भाषा के आधार पर उसका अर्थ भी सद्बुद्धि प्रेरणा परक बनता है। तद्नुसार उसका महात्म्य एवं प्रतिफल भी है। इतने पर भी अब अन्य भाषा भाषी, अन्य धर्मावलम्बी उसे उतना मान नहीं देते जितना देना चाहिए। किन्तु सोहम् (अजपा गायत्री) के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। सांस सभी लेते हैं और उसके साथ सम्मिलित रहने वाली ध्वनि का कोई भी आभास प्राप्त कर सकता है इसलिए वह सार्वभौम भी है और सर्वजनीन भी। इसमें किसी भाषा या सम्प्रदाय का झंझट नहीं है।

देवी भागवत के अनुसार हंसयोग में सभी देवताओं का समावेश है यथा—

हंसो गणेशो विधिरेव हंसो,हंसो हरिर्मयश्च शम्भु।
हंसो हि जीवो गुरुदेव हंसा,
हंसो ममात्मा परमात्म हंसः ॥
ह कारेण वहिर्याति, सकारेण विशेत् पुनः।
हंसात्मिका भगवती जीवो जपति सर्वदा॥

(शेष पृष्ठ २९ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्तरिक गरिमा की अभिवृद्धि

बहिर्जगत का पर्यवेक्षण एवं रसास्वादन करने के लिए प्रकृति ने ज्ञानेन्द्रियाँ प्रदान की हैं। इनके द्वारा संसार के दृश्य श्रव्य स्वरूप को हम अनुभव करते हैं और अनुभव में आने वाली पदार्थ सम्पदा का लाभ उठाते हैं। यह भगवान का महान् अनुग्रह है। यदि आँख, कान, त्वचा आदि इन्द्रियाँ न होतीं तो संसार में उपयोगी पदार्थ भरा होने पर भी हम उसका उपयोग न कर पाते।

यह बाह्य कलेवर है जिसका लाभ हम सभी उठाते हैं। पर इतना ही सब कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त बहुत कुछ अन्तरंग भी है जो इन्द्रियों की पकड़ में तो नहीं आता पर उसकी सत्ता और महत्ता बहिरंग की तुलना में किसी भी प्रकार कम नहीं है। अन्तरंग में आमाशय, आँखें, गुर्दे, मूत्राशय, यकृत, फुस्फुस, मस्तिष्क आदि की गतिविधियाँ एवं उपयोगिताएँ इतनी अधिक हैं कि उनमें से किन्ही के गड़बड़ा जाने से शरीर तन्त्र लड़खड़ाने लगते हैं। रोगों की व्यथा सहता है और किसी काम का नहीं रहता। इन अवयवों का स्वरूप, क्रिया-कलाप एवं सक्षम होना संग्रहीत ज्ञान के आधार पर विदित होता है यदि वे गड़बड़ाते हैं तो उनकी चिकित्सा के लिए बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है। इसका अर्थ हुआ कि बुद्धि की पहुँच अधिक गहरी है। और जिन समस्याओं को इन्द्रियाँ नहीं सुलझा सकतीं उन्हें बुद्धि सुलझाती है।

अन्तरंग में चमड़े के खोखले में दबे ढँके अवयव हैं। पर इतने से अन्तरंग की समूची व्याख्या नहीं हो जाती। व्यक्तित्व के साथ जुड़े हुए गुण, कर्म, स्वभाव के एक विशाल क्षेत्र हैं। जानकारियों से सम्बन्धित सुविस्तृत परिकर भी है। यह बुद्धि से भी गहन स्तर के विवेक अनुशासन के अन्तर्गत आते हैं। शरीर स्थूल है। उसकी स्थिति का परीक्षण इन्द्रियों के सहारे जाना जा सकता है। शरीर का जो भाग अदृश्य है उसे बुद्धि समझती और सन्तुलित बनाये रहने के प्रयास अभ्यास करती है।

किन्तु यह नहीं समझ लेना चाहिए कि दृश्य या अदृश्य शरीर तन्त्र ही सब कुछ है। वह मात्र सांसारिक उपलब्धियों को सँजोने भर के काम आता है। व्यक्तित्व इससे आगे की—गहराई की वस्तु है। साथ ही वह अधिक मूल्यवान महत्वपूर्ण भी है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का अन्तःकरण चतुष्टय मान्यता, आकांक्षा, भावना और विचारणा से गठित है। साथ ही उसमें आदतें भी अभ्यास बनकर निवास करती हैं। संस्कार इन्हीं को कहते हैं। यह संस्कार ही प्रेरणाएँ देते हैं। काम दिशाधारा निर्धारित करते हैं और जीवनचर्या में रीति-नीति का समावेश करने वाला ताना-बाना बुनते हैं। यही है हमारा गहन अन्तराल जिसके संकेतों पर व्यक्ति उत्कृष्टता एवं निकृष्टता अपनाता है। समूचा जीवन तन्त्र इसी आधार पर

> जिनके मस्तिष्क अन्ध-विश्वासों से मुक्त है उन्हें मृत्यु भी भयभीत नहीं कर सकती।

अपनी रुझान और प्रयास को गतिशील करता है। यह कार्य दूरदर्शी विवेकशीलता का है। यदि वह ठीक काम कर रही होगी तो मनुष्य भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाला मार्ग चुनेगा और उस मार्ग पर चलेगा जिसमें वह अपना ही भला न होता हो, वरन् सम्पर्क में आने वालों का स्तर भी ऊँचा उठ सके।

पवित्रता और प्रखरता यह दो गुण ऐसे हैं जो विवेकशीलता के आधार पर ही उपलब्ध होते हैं। अदूरदर्शी तात्कालिक लाभ देखते हैं भले ही पीछे उनके कारण कितनी ही बड़ी हानि क्यों न उठानी पड़े। इसके विपरीत दूरदर्शी अपने चिन्तन और कर्तृत्व को इस कसौटी पर कसते हैं कि भविष्य में इसकी परिणति होगी। यह विवेक ही किसी के वास्तविक उत्थान और पतन का कारण होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदृश्य परमसत्ता के अजस्र अनुदान

विद्युतधारा बिजली के तारों में सतत् गतिशील रहती है। कोई उसे देखना चाहे तो देखा नहीं जा सकता किन्तु उसकी उपस्थिति का बोध देने वाले अनेकों ऐसे उपाय हैं जिनका सहारा लेकर यह प्रामाणित किया जा सकता है कि इन तारों में विद्युत प्रवाहित हो रही है। टैस्टर, टैस्ट लैम्प, गैल्वेनोमीटर, ए-मीटर, मल्टीमीटर, वोल्ट मीटर आदि से विद्युत के विद्यमान होने व उसके परिमाण की जानकारी प्राप्त कर अपनी मान्यता को पुष्टि भी दी जा सकती है। तारों को नंगे छूने पर बिजली का शॉट लगता है, यह सभी जानते हैं, तो भी कोई यह जानने के लिये ऐसा कोई प्रयास नहीं करता कि विद्युत इसमें है या नहीं? इसी प्रकार चुम्बकत्व एक शक्ति है जो कुतुबनुमा की सुई को उत्तर-दक्षिण दिशा में बने रहने को विवश करती है। उसे कहीं भी, किसी भी स्थान पर ले जाया जाय वह सदैव पृथ्वी के उत्तरी-दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुवों की दिशा इंगित करती ही रहेगी। चुम्बकत्व को कोई आँखों से देखने का दुराग्रह करे तो इसे बाल-बुद्धि ही कहा जायगा। परमात्मा की परम सत्ता इसी प्रकार एक अदृश्य सामर्थ्य है जो अन्तः की श्रद्धा एवं मन के विश्वास के एकीकृत रूप में व्यक्ति सत्ता के अन्दर सदैव विद्यमान रहती है, उसके कण-कण में ओत-प्रोत रहती है।

ऐसे अनेकों पौराणिक आख्यान विभिन्न धर्मग्रन्थों में मिलते हैं जो समय-समय पर सृष्टा के युवराज मनुष्य को दैवी सहायता मिलते रहने के रूप में प्रामाणित करते हैं कि आत्म-शक्ति के पूरक रूप में परमात्म शक्ति का अस्तित्व है। भले ही वह आँखों से दृष्टिगोचर न हो, उसकी अजस्र अनुकम्पा रूपी क्रिया-कलापों को ऐसे उदाहरणों में सहज ही देखा व उस सत्ता पर विश्वास किया जा सकता है।

द्रौपदी निस्सहाय अबला के रूप में कौरवों की राज सभा में खड़ी थी। दुराचारी कौरवों द्वारा चीर-हरण किए जाने पर किसी मानव ने नहीं, ईश्वरीय सत्ता ने उसकी लाज बचाई। दमयन्ती का बीहड़वन में कोई सहायक नहीं था। सतीत्व पर आँच आने पर स्वयं भगवत् सत्ता उसकी नेत्रों से ज्वाला रूप में प्रकट हुई और उसने व्याध को जलाकर भस्म कर दिया। प्रहलाद को दुष्ट पिता से मुक्ति दिलाने एवं ग्राह के मुख से गज को छुड़ाने स्वयं भगवान आगे आए थे। निर्वासित पाण्डवों की रक्षा स्वयं भगवान ने की। अपने प्रिय सखा अर्जुन का रथ जोता, एवं गीता का उपदेश देकर धर्मदर्शन का निचोड़ मार्गदर्शन हेतु प्रस्तुत किया, साथ ही महाभारत की भूमिका बनाकर सतयुग की स्थापना हेतु स्वयं भूमिका निभाई। नरसी भगत के सम्मान की रक्षा व मीरा को विष के प्याले से बचाने हेतु स्वयं भगवत् सत्ता ही आगे आई थी। भगीरथ के तप को सफल बनाने एवं पवन पुत्र हनुमान को उनकी शक्ति का बोध करा असम्भव पुरुषार्थ सम्भव कर दिखाने में परमात्म सत्ता ही मुख्य भूमिका निभा रही थी।

ये सभी उदाहरण प्राचीन पौराणिक गाथाएँ कहकर झुठलाये जा सकते हैं और उनकी सत्यता से इनकार किया जा सकता है। हमारा देश सदियों से भाव प्रधान और आस्तिक-आध्यात्मिक विचारों की जन्मभूमि रहा है अतएव इन घटनाओं को किंवदन्तियों की भी संज्ञा दी जा सकती है। किन्तु सनातन सत्ता तो काल गति और ब्रह्माण्ड से सर्वथा परे है जिस तरह वह प्राचीन काल में थी, आज भी है और उसकी अदृश्य सहायताएं पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण तक आज भी श्रद्धालु जन प्राप्त करते रहते हैं। टंग्स्टन तार पर धन व ऋण विद्युत धाराओं के अभिव्यक्त होने की तरह यह ईश्वरीय अनुदान जिन दो धाराओं के सम्मिश्रण से किसी भी काल में प्रकट होते रहते हैं वह हैं श्रद्धा और विश्वास। यह सत्ताएं जहाँ कहीं जब कभी हार्दिक अभिव्यक्ति पाती हैं परमेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अदृश्य सहायता वहाँ उभरे बिना नहीं रह सकती। इस तरह के सैकड़ों उदाहरण थियोसाफी के विद्वान सी० डब्ल्यू लेडबीटर ने अपनी पुस्तक "इनविजिबल हेल्पर्स" नामक पुस्तक में दिये हैं जिनसे इस युग में भी अदृश्य दैवी सत्ता के अस्तित्व पर विश्वास हुए बिना नहीं रहता। लेडीरुथ मान्टगुमरी की पुस्तक 'सत्य की खोज में' २०वीं शताब्दी की सबसे आश्चर्यजनक घटना के रूप में 'सराक्यूज की रोती हुई प्रतिमा' उल्लेख किया गया है। एक सरल हृदय अपंग किन्तु श्रद्धालु महिला की भाव-भरी प्रार्थना से विह्वल होकर उसकी प्लास्टर आफ पेरिस की प्रतिमा की आँखों से आँसू बह निकले। डच विद्वान फादर ए सोमर्स ने स्वयं मूर्ति और उसके आँसुओं का परीक्षण करने के बाद उसे विस्तार से समाचार पत्रों में छपाया और एच० जोर्गन ने उसका अँग्रेजी रूपान्तर प्रकाशित कराया।

यह महिला थी एण्टोनिएटा जिसका मार्च १९५३ में विवाह हुआ था एवं उसकी आस्तिकता परक मनोवृत्ति होने के कारण उसकी एक भावुक मित्र ने उसे एक छोटी-सी प्लास्टिक ऑफ पेरिस की ईसा की प्रतिमा भेंट स्वरूप दी थी। यह एक विडम्बना ही थी कि विवाह के बाद गर्भ ठहरने पर वह रोगी हो गयी एवं भ्रूण परिपक्व होने के पूर्व ही नष्ट हो गया। लड़की को भयंकर मिर्गी के दौरे पड़ने लगे और जब भी वह होश में रहती, व्याकुल मन से परमात्मा से यही गुहार करती कि "हे प्रभु ! तू कितना निर्दयी है। क्या तुझे अपनी सन्तान की पीड़ा देखकर दुःख नहीं होता।" हर समय प्रार्थना के समय वह प्रतिमा को अपने से चिपटाए रखती। कुछ ही दिनों में देखा गया कि एण्टोनिएटा के साथ-साथ प्रतिमा के आँखों से आँसू झरने लगे हैं। इसी प्रतिमा को "वीपिंग स्टेच्यू ऑफ सराक्यूज" नाम से प्रसिद्धि मिली एवं सात दिन यह घटनाक्रम चलता रहा, वैज्ञानिक परीक्षण चले एवं कोई भी इस पहेली को सुलझा न पाया कि इन आँसुओं का कारण क्या है ?

परमात्म सत्ता की ऐसी ही कृपा का परिचय १८७४ में इंगलैण्ड से न्यूजीलैण्ड जा रहे एक जहाज में घटी घटना से मिलता है। २१४ यात्रियों को लेकर जा रहे इस जहाज को पेंदी में अचानक एक छेद हो गया। पानी तेजी से जहाज में भरने लगा। पम्पों से पानी निकाला जाने लगा पर पानी अन्दर आने की गति पम्पों की क्षमता से अधिक थी। अब तो लाइफ बोट से जितनी जानें बचायी जा सकें, वे ही प्रयास किए जा रहे थे। तभी अचानक जहाज में पानी आना बन्द हो गया। सभी ने चैन की साँस ली। अगले बन्दरगाह पर जब मरम्मत के लिये जहाज रुका, तो पाया गया कि एक विशाल मछली की पूँछ जहाज की तली में हुए छेद में फँसी है एवं वह मृत मछली घिसटती हुई साथ चली आयी है। सारे यात्रियों ने इस मछली को परमात्मा का दूत माना जिसकी वजह से उन सबकी जान बची।

महाभारत के युद्ध में घण्टे के नीचे दबे टिटिहरी के बच्चे किस अदृश्य सत्ता के सहारे जीवित बने रहे, यह विज्ञान की भाषा में न समझा जा सकता है, न समझाया

> तुम हँसोगे तो दुनिया हँसेगी, तुम्हारा साथ देगी। किन्तु यदि रोने लगे तो देखोगे कि उस वजन को अकेले ही उठाना पड़ रहा है।

जा सकता है। कई बार ऐसे प्रसंग आए हैं जिनमें जलते हुए मकान में बच्चे सुरक्षित पाये गए एवं तपती ईंटों के आँवे में पक्षी जीवित रह सकने में सफल हुए। इन्हें मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता। परमात्म सत्ता के अदृश्य रूप को देखा नहीं जा सकता पर इन प्रमाणों को तो भली-भाँति देखा व निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई परोक्ष नियामक सुव्यवस्थित सत्ता है अवश्य जो समग्र सूक्ष्म क्रिया-कलापों पर अपनी दृष्टि रखती है एवं अपनी अनुकम्पा का परिचय समय-समय पर देती, आस्तिकता की भावना को दृढ़ बनाती है।

स्थूल बुद्धि के व्यक्ति उस सूक्ष्म को कहाँ स्वीकारते हैं ? स्वीकार लें तो न केवल आध्यात्मिक अपितु हमारा व्यावहारिक संसार भी सुख-शान्ति से ओत-प्रोत हो सकता है। उचित और आवश्यक तो यह है कि उस दिव्य सत्ता के प्रति श्रद्धा भाव विकसित किया जाय तथा अपनी आत्मिक शक्ति का अभिवर्धन किया जाय।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगति एक पक्षीय न हो

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि जीव सत्ता के दो पक्ष हैं—एक चिन्तन-चेतना से सम्बन्धित अन्तरंग एवं दूसरा काय-कलेवर तथा उसका बहिरंग व्यवहार। समग्र व्यक्तित्व इन दो घटकों का समुच्चय भर है। इन दोनों ही पक्षों को कुमार्गगामी न बनने देने के निमित्त सतर्कता परिष्कार प्रखरता की आवश्यकता पड़ती है, साथ ही प्रगति पथ पर सुनियोजन हेतु भावभरी तत्परता की। प्रगतिशीलता का आधार मात्र इसी एक केन्द्र पर केन्द्रीभूत है कि व्यक्तित्व का स्तर कितना ऊँचा उठाया गया? भौतिक सफलता भी उसकी ही परिणति है। यदि वे कहीं से लाकर थोप दी जायें तो दुर्गुणों-दुर्व्यसनों के माध्यम से किनारा करने का मार्ग स्वतः ढूँढ़ निकालती हैं।

आमतौर से जब भी, कभी प्रगतिशीलता की चर्चा होती है, भौतिक सफलताओं की—पद वैभव की—संचय उपयोग की बात ही सामने होती है। चर्म चक्षु मात्र दृश्य पक्ष ही तो देख सकते हैं। सामान्य बुद्धि के लिये इसी दिशा में सोचना सम्भव हो पाता है। किन्तु थोड़ी सी गहराई में प्रवेश करने पर नये तथ्य सामने आते हैं। सफलताएँ वस्तुतः सद्गुणों और सत्प्रयासों के समन्वय की ही चमत्कृतियाँ हैं। वे ही स्थायी भी होती हैं, सुखद भी सराहनीय एवं सन्तोषजनक भी। इससे इतर उपाय अपहरण का है। छल, दबाव, प्रलोभन, आक्रमण जैसी अपराधी प्रवृत्तियाँ मनुष्य को कुचक्री, आतंकवादी बनाती हैं इस आधार पर जो कमाया गया है, प्रकारान्तर से वह असीम कष्टकारक परिणतियाँ लेकर कुछ ही समय उपरान्त सामने आ खड़ा होता है।

आत्म-प्रताड़ना, अर्न्त-द्वन्द पश्चात्ताप जैसे तत्व ऐसे हैं, जिनसे कोई कुमार्गगामी बन नहीं सकता। अपनी आँख में जो गिरता है वह समीपवर्तियों से लेकर दूरवर्तियों तक की आँखों में गिरता चला जाता है। उनका न कोई स्नेही रहता है, न घनिष्ट, न मित्र, न साथी, न प्रशंसक, न समर्थक। यह विभूतियाँ अन्तःक्षेत्र को प्रभावित करने वाली ऐसी विभूतियाँ हैं, जिनके बिना कोई व्यक्ति सच्चे अर्थों में आज तक ऊँचा उठने में सफल नहीं हुआ। दुष्ट दुराचारियों की चाण्डाल चौकड़ी, सज्जन समुदाय की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी रहती है। एक दूसरे के साथी होने का भी दम भरते हैं पर यह सहयोग समर्थन कागज की नाव की तरह, पानी के बबूले की तरह सर्वथा दुर्बल एवं उथला होता है। स्वार्थ सिद्धि में कमी आते ही अथवा टकराव का तनिक-सा कारण उपस्थित होते ही चाण्डाल चौकड़ी का कोई भी सदस्य दूसरे के लिए आक्रामक हो सकता है। कल की दांत-काटी रोटी आज जानी दुश्मन का रूप धारण करती देखी गई है। कारण स्पष्ट है श्मशान में जमा होने वाले प्रेत-पिशाचों और लाश कुतरने में लगे चील, कौओं की तरह वे लोग एकत्रित भर दीखते हैं पर आत्मीयता की गहराई नाम मात्र को भी न होने के कारण उनके विगठन में भी देर नहीं लगती। इतना ही नहीं इन दोस्तों को दुश्मन बनाने में किसी प्रकार की ग्लानि अनुभव नहीं होती। अनैतिक आधार पर जुड़े हुए जम घटे सदा इसी स्तर के होते हैं और उनमें सम्मिलित रहने वालों में से प्रत्येक को निराशा सहनी पड़ती है।

मानवी अन्तराल की बनावट में कुछ मौलिक तत्व हैं। उन्हें हटा या मिटा सकना किसी के वस की बात नहीं है। शालीनता इसी प्रकार का तत्व है। नीतिमत्ता, उदारता, उत्कृष्टता, सज्जनता जैसी सत्प्रवृत्तियाँ शालीनता का ही अंग है। उन्हें अपनाये रहने पर ही मनुष्य को अन्तः सन्तोष मिलता है और शान्ति का अनुभव होता है। इस मार्ग से जो जितना च्युत होता जाता है वह अपने भीतर उतने ही जटिल अन्तर्द्वन्द्वों का अनुभव करता है और विभिन्न प्रकार के विक्षोभों से घिरता चला जाता है। यह विक्षोभ मानसिक स्वास्थ्य को बुरी तरह चौपट कर रख देते हैं। कई प्रकार की सनकें व्यक्ति को अर्ध विक्षिप्त बना देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तःजीवन ही वास्तविक जीवन है। क्योंकि व्यक्तित्व चेतना मूलक है और चेतना का, उत्कृष्टता का कार्यक्षेत्र अन्तराल ही है। अनैतिक आदतों एवं गतिविधियों का प्रभाव अन्तःजीवन को अस्त-व्यस्त करने के रूप में निश्चित रूप से पड़ता है और व्यक्ति निरन्तर मानसिक तनावों से घिरा रहता है मनोविकारों के कारण उत्पन्न होने वाली अगणित शारीरिक मानसिक आदि-व्याधियों से ग्रसित होकर व्यक्ति अपंग असमर्थों जैसे—तिरष्कृत बहिष्कृतों जैसा हेय जीवन जीता है। यह है वह परिणति जो भौतिक सफलता की आतुरता में अनीति का मार्ग अपनाने पर उत्पन्न होती है। शान्त चित्त से पर्यवेक्षण करने पर ही पता चलता है कि अवांछनीय मार्ग से उपलब्ध की गई सफलताएँ अन्ततः कितनी मँहगी पड़ी।

सम्पदा या सफलता अर्जित करना एक बात है और उसका सदुपयोग करके अपने लिए तृप्ति, तुष्टि एवं शान्ति अर्जित करना तथा दूसरों के लिए प्रगति प्रसन्नता का वातावरण उत्पन्न करना दूसरी। मात्र वैभव उपार्जन नितान्त अपूर्ण है। सदुपयोग की दृष्टि विकसित हुए बिना सम्पदा उलटी विकृतियों का कारण बनती और वातावरण में विक्षोभ उत्पन्न करके अनेकानेक संकटों का सृजन करती है।

चर्चा यह हो रही थी कि प्रगति की आन्तरिक आकांक्षा क्या सम्पदा संचय से, सफलताओं के घटाटोप एकत्रित करने से पूर्ण हो सकती है? गम्भीर चिन्तन से निष्कर्ष वह नहीं निकलता जो मोटी दृष्टि से समझा या सोचा जाता है। सफलता या सम्पदा के सत्परिणाम उसी स्थिति में उपलब्ध हो सकते हैं जब सदुपयोग की शालीनता समर्थक सदाशयता की दृष्टि भी प्रखर परिपुष्ट बन सके।

प्रगति में इस स्तर की महत्वाकांक्षाएँ भी मनुष्य को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती और क्षमता बढ़ाने की उत्तेजना देती हैं। इस प्रक्रिया का औचित्य एवं सफलता का महत्व उसी सीमा तक स्वीकारा जा सकता है जिसमें कि वह व्यक्ति को प्रगति के लिए पुरुषार्थ करने की प्रेरणा प्रदान करे। किन्तु यदि धन को अनुचित रीति से कमाने और दुरुपयोग में खर्च करने की तरह यहाँ भी अवांछनीयता अपनाई गई दृष्टिकोण में निकृष्टता घुस पड़ी तो फिर उन्हें भी अनुचित रीति से उपार्जित किया जाने लगेगा। उपलब्ध होने पर अहंकार प्रदर्शन के लिए—दूसरों को आतंकित करने के लिए काम में लाया जाने लगेगा। ऐसा प्रायः देखा भी जाता है कि विशिष्टता उपलब्ध होते ही लोग उसका उपयोग विभिन्न प्रकार के अनुचित स्वार्थ साधने में करने लगते हैं और दुर्बलों को आतंकित करके अपनी शक्ति से अन्यान्य लोगों को प्रभावित चमत्कृत करने में जुट जाते हैं।

शरीर से बलिष्ठ लोगों को गुण्डागर्दी अपनाते—सौन्दर्यवानों को कामुकता का जाल बिछाते—नेताओं को अकारण हड़तालें कराते—पदवी धारियों को स्वागत कराते प्रशस्ति संचय करने के लिए आडम्बर खड़े करते कहीं भी देखा जा सकता है। मध्यकाल के सम्पन्नों ने जिस प्रकार के अनाचार आतंक फैलाये थे उनके रोमांचकारी वर्णन कत्लेआमों—अपहरणों—उत्पीड़नों की अगणित घटनाओं के इतिहास के रक्त रंजित पृष्ठ पढ़कर भली प्रकार समझा जा सकता है। इसमें विलासिता की असीम सामग्री समेटने की हविश तो प्रधान थी ही पर अपनी समर्थता बलिष्ठता से सर्वसाधारण को आतंकित करने की

सन्त विठोबा भगवान् कृष्ण के बड़े भक्त थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान दर्शन देने उनके घर आये।

सन्त अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा में संलग्न थे। भगवान को घर आया देखकर वे पुलकित हो गये। पर विवेक नहीं खोया। भगवान के लिए उनने पास में पड़ी ईंट उठाकर बैठने के लिए रख दी और कहा—अपने कर्त्तव्य धर्म को पूरा कर लूँ तब आपकी पूजा-अर्चा करूँगा।

भगवान ईंट पर प्रतीक्षा में बैठे रहे। नियत उत्तरदायित्व से निवृत्त होने पर उनकी पूजा हुई। 'ईंट वाला विठोबा मन्दिर' अभी भी प्रख्यात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्वाकांक्षा भी कम नहीं थी। उन्हें लगता होगा शूर सामन्त होना—सर्व सर्वश्रेष्ठ होने का यह तरीका सस्ता और सुलभ है। साधन रहित लोग—साधन सम्पन्न लोगों के सशस्त्र गिरोह का मुकाबिला तो कर नहीं सकेंगे फलतः सफलता बात की बात में मिलती चलेगी। जिसकी भी बेटी, सम्पत्ति छीनने का मन होगा उसी में प्रतिरोध न रहने के कारण बेरोक-टोक दाल गलती चलेगी। मध्यकालीन सामन्त जो कार्य संगठित रूप से खुलेआम करते थे उसी को इन दिनों डाकुओं द्वारा लुक-छिपकर अपनाया जाता है। हत्यारों के लिए पैसा लेकर किसी का भी कत्ल कर देना एक व्यवसाय बन गया है।

कलाकारों गायकों, वादकों, अभिनेताओं का वर्ग भी इसी प्रकार का है जिनकी प्रतिभा का लाभ जन साधारण को क्या मिला? पीढ़ियाँ इनकी विभूतियों से क्या कुछ ग्रहण कर सकीं, इसका लेखा-जोखा लेने पर निराशा होती और खीज उठती है। साहित्यिक प्रतिभा, चित्रकार, कवि इन दिनों समाज को क्या कुछ दे रहे हैं, उनके अनुदान समाज के उत्थान-पतन में क्या योगदान दे रहे हैं—इसका दूरगामी परिणाम सोचने वालों को लगता है, यह प्रतिभाएँ यदि जन्मी ही न होतीं तो मनुष्य जाति अधिक भाग्यवान रहती। ठीक है उन प्रतिभावानों ने स्वयं सम्पत्ति और वाहवाही कमाई—अपने पालन कर्त्ताओं को भी धन कुवेर बना दिया। इतने पर भी देखना यह होगा कि उन विशेषताओं ने उन विभूतिवानों का इतिहास क्यों बनाया? पीढ़ियों के लिए क्या आदर्श? छोड़ा और अपने आप में कितना आत्म-सन्तोष उपलब्ध हुआ। बिलक्षणता सम्पन्न तो भूत-पलीत और प्रेत-पिशाच भी होते हैं। लोकप्रिय तो मदिरा भी है। वेश्याओं के चकले भी कितनों को ललचाते रहते हैं। इन सभी में कुशलता और विशिष्टता का चमत्कार झाँकता देखा जा सकता है। इतने पर भी वे सभी चमकीले यमदूतों की तरह मानवी चेतना को कलुषित करने और भविष्य को अन्धकार के गर्त में धकेलते देखे जाते हैं।

समझा जाना चाहिए कि प्रगति एवं सफलता एकपक्षीय नहीं है। भौतिक उपलब्धियाँ आँखों को कितनी ही लुभावनी क्यों न प्रतीत हों। उनसे विलास लूटने एवं आतंक जमाने में किसी को कितना ही अवसर क्यों न मिले? अन्ततः वह समूची विडम्बना विश्व मानव के लिए अभिशाप बनकर ही रहेगी।

सोचा इस प्रकार जाना चाहिए कि सम्पदाओं एवं सफलता के साथ-साथ यदि उपलब्ध कर्त्ता ने शालीनता की रीति-नीति अपनाई है तो वह उस पुरुषार्थी को आत्म सन्तोष, चिरस्थायी यश और दूरगामी श्रेय प्रदान कर सकेगी। यदि उन उपार्जनों का उपयोग उत्कृष्टता के समर्थन—अभिवर्धन में हो सका तो ही उससे सुखद सम्भावनाओं का द्वार खुल सकेगा। प्रगति का यही स्वरूप सच्चा है और अपनाने योग्य है।

(शेष पृष्ठ २३ का)

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश मय हंसयोग है। हंस ही गुरु है, हंस ही जीव ब्रह्म अर्थात् आत्मा परमात्मा है।

जीव भगवती अजपा गायत्री का जप निरन्तर करता है। सकार के रूप में वह भींतर प्रवेश करती और हकार के रूप से बाहर निकलती है।

'शारदा तिलक' में ऐसा ही शास्त्र वचन है—

हसः परं परेशनि प्रत्यहं जपते नरः।
मोहान्धो योन जानाति, मोक्ष तस्य न विद्यते।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्ष दायिनी॥
तस्या विज्ञान मात्रेण नरः पापै प्रमुच्यते।
अनया सादृशी विद्या चानयो सादृशो जपः।
अनया सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति॥

अर्थात्—प्रत्येक श्वास के साथ मनुष्य सोहम् जाप करता है। जो उसे नहीं जानता उस मोहान्ध को कभी मोक्ष नहीं मिलता।

आजपा गायत्री योगियों को मोक्ष प्रदान करने वाली है। उसका विज्ञान जानने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। इसके समान और कोई विद्या नही। इसके समान और कोई जप नहीं। इसके बराबर और कोई पुण्य न भूत काल में हुआ है न भविष्य में होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिकूलताओं का एक उपचार उपेक्षा भी

इस संसार में सब कुछ ऐसा नहीं है जो अपने को प्रिय सुखद या अनुकूल ही लगे। बहुत सी परिस्थितियाँ तथा वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिन्हें प्रतिकूल या अप्रिय कहा जा सके। कितने ही व्यक्ति भी ऐसे होते हैं जिनका स्वभाव या आचरण गले नहीं उतरता। इस संसार की संरचना ही ऐसी है। यहां अन्धेरे और उजाले की आँख-मिचौनी चलती है। भलों के साथ-साथ बुरों से भी पाला पड़ता है। जो घटित होता रहता है वह सब कुछ इच्छित या प्रिय ही नहीं होता। यहाँ अनिच्छित या अप्रिय का भी अस्तित्व है।

विश्व संरचना को देखते हुए उपयुक्त यही है कि हम अपनी प्रतिक्रिया को सन्तुलित करें और ऐसी नीति अपनायें, जिसके सहारे शान्ति पूर्वक निर्वाह होता रहे और सुखद को अर्जित करने के लिए अवसर एवं अवकाश बच सके। अप्रीतिकर की ही गणना करते रहे, उस पर खीजते रहे तो भी सीमित पुरुषार्थ से प्रतिकूलताओं को सर्वथा हटा सकना सम्भव नहीं। उन्मूलन प्रतिशोध और संघर्ष की बात सिद्धान्ततः सही हो सकती है पर उसका व्यावहारिक प्रयोग एक सीमा तक ही सम्भव है। कितनों से कब तक लड़ते रहा जायेगा। खीजा किस-किस से कब तक जायगा। प्रतिशोधात्मक आक्रमण सदा सफल ही नहीं होते। उनसे कई बार बात और भी अधिक बढ़ जाती है। आक्रमण और प्रत्याक्रमण का कुचक्र ऐसा ही है जिसे किसी ओर से तो तोड़ा ही जाना चाहिए अन्यथा आग में ईंधन पड़ते रहने से विपत्ति हटेगी नहीं वरन् बढ़ती ही रहेगी।

प्रतिकूलताएँ अपने लिए जिस हद तक हानिकर हैं, या हो सकती हैं, उसकी सतर्कता रखना आवश्यक है। बचाव पक्ष पर समय रहते ध्यान दिया और प्रबन्ध किया जाना चाहिए। अनिष्टों की ओर से आँखें बन्द कर लेना उचित नहीं। प्रतिकार की सामर्थ्य भी संचित करनी चाहिए और समयानुसार उसका नपा-तुला उपयोग भी करना चाहिए। इसके लिए सन्तुलित बुद्धि की आवश्यकता है। अन्यथा थोड़ी-सी कठिनाई एवं छोटी-सी प्रतिकूलता भी मानसिक उद्वेग का कारण बन सकती है। विक्षोभ के कारण गड़बड़ाया हुआ मस्तिष्क एक प्रकार से विक्षिप्त हो जाता है। उसके लिए सही निर्णय कर सकना तक सम्भव नहीं रहता।

सतर्कता और संघर्षशीलता के सहारे प्रतिकूलताओं से जितना निपटा जा सकता है, उतना ही कारगर एक और तरीका भी है—"उपेक्षा का।" अपनाना इसे भी जाना चाहिए। जो व्यक्ति या सम्बन्धी अनुकूल नहीं पड़ते, उन्हें एक सीमा तक ही समझाया-बुझाया जा सकता है। क्रोध या विरोध प्रकट करना भी एक सीमा तक ही उचित है। हर कोई अपनी मर्जी का मालिक है। दबाव से किसी को कहाँ तक बदला जा सकता है। फिर ऐसा भी हो सकता है, कि अपनी मान्यता में ही भूल हो। जिन्हें प्रतिकूल समझा जा रहा है, हो सकता है, कि वे अपनी जगह पर ठीक हों या भीतरी-बाहरी मजबूरियों से बाधित होकर वैसे आचरण कर रहे हों।

मतभेदों और विपदाओं से भरी हुई इस दुनिया में तालमेल बिठाकर चलना ही व्यवहारिक और सुविधाजनक है। इस आधार पर उपेक्षा भी एक बड़ा उपचार है। जिससे जितना सहयोग मिले, काम सधे, उतने से ही काम चलाऊ मान लेने पर उन मतभेदों की उपेक्षा की जा सकती है जो प्रत्यक्षः कोई बड़ा विग्रह या अनर्थ उत्पन्न नहीं करते। प्रतिकूलताओं का निरन्तर चिन्तन करने और उन पर विक्षुब्ध रहने पर भी उनका निराकरण कहाँ होता है? इसलिए उचित यही है कि विक्षोभों में भी मनः सन्तुलन बनाये और अपनी सामर्थ्य उपयोगी कार्यों के लिए सुरक्षित रखें।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्म दर्शन की दिशा और एकता

'दि फ्लेम एण्ड दि लाइट' ग्रन्थ के प्रणेता ने गीता और धम्मपद का तुलनात्मक विवेचन करते हुए लिखा है कि दोनों में ही बुद्धि की पवित्रता का उद्देश्य एक है—चिन्तन में उच्चस्तरीय आदर्शों का समावेश। यों व्यक्तिगत जीवन में इस प्रयोग की चर्चा हुई है पर वह समाज पर भी समान रूप से लागू होती है। जो व्यक्तिगत जीवन में पवित्र है वह सामूहिक प्रयोजनों में दुष्टता या भ्रष्टता को नहीं अपना सकता। इसी ज्ञान के कारण कृष्ण, कृष्ण हुए और बुद्ध, बुद्ध। स्थित प्रज्ञता से दोनों का मतलब है 'फिलासाफिकल फिलासाफी।

"लाइफ्स डीपर आस्पेक्ट्स" ग्रन्थ के प्रणेता थियासाफिस्ट एन०श्रीराम ने कहा है "जड़ के भीतर चेतन की अनुभूति ही मानवी चिन्तन की उत्कृष्टता है प्रतीकों एवं प्रतिमाओं के प्रति श्रद्धा को केन्द्रित करना और उसे देवता के रूप में श्रद्धा प्रदान करना यह सामान्य तथ्य नहीं है। जड़ को चेतन के समतुल्य मान्यता देना यदि अन्धविश्वास नहीं है तो फिर उसे दर्शन की चरम सीमा ही कहा जायगा।"

सृष्टि गतिशील है। यह गतिशीलता प्रकारान्तर से चेतना ही है। अन्यथा इच्छा शक्ति के अभाव में कोई जड़ पदार्थ गतिशील कैसे हो सकता है। यह इच्छा पदार्थ की न सही उसके साथ जुड़े हुए प्रेरक की ही सही, जब दोनों मिल जाते हैं तो ही वे चेतनवत प्रतीत होते हैं। इस आधार पर जड़ और चेतन की एकता का सहज प्रतिपादन होता है वही अध्यात्म दर्शन को अभीष्ट भी है।

भौतिक विज्ञानी एडमंड मोरियर ने अपनी पुस्तक "ह्वाट इज लाइफ" में विस्तार पूर्वक लिखा है कि जिन्हें हम जड़ कहते हैं, वस्तुतः वे जड़ नहीं हैं। उनकी हलचलें स्पष्ट हैं। उनमें सम्वेदना भी हो सकती है। इस सम्वेदन को अनुभव करना दर्शन का काम है।

उपनिषद्कार ने बाइविल के स्वर में स्वर मिलाते हुए ही कहा है कि—"ए मनुष्य ! तू ही सृष्टि का निर्माता है।" सृष्टि में जो सौन्दर्य है, श्रेयस्कर है और सद्भाव है वह मनुष्य का ही आरोपित किया हुआ है। अन्यथा ब्रह्माण्ड के अन्य ऊबड़-खाबड़ ग्रह-नक्षत्रों की तरह अपनी पृथ्वी भी रही होती। इसमें जो कुछ भी भाव सम्वेदन है उसे मनुष्य द्वारा आरोपित ही समझा जाना चाहिए। यदि मनुष्य स्वयं सम्वेदनशील न हो तो यह सम्भव नहीं था कि पदार्थों को देखने या प्रयोग में जाने पर उन्हें भाव-सम्वेदनाओं की अनुभूति होती। इस दृष्टि से यों भी कहा जा सकता है कि सृष्टि में चेतना का संचार करके जड़ को चेतन बनाने का श्रेय मनुष्य को ही है।

डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की "फिलासफी आफ उपनिषदाज" में कई स्थान पर कई तरह ,से यह सिद्ध किया गया है कि सृष्टि की सुन्दरता एवं कुरूपता—उपयोगिता, एवं अनुपयोगिता का आरोपण मानवी बुद्धि की कलाकारिता है। इस कला को पृथक कर देने पर यह संसार पदार्थ का एक टीला भर रह जाता है। तब ऐसा कुछ नहीं रहता जिसके स्पर्श से उल्लास उमँगे।

यह संसार अपनी जगह बहुत शानदार है। प्रकृति की अगणित शक्तियों का उसमें समावेश है। एक घटक दूसरे घटक को आगे धकेल कर सृष्टि का गति चक्र भी बनाता है। इतने पर भी उसमें ऐसा कहीं कुछ नहीं है जिसमें कला एवं सम्वेदन का दर्शन हो सके। यह मनुष्य की अपनी चेतना की विशेषता है जिसे आरोपित करके पदार्थ को सरस एवं सुन्दर बनाया गया है।

यह अन्तर्दृष्टि जो दूसरे प्राणियों के प्रति मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा की प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है, उसकी निजी सूझ-बूझ या मान्यता भर है। इसके बिना पदार्थ सचमुच जड़ ही रह जाता है, भले ही उसे प्रकृति प्रवाह में पड़कर दौड़ धूप से निरत रहना पड़ता हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अन्तर्दृष्टि सबमें एक जैसी नहीं होती। वह व्यक्ति विशेष के मानसिक धरातल के अनुसार उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्ट स्तर की हो सकती है। किसी पदार्थ या प्राणी को बहुत अधिक महत्व देना अथवा निरर्थक मान लेना, यह मनुष्य की अपनी समझ के ऊपर निर्भर है। यह समझ भी सब की एक जैसी नहीं होती। उसकी परख प्रक्रिया अपनी निजी सम्वेदनाओं के विकास पर निर्भर है।

थियोसाफी की प्रख्यात दार्शनिक पुस्तक 'लाइफस् डीपर आस्पेक्ट'' जिसका हवाला ऊपर दिया गया, में लिखा है मनुष्य अपनी चेतना को कितना परिमार्जित एवं सम्वेदनशील बनाता है, यह उसका अपना प्रयास है। इसे ईश्वरीय अनुदान तब कहा जायगा जब मनुष्य साधना रत रहकर अपने दृष्टिकोण को मानवी गरिमा के अनुरूप विकसित कर ले।

यह संसार एक दर्पण है। इसमें हम अपनी ही छवि देखते हैं। प्रमुदित एवं खिन्न निराश होने की स्थिति दर्शक की अभिरुचि ही उत्पन्न करती है। दर्पण तो एक पदार्थ मात्र है। उसे स्वयं सौन्दर्य की परिभाषा का ज्ञान नहीं है और न देखने वाले से कोई लगाव। दर्शक का दृष्टिकोण ही "दर्शन" है। उसका स्तर ऊँचा हो तो यहाँ जो कुछ है सभी सुन्दर अति सुन्दर लगेगा।

आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी की एक शोध शाखा "रिलीजियस एक्सपेरिएन्स रिचर्स यूनिट" ने अपने लम्बे प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि मनुष्य की अपनी भावनाएँ एवं मान्यताएँ ही विभिन्न लोगों को एक ही वस्तु के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ कराती हैं। एक की दृष्टि में जो प्रिय हो सकता है यदि वही दूसरे को शत्रु प्रतीत हो तो इसमें आश्चर्य नहीं।

सर एलेस्टर हार्डी ने "द स्प्रिचुअल नेचर आफ मैन" में लिखा है कि पदार्थों या व्यक्तियों के गुण अवगुण स्वतः सिद्ध नहीं हैं। वे मनुष्य के द्वारा आरोपित हैं। जिसे जिससे अनुकूलता अनुभव होती है वह उसे प्रिय लगता है, किन्तु प्रतिकूलता प्रतीत होने पर वही प्रतिकूल या उपेक्षित प्रतीत होने लगता है। इसलिए किसी वस्तु या प्राणी के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि वह कैसा है। यहाँ तक कि ईश्वर तक के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसका स्वरूप या संसार श्रद्धा करने योग्य है या अश्रद्धा करने योग्य।

परिस्थितियों और पदार्थों के सम्बन्ध में मनुष्य कैसा दृष्टिकोण अपनाये और मनुष्यों के आपसी सम्बन्ध कैसे हों, इसका कोई निश्चित मापदण्ड नहीं है। यह मनुष्य के अपने दृष्टिकोण पर निर्भर है कि किस के सम्पर्क में आकर वह किस प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। इस दृष्टिकोण का परिमार्जन ही दर्शन शास्त्र का मूलभूत प्रयोजन है। गीता, धम्मपद, बाइबिल आदि धर्मग्रन्थों ने विभिन्न उदाहरण देते हुए एक ही बात सिखाई है कि अपने चिन्तन का स्तर कैसे परिमार्जित किया जाय, जिससे संसार को अच्छी दृष्टि से देखना सम्भव हो और सुखद अनुभूतियों से भरा-पूरा समझा जा सके। ●

सुना है भगवान अजस्र दानी हैं, पर आपके अजस्र अनुदानों में से एक मुझे चाहिए। "आत्म विश्वास"। लगता रहे, आप सदा मेरे साथ हैं यदि साथ हैं तो भटकने का दुर्दिन नहीं ही आने पायेगा। यदि साथ हैं तो हिम्मत क्यों टूटेगी। यदि साथ हैं तो संकट की घड़ियों में रोने कलपने और जिस-तिस को दोष देने का मन भी नहीं होगा।

अजस्र अनुदानों में से केवल एक चाहिए जो हर समय भरोसा दिलाता रहे कि मनुष्य संकटों की तुलना में अधिक मजबूत है। विपत्तियों से जूझ सकता है। अपनी नाव अपने डण्डों के सहारे खेकर खुद पार ले जा सकता है।

आप सहारा दें, तो इतना दे कि और किसी का सहारा न माँगना पड़े। यदि आपके सहारों में भी कई प्रकार होते हों तो वह चाहिए जिसमें आत्म-विश्वास ढीला न पड़ने पाये। पैर लड़खड़ाये न और चुनौतियों को स्वीकार करने में झिझकना न पड़े।— —कविवर रवीन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा

पदार्थ विज्ञान का जन्म और अभिवर्धन कुछ शताब्दियों का है जबकि सृष्टि का जीवन अरबों, खरबों वर्षों का है। हर्मनवेल के अनुसार "हम प्रकृति के रहस्यों का परिचय प्राप्त करने की दिशा में क्रमशः बढ़ रहे हैं। इसमें अधीर नहीं हो रहे हैं, फिर चेतना के रहस्यों को जानने के लिये विज्ञान की वर्तमान अपरिपक्व स्थिति को ही क्यों प्रमाणभूत आधार मानें? हमें धैर्य रखना होगा और वैज्ञानिक प्रगति की उस स्थिति के लिये प्रतीक्षा करनी होगी, जहाँ पहुँच कर यह चेतना विज्ञान को भी अपने साथ सम्मिलित कर सके और अपने विकसित ज्ञान के आधार पर जीवन तन्त्र की व्याख्या कर सके।"

शरीर शास्त्री सर चार्ल्स शैरिंगटन ने अपनी पुस्तक "मैन आन हिज नेचर" में लिखा है—चेतना के स्तर की परीक्षा हम ऊर्जा नापने के उपकरणों से नहीं कर सकते। भावनाएँ और विचार धाराएँ किस स्तर की है और व्यक्ति के आदर्श एवं आचरण किस श्रेणी के है यह जानने के लिए किसी शरीर का रासायनिक विश्लेषण करने से क्या काम चलेगा? व्यक्तित्व अपने आप में एक रहस्य है उसकी गहराई में उतरने के लिए वे परीक्षण पद्धतियाँ असफल ही रहेंगी जो कोशिकाओं एवं ऊतकों की संरचना तक ही साथ लेकर समाप्त हो जाती है। मनुष्य का कलेवर ही पदार्थों से बना है इसीलिये इसी का विश्लेषण, वर्गीकरण तत्व परीक्षा द्वारा सम्भव हो सकता है। चेतना एवं उसके स्तर जिस संरचना से बने हैं उसका निरूपण एवं सुधार परिवर्त्तन करने के लिये भौतिकी के नियम, परीक्षण एवं उपकरण निरर्थक सिद्ध होंगे।

भौतिकी में नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो० इ० पी० विगनर कहते हैं कि "आधुनिक भौतिकी के सिद्धान्तों से चेतना की संरचना—स्थिति एवं उतार-चढ़ावों की व्याख्या नहीं हो सकती। जिस कारणों से चेतना मे उभार उतार, चढ़ाव, परिवर्त्तन आते हैं और उत्थान पतन के आधार खड़े होते हैं वे तत्व कुछ और ही हैं। वस्तुओं को जिस आधार पर प्रभावित, परिवर्तित किया जाता है वे सिद्धान्त चेतना को परखने और सुधारने के लिये किसी प्रकार काम नहीं आ सकते। मस्तिष्क विद्या शरीर के एक अवयव की हलचलों का विश्लेषण तो कर सकती है, पर उस आधार पर किसी के विचार बदलने या सम्वेदनाओं को प्रभावित करने जैसे प्रयोजन बहुत ही स्वल्प मात्रा में हो सकते हैं। भौतिकी के आधार पर चेतना की व्याख्या करने के लिये जो प्रयत्न किये जाते हैं उनमें विसंगतियाँ ही भरी रह जाती हैं।"

इन प्रतिपादनों के बावजूद चेतना जगत की—गुत्थियों का हल सुलझाने में ब्रह्माण्ड के कुछ क्रिया-कलाप हमारी कुछ मदद अवश्य करते हैं। ब्रह्माण्ड भौतिकी में ब्राह्मी चेतना की झाँकी ढूँढ़ने का प्रयास करने वाले दर्शन की ओर रुझान रखने वाले वैज्ञानिक कहते हैं कि "यह ब्रह्माण्ड निरन्तर बढ़ और फैल रहा है। विराट् की पोल में प्रत्यक्ष ग्रह-नक्षत्र किसी असीम अनन्त की दिशा में द्रुतगति से भागते चले जा रहे हैं। यों यह पिण्ड अपनी धुरी और कक्षा में भी घूमते हैं, पर हो यह रहा है कि वह कक्षा, धुरी और मण्डली तीनों ही असीम की ओर दौड़ रहे हैं। सौर-मण्डल एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। यह दौड़ प्रकाश की गति से भी कहीं अधिक है। जो तारे कुछ समय पूर्व दीखते थे वे अब अधिक दूरी पर चले जाने के कारण अदृश्य हो गये।' खगोल वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रक्रिया को विस्तार भी कह सकते हैं—विघटन भी, और यह भी कह सकते हैं कि इसका अन्त एकता में होगा। गोलाई का सिद्धान्त अकाट्य है। प्रत्येक गतिशील वस्तु गोल हो जाती है। स्वयं ग्रह-नक्षत्र इसी सिद्धान्त के अनुसार चोकोर, तिकोने, आयताकार न होकर गोल हुए हैं। यह ब्रह्माण्ड भी गोल है। नक्षत्रों की कक्षायें भी गोल हैं। इस गोल वृत्त की लपेट में आगे यह दौड़ अन्त में किसी न किसी विन्दु पर पहुँचकर मिल ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायेगी और इस वियोग प्रक्रिया को संयोग में परिणत होना पड़ेगा।

ब्रह्माण्ड के निरन्तर विकास का अर्थ यह हुआ कि सृष्टि में जो कुछ भी है चाहे वह पदार्थ हो, ऊर्जा हो, चुम्बकत्व हो, प्रकाश हो, अथवा विचार-सत्ता जो भी स्थूल या सूक्ष्म अस्तित्व में है वह सब एक ही केन्द्र बिन्दु पर समाहित है। इस सन्दर्भ में भारतीय दर्शन और वैज्ञानिक दोनों की धारणायें एक जैसी हैं। आरम्भ में एक महापिण्ड था, यह विज्ञान की मान्यता है एवं यह भी कि उस ब्रह्माण्ड में किसी समय एकाएक विस्फोट हुआ। विस्फोट से समस्त दिशाओं में आकाश-गंगा के रूप में ही पदार्थ बह निकला। अब तक की शोधों के अनुसार ब्रह्माण्ड में १९ अरब आकाश गंगायें हैं और हर आकाश-गंगा में १० अरब तारे हैं।

सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी सवा नौ करोड़ मील है। वहाँ से यहाँ तक प्रकाश आने में सवा आठ मिनट लगते हैं। यदि किसी तारे का प्रकाश पृथ्वी तक ८ हजार वर्षों में आता है तो उसका अर्थ यह हुआ कि वह पृथ्वी से ४७ पदम मील दूर है कि उनका प्रकाश पृथ्वी तक आने में ही अरबों वर्ष लग जायेंगे अर्थात् उस दूरी का तो अनुमान ही असम्भव है। इस तरह सृष्टि की अनन्त गहराई में अनन्त प्रकृति अनन्त रूपों में विद्यमान है।

भारतीय दर्शन की मान्यता चेतना को मूल मानकर ज्यों की त्यों है। आरम्भ में एक ही तत्व परमात्मा पिण्ड रूप में था। उसके नाभि देश से "एकोऽहं बहुस्यामि' (मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ) इस तरह की स्फुरणा, भावना या विचार उठी। इससे वह फट पड़ा और महा प्रकृति की रचना हुई, उसमें सत्, रज, तम तीन गुणों का सम्मिलन था, इन्हीं से सृष्टि में जीवन का निर्माण हुआ और सृष्टि के विस्तार की तरह ही ८४ लाख जीव योनियों का निरन्तर विस्तार होता चला गया। जिस तरह ब्रह्माण्ड विकसित हो रहा है। नाना प्रकार की जीवन सृष्टि का भी विकास होता जा रहा है, यह सब अत्याधिक करुणा मूलक स्नेहजनक मातृ संज्ञक रूप से चल रहा है। भौतिक या आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों में आकाश-गंगायें इस विशाल माता का हृदय कही जा सकती हैं।

ब्रह्माण्ड के विस्तार की व्याख्या अपने जीवन के घटनाओं व दैनन्दिन जीवन की गतिविधियों से जोड़ते हुए भौतिक वैज्ञानिक डा० वैलेस टैकर ने की है। वे लिखते हैं—"विगत वसन्त जब हम और हमारी पत्नी अपने मकान के नजदीक गाँव की एक सड़क पर जा रहे थे तो फली फटने जैसी विचित्र आवाज से हम लोग चौंक गये। सुबह के धुँधलके में देखा तो पाया, सचमुच ही पास की जंगली घास की कलियाँ फट रही थीं। कलियाँ फट-फट कर अपने बीज आसपास फैला रही थीं। फटने की यह आवाज मुश्किल से एक मिनट रही होगी। इस प्रकार जंगली वनस्पति की वह एक पीढ़ी समाप्त हो गई, कईयों में बँट गयी। इसी प्रकार आसपास ही वहीं अथवा किसी के बगीचे में अन्य फलियाँ भी फटकर बीज फैला रही होंगी।

वैलेस का कहना है—फलियों की तरह प्रकृति में भी ज्वालामुखियों एवं सुपर नोवा का विस्फोट होता रहता है। इन विस्फोटों के माध्यम से ही प्रकृति अपने अन्तराल में छिपी बीजों की सम्पदा पृथ्वी सतह तक पहुँचाती है। यदि यह विस्फोट न हो तो बीज अन्दर ही रह जाय। इस प्रकार जब कोई फली फूटती है तो उसके बीज आस-पड़ौस में फैल जाते हैं और समयान्तर में उनसे फिर वैसी ही पौध उत्पन्न हो जाती है। किन्तु इन बीजों का एक गाँव से दूसरे गाँव तक इस विधि द्वारा पहुँचना काफी लम्बा समय ले सकता है, अथवा ऐसा भी हो सकता है कि दूसरे गाँव तक कभी पहुँचे ही नहीं।

ठीक इसी प्रकार भयंकर ज्वालामुखी अथवा विशालकाय उष्णोत्स के प्रस्फुटन के बिना जल भी, जो कि उच्चस्तरीय प्राणियों के विकास के लिए एक आवश्यक घटक माना जाता है, पृथ्वी के गर्भ में ही छिपा पड़ा रहता और किसी प्रकार पृथ्वी पर जीवन सम्भव न हो पाता। जल जैसे अनिवार्य तत्व की उत्पत्ति भी उस महा विस्फोट का परिणाम है।

यह सूर्य, यह पृथ्वी एवं इसके प्राणी सम्भवतः आज नहीं होते, यदि प्रकृति के विस्फोट न हुए होते। मूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गैस के विशालकाय बादल, जिससे हमारा सौर परिवार बना, सम्भवतः अभी भी अव्यवस्थित बेडौल बादल ही बने रहते, यदि किसी अन्तर तारक कम्पन तरंग—सुपर नोवा ने बादलों को ठोस रूप में परिणत न कर दिया होता।

यह ज्ञातव्य है कि हर ५० साल में हमारी आकाश-गंगा के किसी विशालकाय तारे में सुपर नोवा विस्फोट होता है। इस विस्फोट से अन्तरिक्ष में बड़े पैमाने पर विकिरण एवं पदार्थ किसी भावी खगोलीय पिण्ड के "बीज" के रूप में आते हैं और पूरी आकाश गंगा में एक तीव्र कम्पन उत्पन्न करते हैं। यह कम्पन तरंग अन्तर तारक गैसों को गर्म करती है। बादलों के छोटे टुकड़ों को वाष्पीभूत करती है और बड़ों पर गहरा दबाव डालती है, जिससे वे बादल उसी स्थान पर अपने स्वयं के गुरुत्व बल के कारण दबकर ठोस रूप में परिणत हो जाते हैं और नये तारे का निर्माण करते हैं।

सुपर नोवा ऐसे विस्फोट हैं जो आकाश-गंगा के इन्जन को विकास की दिशा में आगे की ओर बढ़ाते हैं। इस विस्फोट से अन्तर तारक गैसों में भारी-भारी तत्व आ जाते हैं। फिर इसे विस्फोट एवं अपनी विकिरण ऊर्जा द्वारा गर्म करते हैं। तत्पश्चात् अपनी भयंकर ऊर्जा एवं कम्पन से इसमें हलचल पैदा करते हैं और इस नये प्रकार नये तारक पिण्डों के निर्माण में अपना योगदान देते हैं। इस प्रकार बने तारों में से कुछ तो अत्यन्त विशालकाय होते हैं। अरबों वर्ष पहले पृथ्वी पर भी प्राकृतिक विक्षोभों की शृंखला द्वारा ही जीवन का उद्भव सम्भव हुआ। तारक पिण्डों का अपना एक जीवन चक्र होता है, जिसमें वे घूमते रहते हैं। तारों के निर्माण के कुछ काल पश्चात् उनमें विस्फोट होता है। इस विस्फोट से वे नये-नये भारी तत्वों को अन्तरतारक गैसों में समाविष्ट करते हैं। फिर इनसे दूसरे खगोलीय पिण्ड का निर्माण होता है जो कुछ काल पश्चात् पुनः सुपर नोवा विस्फोट से फटते हैं। इस प्रकार खगोल ब्रह्माण्ड में सृजन विध्वंस का यह क्रम सदा चलता रहता है।

ब्रह्माण्ड भौतिकी के इस विवेचन एवं विस्फोट-विस्तार के माध्यम से दृश्य ब्रह्माण्ड के स्वरूप की व्याख्या से उस परब्रह्म की कार्य पद्धति का एक आभास भर मिलता है। वह विराट् जब स्थूल परिकर के रूप में उस प्रचण्ड रूप में क्रियाशील है तो उसकी चेतन सत्ता कितनी सुव्यवस्थित, सुनियोजित होगी इसकी कल्पना भर की जा सकती है। ऋग्वेद में ऋषि ने उसे उपमा दी है—"एको विश्वस्य भुवनस्य राजा" तथा आगे यह भी कहा है---"तस्मिन ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा" (उस परमात्मा में ही सम्पूर्ण लोक स्थित है।) सेंट आगस्टीन का यह कथन सच ही है कि ईश्वर एक वृत्त है, जिसका केन्द्र तो सर्वत्र है, किन्तु वृत्त रेखा कहीं नहीं।

●

डा० सेमुअल जानसन का अँग्रेजी शब्द कोश प्रख्यात है। उसे उन्होंने भारी परिश्रम से वर्षों में लिखा था। साहित्य जगत में उन्होंने उच्चस्तरीय प्रतिष्ठा प्राप्त की।

कोश में एक शब्द की परिभाषा एक महिला को खटकी। अधिक विचार करने पर उसने उसे वस्तुतः गलत पाया। अपनी बात जानसन तक पहुँचाने में विवाद खड़ा होने का भय था सो उसने उनसे मिलना ही उचित समझा। समय माँगकर वह उनसे मिलने जा भी पहुँची।

जानसन ने उसकी बात ध्यान पूर्वक सुनी और भूल बताने के लिए कृतज्ञता व्यक्त की। तत्काल सुधार देने का आश्वासन देते हुए उनने इतना ही कहा—निभ्रान्त तो केवल ईश्वर है। मनुष्य से जान-अनजान में जो गलतियाँ होती रहती हैं, उन्हें बताया और सुधारा जाना ही उचित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

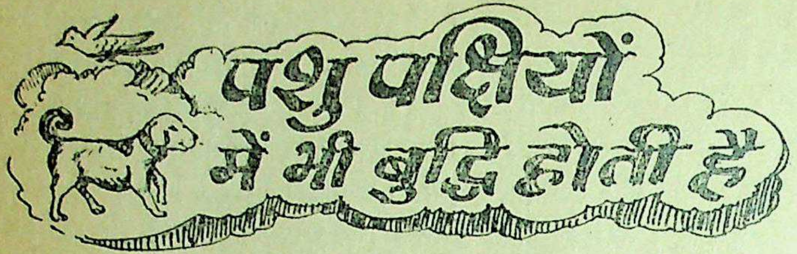

पशु पक्षियों में भी बुद्धि होती है

बुद्धिमत्ता मनुष्य ने प्रयत्नपूर्वक प्राप्त की है। यह उसी की बपौती नहीं है। जहाँ कहीं भी अन्य पशु-पक्षियों को सीखने सिखाने का अवसर मिला है वहाँ उनने अपनी बुद्धि को अपेक्षाकृत कहीं अधिक बढ़ा लिया है।

उत्तरी कोरिया में बन्दरों को इस प्रकार सिखाया गया है कि वे अपने लुहार मालिकों का पंखा घुमाते रहते हैं और एक मजदूर का परिपूर्ण काम कर देते हैं।

दक्षिण अफ्रीका में एक कुतिया इस प्रकार प्रशिक्षित की गई थी कि वह अपने मालिक गड़रिये की भेड़ें सबेरे निर्धारित घास फार्म में चराने ले जाती थी और शाम को उन सभी को वापस ले आती थी। कोई भेड़ बिछुड़ जाती तो दुबारा जाकर उसे ढूँढ़ लाती।

अमेरिका के एक कन्सास नगर की एक फिल्म कम्पनी ने एक चिपांजी इस प्रकार सधाया था कि वह कई फिल्मों में बताये हुए पार्ट बड़ी खूबसूरती से करता रहा।

सिडनी में एक कबूतर पालन केन्द्र बनाकर उन्हें ऐसा प्रशिक्षित किया गया है, जिसमें सधाए हुए कबूतर नियत स्थान पर डाक पहुँचाते और जवाब लेकर भेजने वाले के पास वापस लौट आते हैं। जीव विज्ञानी डेमण्ड मॉरिस ने बन्दरों को चित्र बनाने की कला में प्रशिक्षित किया था। एक बन्दर द्वारा बनाये २०० चित्र उसने प्रदर्शनी में रखे थे। जिन्हें सन्देह होता, उनके सामने बन्दर बताये हुए चित्र की दूसरी नकल हाथों-हाथ बनाकर तैयार कर देता था। डेमण्ड ने 'अल्फा' नामक चिपांजी तथा कांगों नामक शिबून बन्दर को घर में आने वाले अतिथियों का समुचित सत्कार करने के लिए भी प्रशिक्षित कर रखा था।

सिडनी में एक कुत्ता इस प्रकार प्रशिक्षित किया गया था कि अपने अन्धे मालिक की छड़ी पकड़कर वह उसे रोज दफ्तर ले जाता और लौटने का समय होने पर वह उसे उसी प्रकार वापस भी ले आता।

उज्जैन (भारत) में एक १६ वर्षीय युवक मुन्नालाल ने लगभग १०० साँप इस प्रकार सधाये थे जो उसकी आज्ञानुसार काम करते थे। इस प्रदर्शन को क्षीर सागर मैदान में हजारों व्यक्तियों ने देखा।

सरकस में हाथी, शेर, कुत्ते, घोड़े आदि को अद्भुत काम करते देखकर यह विश्वास कोई भी कर सकता है कि सिखाने वाले भयंकर पशुओं को भी सिखा लेते हैं। रीछ बन्दरों को तो ग्रामीण मदारी भी इशारे पर काम करने के लिए प्रशिक्षित कर देते हैं।

मध्य युग की लड़ाइयों में घोड़े और हाथी इसी प्रकार युद्ध कौशल के लिए प्रशिक्षित किये जाते थे एवं वे शत्रु पक्ष को छकाने और हराने में अनोखी सूझ-बूझ का परिचय देते थे।

अतीन्द्रिय क्षमताओं की दृष्टि से कई प्राणियों की प्रतिभा असाधारण होती है वर्षा होने, भूकम्प आने, किसी मकान के गिरने आदि की सम्भावनाएँ बिल्ली पहले ही जान जाती है। जब वह बच्चों समेत भागने लगे तो समझना चाहिए कोई विपत्ति आने वाली है।

चोरों और हत्यारों का पता लगाने में कुत्तों में अद्भुत क्षमता पाई गई है। वे पुलिस द्वारा अपराधियों को पकड़ने में सहायता करने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित किये जाते हैं।

यह माना जा सकता है कि मनुष्य की मस्तिष्कीय संरचना एवं लम्बे समय से चले आ रहे पारस्परिक सहकार ने मनुष्य को अधिक बुद्धिमान बना दिया है। पर ऐसा नहीं समझा जाना चाहिए कि अन्य प्राणी सर्वथा बुद्धिहीन हैं। उनके निमित्त यदि प्रशिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था की जाय तो वे भी मनुष्य के अच्छे साथी सिद्ध हो सकते हैं।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना की सफलता का सही मापदण्ड

तथागत उन दिनों श्रावस्ती विहार में थे। जैतवन की व्यवस्था अनाथ पिण्डक सम्भालते थे। दक्षिण क्षेत्र की प्रव्रज्या से लौटे दारुचीरिय वापस लौटे और बड़े विहार जैतवन में जा पहुँचे।

दारुचीरिय की भाव-भंगिमा और विधि-व्यवस्था वैसी नहीं रह गई थी, जैसी कि जाते समय उन्हें अभ्यास कराया गया था। वे जहाँ भी गये बुद्ध की गरिमा और उनकी प्रतिभा का सम्मिश्रण चमत्कार दिखाता रहा सम्मान बरसा, धन बरसा, प्रशंसा हुई, आतिथ्य की कमी न रही।

पा लेना सरल है, पचा लेना कठिन। प्रतिष्ठा सबसे अधिक दुष्पाच्य है। उसे गरिष्ठ भोजन और विपुल वैभव की तुलना में आत्मसात कर लेना और भी अधिक कठिन है। दारुचीरिय की स्थिति भी ऐसी ही हो रही थी। अपच उनकी मुखाकृति पर छाया हुआ था।

अनाथ पिण्डक ने पहले दिन तो आतिथ्य किया और दूसरे दिन हाथ में कुल्हाड़ी थमा दी—जंगल से ईंधन काट लाने के लिए। सभी आश्रम वासियों को दैनिक जीवन को कठोर श्रम से सँजोना पड़ता था। अपवाद या छूट मात्र रोगी या असमर्थ ही हो सकते थे।

दारुचीरिय इतना सम्मान पाकर लौटे थे। वे अपने को दूसरे अर्हन्त के रूप में प्रसिद्ध करते थे। कुल्हाड़ी उन्होंने एक कोने में रख दी। मुँह लटकाकर बैठ गये। श्रमिकों जैसा काम करना अब उन्हें भारी पड़ रहा था। यों आरम्भ के साधना काल में यह अनुशासन उन्हें कूट-कूट कर सिखाया गया था।

अनाथ पिण्डक उस दिन तो चुप रहे। दूसरे दिन कहा—अर्हन्त को तथागत के पास रहना चाहिए। यहाँ तो हम सभी श्रवण मात्र हैं।

दारुचीरिय चल पड़े और श्रावस्ती पहुँचे। विहार में तथागत उपस्थित न थे। वे भिक्षाटन के लिए स्वयं गये हुए थे। तीसरे प्रहर लौटने की बात सुनकर उनको अधीरता भी हुई और आश्चर्य भी। इतने बड़े संघ के अधिपति द्वार-द्वार भटकें और भिक्षाटन से मान घटायें। यह उचित कैसे समझा जाय?

बेचैनी ने उन्हें प्रतीक्षा न करने दी और वहाँ पहुँचे जहाँ तथागत भिक्षाटन कर रहे थे। साथ ही मार्ग में पड़े उपले भी दूसरी झोली में रख रहे थे ताकि आश्रम के चूल्हे में उनका उपयोग हो सके।

अभिवादन उपचार पूरा भी न हो पाया था कि मन की जानने वाले बुद्ध ने दारुचीरिय से कहा—अर्हन्त ही बनना हो तो प्रथम अहन्ता गलानी और छोटे श्रम में भी गरिमा प्रदान करनी चाहिए। इसके बिना पाखण्ड बढ़ेगा और सत्य पाने का मध्यान्तर बढ़ेगा।

दारुचीरिय का समाधान हो गया। अहन्ता गली, और श्रवण व्रत फिर से निखर आया। तथागत ने इस प्रसंग को शाम के सत्संग में दुहराते हुए विहार में उपस्थित भिक्षुओं एवं अन्य भक्तों को बताया कि लोक सेवी की वरिष्ठता की कसौटी विनम्रता पर निर्भर है। आम्र वृक्ष जितना अधिक फलों से लदा होगा, उतना ही झुकेगा। विभूतियाँ पाकर साधक को भी झुकना, स्वयं सेवी स्तर विकसित करना सीखना चाहिए। इसके अभाव में तो प्राप्त सिद्धि भी दुष्पाच्य आहार के रूप में सड़े मल की भाँति निकलती एवं वातावरण दूषित करती स्वास्थ्य बिगाड़ती है। समाज निर्माण मात्र विनम्र साधक ही कर सकते हैं। यदि लोकसेवी ही अहन्ता के मद में चूर बने रहे तो वे विधेयात्मक प्रगति तो दूर, अपने साथ सारे समुदाय को ले डूबेंगे। दारुचीरिय के साथ ही सबने इस तत्वदर्शन को समझा व लोक सेवा के मर्म को—साधना के सही स्वरूप को—हृदयंगम किया। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवी क्षमता का कोई पारावार नहीं

वर्त्तमान ओलम्पिक खेलों के बाद पर्यवेक्षकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मानवी प्रगति का कोई अन्त नहीं। पिछले दिनों खेल-कूदों में बाजी मारने—प्रवीणता और पूर्णता के लिए एक सीमा निर्धारित की गई थी और कहा गया था कि मानवी अवयवों की संरचना तथा विकसित प्रयत्नशीलता के सहारे वह अमुक खेल में इतनी क्षमता तक का ही परिचय दे सकता है।

अब उन अनुमानों से बहुत आगे बढ़कर खिलाड़ियों ने कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इसी प्रकार शिक्षा शास्त्रियों का अनुमान था कि बच्चों के बौद्धिक विकास—क्रम को देखते हुए कोई प्रतिभाशाली बालक इतनी कक्षाएँ उत्तीर्ण कर सकता है। किन्तु वह अनुमान भी गलत साबित हुए और कितने ही बालकों ने निर्धारित मापदण्ड से कहीं अधिक प्रगति करके दिखाई है।

मध्यकाल में वीरता का मापदण्ड युद्धकौशल रहा है। कोई व्यक्ति शस्त्र चलाने में जितना कौशल दिखा सकता है और परिस्थितियों के प्रतिकूल होते हुए भी कितना साहस दिखा सकता है, इसकी भी एक सीमा निर्धारित की गई थी पर पिछली शताब्दी में आग्नेयास्त्रों का सामना करने और उनके बीच सनसनाते हुए आगे बढ़ते जाने तथा शत्रु के बारूद खाने पर क़ब्जा करने का नया कीर्तिमान स्थापित किया गया है।

विद्वानों की बिरादरी का कोई भी व्यक्ति कितने ही ग्रन्थों में पारंगत हो सकता है और उसकी स्मरण शक्ति कितनी तीव्र हो सकती है, इसका अनुमान भूत काल के सर्वोत्तम समझे जाने वाले विद्वानों की सफलताओं को देखते हुए किया गया था। पर वर्त्तमान शताब्दी में वे पुरातन निर्धारण टूट गये और यह कहना पड़ा कि मानवी बुद्धि की कोई सीमा निर्धारित नहीं हो सकती।

विज्ञान, अन्वेषण, समीक्षा के क्षेत्रों में मानवी आयुष्य को देखते हुए कितनी सफलता सम्भव है, इस पुरातन आधार का अब व्यतिरेक कर दिया गया है और समझा गया है कि मनुष्य की प्रतिभा का कोई अन्त नहीं। इच्छा शक्ति की तीव्रता और निरन्तर अभ्यास के सहारे मनुष्य कितना आगे बढ़ सकता है, इसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। मनुष्य असीम है, उसकी प्रगति और सफलता के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि भूतकाल में जो अधिक से अधिक हो सकता है भविष्य में उससे बढ़कर नहीं हो सकता।

किस क्षेत्र में मनुष्य किस सीमा तक आगे बढ़ सकता है और अपने कर्तृत्व को कहाँ तक अग्रगामी बना सकता है। इस सम्बन्ध में कुछ सीमा बन्धन नहीं बाँधा जा सकता। कोई रिकार्ड बुक नहीं बनाई जा सकती कि यही अन्तिम है। मनुष्य की क्षमता असीम है, पर वह विकसित तभी होती है जब मनुष्य अपने संकल्प और प्रयास को ऊँचा उठाता चले। उसके उत्साह और साहस में कमी न पड़े।

दूसरों के लिए आदर्शवादिता का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करने में भूतकाल के त्यागी तपस्वी ही चरमोत्कर्ष का स्पर्श करते रहे हैं उससे आगे बढ़ने और अपने को महान सिद्ध करने की अब अधिक गुंजायश नहीं रही यह सोचना व्यर्थ है। स्वयं को कठिनाई में डालकर दूसरों की सेवा साधना में निरत रहने वाले वर्त्तमान उदाहरण यही बताते हैं।

जहाँ साधनहीनों ने अपने सद्गुणों और श्रेष्ठता सिद्ध करने वाले प्रयासों के आधार पर उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है। वहाँ ऐसे लोग भी कम नहीं है जिसे सब प्रकार की सुविधा, अनुकूलता होते हुए भी अपने आलस्य प्रमाद में पूर्वजों की सम्पदा और ख्याति को भी धूलि में मिला दिया और दूसरों की सलाह और सहायता मिलने पर भी पतन पराभव के गर्त्त में गिरते चले गये। इसीलिए कहा जाता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। उसकी सम्भावनाएँ महान हैं।★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़ में भी चेतन होता है

जड़ और चेतन के बीच भी कोई आन्तरिक सम्बन्धों की एक अविभाजित कड़ी का अस्तित्व हो सकता है, इस कथन की पुष्टि में दो उदाहरण विशेष रूप से प्रख्यात हैं। इनसे हमें एक विचार करने को विवश होना पड़ता है कि एक इस्पात और काष्ट से विनिर्मित जहाज जैसी जड़ वस्तु भी अपनी स्वयं की कोई इच्छा शक्ति से प्रेरित हो सकती है ? ये घटनाएँ एक जहाज और एक मछली पकड़ने की बड़ी नौका से सम्बन्धित है जिनने अपने स्वामियों की सेवा विशेष रूप से व अनोखे प्रकार से समर्पित भाव से की। इनमें प्रथम एस० एस० हमबोल्ट नामक जहाज था जिसके एक मात्र कैप्टन का नाम इलिजाह जी० बौफमॅन था। इस जहाज ने अपने जीवन में किसी अन्य कैप्टन को नहीं देखा और न ही इस कैप्टन ने किसी अन्य जहाज पर पैर रखे। हमबोल्ट ने अपनी जीवन वृत्ति एक यात्री और माल वाहक जहाज के रूप में सीटल और अलास्का के मध्य सन् १८९८ में आरम्भ की। कैप्टन बौफमॅन के कथनानुसार अलास्का में स्वर्ण की बड़ी माँग होने पर इस जहाज के द्वारा दस करोड़ डालर मूल्य का स्वर्ण फिर से वापस लौटाकर लाया गया था। उन मदभरे वर्षों की समाप्ति पर हमबोल्ट प्रशान्त महासागर के उत्तर-पश्चिमी बन्दरगाहों पर अपना कार्य सुचारु रूप से चलाता रहा। किन्तु जैसा कि प्रत्येक के जीवन में एक ऐसा समय भी आता है जबकि वह अपनी जीवन वृत्ति से मुक्ति पा लेता है, सन् १९३४ में वह समय आ गया जबकि कैप्टन बौफमॅन और उसके प्यारे जहाज ने एक साथ ही निवृत्ति ले ली। बौफमॅन सीटल से सेनफ्रांसिसको चला गया और हमबोल्ट को वहाँ से सेन पेड्रो को, जो कि दक्षिण में पर्याप्त दूरी पर था, उसकी जर्जर स्थिति को देखते हुए उसे विघटित करने के लिए भेज दिया गया।

दिनांक ८ अगस्त १९३५ को कैप्टन बौफमॅन ने इस संसार से अन्तिम विदा ली। ठीक उसी समय उसी रात्रि को उस केलीफोर्निया के समुद्र तट से ४०० मील की दूरी पर स्थित सेन पेड्रो बन्दरगाह में लंगर डालकर खड़े हुए हमबोल्ट नामक उस पुराने जहाज ने अपने सारे बन्धन तोड़ फेंके और खुले समुद्र की ओर अपनी यात्रा आरम्भ करदी। उस जहाज पर कोई भी व्यक्ति नहीं था और न ही उसके इन्जन को चलाने के लिये किसी ने उसमें कोयला डाला था। इस जहाज को रात्रि में केवल उसकी लाल बत्ती के कारण ही पहिचाना जा सका कि वह वहाँ से भाग निकला है और उसे जहाज के एक कैप्टन ने एक अन्य जहाज की सहायता से वापस लाने में सफलता प्राप्त की। क्या अपने बन्धनों को तोड़कर समुद्र में उत्तर की ओर अपने पुराने स्वामी से उसके अन्तिम समय में मिलने के लिये तैर जाना और उसके प्रति अन्तिम सम्मान प्रकट करने की चेष्टा करना हमबोल्ट का उद्देश्य नहीं था ? इसका उत्तर खोजने के प्रयास कईयों ने किये। अन्ततः वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि मालिक की आत्मा इस जहाज से अन्तिम समय तक अविच्छिन्न रूप से जुड़ी रही।

इसी सीटल नामक बन्दरगाह की ही एक अन्य रहस्यमयी घटना है जिसमें मनुष्य और नौका के मध्य के गहन सम्बन्धों का बोध होता है। कैप्टन मार्टिन ओलसेन एक मछुआ था जो कि 'सी लॉयन' नामक अपनी नौका का अनेक वर्षों तक सैमन मछली को पकड़ने के लिये पुगेट साउण्ड की गहरी किन्तु सकरी खाड़ी में सदैव प्रयोग करता रहा। सी लॉयन जैसी नौकाओं का उपयोग आज भी वाशिंगटन और ब्रिटिश कोलम्बिया के तटों पर मछली पकड़ने के लिये किया जाता है कैप्टन मार्टिन ओलसेन ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी आजीविका से मुक्त होने पर अपनी इस प्रिय नौका को किनारे से दूर अपने मकान के पास सीटल में ही बालू में रख दिया। यह नौका इसी स्थान पर दस वर्षों तक खड़ी रही। इतने वर्षों तक एक ही स्थान पर रहने से वह बालू में और अधिक गहरी धँस गई थी।

दस वर्षों के पश्चात् कैप्टन ओलसेन की मृत्यु हो गई। उस दिन समुद्र शान्त था, उस वक्त न तो कोई तूफान था और न ही कोई ज्वार आया था। कहा गया है कि बालू के उस गड्ढे में से निकलकर वह पुरानी नाव उस खाड़ी में तैरती रही। तीन दिनों के पश्चात् बने ब्रिज आयर्लैंड के तट तक तैरते हुए यह नौका वहाँ पहुँची जहाँ समीप ही कब्रस्तान में कैप्टन ओलसेन को दफनाया जाने वाला था। ओलसेन को दफनाने के पश्चात् यह सी लॉयन वहाँ से स्वतः ही रवाना हो गई और तैरते हुए कुछ दिनों में ठीक उसी स्थान पर आकर खड़ी हो गई जहाँ कि वह पिछले दस वर्षों से खड़ी रही थी। नौका के इस प्रकार के व्यवहार को अपने स्वामी के प्रति अन्तिम सम्मान प्रकट करने की चेष्टा कहा तो जा सकता है पर वैज्ञानिक जड़ पदार्थों के साथ घटने वाले इन वैचित्र्यपूर्ण संयोगों के कारण को समझा पाने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं।

इस भूमण्डल पर महासमुद्रों व सागरों में अनेक घटनायें ऐसी होती हैं जिन्हें लोग प्रायः एक संयोग मात्र कह कर भुला देते हैं। वास्तविकता और रहस्य तो केवल सागर ही जानता है। किन्तु इन घटनाओं को केवल संयोग कहना उचित नहीं होगा।

एस० एस० सेविसलवी नामक एक जहाज नवम्बर १९३३ में न्यू फाइण्डलैण्ड से दक्षिणी वेल्स के लिये अपनी यात्रा पर निकला। यह जलपोत उत्तरी अटलांटिक महासागर में कहीं लुप्त हो गया। इस पर कुल २९ व्यक्ति सवार थे इसे खोजने के समस्त प्रयास असफल ही सिद्ध हुए। सन् १९३६ के प्रारम्भ में ही अबेराबोन के अन्तर्गत वेल्श नामक ग्राम के निकट ही किनारे पर एक कोको का डिब्बा तैरता हुआ पाया गया। इस डिब्बे को खोलने पर उसमें एक सन्देश प्राप्त हुआ जिसमें लिखा था। आयरलैण्ड के तट से दूर कहीं एस० एस० सेक्सिल बीपोत डूब रहा है, मेरा बहिन को, भाइयों को और डिनाह को प्यार"—जाओकन। जाओकन नामक यह व्यक्ति इसे लुप्त जलपोत के कर्मी दल का एक सदस्य था, जो कि अबेराबोन का निवासी था। उसने अपने सम्बन्धियों जो कि अबेराबोन में निवास कर रहे थे, को सम्बोधित कर यह सन्देश भेजा था, जो कि उसके गाँव से केवल एक मील की दूरी पर बहते हुए पहुँचा था। इसे संयोग नहीं कहा जा सकता।

अपने घर वालों को सन्देश भेजने की अचेतन प्रेरणा व उसके पहुँच जाने का उदाहरण ग्रन्थों में मिलता है। न्यूजीलैण्ड के रॉस एलेक्जेण्डर ने सेना के एक जलपोत को समुद्र को सौंपा था उसका सैनिक जलपोत डर्विन (आस्ट्रेलिया) के उत्तर में एक समुद्रीय चट्टान से टकरा गया था। रॉस एलेक्झेन्डर ने जहाज पर से ही एक शराब की खाली बोतल में अपने घर वालों को सम्बोधित कर एक सन्देश लिखकर डाल दिया। संयोग से उस दुर्घटना में रॉस एलेक्झेन्डर बच गया।

एक अन्य घटना के अनुसार सन् १९३४ में डायले ब्रांसकम ने अपना स्वयं का एक चित्र एक बोतल में सुरक्षित रखकर उस बोतल को अर्कनसास नामक नदी में डाल दिया। चौबीस वर्ष बाद सन् १९५८ में बिल हेड स्ट्रीम नामक एक व्यक्ति को जो कि डायले ब्रांसकम का बचपन का एक मित्र था, यह बोतल अपने ग्राम लार्गो में मिली जो कि फ्लोरिडा के अन्तर्गत आता है। बिल हेड स्ट्रीम को अपने बचपन के इस मित्र के विषय में कोई जानकारी पिछले २४ वर्षों से नहीं थी। हेड स्ट्रीम ने अपने इस मित्र को उस चित्र में लिखे पते पर एक पत्र के साथ उसका यह चित्र भी भेजा था एवं उससे उन बीते हुए वर्षों के जीवन के उतार-चढ़ाव सम्बन्धी विविध घटनाक्रमों का ब्यौरा लिखने को कहा गया था।

समुद्र विशाल है, सृष्टि विराट् है। किन्तु इस जगती के घटनाक्रम बड़े निराले हैं। जड़ व चेतन के बीच लकीर खींचने वाले वैज्ञानिक भी यह कहते पाये जाते हैं कि दोनों में परस्पर गहन तारतम्य है। ऊपर वर्णित व ऐसे अनेकों घटनाक्रम इसकी पुष्टि करते हैं, साथ ही उस अद्भुत विधाता के कार्य व्यापार की, लीला जगत की एक झलक दिखाते हैं। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काया के घट-घट में छिपी विलक्षण सामर्थ्य

देखने में एक जैसे लगने वाले मनुष्यों में से कुछ की प्रतिभा तथा विलक्षणता ऐसी होती है, जो देखते ही बनती है। इसी प्रकार उसकी सामान्य गतिविधियों के पीछे कुछ ऐसे तथ्य छिपे होते हैं जिन्हें देख-सुनकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

विलक्षण प्रतिभाओं के अनेकों उदाहरण सुनने को मिलते हैं। इनके पीछे जेनेटीक्स अथवा अचेतन की कौन-सी अविज्ञात शक्ति काम करती है, यह तो ज्ञात न हो सका, पर ये तथ्य ऐसे अविज्ञात का रहस्योद्घाटन करते हैं जिस पर समग्र शोध अभी जारी है। जीती जागती कम्प्यूटर मानी जाने वाली गणितज्ञ शकुन्तला की तरह कर्नाटक के विजगग्राम के ६ वर्षीय अशोक नामक बालक ने भी ऐसा ही तहलका मचाया है। वह गणित के प्रश्नों को सैकिण्डों में हल कर देता है। एक भाषा का ज्ञान ही मनुष्य को दो दशक लगा देता है, किन्तु म्यूनिख के प्राध्यापक फ्रेंच एक्सादर रिख्टर सारे विश्व की ७७ भाषाओं में बातचीत करने एवं सभी में महारत तक रखने का दावा करते हैं।

प्रतिभा, जिम्मेदारी और ईमानदारी रूपी व्यक्ति के त्रिविधि गुणों की आवश्यकता पूरी करने वाला एकमात्र व्यक्ति अमेरिकी काँग्रेस के सदस्यों को श्वाइन्जर कालफैक्स ही प्रतीत हुआ। उन दिनों महत्वपूर्ण पदों में से कोई भी व्यक्ति किसी एक को ही सम्भाल सकता था। पर सदस्यों ने सर्वसम्मति से दो सर्वोच्च पदों पर बने रहने के लिए न केवल आग्रह किया वरन् इसके लिए विशेष नियम भी पारित किए। श्री कालफैक्स यूनाइटेड स्टेट्स के सन् १८६५ में उपराष्ट्रपति भी थे। उनकी प्रत्युत्पन्न-मति एवं विलक्षण स्मरण शक्ति के कारण विशेष प्रस्ताव द्वारा उनसे हाउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव्स के स्पीकर का पद सम्भालने को कहा गया। दोनों पद वर्षों उन्होंने बखूबी निभाए।

किसी एक व्यक्ति ने एक ही समय में तीन विभिन्न फैकल्टीज के अधिष्ठाता, व्याख्याता की भूमिका तीन अलग-अलग विश्व-विद्यालयों में निभाई हो, इसका उदाहरण हैं—अमेरिका के डा० पाल० ए० चैंडवार्न। अपने विषयों में निष्णात होने के कारण उन्हें यह जिम्मेदारी सौंपी गयी। प्रोफेसरों की कमी नहीं थी, पर उनके ज्ञान की प्रगाढ़ता और पढ़ाने की शैली को देखते हुए हर विश्वविद्यालय उनसे अपने यहाँ काम करने का आग्रह करता था। अन्ततः उन्होंने विलियम्स कालेज, बाडोइन कालेज एवं मैंने मेडीकल कालेज में क्रमशः वनस्पति विज्ञान, इन्जीनियरिंग एवं चिकित्सा विज्ञान की सर्वोच्च कक्षाएँ पढ़ाते रहने की जिम्मेदारी हाथों ली एवं वर्षों बखूबी निभाई।

स्वामी विवेकानन्द पुस्तक पर हाथ रखकर मात्र पन्ने पलटकर उसे शब्दशः दुहरा देते थे। एक बार उन्हें एक विवाद में गवाह की भूमिका निभानी पड़ी। अपरिचित दक्षिणी भाषा में हुए एक वार्त्तालाप का साक्षी स्वामी जी को एक प्रतिवादी ने अपने समर्थन में बनाया। उस भाषा को न जानते हुए भी, वादी-प्रतिवादी में हुए आधे घण्टे के वार्त्तालाप को शब्दशः उसी भाषा में उन्होंने न्यायाधीश के समक्ष दुहरा दिया। इसी गवाही के बदौलत एक निर्दोष व्यक्ति की जान बच गयी।

ये तो मात्र कुछ प्रसंग हैं, उस अपरिमित मानवी सत्ता के, जिसके एक-एक घटक में प्रचुर सामर्थ्य छिपी पड़ी है। साठ साल तक की औसत आयु जीने वाला मनुष्य, जो लगभग ३५ टन खाद्य-सामग्री इस अवधि में उदरस्थ कर डालता है, यदि समय की महत्ता समझकर एक-एक पल का सदुपयोग कर सके तो वह भी इस सामर्थ्य को हस्तगत कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र एवं अद्भुत वनस्पति जगत

प्रकृति जगत अनेकों ऐसी विचित्रताओं से भरा पड़ा है जिनका समाधान सामान्य अन्वेषण बुद्धि नहीं लगा पाती। ऐसे ही अनेकों उदाहरणों में से कुछ इस प्रकार हैं।

बाई डाँगों अफ्रीका के गाँव मवाई तथा फ्रांस के 'केन्ड्री' स्थान में एक प्रकार का वृक्ष पाया जाता है जो वनस्पति विज्ञान के नियमों का उल्लंघन कर वैज्ञानिकों के लिए आश्चर्य का विषय बना हुआ है। इस वृक्ष की जड़ें कील या चूलनुमा होती हैं। जब कभी तूफान इस पेड़ के पास पहुँचता है तो वृक्ष चूलनुमा जड़ के सहारे लट्टू जैसे चक्कर काटने लगता है जबकि अन्य जाति के हजारों पेड़-पौधे धराशायी हो जाते हैं। जितनी देर तूफान रहता है-- वृक्ष नाचता रहता है, तूफान बन्द होने पर उसका नाचना बन्द और उसकी अगली विकास यात्रा प्रारम्भ हो जाती है।

गर्म प्रदेशों में पाया जाने वाला वृक्ष 'समानी सनम' वनस्पति जगत में अपने ढंग का अनौखा है। वह रात्रि में बादल की तरह बरसता है। उस क्षेत्र के निवासी उसी से अपनी जल आवश्यकता पूरी करते हैं। यह पेड़ दिन भर अपने डण्ठलों से हवा की नमी सोखता रहता है और अपना भण्डार भर लेता है। जैसे ही मौसम की गर्मी शान्त होती है वह उस भण्डार को खाली करके उस क्षेत्र के प्राणियों की प्यास बुझाता है। सभी रात्रि की प्रतीक्षा में उसके इर्द-गिर्द जमा रहते हैं।

हिन्द महासागर के रियूनियनद्वीप में कैक्टस जाति का एक विचित्र पौधा पाया जाता है वह अपने जीवन के अन्तिम दिनों प्रायः पचास वर्ष बाद एक बार ही फूलता है। इसके बाद उसके जीवन का अन्त हो जाता है।

इसी प्रकार सेग्येरो कैक्टस की रबर की तरह बढ़ सकने वाली चमड़ी केवल एक बार की तूफानी वर्षा में दो सौ गैलन पानी सोख सकती है। इसकी छिछली जड़ों का अव्यवस्थित फैलाव सौ फुट तक के क्षेत्र में होता है।

महाराष्ट्र के जलगाँव—अजिण्ठा मार्ग पर पहुर नामक एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ से शेंदुर्णी जाने वाली कच्ची सड़क पर ३ मील दूर पर सोय गाँव अवस्थित है। इस गाँव में वाणी सिद्धि का एक अद्भुत चमत्कार नीम का एक पेड़ है। जिसकी प्रत्येक डाल के पत्ते कड़वे हैं किन्तु सिर्फ एक डाल ऐसी है जिसके पत्तों का स्वाद अत्यन्त मीठा लगता है। कहते हैं कड़ोबा महाराज नाम के एक साधु ने ईश्वर के अस्तित्व और उसकी शक्ति का परिचय देने के लिए ऐसा किया था।

अभी-अभी पिछले दिनों विश्व के सबसे बड़े बरगद वृक्ष की जानकारी भारतवर्ष के आन्ध्र प्रदेश के अनन्तपुर जिले में मिली है। कादिरी ताल्लुक में विद्यमान यह वृक्ष ५ एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। इसे एक पर्यटन केन्द्र के रूप में विकसित किये जाने की योजना है।

अमेरिका के कैलीफोर्निया प्रान्त के घने वनों में रेड़ वुड़ का एक वृक्ष है, जिसने ४ हजार बसन्त देखे हैं। वह अब भी फल फूल रहा है। पुराने जमाने में इसकी डालों का प्रयोग तीर कमान बनाने में किया जाता था।

विश्व का सबसे बूढ़ा देवदार भारत के टिहरी जिले में है यह ७०० साल से जिन्दा है। इसी प्रकार तमिल नाडु में ५०० वर्ष पुराने दो सागौन के पेड़ हैं। पश्चिमी बंगाल के मालदा में ३६ मीटर ऊँचाई का एक आम का पेड़ तथा महाराष्ट्र के चाँदा में ४३ मीटर ऊँचा सागौन का पेड़ है जो सबसे अधिक किसी वृक्ष की ऊँचाई है।

प्रकृति के नियमों में अपवाद के रूप में पाए जाने वाले ये विचित्र विलक्षण वनस्पति जगत के उदाहरण बताते हैं कि सुनियोजित विधि-व्यवस्था में सृजेता अपना बराबर हस्तक्षेप रखता है। हँसी मजाक भी करता है व इन विचित्रताओं के माध्यम से अपनी नियामक सत्ता का परिचय हर क्षण मनुष्य को दिलाता रहता है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समूचा ब्रह्माण्ड एक चैतन्य शरीर

तत्वदर्शियों का यह मत है कि जड़ और चैतन्य में भेद हमें हमारी स्थूल दृष्टि के कारण दिखाई पड़ता है। वस्तुतः जड़ता कहीं भी नहीं है। ब्रह्माण्ड के कण-कण में चेतना संव्याप्त है। मानवी काया और विराट् ब्रह्माण्ड भी उसी चेतना के महासागर का एक अंग होने के नाते परस्पर एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। इस तत्व-दर्शन को प्रतिपादित कर विश्व भर में फैलाने एक विज्ञान का स्वरूप देने का कार्य भारत से ही आरम्भ हुआ व इसे ज्योतिर्विज्ञान नाम दिया गया। इसका उद्देश्य यही था कि आकाश में ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का मौसम विज्ञान और प्राणी समुदाय पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाय। विडम्बना यही है कि इस विद्या का फलित ज्योतिष के नाम पर दुष्प्रभावों की भय-विभीषिका फैलाने के रूप में दुरुपयोग अधिक हुआ है। फिर भी छुटपुट प्रयास ऐसे चले हैं जिन्हें यथार्थवादी एवं भ्रान्ति निवारक कहा जा सकता है।

भारतीय ज्योतिष की नींव बड़ी गहरी, वैदिक काल से पड़ी प्रतीत होती है। सृष्टि के निर्माण काल के बारे में विज्ञान तथा इस ज्योतिष से बड़ा तालमेल बैठता है। काल गणना करके मानव वर्ष तथा देव वर्ष बने हैं। ३६० मानव वर्षों का एक देव वर्ष कहा जाता है। १२ हजार वर्षों का एक देवयुग और १००० देवयुग को ब्रह्मा जी का एक दिन कहा जाता है। एक देवयुग में सतयुग, त्रेता द्वापर तथा कलियुग क्रमशः ४८, ३६, २४ और १० हजार वर्ष के होते हैं। प्रत्येक युग के आरम्भ तथा अन्त में पड़ने वाली सान्ध्य बेला को भी वर्गीकृत किया गया। आरम्भिक सान्ध्य बेला को सन्ध्या और अन्तिम चरण को संध्यांश कहा गया। भारतीय ज्योतिर्विद यह भी बताते हैं कि कलियुग, द्वापर, त्रेता और सतयुग में संध्याएँ क्रमशः १००, २००, ३०० और चार-चार सौ वर्ष की पड़ती हैं। एक युग की संध्या और संध्यांश का समय एक जैसा होता है। युगों के मुख्य भाग सतयुग में ४०००, त्रेता में ३०००, द्वापर में २००० और कलियुग में १००० वर्षों का कहे गए हैं।

ज्योतिष शास्त्र का आधार गणित को दिलाने का श्रेय आर्यभट्ट को जाता है। अनेक कठिन प्रश्नों को सूक्ष्मीकृत करके उन्होंने मात्र ३० श्लोकों में सीमित कर दिया। प्रसिद्ध ज्योतिष सिद्धान्त के काल क्रिया पाद अध्याय में तिथि नक्षत्र की गणना की गई है। सूर्य सिद्धान्त में ब्रह्माण्ड की ही नहीं काल विभाजन की भी गवेषणा की गई है।

वाराह मिहिर की पंच सिद्धान्तिका में चन्द्रमा की कलाओं की विवेचना है। ग्रन्थ यन्त्राध्याय के अनुसार काल के सूक्ष्म अवयवों का ज्ञान बिना यन्त्र के असम्भव है। राशि वलय, नाड़ी वलय, या शंकुधरी, चक्र चाप, सूर्य फलक और भित्ति यन्त्र जैसे यन्त्रों का विशद वर्णन भाष्कराचार्य ने किया है। तदुपरान्त ज्योतिष में कुछ शतकों तक पठार सा रहा क्योंकि उसमें कोई ठोस कार्य सम्पन्न नहीं दीखते।

१६८२ में सवाई जयसिंह का जन्म हुआ बड़े होकर पहले उन्होंने जन्तर-मन्तर दिल्ली में वेधशाला बनवाई और बाद में जयपुर, उज्जैन, वाराणसी और मथुरा में वेधशालाएँ स्थापित कराईं। यह दुर्भाग्य ही है कि अन्तिम तीन वेधशालाएँ अब खण्डहर स्वरूप ही हैं। इतना ही नहीं महाराजा जयसिंह का विशाल ग्रन्थागार भी विनष्ट हो गया है। उन्होंने पं० जगन्नाथ से टॉलेमी के "सिनटेंक्सिस" का अनुवाद कराया। आधुनिक इक्वेटोरियल यन्त्र की भाँति ही उनका बनवाया हुआ चक्र यन्त्र प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज की दिल्ली की कुतुबमीनार का निर्माण कभी सम्राट समुद्र गुप्त ने कराया था। परन्तु आमतौर पर लोग इसे कुतुबुद्दीन ऐबक का बनाया मानते हैं। यह इतिहास की एक बड़ी भूल है। इस मीनार का वास्तविक नाम "विष्णु ध्वज" था। इसे वेधशाला की केन्द्रिय मीनार के रूप में बनवाया गया था। प्रो० डी० त्रिवेदी द्वारा प्राप्त जानकारी के अनुसार इस मीनार का निर्माता समुद्र गुप्त ही था। पास ही विष्णुपद पहाड़ी में लोहे का स्तम्भ भी खड़ा किया गया था। जिस पर गुप्त कालीन लिपि में खुदे सूत्र हैं।

डा० त्रिवेदी की जानकारी से यह भी स्पष्ट होता है कि यह मीनार ५ डिग्री कोण पर झुकी हुई है और २२ जून को दोपहर में उसकी छाया नहीं पड़ती। सर्वविदित है कि यह दिन उत्तरी गोलार्ध का सबसे बड़ा दिन माना जाता है। कुतुबमीनार गणित के सिद्धान्तों के आधार पर बनायी गई थी। इसके प्रत्येक कोने के बीच की दूरी ३० डिग्री तथा ३५ डिग्री है। त्रिकोण भित्ति की गणना से इसकी ऊँचाई आधुनिक इकाई में ८७.०३ मीटर है।

ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक भौतिक विज्ञानियों द्वारा प्रणीत ब्रह्माण्डीय एकत्व का सिद्धान्त ऋषियों को बहुत पहले ही मालूम हो चुका था। इसकी झाँकी हम आर्ष ग्रन्थों में पाते हैं। भारतीय ऋषि सदा से इस बात को कहते आये हैं कि इस जगत को दो मार्गों से समझा जा सकता है अपरा विद्या और परा विद्या उनके अनुसार अपरा विद्या निकृष्ट स्तर की है जो पदार्थ जगत के लिए ही लागू होती है। दूसरी तरफ परा विद्या को अतीन्द्रिय व सूक्ष्म योग शक्ति ग्राह्य माना गया है। यह वस्तुतः उच्चस्तरीय गणित है। जिससे वैदिक काल में विश्व की संरचना व काल गणना का अध्ययन किया जाता था।

चिर पुरातन वेदों का सम्बन्ध परा विद्या से है और ज्योतिष को वेदों का नेत्र कहा गया है। अतः ज्योतिष को भी परा विद्या से ही सम्बन्धित बताया गया है। चूँकि परा विद्या एक उच्चस्तरीय गणित है अतः ज्योतिष भी उसी स्तर की गणित विद्या है। इन महान ग्रन्थों के अनुसार इस महान विद्या ज्योतिर्विज्ञान का मूलभूत आधार वस्तुतः चन्द्रमा, सूर्य तथा सौर जगत के अन्याय ग्रहों का पृथ्वी तथा उसके निवासियों से अन्योन्याश्रित सम्बन्धों एवं सम्भावित प्रभावों का अध्ययन है।

ज्योतिष का तात्विक अर्थ शक्ति अथवा नक्षत्र है। सर एम० एम० विलियम ने अपनी संस्कृत से अंग्रेजी शब्दकोश में ज्योतिष की इस प्रकार व्याख्या की है। "सत्व गुण से व्याप्त मनःस्थिति अथवा प्रशान्त मनःस्थिति अथवा ब्रह्म-ज्योति अथवा सर्वोच्च सत्ता के रूप में बोध गम्य प्रकाश"। एक शब्द में ज्योतिष को चेतन सत्ता की पारस्परिक क्रिया का विज्ञान कह सकते हैं अर्थात् तत्वों अथवा शरीर के अवयवों, मन एवं ब्रह्माण्डीय शक्तियों के बीच पारस्परिक संयोग-क्रिया का परिणाम ही ज्योतिर्विज्ञान है।

ब्रह्माण्ड विद्या (ज्योतिष शास्त्र) में ग्रहों को एक राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था क्रम में रखा गया है। जिसमें सूर्य राजा का प्रतिनिधि है, चन्द्रमा रानी का तथा बुध राजकुमार का। इस सबके पीछे भी गणितीय सिद्धान्त काम करते हैं। प्राचीन आर्ष ज्योतिषियों ने ज्योतिर्विद्या को एक ब्रह्माण्डीय अनुशासन के रूप में प्रस्तुत किया है जिसमें ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम, निष्ठा व्यक्त की गई है। ज्योतिष का उनने पवित्र तन्त्र के रूप में ध्यानपूर्वक अध्ययन किया एवं ज्योतिष को ज्ञान का समुद्र कहा है। इस विद्या को परम पावन परा विद्या के रूप में प्रतिपादित किया गया जिसकी गहराईयाँ तथा सीमाएँ अनन्त हैं। इसलिए भारतीय ज्योतिष शास्त्रियों में उपरोक्त संकेत रूपक स्थापित किये हैं जिससे इस विद्या के रहस्यों को समझा जा सके।

ब्रह्माण्ड रसायन जैविकी के अनुसार राशि चक्र के बारह चिन्ह कालपुरुष के, महाकाल के शरीर के अंग हैं। पहला राशि चिह्न मेष है जो काल पुरुष के मस्तिष्क नियन्त्रण केन्द्र का प्रतिपादन करता है। वृषभ चेहरे का प्रतीक है। मिथुन गर्दन तथा सीने के ऊपरी हिस्से का तथा कन्धों का चिन्ह है। कर्क हृदय, सिंह पेट, कन्या नाभि, तुला आँतों, वृश्चिक गुप्तांगों, धनुष जंघाओं, मकर जोड़ों, कुम्भ घुटनों के नीचे वाले भागों तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीन शरीर के अन्तिम निचले हिस्से पैरों का प्रतीक है।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्माण्डीय पुरुष के शरीर के विभिन्न अंगों के रूप में ग्रहों को चिन्हित किया गया है। चन्द्रमा मन है। मंगल शक्ति है। बुध वाक् है। गुरु काल पुरुष का ज्ञान, स्वास्थ्य, समृद्धि, सन्तति तथा सुख सम्बन्धी पक्ष है। शुक्र आकर्षण शक्ति, लैंगिक प्रेम तथा उपभोग का प्रतीक है। शनि तितिक्षा, व्यथा एवं अन्ततः नर्क की वेदना का प्रतीक है। जिसमें मिलन की सम्भावनाएँ निहित हैं।

ब्रह्माण्डीय विद्या में सामाजिक राजनैतिक प्रतीक भी हैं। जैसे सूर्य —राजा, चन्द्रमा—रानी, गुरु—शुक्र, मन्त्री मंगल—सेनापति, बुध—राजकुमार तथा शनि सेवक हैं। ये प्रतीक मात्र हैं जो उनके अधिकार क्षेत्र का बोध कराते हैं। जिसकी परिधि में सृष्टि का घट-घट आ जाता है। काल पुरुष चार्ट, जो ग्रहों की जानकारी का मूल आधार है, की सहायता लेकर किसी भी व्यक्ति की जन्म कुण्डली बनाकर व्यक्ति के शारीरिक-मानसिक विकास की जानकारी मिल सकती है साथ ही भावी भावनाओं की जानकारी देकर दिशाधारा निर्धारित की जा सकती है। यदि किसी व्यक्ति का सूर्य ग्रह ठीक जगह स्थित तथा बलवान है तो व्यक्ति की सामाजिक स्थिति तथा नियन्त्रण शक्ति ठीक होने की जानकारी मिलती है। शक्तिशाली ग्रह अपने विशिष्ट प्रभाव की जानकारी देते हैं।

यह एक समग्र विज्ञान सम्मत विधा है, ऐसा इस वर्णन से स्पष्ट होता है। खगोल भौतिकी के सिद्धान्त भी कुछ ऐसा ही प्रतिपादित करते हैं। न केवल भारत अपितु विदेशों के विद्वान भी ज्योतिर्विज्ञान के स्वरूप की ऐसी व्याख्या करने में समर्थ हुए हैं, जिससे ब्रह्माण्डीय शक्तियों के जीव चेतना पर प्रभाव की पुष्टि होती है।

ईसाई धर्म की पुस्तक बाइबिल की व्याख्या करते हुए तीन शताब्दी पूर्व विद्वान पैरासेल्सस ने लिखा था कि "मनुष्य शरीर को इच्छाओं का सजा हुआ वाद्य यन्त्र कहना चाहिए जिसमें कि आत्मा की झंकार सबसे मधुर रूप में सुनाई देती है। इच्छाएँ आकाश में स्थित नक्षत्रों (देव शक्तियों) के बीज कोश ही हैं। यही बीज शरीर के कुछ महत्वपूर्ण स्थानों में रहते हैं। उनकी आणविक संरचना और ब्रह्माण्ड-व्यापी नक्षत्रों की मूलभूत संरचना में विलक्षण साम्य होता है।'

पैरासेल्सस लिखते हैं—"शरीर की रचना नक्षत्र गति के संरक्षण और निर्देशन में होती है। उत्पत्ति के तीसरे दिन चन्द्रमा ने बुद्धि और तुला ने व्यक्तित्व को प्रभावित किया। शरीर में तन्मात्राएँ दूसरे दिन ही आ गई थीं, जिनकी उत्पत्ति सूर्य शक्ति से हुई। हृदय पर लियो (चन्द्रमा) का अधिकार होता है और वह आत्मिक शान्ति और सभ्यता प्रदान करता है। शरीर के दूसरे सूक्ष्म अंगों को सेजीटेरियस इगो प्रभावित करते हैं। इस प्रकार मध्यकाल के ज्योतिर्विद भी आर्षविज्ञान की इस विधा के उन पक्षों का समर्थन करते दीखते हैं जिन्हें देव संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान मिलता रहा है।

उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
एतानि यत्र वर्तन्ते तत्र देवः प्रसीदति॥

परिश्रमशीलता, साहस, धैर्य, सद्बुद्धि और श्रेष्ठ कार्यों में पराक्रम—ये गुण जिस व्यक्ति में होते हैं, उन पर देवताओं की प्रसन्नता बनी रहती है।

सभी वैज्ञानिक प्रमाण एवं उपलब्ध तथ्य यही बताते हैं कि यह समग्र ब्रह्माण्ड एक शरीर है और इसका कोई भी अंग अलग नहीं, वरन् एकात्म भाव से जुड़ा हुआ है। कोई भी ग्रह-नक्षत्र कितनी भी दूर क्यों न हो, वह जीव जगत को निश्चित रूप से प्रभावित करता है। साथ ही अपने ग्रह पर होने वाली विधाता को अमान्य गतिविधियाँ प्रकारान्तर से अन्तर्ग्रही सन्तुलन को प्रभावित कर दैवी प्रकोपों को आमन्त्रित करती हैं, यह भी सत्य है। अन्तर्ग्रही प्रभावों से अब भली-भाँति परिचित मनीषी गण यह कहने में हिचकते नहीं कि अणु में लघु एवं विभू में महान की, पिण्ड व ब्रह्माण्ड की एकता का सिद्धान्त सुनिश्चत एवं सत्य है। चिन्तन में परिवर्त्तन के इस महत्वपूर्ण मोड़ ने विज्ञान को नयी दिशाधारा दी है, नये सिरे से सोचने का अवसर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्थक भविष्य वाणियों की उपयोगिता

जापान की भूमि आये दिन भूकम्प आने के लिए कुख्यात है। इसलिए वहाँ लोग भारी मकान नहीं बनाते। लकड़ी और शेडों के माध्यम से ऐसे घर बनाते हैं, जिनके धराशायी होने पर जान-माल की कम से कम क्षति हो। कारखानों का भी मरम्मत से काम चल जाय। किन्तु जापान से लगे हुए चीनी क्षेत्र की स्थिति भयावह है। वहाँ जमीन के नीचे कई दिशाओं में छितराई हुई ऐसी पट्टियाँ जलती हैं जिनमें भीतर ही भीतर कई प्रकार की हलचलें चलती रहती हैं और कभी-कभी तो भयंकर भूकम्पों की विनाशलीला उपस्थित करती हैं।

पिछली शताब्दी तक इन्हें दैवी प्रकोप माना जाता था और किसान अपने क्षेत्र सुरक्षित बने रहने के लिए मनौती मनाया करते थे। पीछे विज्ञान की प्रगति ने इसके कारणों को ढूँढ़ निकाला और यह अन्वेषण कर लिया कि उनका पूर्वाभास प्राप्त किया जा सके। काफी समय पूर्व जानकारी मिल जाने से ये लोग आपत्ति ग्रस्त क्षेत्र की सीमा छोड़कर खुले मैदानों में चले जाते। बाँस और बोरियों की सहायता से उनके नीचे गुजारा करते हुए उतना समय बिता लेते जितने दिनों में आपत्ति काल टल जाता।

चांग काई शेक के समय से लेकर माओत्से तुंग तक के काल में इस अनुसन्धान पर विशेष जोर दिया जाता रहा है कि विनाशकारी भूकम्प आने के क्षेत्र और समय की भविष्यवाणी कर सकना बन पड़े। साथ ही यह भी बताया जा सके कि उसकी शक्ति कितनी प्रचण्ड या हलकी होगी।

भविष्य कथन कभी ग्रह गणित पर निर्भर रहता था और उनसे बचने के लिए देवताओं की मनौती मनाने के अतिरिक्त और कोई उपाय न था। किन्तु अब वह पद्धति बिलकुल बदल गई है। जिन पट्टियों में भूकम्प की सम्भावना विदित हो चुकी है उनमें भू-चुम्बकीय सिद्धान्त पर आधारित अनेकों वेधशालाएँ बनाली गई हैं। वे जमीन के भीतर चल रही हलचलों की ऐसी सूक्ष्म सूचनाएँ ऊपर परत पर भिजवाती हैं कि भूकम्प की लहर कितने क्षेत्र को प्रभावित करेगी, किस दिशा से किस दिशा को चलेगी, कितने समय ठहरेगी और उसकी विस्फोट क्षमता कितनी शक्तिशाली होगी।

यह सूचना मिलते ही बेतार के तार से उस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के साइरन बजने आरम्भ हो जाते हैं। इस प्रदेश के निवासियों को सिखाया गया है कि किस प्रकार भोंपू बजने का क्या तात्पर्य होता है। जहाँ विस्फोट की अधिक सम्भावना होती है वहाँ खतरे की लाल बत्तियाँ जलने लगती हैं और जहाँ संकट का अन्तिम दौर होता है वहाँ हरी बत्तियाँ जगमगाने लगती हैं ताकि लोग घर छोड़कर दिशा और अवकाश के समय की सही जानकारी प्राप्त कर सकें।

सरकारी सामान से ऐसे मोमजामे के मुसाफिर खाने बना दिये जाते हैं, जिनके नीचे लोग संरक्षण प्राप्त कर सकें। भोजन के लिए भुने हुए सत्तू जैसी वस्तु पहले से ही तैयार रखी जाती है। बाजार में भी बिकती हैं और लोग घरों में भी बनाकर तैयार रखते हैं। यह पचने में हलका होता है। बच्चे, बूढ़े और बीमार इसके सहारे सामयिक संकट की घड़ी निकाल सकते हैं।

पिछली शताब्दियों में भूकम्पों ने समूचे चीन व जापान क्षेत्र में कितनी क्षति पहुँचाई थी। इस शताब्दी में वेधशालाओं एवं अन्तरिक्षीय उपग्रहों के सहारे पूर्व ज्ञान प्राप्त करने और भविष्य वाणी करने की सुविधा ने हानि का अनुपात ९५ प्रतिशत कम कर दिया है। साथ ही यह भी अनुमान लगने लगा है कि किस क्षेत्र को संकट से मुक्ति मिल गई और किस में नये सिरे से शुरुआत होने जा रही है। इस प्रकार चीन की तरह सर्वत्र भविष्य कथन उपयोगी हो सकता है। पर वह होना चाहिए वैज्ञानिक आधार पर। पंचागों के सहारे दी जाने वाली फलित ज्योतिष जानकारी तो प्रायः तीर-तुक्का भर होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरणोत्तर जीवन में सूक्ष्म शरीर की गतिविधियाँ

मनुष्य के खाने सोने और चलने-फिरने वाले शरीर के सम्बन्ध में सर्वसाधारण को काम चलाऊ जानकारी भर है। उसके भरण-पोषण, चिकित्सा, उपचार, साज-सज्जा एवं प्रसन्नता मनोरंजन के लिए जो कुछ सम्भव होता है सो अपनी बुद्धि और क्षमता के अनुरूप सभी करते हैं।

इसके उपरान्त मनुष्य का व्यक्तित्व आता है, जो गुण कर्म, स्वभाव, शिक्षा एवं संगति पर निर्भर है। व्यक्तित्व-वान् प्रतिभाएँ अपनी दूरदर्शिता के आधार पर बड़ी जिम्मेदारियाँ उठाती हैं और उन्हें सफल बनाकर दिखाती हैं। शरीर के स्वस्थ अथवा सुगढ़ सुन्दर होते हुए भी यदि आन्तरिक क्षमता दुर्बल हो तो दृश्यमान आकर्षण का प्रभाव ठहरता नहीं। जल्दी ही उसकी मूर्खता एवं अनगढ़ स्थिति प्रकाश में आती है और लोग उनका मजाक बनाने लगते हैं। न ही वह अपने कामों को सही ढंग से कर सकता है और न उससे वार्त्तालाप करते हुए कोई प्रभावित या प्रसन्न होता है इसलिए शरीर की तरह ही मनुष्य के अन्तरंग का—व्यक्तित्व का भी महत्व माना गया है।

अध्यात्म क्षेत्र में शरीर और मन के अतिरिक्त सूक्ष्म शरीरधारी आत्मा का भी अस्तित्व माना गया है। यह सूक्ष्म शरीर—काया के इर्द-गिर्द प्राण विद्युत की तरह विद्यमान रहता है और तेजोवलय के रूप में उसे विशेष यन्त्र उपकरणों से देखा परखा भी जा सकता है। इसी को सुविकसित एवं क्षमता सम्पन्न बनाने के लिए अनेक प्रकार की साधनाएँ की जाती हैं।

आर्ष मान्यता है कि मरने के बाद भी सूक्ष्म शरीर विद्यमान रहता है। स्वर्ग नरक में उसी को जाना पड़ता है। नया जन्म न होने तक यह सत्ता अपना अस्तित्व बनाये रहती है। प्रिय अप्रिय जनों के साथ उनका भला-बुरा सम्पर्क भी बना रहता है। नया जन्म लेने में इस सूक्ष्म शरीर का स्तर ही प्रधान भूमिका निभाता है।

जीवित स्थिति में यह सूक्ष्म शरीर यदि उपयुक्त क्षमता अर्जित करले तो सिद्ध पुरुष जैसी स्थिति उपलब्ध होती है। वह एक साथी या सहायक की तरह प्रत्यक्ष शरीर से एवं अन्यान्य लोगों को अपनी विशिष्टता से लाभान्वित करता रहता है।

मध्य पूर्व के नव निर्मित धर्मों की मान्यता है कि आत्मा कब्र में बैठी रहती है और महाप्रलय के दिन उसे ईश्वर के सम्मुख बुलाया जाता है। भले बुरे कर्मों का ईश्वर के दरबार में ही न्याय किया जाता है। किन्तु पुरातन काल के सभी धर्मों में मरने के बाद आत्मा के अन्तरिक्ष में निवास करने तथा इच्छित क्रिया-कलापों में निरत रहने की बात कही गई है।

पुरातन दर्शन एवं विज्ञान अनुसन्धान संस्थान के संस्थापक प्लूटो ने ईसा से ४२८-३४८ वर्ष पूर्व 'फैडो' नामक पुस्तक में अपने गुरु सुकरात के उन सन्देशों को उद्धृत किया है जो प्लूटो को दिये गये थे। जीवन के अन्तिम क्षणों में सुकरात ने कहा था कि "तुम्हें मेरी मृत्यु पर दुःख व्यक्त नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह नाश-वान शरीर ही जलेगा, आत्मा नहीं।" एक और पुस्तक "रिपब्लिक" प्लूटो की बड़ी लोकप्रिय बन चुकी है जिसमें उनने आत्मा की अमरता को अंगीकार किया है। प्लूटो के इस ज्ञान का स्रोत मनीषीगण भारतीय दर्शन को ही मानते हैं।

यहूदी भाषा में आत्मा को 'नैफेस' की संज्ञा दी गयी है। जिसका अर्थ है—"सजीव शरीर के साथ जुड़ा हुआ सूक्ष्म"। अर्थात् आत्मा का शरीर से अलग रहकर कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। वह स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर को धारण किये ही रहती है। उक्त तथ्य की पुष्टि ईसा-इयों के धर्मग्रन्थ बाइबल के जैनेसिस २:७ में भी की गयी है। "न्यू टैस्टामैंट" में भी आत्मा के अजर-अमर होने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण स्पष्ट रूप से पढ़ने को मिलते हैं। न्यू टैस्टामैंट में वर्णित 'शुके' शब्द भी यहूदी 'नैफेस' के समरूप समझा जाता है। 'शुके' शब्द का दो प्रकार से प्रयोग होता आया है। एक तो वह आत्मा जो निम्न कोटि के जीवधारियों तथा प्राणियों में कार्यरत रहती है और दूसरा स्वरूप वह जो ऊँच-नीच, भेद-भाव आदि के झंझटों से मुक्त रहता है। इनमें से एक को प्रेतात्मा अथवा प्राणी कहा जा सकता है और दूसरे को स्वर्गस्थ जीवन मुक्त।

संसार भर के अन्यान्य पुरातन ग्रन्थों और घटनाक्रमों को देखने सुनने से पता चलता है कि आत्मा की शरीर से पृथक होने की ही मान्यता नहीं रही है, वरन् यह भी माना जाता रहा है कि मरणोत्तर जीवन भी लम्बे समय तक बना रहता है। नवीन जन्म कब मिलता है और किस कारण किस प्रकार का शरीर धारण करना पड़ता है, इस सम्बन्ध में मतभेद होते हुए भी यह मान्यता अधिकतर दार्शनिकों की है कि आत्मा का अस्तित्व सूक्ष्म शरीर के रूप में मरने के बाद भी बना रहता है और वह लौकिक गतिविधियों में अपना हस्तक्षेप तथा योगदान किसी न किसी रूप में करती ही रहती है। देवताओं और मनुष्यों के बीच सन्देश वाहक जैसी भूमिका उसकी रहती है।

भारतीय तत्वदर्शन तो इस सन्दर्भ में अनादि काल से ही मानता रहा है कि मृत्यु केवल शरीर की होती है और उसके उपरान्त भी सूक्ष्म शरीर समेत आत्मा की गतिविधियों का क्रिया-कलाप जारी रहता है। स्वर्ग या मुक्ति की दशा में ही वह संसार से सम्बन्ध विच्छेद करती है और परम शान्ति को प्राप्त करती है। जब तक वह स्थिति नहीं आती तब तक सूक्ष्म शरीर संसार में अदृश्य रूप से रहता है और स्वार्थ या परमार्थ के लिए कुछ न कुछ करता ही रहता है। स्वार्थी अपनी अतृप्त कामनाओं की पूर्ति के लिए उस प्रकार के घटनाक्रमों के इर्द-गिर्द मँडलाते रहते हैं और शरीर न होने पर भी वे इच्छित स्वभाव के अनुरूप जहाँ वातावरण दीखता है वहाँ जा पहुँचते हैं। जिनसे अपनी मित्रता या शत्रुता रही है उन्हें लाभ-हानि पहुँचाने का भी जो कुछ प्रयास बन पड़ता है उसे करते रहते हैं। इन्हें प्रेत स्तर का कहा जाता है। परमार्थ परायण आत्माएँ कष्ट पीड़ितों की सहायता करने जा पहुँचती हैं और "अदृश्य सहायकों" की भूमिका निभाती हैं किन्हीं को प्रेरणा देकर उनके शरीरों से वह काम करा लेती है जिसे करने के लिए उनकी परमार्थ भावना उमड़ती है।

शरीर धारी मनुष्य लोकहित के अनेक कामों में योगदान देते रहते हैं। जिनकी वह प्रवृत्ति बनी रहती है, वे मरने के बाद भी ऐसे अवसर तलाशती रहती हैं और उस वातावरण में सम्मिलित होकर कुछ न कुछ ऐसा करती रहती हैं, जिससे सत्प्रयोजनों में सफलता मिले और दुष्टों के मनोरथ विफल होते रहें। उस प्रकार के घटनाक्रमों से जो सत्परिणाम उपस्थित होते हैं उनकी अनुभूति ही उन्हें सन्तोष देती है। अस्तु ! अपनी निज की प्रसन्नता और दूसरों की सुविधा के लिए सूक्ष्म शरीरधारी भी कुछ न कुछ करते ही रहते हैं।

यह संसार कर्मक्षेत्र है। शरीर का गठन भी कुछ ऐसा हुआ है कि वह बिना कर्म किये रह नहीं सकता। जीवित रहते हुए मनुष्य को जैसा कुछ करने का अभ्यास रहा होता है उसी के अनुरूप उसकी गतिविधियाँ मरणोत्तर काल में उस समय तक चलती रहती है जब तक कि उन्हें नया जन्म नहीं मिल जाता और सद्गति वाले शान्ति लोक में उन्हें विश्राम नहीं मिल जाता। ●

व्यास जी बोलते गये और गणेश जी लिखते गये। इस प्रकार जब महाभारत पूरा हो गया तो व्यास जी ने गणेश जी से कहा—"मैंने चौबीस लाख शब्द बोले पर आप उस समय में सर्वथा मौन रहे। एक शब्द भी न कहा।" गणेश जी ने कहा—बादरायण, सभी प्राणियों में सीमित प्राण शक्ति है। जो उसे संयम पूर्वक व्यय करते हैं वे ही उसका समुचित लाभ उठा पाते हैं। संयम ही समस्त सिद्धियों का आधार है और संयम की प्रथम सीढ़ी है—वाचोमुक्ति अर्थात् वाणी का संयम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान धारणा का आधार और प्रतिफल

मस्तिष्क एक छोटा किन्तु अत्यन्त शक्तिशाली बिजली घर है। उसमें से अगणित दिशाओं में प्रवाह चलता है। इनमें कुछ तो शरीर के भीतर हैं जो जीवनचर्या से सम्बन्धित अनिवार्य जैविक गतिविधियों को चलाते हैं। कुछ ऐसे हैं जो बाह्य जीवन से सम्बन्धित हैं। भावना, आकांक्षा, विचारणा, क्रिया का निर्धारण बाहर की परिस्थिति से सम्बन्धित होता है। इसमें मस्तिष्क के सचेतन भाग की अधिकांश क्षमता नियोजित रहती है।

श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन जैसी आन्तरिक क्रियाओं का नियन्त्रण तो कठिन है। यह सब स्वसंचालित अचेतन भाग (आटोनॉमिक नरवस सिस्टम) द्वारा गतिशील रहता है। उसमें खर्च होने वाली बिजली पर नियन्त्रण नहीं हो सकता। पर बाह्य जीवन की समस्याओं में जो शक्ति खर्च होती है, उसे ध्यान द्वारा रोका जा सकता है। इस निग्रह से जो शक्ति एकत्रित होती है उसे अभीष्ट प्रयोजनों में लगाकर असाधारण प्रतिफल प्राप्त किया जा सकता है।

पाया गया है कि ध्यान की दशा में व्यक्ति के मस्तिष्क और शरीर में कई तरह की जैव रासायनिक प्रक्रियाएँ सक्रिय होती हैं। कई अवांछनीय प्रक्रियाएँ उस समय निष्क्रिय हो जाती हैं। इसलिये अन्तर्मुखी ध्यान की स्थिति को विचार के सूक्ष्म स्तर तक उस समय तक उतारते जाना चाहिए जब तक मन विचार के सूक्ष्मतम अमूर्त्त स्तर तक न पहुँच जाये और उनके मूल स्रोत की खोज न करले। इस प्रक्रिया से चेतन मन की शक्तियों का विस्तार होता है। फलतः मनुष्य का सम्बन्ध सृजनात्मक बौद्धिकता से जुड़ता और उसी परिणति को प्राप्त होने लगता है। इस प्रक्रिया को हम केवल श्रमहीन शारीरिक मानसिक क्रिया कह सकते हैं जो एक साधारण मानव भी करने में सक्षम हो सकता है। केवल घण्टे भर के दैनिक अभ्यास से मानव प्रसन्नचित्त और सृजनशील बना रह सकता है।

ध्यान किसी भौतिक प्रयोजन में भी लगाया जा सकता है और अध्यात्म उद्देश्य के लिए भी। वैज्ञानिक, कलाकार, शिल्पी,, साहित्यकार अपना ध्यान इन कार्यों में संलग्न करके तद् विषयक सफलताएँ पाते हैं और जिन्हें अन्तर्मुखी होकर आत्मशोधन करना है अथवा प्रसुप्त शक्तियों को जागृत करना है वे उस दिशा में प्रगति करते हैं। प्रयोजन विशेष के अनुसार ध्यान को वैसा मोड़ दिया जा सकता है। इस प्रक्रिया की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर भी अब विशद अनुसन्धान किया जा चुका है।

ध्यान साधना से शरीर-क्रिया-विज्ञान पर पड़ने वाले सम्भावित प्रभावोंकीखोज का कार्य "न्यूरोफिजियॉलाजिस्ट' गणों ने किया है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, पश्चिमी जर्मनी में ही नहीं अपितु भारत के विभिन्न संस्थानों में भी इस प्रकार व्यापक कार्य हो रहा है। त्रिवेन्द्रम, बैंगलोर, मद्रास व दिल्ली के चिकित्सा संस्थानों ने इस विधा पर अनुसंधान हेतु विशेष केन्द्र खोले हैं। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान भी दिल्ली में डा० छिन्ना एवं डा० बलदेवसिंह ने आज से ६ वर्ष पूर्व यह कार्य प्रायोगिक स्तर पर किया था। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मननशील एकाग्र ध्यानस्थ मस्तिष्क में अनेकों विशेषताएँ विकसित होती हैं।

ध्यान से शरीर की चयापचय प्रक्रियाएँ सामान्य से कम क्रियाशील हो जाती हैं। इलेक्ट्रो एन सेफेलोग्राफ (ई० ई० जी०) की सहायता से वैज्ञानिकों ने डीप डी० सी० ब्रेन पोटेन्शियल प्राप्तकर व्यक्ति के मस्तिष्क की स्वप्नावस्था, सुप्तावस्था, जागृत एवं ध्यान तथा समाधि की मुद्राओं में हो रहे परिवर्त्तनों का अध्ययन किया है। मानवी मस्तिष्क में करोड़ों न्यूरान्स हैं जो सूचना को एक सिरे से दूसरे तक पहुँचाते हैं। केन्द्रकों में इन सूचनाओं का विवेचन विश्लेषण होता है। तत्पश्चात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर के सम्बन्धित अंगों को निर्देश जाता है। मस्तिष्कीय स्नायु तन्त्र में सूचना सम्प्रेषण वस्तुतः एक जैव रासायनिक प्रक्रिया है। "एसिटाइल कोलीन" नामक स्नायु रसायनों के माध्यम से जो विद्युत्आवेश धारण किये होते हैं, सन्देशों का आदान-प्रदान एवं प्रसुप्त केन्द्रों को जगाने का काम चलता रहता है। इस तरह मस्तिष्क एक अत्यन्त उच्च क्षमता वाला जैव रासायनिक विद्युत्संयन्त्र है। अन्तर्मुखी ध्यान की स्थिति में क्रियाशीलता आने पर जो भी परिवर्त्तन होते हैं उन्हें ई० ई० जी० में देखा जा सकता है। साथ ही रक्त के स्नायु रसायनों का उपकरणों के माध्यम से मापन कर जाना जा सकता है कि शरीर के अन्दर क्या प्रतिक्रिया हुई ?

मस्तिष्क में विद्यमान विद्युत्स्फुल्लिंग के प्रवाह द्वारा छोड़ी गयी तरंगें चार प्रकार की होती हैं। अल्फा, बीटा, थीटा एवं डेल्टा। अल्फा तरंगें ८ से १३ प्रति सेकण्ड, थीटा तरंगें ५ से ७ प्रति सेकण्ड, बीटा तरंगें १३ से ३० प्रति सेकण्ड एवं डेल्टा तरंगें ०.५ से ४ चक्र प्रति सेकण्ड पूरा करती हैं, इसी आधार पर इनका वर्गीकरण है। शरीर शिथिल हो तो भी अन्तर्मुखी ध्यान की स्थिति में मस्तिष्क पूर्णतः क्रियाशील पाया गया है एवं अल्फा तरंगें मस्तिष्क के अग्रभाग से उभरती देखी गयी हैं, जिसे प्रिफन्टल लोब, फ्रण्टल कार्टेक्स कहते हैं।

इसी प्रकार जब बीटा तरंगों का अध्ययन अन्तर्मुखी ध्यान के दौरान किया गया तो यह देखा गया कि बीटा तरंगें भी मस्तिष्क के अग्रभाग की ओर से ही उभरती हैं बीटा तरंगों के दौरान योगी को गहरी नींद आने का भी अनुभव होता है अतः निष्कर्ष निकाला गया कि सम्भवतः इस अल्पकालीन नींद के परिणाम स्वरूप ही योगी ध्यान के अन्त में मानसिक रूप से और शारीरिक रूप से जागरूक स्वस्थ एवं हलका-फुलका महसूस करता है।

मस्तिष्क का शारीरिक क्रियाओं पर पूर्ण आधिपत्य होने से ध्यान की अवस्था में दिल की धड़कन, रक्तवाहिनियों में रक्त दवाव में कमी एवं श्वास की दर में कमी आ जाती है। इसके परिणाम स्वरूप ही शरीर में मेटाबोलिक गतिविधि घट जाती है। इसकी परिणति होती है तनाव से पूर्ण मुक्ति और शरीर व मस्तिष्क को पूर्ण विश्रान्ति।

श्वास क्रिया शिथिल होने से शरीर की आक्सीजन की पूर्ति में कमी आ जाती है। परीक्षण के दौरान यह मात्रा १०० मिलिलीटर रक्त में ११०.४ से घटकर ८० मिलिग्राम हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप मांसपेशियों में होने वाली क्रियाओं के फलस्वरूप रक्त में विद्यमान अम्ल रूपी विष "लैक्टेट" काफी मात्रा में कम हो जाता है। ये सारी रासायनिक प्रक्रियाएँ ध्यानस्थ साधक के शरीर में होती देखीं व उनकी फलश्रुतियाँ बहिरंग में प्रत्यक्षतः पायी जा सकती हैं। ध्यान की इस उच्चावस्था में हल्की योग निद्रा आने लगती है अर्थात शरीर शिथिल होकर अपने हिस्से की विद्युत भी मनोनिग्रह के साथ किये गये ध्यान प्रयोजन में नियोजित कर देता है फलतः वह अधिक शक्तिशाली हो जाता है। इस स्थिति को "सविकल्प" या "निर्विकल्प" समाधि कहते हैं। इस स्थिति में मनोबल इतना सशक्त हो जाता है कि अभीष्ट प्रयोजन को भली प्रकार पूरा कर सके, चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक। ध्यान की महिमा का यही आधार है। ●

देवता, चिरकाल से अनुरोध करते रहे कि लक्ष्मी जी असुरों के यहाँ न रहें। देवलोक में निवास करें। पर उनकी प्रार्थना अनसुनी होती रही। लक्ष्मी जी ने असुर परिकर छोड़ा नहीं। एक दिन अनायास ही लक्ष्मी जी देवलोक में आ गईं। देवता प्रसन्न भी थे और चकित भी। उन्होंने सत्कार पूर्वक बिठाला था तो,पर साथ ही यह असमंजस भी व्यक्त किया कि वे असुरों को छोड़कर चल क्यों पड़ीं। लक्ष्मी ने कहा—सुर और असुर होने का पुण्य-पाप भगवान देखते हैं। मेरा काम पराक्रम और संयम की जाँच-पड़ताल करना है। जब तक असुर पराक्रमी असुर तथा रहे तब तक उनके साथ रहीं, अब वे बदल गये हैं अब वे आलस्य और दुर्व्यसन अपनाने लगे हैं। ऐसे लोगों के साथ मेरा निर्वाह कैसे हो सकता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैली धूमकेतु-पुच्छल तारे का उदय

सौर-परिवार का ही एक सदस्य धूमकेतु भी है, जो प्राय: प्रति ७६ साल के अन्तर पर उदय होता रहता है। इसकी बनावट ऐसी है जो पृथ्वी के वातावरण को विशेष रूप से प्रभावित करती है। इसकी चर्चा करना यहाँ प्रासांगिक इसलिये होगा कि इस सदी में दूसरी बार सन् १९१० के बाद अब अगले वर्ष १९८६ में यह पुनः पृथ्वी-वासियों को दिखाई देगा। इसके अन्तर्ग्रही प्रभाव अभी से धरित्री को प्रभावित करने लगे हैं।

भारतीय शास्त्रों में ३३ धूमकेतुओं का वर्णन है। वे सभी दैत्य राहु के पुत्र समझे जाते हैं। इनके प्रकट होने का अर्थ होता है—विनाश की सम्भावनाएँ सन्निकट होना। एक यहूदी इतिहासकार जेसफी ने तो इसे "अभिशिप्त क्षेत्र के ऊपर ईश्वर की तलवार" का नाम दिया है। जब कभी भी धूमकेतु का उदय धरती पर हुआ तभी युद्ध, अकाल, भय, बीमारी तथा अन्यान्य प्रकार की विभीषिकाएँ प्रकट हुई हैं।

धूमकेतु को दूसरे शब्दों में पुच्छल तारा नाम से भी जाना जाता है। इसके प्रकट होने की समयावधि ७६ वर्ष बाद की है। जुलाई १९१० में यह निकला था। अब इसकी बारी जनवरी १९८६ में निकलने की है। इसकी पूँछ की लम्बाई साढ़े आठ करोड़ किलोमीटर है। यह पूँछ कहीं दिन में तो कहीं रात में चमकती हुई दिखाई देगी।

अब प्रश्न उठता है कि यह पुच्छलतारा है क्या? आज से लगभग ७० करोड़ वर्ष पहले सूर्य असंख्य टुकड़ों में फैलता चला गया। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त के अनुसार सूर्य से पृथक हुए ये टुकड़े वायुमण्डल में मँडराते हुये पुनः जब सूर्य के पास पहुँचे तो इनकी लम्बाई करोड़ों मील तक फैलती चली गयी। इन्हीं को ज्योतिविदों ने पुच्छल तारे के नाम से पुकारा है।

अबकी बार नवम्बर १९८५ से परोक्ष रूप में एवं जनवरी ८६ से दृश्य रूप में निकलने वाले धूमकेतु की पृथ्वी की ओर आने की गति ५८०० किलोमीटर प्रति घण्टे की है। अमेरिका के एक ज्योतिर्विद का कहना है कि इस पुच्छल तारे की पूँछ की लम्बाई पहले की अपेक्षा एक लाख गुना अधिक होगी। इसके दुष्परिणामों की ओर इंगित करते हुए उन्होंने यह भी बताया कि "पक्षी अपने घोंसलों से बाहर मुँह नहीं निकालेंगे। जंगलों में रह रहे जानवर अपनी भाषा में इसे देखकर बुरी तरह चीत्कार की ध्वनि में रो पड़ेंगे।" २७ दिन तक यह तारा विश्व के किसी न किसी स्थान पर अवश्य बना रहेगा। यदि रोमन ग्रन्थों का अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि ये धूमकेतु अपनी धुरी पर सूरज के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हैं। ठीक ७६ वर्ष बाद ये धूमकेतु सूर्य की भीतरी सीमा से निकलकर बाहर आते हैं तो पृथ्वी से चमकते हुए दीखते हैं।

दुनिया का सबसे पहला धूमकेतु ईसा से २५० वर्ष पूर्व चमका। चीन के वैज्ञानिकों ने इसका रिकार्ड रखा है। उनके अनुसार यह धूमकेतु देवताओं द्वारा छोड़ी गयी दुर्गन्धि का प्रतीक था। जिससे युद्ध, महामारी, दुर्भिक्ष जैसी विनाश की संभावनायें स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगीं। वैस्पीसियान नाम के रोमन सम्राट की मृत्यु धूमकेतु के प्रकट होने के समय ही हुई। उसी समय महामारी का दौर फैला। सन् १०६६ में धूमकेतु दिखाई देने का परिणाम विलियम कौन्करर के आक्रमण का था।

अमेरिका के वैज्ञानिकों के अनुसार धूमकेतु पृथ्वी के सन्निकट आते समय उसका मलबा सड़ने लगता है। जिसके फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की विषैली गैसें उत्सर्जित होती हैं। यह गैस पृथ्वी पर बसे प्राणियों के लिए प्राणघातक सिद्ध हो सकती हैं।

बड़ी तेजी से पृथ्वी की ओर चल पड़े इस हैली धूमकेतु का विराट् रूप मार्च १९८६ में पृथ्वी वासियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई देगा। मात्र भारत ही नहीं विश्व के अनेक अन्य राष्ट्रों में पृथ्वी पर इसके प्रभावों के अध्ययन की जोर-शोर से तैयारी चल रही है। रूस ने तो इसके अध्ययन के लिए एक विशेष अन्तरिक्ष यान की योजना बनाकर इसे गत वर्ष अगस्त १९८४ में हैली के पुच्छल तारे की ओर छोड़ा है, जो इसके प्रभावों का अध्ययन-परीक्षण अति निकट से कर सकेगा। अभी वह अपनी यात्रा पर है व शीघ्र ही उसके निकट होगा। दूरगामी लेसर यन्त्रों से वह कई जानकारियाँ पृथ्वी पर भेज सकेगा।

कार्डिफ यूनीवर्सिटी के खगोलज्ञों ने 'हरास-अराकी-एलकौक' धूमकेतु की आन्तरिक स्थिति का गत वर्ष बड़ी गहनता के साथ अवलोकन किया तदुपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इसके द्वारा फेंका गया सूक्ष्म जीव रसायन पृथ्वी के वातावरण में पूरी तरह समा जाता है और आगे चलकर यही सूक्ष्म रसायन वायरस आदि को जन्म देकर महामारी जैसी व्याधियों का स्वरूप धारण करता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करने से पता चला है जब कभी भी धूमकेतुओं का प्रकटीकरण हुआ तभी प्लेग, ब्लैक डैथ, चेचक जैसी बीमारियाँ फैली हैं। इसकी जानकारी 'डिसीज फ्रौम स्पेस' के लेखक प्रो० चन्द्र विक्रमा सिंघे की पुस्तक से मिलती हैं। उन्होंने लिखा है कि धूमकेतु की पूँछ में एक विशिष्ट प्रकार के रोगाणु पाये गये हैं, जो इन बीमारियों को फैलाने का मूल कारण बन जाते हैं।

१३ मई, १९८३ को खगोल-विज्ञानियों ने अपने तथ्यों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करते हुये बताया था कि हैली धूमकेतु पृथ्वी के ऊपर ५० लाख किलोमीटर के क्षेत्र को घेरते हुये चमकेगा। जिससे उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध में फ्लू एपेडेमिक आदि रोगों का प्रकोप पूरी तरह फैलता चला जायगा। यही नहीं कई नए ऐसे [illegible] रोग जन्म ले सकते हैं जिनका निदान एवं उपचार चिकित्सकों की सीमा के बाहर होगा।

विश्व के मूर्धन्य ज्योतिर्विदों के अनुसार हैली धूमकेतु जब सूर्य के नजदीक से गुजरेगा तो एक विशिष्ट प्रकार की विषैली गैस और धूलकण निकाल फेंकेगा। जिसके फलस्वरूप सौर विकिरण निरन्तर फैलता चला जावेगा। धूमकेतुओं की मुख्य विशेषता यह होती है कि वे १ करोड़ किलोमीटर की लम्बाई वाले हाइड्रोजन युक्त बादलों से चारों ओर घिरे रहते हैं। इन्हीं बादलों से निकले अवशिष्ट कण पृथ्वी पर बरसते हैं। इस धूमकेतु को अभी से देखने के लिए २०० इन्च वाली टेलिस्कोप का प्रयोग माउन्ट पैलोमर पर किया जा रहा है। जो कि दुनिया की सबसे ऊँची वेधशाला है।

जापान ने हैली धूमकेतु तक पहुँचने के लिए प्लेनेट 'ए' का निर्माण किया है जो अन्य की अपेक्षा जल्दी पहुँचेगा। इसे देखने के लिए दक्षिणी अक्षांस को अधिक उपयुक्त समझा गया है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इसके मलवे से पृथ्वी के पश्चिमी गोलार्ध को काफी जोखिम उठानी पड़ सकती है। वैज्ञानिक गणनानुसार नवम्बर १९८४ में हैली का धूमकेतु पृथ्वी से ४८ करोड़ ३६ लाख ६ हजार मील दूर था। पृथ्वी से इसकी सबसे निकटतम दूरी अगले दिनों ३ करोड़ ९० लाख मील होगी।

इसके उपरान्त जुलाई ८५ से लेकर सन् ८६ तक उसकी दूरी एवं चमक ऐसी होगी जो पृथ्वी पर कहीं न कहीं से देखी जा सके। सबसे स्पष्ट दृश्य दीखने का समय जनवरी से मार्च सन् १९८६ है। जहाँ उसका दृश्य जितनों तक अधिक स्पष्ट दीख पड़े समझना चाहिए कि उसका प्रभाव उतने दिनों विशेष काम करेगा और उसके बाद भी चलता रहेगा।

यात्रियों की एक मण्डली उस रास्ते से निकली तो एक विशाल वृक्ष को धराशायी पाया। वे तूफान की प्रचण्डता को उसका कारण बता रहे थे।

एक बूढ़े वनवासी ने सुना तो वह चर्चा में हस्तक्षेप करते हुए बोला—इसकी जड़ें बहुत दिन से खोखली हो गई थीं। तूफान तो निमित्त मात्र था यदि उसकी प्रचण्डता इतनी ही रही होती तो जंगल के सारे पेड़ उखड़ गये होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्रशक्ति का उद्गम स्त्रोत

यज्ञ प्रक्रिया में ज्ञान एवं विज्ञान के सभी स्रोत विद्यमान हैं। ज्ञान पक्ष के द्वारा यज्ञीय दर्शन एवं प्रेरणाओं को हृदयंगम करने एवं उदात्त-जीवन जी ने की प्रेरणा मिलती है। जबकि विज्ञानपक्ष द्वारा शक्ति सामर्थ्य अर्जित की जाती है। वातावरण संशोधन, रोगनिवारण, स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्धन, पर्यावरण संतुलन इसी के अन्तर्गत आते हैं। यज्ञों के उस वैज्ञानिक, उपयोगी प्रारूप को देने में मूलभूत शक्ति कौन सी काम करती है, यह कम ही जानते हैं।

सर्वविदित है कि विना शब्द शक्ति की ऊर्जा के यज्ञ का प्रयोजन अधूरा ही रहता है। मात्र वनौषधि यजन से यदि यह लक्ष्य पूरा होता तो इसे किसी यांत्रिक संयंत्र द्वारा पूरा कर लिया जाता। यज्ञ में सन्निहित शक्ति एवं परिणति का आधार है मंत्र एवं यज्ञ दोनों मिलकर यजन प्रक्रिया को सफल बनाते हैं। मंत्रों के सही गायन एवं सुपात्र याज्ञिक के अभाव में वह कृत्य मात्र कौतूहल भर बन कर रह जाता है।

मंत्रों में चार प्रकार की शक्तियाँ पाई गई हैं— (१) प्रामाण्य शक्ति (२) फलप्रदायक शक्ति (३) बहुलीकरण शक्ति (४) अध्यात्म शक्ति ! इन चारों ही शक्तियों के समन्वय एवं योगदान से यज्ञायोजन का समग्र लाभ मिलता तथा चमत्कारी प्रभाव पड़ते देखा गया है।

महर्षि जैमिनी रचित पूर्ण मीमांसा के अनुसार मंत्रों में जो अर्थ, शिक्षा, संबोधन एवं प्रेरणा सन्निहित है जिसके द्वारा मनुष्य को अपने कर्तव्यों का ज्ञान मिलता है तथा सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है वह उसकी प्रामाण्य शक्ति है। परोक्ष में यही वह देव शक्ति है जो यजन कर्त्ता को सूक्ष्म रूप से सदाचरण एवं परमार्थ पथ पर चलने की प्रेरणा देती है। विज्ञान द्वारा सिद्ध है कि विचारों का कभी अन्त नहीं होता। आह्वान जिन भी विचारों का किया जाता है, वे ही चिन्तन के आधार बनते और उसके अनुरूप ही गतिविधियाँ चलती हैं। सत्चिन्तन एवं अनैतिक चिन्तन का यही आधार है। यज्ञीय वातावरण में मंत्र के माध्यम से श्रेष्ठ विचारों का स्फोट किया जाता है जो यज्ञ ऊर्जा के सान्निध्य में पहुँच कर और भी सूक्ष्म हो जाते हैं तथा अंतरिक्ष में फैल जाते हैं अपने अनुरूप ही विचारों को अंतरिक्ष से संकलित करके पुनः यजन कर्त्ता के निकट पहुँचते हैं। अपने उद्गम स्रोत में पहुँचकर वे और भी अधिक सशक्त एवं समर्थ बन चुके होते हैं। यज्ञीय ऊर्जा में मंत्र शक्ति से निकले शक्तिशाली विचार यजन कर्ता के चारों ओर छाये रहते हैं। फलतः वह तो लाभान्वित होता ही है निकटवर्ती अन्य व्यक्ति भी प्रभावित होते हैं। यह अनुभूति सत्य है कि जहाँ कहीं भी यज्ञायोजन होते हैं, वहाँ का वातावरण दिव्य बना रहता है। देव तत्वों की वहाँ बहुलता होती है। जिसके कारण एक नास्तिक भी यदि वहाँ पहुँचे तो वह भी अपने अन्तःकरण में एक विचित्र आह्लाद एवं आनन्द का अनुभव करता है। वह अपनी संकीर्णता भूल जाता है। सहयोग, सेवा एवं उदारता की उमंगे उसके अन्तः में भी उभरने लगती हैं। यह मंत्र में सन्निहित प्रामाण्य शक्ति का ही प्रभाव है जिसके कारण इस प्रकार की वैचारिक दिव्य प्रेरणाएँ हर किसी के हृदय में उठने लगती हैं। यज्ञीय ऊर्जा में यह शक्ति और भी अधिक बढ़ जाती तथा चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करती है। वातावरण संशोधन, अनुकूलन, रोग निवारण, स्वास्थ्य संवर्धन का यह वह पक्ष है जो परोक्ष में मनुष्य आचार नियमों को पालन करने, संयम में आवद्ध होने की शक्ति देता है। मंत्र शक्ति का यह सूक्ष्म और वैचारिक पक्ष है पर अन्य स्थूल पक्षों की तुलना में अधिक सशक्त और वैज्ञानिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्र की दूसरी शक्ति है फल प्रदान करने वाली। जिसके द्वारा हवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं को संस्कारित किया जाता तथा प्राणवान बनाया जाता है। कुशा, हवि, चरु आज्य, कुण्ड, समिधा, यज्ञ पात्र आदि मंत्र की सूक्ष्म प्राण शक्ति से अभिमंत्रित होते हैं। वे किस प्रयोजन के लिए प्रयुक्त हो रहे हैं, इस आधार पर ही मंत्रों द्वारा उन्हें अभिमंत्रित किया जाता है। उनमें अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति के योग्य ही संस्कार दिए जाते हैं। लक्ष्य परिशोधन का भी है। वस्तुओं एवं पदार्थों पर भी अपने उद्गम स्रोत के संस्कार पड़े रहते हैं। उन्हे परिशोधित एवं पवित्र करने की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न प्रकार के मंत्रों का प्रयोग इसलिए किया जाता है कि स्थान आदि से जुड़ी अपवित्रता को दूर करना। अभीष्ट प्रयोजन के लिए मंत्रोच्चार द्वारा पवित्र एवं संस्कारित करके योग्य बनाना, तभी यज्ञ के निर्धारित प्रयोजन की आपूर्ति सम्भव हो पाती है।

मंत्र की तीसरी शक्ति बहुलीकरण शक्ति है। यह सूक्ष्मीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है। देव पूजन में थोड़ी मात्रा में चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य आदि चढ़ाया जाता है। देवताओं का आकार एवं विस्तार अधिक है। ऐसी स्थिति में उनकी तुष्टि एवं तृप्ति इन थोड़ी वस्तुओं से किस प्रकार होती है, यह सन्देह अधिकांश के मन में उठता है। स्पष्ट है कि देवता व्यक्ति नहीं शक्ति होते हैं। उनके स्वरूप भी स्थूल न होकर सूक्ष्म होते हैं। उन्हे सूक्ष्म आहार ही अभीष्ट होता है। देवशक्तियाँ सूक्ष्म ब्रह्माण्ड में फैली हैं। उन्हें पोषण देने आकर्षित करने के लिए वस्तुओं की सूक्ष्म विशेषताओं के साथ मंत्रों की विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा स्फोट कराया जाता है। फलतः थोड़ी मात्रा में चढ़ायी हुई वस्तु भी सूक्ष्म होकर अधिक सामर्थ्यवान बन जाती है। देवत्व परिपोषित एवं परिपुष्ट होकर अपने अनुदानों की वर्षा करता है। यही बात हवन में प्रयुक्त होने वाली वनौषधियों के सम्बन्ध में लागू होती है। होमियोपैथी के ज्ञाता जानते हैं कि वस्तुएँ सूक्ष्मीकृत होकर अधिक शक्तिशाली बन जाती हैं। अधिक पोटेन्सी वाली होमियोपैथिक औषधियाँ अधिक सूक्ष्मीकरण के सिद्धान्त द्वारा ही विनिर्मित होती हैं। प्रयोग कर्त्ता के ऊपर इनका शीघ्र तथा चमत्कारी प्रभाव पड़ता है। यज्ञ अग्नि में वनौषधियाँ सूक्ष्मीकृत होकर शीघ्र तथा अधिक प्रभावकारी सिद्ध होती हैं। इनकी प्रतिक्रिया भी व्यापक स्तर पर होती है। मंत्र की बहुलीकरण शक्ति द्वारा यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं पर स्फोट किया जाता है। यह प्रक्रिया वैसी ही है जिस प्रकार पारमाण्विक ऊर्जा प्राप्त करने के लिए परमाणु को तोड़ने की। इस प्रक्रिया द्वारा होमीकृत वस्तुओं की सामर्थ्य तो बढ़ती ही है, प्रभाव भी व्यापक क्षेत्र में पड़ता है। जीव, जन्तु, वृक्ष, वनस्पति सभी लाभान्वित होते हैं। वातावरण संशोधन एवं अनुकूलन का प्रयोजन पूरा होता है।

मंत्र की चौथी अयातयाम अथवा अध्यात्म शक्ति वह है जो किसी विशेष व्यक्ति द्वारा विशेष स्थान पर विशेष उपकरणों से पैदा होती है। विश्वामित्र ऋषि ने गायत्री तत्व की साधना को पूरी तन्मयता एवं विधि-विधान के साथ लम्बे समय तक किया फलस्वरूप गायत्री के मंत्र दृष्टा बने। विशिष्ट साधना निश्चित समय निश्चित स्थान एवं एक निर्धारित विधि द्वारा किए जाने पर चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करती है। साधना में प्रयोग किए जाने वाले पात्र एवं स्थान भी तप की ऊर्जा से असाधारण रूप से प्रभावित होते हैं। ऐसे ही स्थान तीर्थ, सिद्धपीठ, शक्तिपीठ, बनते हैं। साधना में प्रयुक्त होने वाले पूजा पात्र माला आदि भी मंत्र शक्ति से अभिपूरित होते हैं तथा अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति में सहायक सिद्ध होते हैं।

प्राचीन काल में इस आध्यात्मिक अयातयाम शक्ति का असाधारण महत्व था और इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता था कि विशिष्ट साधना में प्रयुक्त होने वाले पात्रों का उपयोग अन्य किसी कार्य के लिए न किया जाय। इससे उनकी पवित्रता एवं शक्ति बनी रहती है। यह विधान भी है कि उपासना, साधना अथवा यज्ञ में काम आने वाले विभिन्न पात्रों का प्रयोग मात्र उसी प्रयोजन तक सीमित रखा जाय। कल्प सूत्रों की मर्यादा है कि निर्धारित कर्मकाण्ड समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाने पर उसका बचा हुआ द्रव्य, यातयाम, निर्वीय हो जाता है। कारण यह है कि उन पदार्थों को जिस उद्देश्य से अभिमंत्रित किया गया था वे उस उद्देश्य से भिन्न प्रयोजन के उपयुक्त नहीं है। यही कारण है कि विभिन्न कर्मकाण्डों के उपरान्त बचे द्रव्य आदि को नदी आदि में प्रवाहित कर देने का विधान है।

वस्तुएँ ही नहीं व्यक्ति भी मंत्र की अयातयामता शक्ति से अभिपूरित होते हैं। तांत्रिक, अघोरी, अपनी क्रियाओं में दक्ष होते हैं पर वे अन्य कोई कर्मकाण्ड नहीं करा सकते इसी प्रकार यज्ञ आदि कराने वाले आचार्य भी अपनी पात्रता को उसके अनुरूप विकसित कर लेते हैं। तभी यज्ञायोजन का अभीष्ट लाभ पूरा हो पाता है। विभिन्न कर्मकाण्ड अथवा यज्ञायोजन के लिए अभीष्ट पात्रता का अभाव हो तो भी उसकी उतना लाभ नहीं मिल पाता यही कारण है कि शास्त्र निर्देश देते हैं कि सुपात्र, योग्य आचार्यों से ही यज्ञायोजन आदि का कृत्य कराना चाहिए। सर्वविदित है कि गुरु वशिष्ठ ब्रह्मज्ञानी थे। योग्यता भी कम नहीं थी। पर राजा दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ कराना हुआ तो शृंगी ऋषि को बुलाना पड़ा। ऋषि वशिष्ट पुत्रेष्टि यज्ञ को करा सकने में अक्षम थे। शृंगी ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराये जाने पर ही अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति हुई।

मंत्रों में सन्निहित चारों शक्तियाँ मंत्र को समग्र एवं अभीष्ट प्रयोजनों की पूर्ति के लिए समर्थ बनाती हैं। यज्ञायोजन की सफलता मंत्र शक्ति के ऊपर ही निर्भर करती है। किस शक्ति का किस प्रकार लाभ उठाया जाय, इसके लिए यज्ञ के विभिन्न मर्यादाओं का पालन करना होता है। विविध कर्मकाण्ड दीखते भर सामान्य हैं। उनमें प्रत्येक अपने में विशेषताओं को समेटे हुए है। प्रत्येक के वैज्ञानिक आधार एवं एक निश्चित लक्ष्य है। मर्यादाओं का भली भाँति पालन किया जा सके मंत्र में सन्निहित चारों शक्तियों का बोध हो सके तो शब्दशक्ति के माध्यम से यज्ञ प्रक्रिया का ठीक प्रकार से लाभ उठाया जा सकता है। आवश्यकता यज्ञ प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाले एक-एक मंत्र की सुक्ष्म वैज्ञानिक विशेषताओं को समझने भली भाँति हृदगयंम करने की है इस कार्य पर वैज्ञानिक शोध तो अनिवार्य है ही, श्रद्धा पूर्वक मंत्रों का सुनियोजन कर यदि यजन संभव हो सके तो वे सभी लाभ उठाए जा सकते हैं, जिनका शास्त्रों में वर्णन है।

उत्तराखण्ड के एक प्राचीन नगर में सुबोध नाम के राजा राज्य करते थे। महाराज का नियम था—राजकीय कार्य प्रारम्भ होने सेपूर्व वे आये हुए याचकों को दान दिया करते थे। इस नियम में उन्होंने कभी भूल नहीं की।

एक दिन जब सब लोग दान पा चुके तो एक विचित्र स्थिति आ खड़ी हुई। एक व्यक्ति ऐसा आया जो दान के लिये हाथ तो फैलाये था पर मुंह से कुछ न कहता था। सब हैरान हुए इसे क्या दिया जाये? बुद्धिमान व्यक्तियों की सलाह ली गई। किसी ने कहा वस्त्र देना चाहिये, किसी ने अन्न की सिफारिश की। कोई स्वर्ण देने को कहता कोई आभूषण। पर समस्या का यथार्थ हल न निकला। सुबोध की कन्या उपवर्गा भी वहाँ उपस्थित थी उसने कहा—राजन् जो व्यक्ति न बोल सकता है न व्यक्त कर सकता है उसके लिये द्रव्याभूषण सब व्यर्थ हैं। ऐसे लोगों के लिये सर्वश्रेष्ठ दान तो ज्ञान-दान ही है। ज्ञान से मनुष्य अपनी सम्पूर्ण इच्छायें, आकांक्षायें आप पूर्ण कर सकता है और दूसरों को सहारा भी दे सकता है। इसलिये इन्हें ज्ञान-दान दीजिये।

उपवर्गा की बात सब ने पसन्द की। उस व्यक्ति के लिये शिक्षा की व्यवस्था की गई। राजा ने उस दिन अपने दान की सार्थकता समझी। यही व्यक्ति आगे चल कर उसी नगरी का विद्वान मन्त्री नियुक्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु मंत्र - गायत्री मंत्र

गायत्री एक वैदिक छन्द है। श्रुतियों में अनेक छन्द गायत्री वर्ग के मिलते हैं, पर प्रख्यात गुरु मन्त्र गायत्री एक ही है। इसकी तुलना वेदों में उपलब्ध अन्य गायत्री छन्दों से नहीं की जा सकती। इसकी अपनी अलौकिकता और विशेषताएँ हैं।

मन्त्रों की वेदों में प्रायः पुनरावृत्ति नहीं होती किन्तु गायत्री का चारों वेदों में समावेश है। ऋग्वेद के ३।६२।१० में यजुर्वेद के ३।३५ में—३०।२ में। तथा ३६।३।३ में इसका समावेश है। सामवेद के १३।३।३ में यह विद्यमान है।

गायत्री के २४ अक्षर होते हैं। गुरु मन्त्र गायत्री में २३ अक्षर माने जाँय तो वह निचद् गायत्री बन जाती है। यदि उच्चारण वरेण्यम् का वरेणियम् किया जाय तो २४ अक्षर, बन जाते हैं। अक्षरों सम्बन्धी मतभेद के कारण वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता गायत्री की महत्ता एवं क्षमता में कोई अन्तर नहीं आता।

गायत्री मन्त्र में सविता देवता से सद्बुद्धि की प्रेरणा का आग्रह किया गया है। शंकराचार्य कृत गायत्री पुरश्चरण पद्धति में उसे त्रिकाल संध्या में प्रयुक्त करने के लिए ब्राह्मी, वैष्णवी और शाम्भवी कहा गया है और ध्यान के लिए उन्हीं का निर्देश है। प्रातःकाल उपासना के लिए सर्वोत्तम है। उस समय ब्रह्म तेज का आह्वान उपयुक्त पड़ता है। इसलिए हंसारूढ़ा भगवती का सर्व-प्रचलित ध्यान ही उपयुक्त है। एक मुख और द्विभुजा वाली बात मनुष्यों और देवताओं के लिए समान रूप से सार्थक है।

कहीं-कहीं उसके पाँच मुख और दस भुजाओं का वर्णन है। यह अलंकारिक व्याख्या एवं दार्शनिक विवेचना है। पाँच कोश, पाँच देव, पाँच प्राण, पाँच तत्व का गायत्री में समावेश होने से उसे पाँच मुखी के रूप में भी चित्रित किया गया है और दस इन्द्रियों को दस भुजा के रूप में चित्रण है। अन्यथा अनेक मुखों, अनेक भुजाओं अनेक पैरों वाली बात बड़ी विचित्र लगती है। यह विचित्रता समझ से बाहर एवं उपहासास्पद भी प्रतीत होती है।

छान्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषदों में गायत्री का माहात्म्य और रहस्य अधिक विस्तार से बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण में प्रमुखता के साथ और अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में उसका सामान्य विवेचन है। निरुक्त में "गायन्तं त्रायते" अर्थ करते हुए कहा गया है कि वह गायन करने वाले का परित्राण करती है। स्मृतियों में से अधिकांश में उसकी आवश्यकता एवं अनिवार्यता का वर्णन है। गायत्री का देवता 'सविता' है। प्रातःकाल के उदीयमान स्वर्णिम सूर्य को सविता कहते हैं। इस महामन्त्र के जप काल में सविता देवता का ध्यान ब्रह्मतेजस् का अभिवर्धक माना गया है। गीता में भगवान ने समस्त वेद मन्त्रों में गायत्री को अपना स्वरूप कहा है—"गायत्री छन्दसामहम्।"

पुराणों में ऐसे अगणित प्रसंग हैं जिनमें गायत्री उपासना के फलस्वरूप, आत्मकल्याण और लोक संसिद्धि के उभयपक्षीय प्रयोजनों की पूर्ति का विवरण है। यह मात्र सद्बुद्धि की प्रार्थना ही नहीं है वरन् उसकी अभीष्ट प्रेरणा देने में भी समर्थ है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन का रथ ही संचालित नहीं किया था वरन् उसकी बुद्धि जब भटक रही थी तब दबाव भरी प्रेरणा देकर भी उसे उपयुक्त रास्ते पर चलाया था। गायत्री मन्त्र में ऐसी ही प्रेरणा देने और साधक को सन्मार्ग पर चलाने की परिपूर्ण क्षमता है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत कबीर के जीवन की प्रख्यात घटनाएँ

अपने समय के क्रान्तिकारी सन्त कबीर का कार्यकाल अब से प्रायः साढ़े पाँच सौ वर्ष पूर्व का है। वे ई० सन् १३९८ में जन्मे और सन् १५१८ में १२० वर्ष की आयु में दिवंगत हो गए। उनके प्रत्यक्ष जीवन के सर्वविदित घटनाक्रम बहुत थोड़े हैं। अविज्ञात और अप्रकट प्रयास ही अधिक हैं।

एक विधवा समाज भय से अपने नवजात शिशु को काशी के अगरतला तालाब के किनारे पगडण्डी पर रख गयी थी ताकि उसे कोई दयालु राहगीर उठा कर पाल ले। बच्चे को एक मुसलमान जुलाहे ने उठाया और पाल लिया। यहीं उनके विज्ञात माता-पिता थे। माता का नाम नीमा एवं पिता नीरु जुलाहा। इसी परिवार में वे पले और बड़े हुए।

उन दिनों विधवाओं की दुर्दशा अब से कहीं अधिक थी। उन्हें या तो डरा-धमका कर पति की लाश के साथ जला दिया जाता था या छोटी-बड़ी भूल के कारण उन्हें विधर्मियों के सुपुर्द कर दिया जाता था। इस मूढ़ मान्यता के कारण हिन्दू सम्प्रदाय किस प्रकार क्षीण एवं उपहासास्पद बनता है, इस ओर समाज का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करने के लिए ही सम्भवतः विधाता की मर्जी के अनुसार उनका जन्म ऐसी परिस्थितियों में हुआ। उनने इस बात को कभी छुपाया नहीं। वरन् हिन्दू समाज की संकीर्णता और मुसलमान जुलाहे की उदारता की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया। यह इस कारण कि समाज के कर्णधार विधवाओं की समस्याओं पर नये सिरे से विचार करें और सोचें कि जब विधुरों को दूसरे विवाह की पूर्ण स्वतन्त्रता है तो विधवाओं के लिए रोक क्यों हो? कबीर की गाथा तत्कालीन-धर्माचार्यों को रुची न होगी, किन्तु समझदारों को सदा झकझोरती, कचोटती रही और इस सन्दर्भ में कुछ कदम उठाने के लिए प्रेरित करती रहीं। कुछ करने लायक उस समय भले न हो पाया हो, पर यह सूक्ष्म प्रेरणा कुछ शताब्दी बाद अन्य महामानवों के द्वारा चलाए गये आन्दोलनों के रूप में उभरी।

कबीर कुछ समझदार हुए तो उन दिनों के प्रख्यात सन्त रामानन्द के सत्संग में जाने लगे। उनकी विचारधारा से वे प्रभावित हुए। गुरु तत्व की गरिमा अपने संस्कारों के कारण भली-भाँति जानते थे। उन्होंने उन्हीं को अपना गुरु बनाना चाहा। पर समाजगत प्रचलन के प्रतिकूल श्री रामानन्द एक जुलाहे को शिष्य बनाने के लिए सहमत न दीखे। कबीर ने तब एकलव्य का रास्ता अपनाया, जिसने द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा को गुरु बनाकर अपनी श्रद्धा के बलबूते प्रवीणता प्राप्त कर ली थी।

एक दिन ब्रह्ममुहूर्त में रामानन्द जी गंगा स्नान को जा रहे थे। कबीर रास्ते में लेट गए। अँधेरे में स्वामीजी का पैर कबीर के सीने पर पड़ा। वे चौंके और राम-राम कहते हुए पीछे हट गए। कबीर की गुरु दीक्षा इतने में ही सम्पन्न हो गयी। इसमें गुरु का अनुग्रह नहीं, शिष्य का श्रद्धा विश्वास ही निमित्त कारण था, जो आगे चलकर फला-फूला। सत्संग के दिनों ही कबीर ने कुछ पढ़ना लिखना कविताएँ बनाना और एकाकी बजाये जा सकने वाले वाद्य-यन्त्रों को बजाना सीख लिया था। वे सायंकाल सत्संग में जाते। दिन भर पिता के साथ बुनने का काम करते।

पन्द्रह वर्ष की आयु में उनके अन्तराल में नयी प्रेरणा उठी—"तेरा जीवन महान प्रयोजनों के लिए है।" क्या करें, सोच विचारा और निश्चय किया कि भ्रान्त जनमानस को बदला जाय। वे प्रातःकाल जल्दी उठकर पिता का काम निपटाते और अपना पेट भरने जितना काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके बाहर निकल पड़ते। घर-घर, गली-गली, गाँव-गाँव अलख जगाते। उनके विचारों को जिनने भी सुना, हिल गये। थोड़े ही दिनों में हजारों प्रशंसक, समर्थक एवं सहायक बन गए। वे सन्त के रूप में प्रख्यात हो गए। किन्तु परिश्रम की रोटी से पेट भरने का काम न छोड़ा।

कबीर का धर्म प्रचार आचरण शुद्धि, लोक कल्याण, साम्प्रदायिक सद्भाव तथा दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन पर अवलम्बित था। निहित स्वार्थों ने अपने व्यवसाय को जब धक्का लगते देखा तो वे बौखलाने लगे। वेश और वंश के आधार पर जो मालोमाल हो रहे थे और पुज रहे थे, वे उनके प्राणों के गाहक हो गये। कई बार धर्मावलम्बियों के भयंकर आक्रमण हुए। उनसे लहूलुहान होते रहकर भी कबीर बिना डरे, बिना रुके अपना काम करते रहे। न उन्हें प्रशंसकों से राग था, न निन्दकों से द्वेष। उनकी पूरी दृष्टि अपने लक्ष्य पर टिकी थी और वे इस पर एकाकी चलते रहे।

जब उनका सम्पर्क क्षेत्र बढ़ गया तो आवश्यक समझा कि घर पर आने वालों की सुविधा की खातिर विवाह कर लिया जाय। ठीक उनके ही जैसे स्वभाव की युवती लोई मिल गयी। गृहस्थी बस गई। गृहस्थ रहते हुए, अपने परिश्रम की कमाई खाते हुए सन्त का जीवनक्रम और भी अच्छी तरह सध सकता है, यही उन्हें प्रत्यक्ष कर दिखाना था। घर पर दूर-दूर से लोग आते। धर्म पत्नी उनके भोजन निवास का ही नहीं, सत्संग समाधान का भी प्रयोजन पूरा करती रही। अब कबीर सुदूर क्षेत्रों में धर्म प्रचार के लिए जाने लगे। यही उनकी तीर्थ यात्रा थी।

कट्टर मुसलमानों को भी यह बुरा लगा कि मुस्लिम जुलाहे का लड़का हिन्दू धर्म के अनुरूप प्रचार करे। उनकी सल्तनत होने के कारण यह उन्हें राजद्रोह जैसा कार्य लगा। जब रोकथाम अपने स्तर पर कारगर न हुई तो उन दिनों के बादशाह सिकन्दर लोदी के कान भरे। कबीर को मृत्यु दण्ड सुनाया गया। लोहे की हथकड़ी बेड़ी से कसकर गंगा के गहरे भाग में डुबो देने का आदेश हुआ। कबीर अपनी कार्य पद्धति बदलने को राजी न हुए और दण्ड सहर्ष स्वीकारते हुए डूबने को तैयार हो गए।

कबीर डूबे पर मरे नहीं। चमत्कार यह हुआ कि अन्दर जाते ही उनकी जंजीरें स्वतः टूट गयीं और वे बहते-बहते किनारे जा लगे। इस प्रकार जीवित निकलने के बाद कबीर ने एक पद गाया।

गंगा माता गहरि गम्भीर। पटके कबीर बाँधि जंजीर॥
लहरनि तोड़ी सब जंजीर। बैठि किनारे हँसे कबीर॥

बादशाह ने यह चमत्कार सुना तो वह चकित रह गया। क्षमा माँगी और अपना सर्व धर्म समभाव प्रचार करने की छूट दे दी।

अनुयायियों ने उनकी जीवनचर्या देखी। रात को कपड़ा बुनना, सवेरे से प्रचार सत्संग में जुट जाना। भजन वे कब करते होंगे? भजन किये बिना सन्त कैसे? कबीर कपड़ा बुनते-बुनते ही रामनाम रटते थे, पर लोगों पर उनने यथार्थतावादी व्यंग्य कसते हुए कहा—

कबीर मन निर्मल भया जैसे गंगा नीर।
पीछै लगे हरि फिरैं कहत कबीर-कबीर॥
कबीर माला न जपों, जिह्वा कहो न राम।
सुमिरन मेरा हरि करें मैं पाऊँ विश्राम॥

उनके कथन का तात्पर्य यही था कि राम के नाम से राम का काम करना अधिक महत्वपूर्ण है। नाम तो काम करते-करते भी मन ही मन लिया जा सकता है।

कबीर ने अपनी प्रचार यात्राओं में अनेकों विचारशील लोगों से सम्पर्क किया और जाति-पाँति के नाम पर जो ऊँच-नीच की भावना चरम सीमा तक पहुँची हुई थी, उसके उन्मूलन का प्रयत्न करने के लिये सहमत कर लिया। उस प्रकार वे अकेले ही नहीं रहे, उनने अनेकों सन्त सुधारक पैदा किए।

उन दिनों काशी वास के नाम पर भावुक भक्तजनों को बुरी तरह ठगा जा रहा था और कर्म की अपेक्षा स्थान विशेष को, औंधे-सीधे कर्मकाण्डों को महत्व दिया जा रहा था। उन्हीं दिनों यह भी मान्यता थी कि गोरखपुर बस्ती की सीमा पर मगहर नामक स्थान पर मरने से नरक जाना पड़ता है। अन्तिम दिनों में कबीर वहीं चले गए। उनका अभिप्राय स्थान की महत्ता सम्बन्धी अन्धविश्वास को दूर करना था। अन्तिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय में भी राम के स्मरण में ही तत्पर रहे—
"मुआ कबीर मरत श्रीराम ।"

मृत्यु की पूर्व सूचना थी। हजारों भक्त जन उपस्थित थे। उनमें हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। हिन्दू वैष्णव कहकर जलाना व मुस्लिम जुलाहा बताकर दफन करना चाहते थे। कबीर की आत्मा ने देखा कि जिस साम्प्रदायिक एकता के लिए उनने जीवन भर काम किया, वह नष्ट हो रही है तो उनकी लाश ही अदृश्य हो गयी। झगड़ा करने वालों ने उस स्थान पर मात्र फूल पड़े पाए। सभी इस सिद्धि पर चकित थे। आधे फूलों को हिन्दुओं ने जलाया और उस स्थान पर समाधि बनाई जबकि आधे फूलों को मुसलमानों ने दफनाया और उस स्थान पर मकबरा बनाया।

अभी भी देश भर में उनके अनुयायी हैं। कबीर जाति-पाँति की ऊँच-नीच के विरुद्ध थे। वे मनुष्य मात्र को समान अधिकार और समान देखना चाहते थे, इसलिए उनके पंथ में सभी वर्ग के लोग सम्मिलित होते थे, पर पिछड़ी जातियों को उन्होंने विशेष रूप से उत्साहित किया कि आत्म सम्मान जगाये बिना उन्हें उचित न्याय न मिलेगा। इसी प्रकार उन्होंने वंश और वेश के नाम पर लूटमार करने वालों की पोल खोलने में कोई कमी न रखी। कबीर निर्भीक थे, आदर्शवादी, चरित्रवान और लोकसेवी। एकाकी चलने पर विश्वास करते थे। उनने अपने समय की कुरीतियों के उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों के प्रचलन में कोई कमी न रखी। इसके प्रमाण में अनेकों घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है, पर सबके पीछे उद्देश्य उपरोक्त ही थे।

सूक्ष्म गतिविधियाँ :—सन्त कबीर का जन्म पिछड़े लोगों को ऊँचा उठाने और साम्प्रदायिक सद्भाव बढ़ाने, पाखण्डों का खण्डन करने के निमित्त हुआ था। यह कार्य वे जीवन काल में सूक्ष्म शरीर से भी करते रहे। अपने प्रचण्ड आत्मबल के दबाव में असंख्यों के विचार बदले। साथ ही जो बलिष्ठ आत्माएँ सम्पर्क में आईं, उन्हें अपने वर्चस्व से अधिक ऊँचा उछालते रहे और अधिक सफलताएँ उपलब्ध कराते रहे।

कबीर की समकालीन प्रतिभाओं में रैदास और नामदेव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रैदास एक चमार कुल में काशी में ही जन्मे। उनका कार्यकाल सन् १३५० से १४३६ ईसवी का है। काशी क्षेत्र कबीर के लिये छोड़कर वे राजस्थान में अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति में लगे रहे। मीरा उनकी शिष्य बनीं व राजदरबार के षडयन्त्रों से बचकर प्रभु भक्ति में लगने का सत्परामर्श उन्हीं से पाती रहीं। कितनी ही सिद्धियों और चमत्कारों के लिए वे प्रख्यात थे। गंगा का उनकी कठौती में प्रकट होना, उनके भेजे दो पैसे गंगाजी द्वारा हाथ निकाल कर ग्रहण करना, जलाशय में से निकाले सभी पत्थरों को पारस बना देना उनकी सिद्धियों में प्रसिद्ध हैं।

कबीर के दूसरे समकालीन थे—सन्त नामदेव, जो जाति के दर्जी थे। उन्होंने भी वही कार्य पद्धति अपनायी जो कबीर की थी। वे महाराष्ट्र में जन्मे थे। दक्षिण भारत में उनका प्रचार कार्य बड़ी सफलता पूर्वक चला।

साईं मेरा बानियाँ, सहज करे व्यापार।
बिनु तखरी बिनु पालड़े, तोले सब संसार॥
जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
हों बौरी ढूँढन गई रही किनारे बैठ॥

प्रसिद्ध है कि अलावली महाराष्ट्र मन्दिर में वे कीर्त्तन कर रहे थे, तो पण्डितों ने उन्हें शूद्र कहकर बाहर निकाल दिया, तब वे मन्दिर के पीछे बैठ कर कीर्त्तन करने लगे। कहते हैं कि मन्दिर का दरवाजा और प्रतिमा का मुख पीछे की तरफ उलट गया और लोगों ने सच्चे भक्त का सच्चा मार्ग पहचाना और उनका विरोध छोड़ कर उनके साथ हो गए।

मरने के बाद कबीर की आत्मा चैतन्य महाप्रभु, जगद् बन्धु, एकनाथ, सन्तदादू जैसे लोगों के घनिष्ठ सम्पर्क में रही। इन लोगों ने भारत में फैले जातिगत ऊँच-नीच के कलंक को धोने के प्रयत्न किये। इनके अतिरिक्त उस मध्यान्तर काल में अनेकों समाज सुधारक, भक्तजन ऐसे जन्मे जिनने अन्धकार युग के अन्धविश्वास को दूर करने में असाधारण प्रयत्न किए और वातावरण बदला। इन कार्यों के पीछे कबीर की शाश्वत आत्मा की सूक्ष्म प्रेरणा का परोक्ष विशिष्ट सहयोग था। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रखर चेतना के प्रतीक प्रतिनिधि

समर्थ गुरु रामदास

समर्थ गुरु रामदास का जन्म हैदराबाद प्रान्त के जाम्ब गाँव में रामनवमी के दिन सन् १६०८ में हुआ। उनका कार्यकाल सन् १६८२ तक रहा। उनके पिता का नाम सूर्याजी पन्त था। उनने लगातार ३६ वर्ष सूर्य उपासना गायत्री मन्त्र के साथ की थी। पुत्र को भी उन्होंने यही साधना बताई। समर्थ नित्य दो हजार सूर्य नमस्कार और गायत्री का मानसिक जप करते थे। हनुमानजी के प्रति उनकी सहज श्रद्धा थी। वे हनुमान की तरह ही राम-काज करना चाहते थे। वही किया भी।

संस्कारवान माता-पिता ही अपनी गोदी में उच्च आत्माओं को खिलाने का सौभाग्य प्राप्त कर पाते हैं। स्वयंभू—मनु, शतरूपा-रानी — कृष्ण-रुक्मिणी—अर्जुन सुभद्रा जैसे अनेकों उदाहरण ऐसे हैं जिसमें पिता-माता के तपस्वी जीवन ने उन्हें सुसन्तति प्राप्त कराई। शकुन्तला, सीता, मदालसा के उदाहरण भी ऐसे ही हैं।

समर्थ बाल वैरागी थे। उन्होंने परिवार के सम्मुख आरम्भ में ही जीवनोद्देश्य प्रकट कर दिया और विवाह नहीं किया। आत्म-बल को अधिक प्रखर बनाने के लिए उन्होंने गोदावरी नन्दिनी नदियों के संगम पर टीकली स्थान पर बारह वर्ष तक तपश्चर्या की।

इसके उपरान्त वे धर्म प्रचार की पदयात्रा पर निकल पड़े। इस अवधि में उन्होंने हिमालय के कई स्थानों पर निवास किया और देवात्माओं से सम्पर्क साधा।

समर्थ को देश से पराधीनता का कलंक मिटाने और स्वतन्त्रता आन्दोलन को गतिशील बनाने का काम ऋषि सत्ता द्वारा सौंपा गया। वे आजीवन उसी प्रयोजन हेतु विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम अपनाते हुए संलग्न रहे।

उनने शिवाजी को महाराष्ट्र में—प्रताप को राजस्थान में—और छत्रसाल को बुन्देलखण्ड में महाप्रभु प्राणनाथ के माध्यम से इस प्रयोजन के लिए कटिबद्ध किया। उनका प्रत्यक्ष और परोक्ष मार्गदर्शन किया। इन तीनों की पात्रता परखने के लिए कई कसौटियाँ लगाईं और वे सब पर खरे उतरे। इन तीनों के द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम को अग्रगामी बनाने तथा व्यापक वातावरण बनाने के लिए जो कुछ किया, उसका घटनाक्रम इतिहास के पृष्ठों पर भली-भाँति पढ़ा जा सकता है।

समर्थ का अधिकांश समय परिभ्रमण और जन सम्पर्क में बीता। उनने जन-जन में स्वाधीनता की आकांक्षा जगाई और नव चेतना का अलख जगाया। तीनों प्रमुख शिष्यों को अभीष्ट जन सहयोग उपलब्ध कराने के लिए उनने दूरगामी योजनाएँ बनाईं और उन्हें पूरा करने में जुट गये। उनने ७०० प्रमुख स्थानों पर सस्ती लागत के महावीर मन्दिर बनवाये। उनके सबके साथ व्यायामशालाएँ जुड़ी हुई थीं और सत्संग की नियमित व्यवस्था जोड़ी गई। इसका प्रतिफल यह हुआ कि इन देवालयों के सम्पर्क में व्यायामशाला या सत्संग के माध्यम से प्रभावित होने वाले व्यक्ति स्वतन्त्रता आन्दोलन की आवश्यकता पूरी करने में लगे रहे। शस्त्र, सैनिक और अर्थ व्यवस्था इन देवालय केन्द्रों द्वारा एकत्रित करके प्रमुख मोर्चे पर भेजी जाती थीं।

समर्थ की माता अन्धी हो गई थीं। यह समाचार उनने सुना तो घर गये और माताजी के कष्ट का उपचार पूरा होने तक घर ही रहे। परिवार के प्रति सद्भावना रखने से वे विमुख नहीं हुए।

प्रचार एवं संगठन के निमित्त वे हर वर्ष 'चाफल' गाँव में रामनवमी के दिन एक बड़ा समारोह करते थे। सम्पर्क का उत्साह ठण्डा न पड़ जाय, इसके लिए उन सबको एक जगह एकत्रित करके सामूहिकता का वातावरण बनाना भी उन्हें आवश्यक लगा। आरम्भिक दिनों में उसका सारा खर्च उनके प्रधान शिष्य छत्रपति शिवाजी उठाते थे। पीछे समर्थ ने इसे अनुपयुक्त समझा और घर-घर से अन्न एकत्रित करने की एक नई शैली अपनाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बहाने सम्पर्क भी सधता था और सम्मिलित होने के लिए आग्रह पूर्वक निमन्त्रण भी दिया जाता। इस उपाय को अपनाते ही उपस्थिति हर वर्ष बढ़ने लगी और यह समारोह एक बड़े धार्मिक मेले के रूप में विकसित होने लगे। एक वर्ष का प्रचार कार्य जितना उद्देश्य पूरा करता था, उतना ही इस एक समारोह से पूरा होने लगा।

समर्थ ने इन सब कार्यों के बीच अपना साहित्य सृजन कार्य भी जारी रखा। उनकी रचनाओं में "दास-बोध" को सर्वोत्तम समझा जाता है। महाराष्ट्र में उसे उतना ही सम्मान प्राप्त है, जितना कि उत्तर प्रदेश में रामायण को। दासबोध के अतिरिक्त भी उनने आत्माराम—मन-विश्लोक—पंचभान, मान पंचक, पंजीकरण योग, करुणाष्टक आदि पुस्तकों का सृजन किया।

समर्थ के समकालीन सन्त तुकाराम भी थे। उनकी भी उस समय बड़ी ख्याति और मान्यता थी। उनने अभंग रचे। पण्डितों द्वारा ऐसी रचना का निषेध करने पर उनने वे रचनाएं नदी में फेंक दी पर वे प्रभु कृपा से कुछ ही समय में तैरती हुई तुकाराम के निवास तक जा पहुँची एवं उन्हें सबकी मान्यता मिली। वे गृहस्थ थे। पत्नी द्वारा गन्ने से पीटने और उनके हँसते रहने की कथा प्रख्यात है। सन्त तुकाराम ने भी धर्म प्रचार से स्वतन्त्रता की पृष्ठभूमि बनाने का ही काम किया। उनका समर्थ के कामों में पूरा योगदान था।

समर्थ गुरु रामदास के अनेकों सिद्धि चमत्कार प्रसिद्ध है। एक बार उन्होंने शिवा से सिंहनी का दूध मँगाया था वह सिंहनी उन्हीं की मानसिक सृष्टि थी। कइयों को उनने मृतक से जीवित किया था।

शिवाजी ने अपने राज्य सिंहासन पर भरत की तरह समर्थ की चरण पादुकाएं स्थापित की थीं और राज्य का स्वामित्व उन्हीं का माना था। राणा प्रताप जी मेवाड़ के राज्य को एकलिंग का मानते थे। मुनीम रहकर काम करने की यह पद्धति त्याग और कर्त्तव्य पालन की दृष्टि से एक उच्चकोटि की प्रक्रिया है।

सन् १६८२ में उनका स्वर्गवास हुआ। राम नाम का जयघोष करते हुए उनने प्राण त्यागे। मरण समय निकट आया जानकर वे एकान्त सेवन करने लगे थे और प्रातः-काल थोड़ा दूध ही सेवन करते थे।

उनका सारा जीवन देश की स्वतन्त्रता का ताना-बाना बुनने में ही लगा। इस प्रयास के समय दिल्ली की बादशाहत जो महाराष्ट्र एवं दक्षिण भारत पर भी कब्जा करना चाहती थी पस्त हिम्मत होती और सीमित दायरे में सिकुड़ती चली गई।

सूक्ष्म शरीर से समर्थ के कार्य:—जिस प्रकार कबीर ने अपने जीवन काल में तथा मरणोत्तर काल में निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने के लिए प्रयास जारी रखे, उसी प्रकार समर्थ ने भी सूक्ष्म शरीर के प्रयत्न जारी रखे। वे घटनाओं की दृष्टि से प्रत्यक्ष कार्य सीमित ही कर सके, जिन्हें इतिहासकारों ने उनकी जीवन गाथा में लिपिबद्ध किया है। पर वे कार्य अगणित हैं जिन्हें वे जीवन काल में सूक्ष्म शरीर के द्वारा दूरवर्ती लोगों को भी अन्तःप्रेरणा देकर करते रहे और मरने के उपरान्त

> तुलसी सन्त सुअम्ब तरु, फूल फलहिं परहेत।
> इतते ये पाहन हनें, उतते वे फल देत॥
> गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागें पायं।
> बलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दियो मिलाय॥

नया जन्म मिलने तक की मध्यावधि में और भी अच्छी तरह—और भी व्यापक क्षेत्र में सम्पन्न करते रहे।

उनकी सूक्ष्म प्रेरणा से बाजीराव पेशवा, तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई रानी आदि कितने ही महाराष्ट्रियन स्वतन्त्रता संग्राम के लिए प्राणों की बाजी लगाकर लड़ते रहे।

सन्त समुदाय में उन्होंने दक्षिण भारत में सन्त त्यागराज खड़े किये। जिन्होंने उस क्षेत्र में धर्म प्रचार के साथ-साथ समर्थ का काम भी किया। इसके अतिरिक्त भी और भी कितने ही उनके अनुयायी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से उनकी जलाई ज्वाला के ईंधन बनते रहे। उनके न रहने के उपरान्त स्वतन्त्रता की लड़ाई अगणित ज्ञात और अविज्ञात आत्माओं द्वारा लड़ी जाती रही। और चेतना धीमी नहीं पड़ी वरन् दिन-दिन प्रदीप्त होती गई। उनका प्रयास कांग्रेस आन्दोलन में विकसित होता गया और लोकमान्य तिलक जैसी प्रतिभाएं उन्हीं की जोती बोई भूमि में विशाल वृक्ष बनकर पल्लवित हुईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति भावना से ओतप्रोत—श्री रामकृष्ण परमहंस

महामानवों का ऐसा प्रत्यक्ष घटनाक्रम स्वल्प होता है, जिसे आँखों से देखा और लेखनी से लिखा जा सके। उनकी प्रधान शक्ति प्रखर सूक्ष्म शरीर के रूप में होती है। उसी से वे ऐसे अदृश्य कार्य करते रहते हैं जो उनके दृश्य कार्यों की तुलना में असंख्यों गुने महत्वपूर्ण होते हैं।

एक ही आत्मा कबीर, और समर्थ के शरीरों में गुजरती हुई बंगाल में रामकृष्ण परमहंस के रूप में प्रकट हुई। उनका कार्यकाल सन् १८३६ से १८८७ ईसवी तक है। वे कलकत्ता के पास हुगली जिले में कामारपुकुर गाँव में जन्मे। छोटी आयु में ही उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। साधना उपासना के प्रति बचपन से ही बड़ी लगन थी। पर गाँव में आजीविका के स्रोत उपयुक्त नहीं थे। उनके बड़े भाई कलकत्ता रहते थे। उनने छोटे भाई को भी वहीं बुला लिया और कुछ बड़े होने पर दक्षिणेश्वर मन्दिर की पूजा-अर्चा का काम उन्हीं के जिम्मे आ गया।

रामकृष्ण का जन्म सर्वसाधारण को भक्ति भावना का वास्तविक स्वरूप समझाने के लिए हुआ। उनने ऐसा जीवन जिया जिसे देखकर अनुमान लगाया जा सके कि साधना में सिद्धि प्राप्त करने के लिए क्या करना पड़ता है और कैसा बनना पड़ता है।

उन दिनों भक्ति के नाम पर उपकरण धारण और पूजा पाठ की येनकेन प्रकारेण चिन्ह पूजा ही चल रही थी। भक्तजन कहलाने वाले अपनी जीवनचर्या में आदर्शवाद का समावेश करने से कतराते थे। उसमें संयमी और तपस्वी की उदार उच्चस्तरीय जीवन जो जीना पड़ता है। वह न बन पड़ने पर थोथी पूजा-पत्री कुछ ठोस प्रतिफल उपस्थित नहीं कर पाती। फलतः या तो लोग निराश होकर नास्तिक बन जाते हैं या फिर झूठ-मूठ भगवान के दर्शन की सिद्धियाँ मिलने की विडम्बना रचकर भावुक लोगों से धन और सम्मान का अपहरण करते रहे हैं। यही कारण था कि उन दिनों भी विचारशील वर्ग में भक्ति को भ्रम जंजाल या पाखण्ड माना जाने लगा था।

परमहंस ने भक्ति का वास्तविक स्वरूप जन-साधारण के सम्मुख रखा और बुद्धिवादियों की मान्यता का प्रवाह ही बदल दिया। इसी तथ्य को उन्हें व्यापक भी बनाना था और आस्तिकता की उपासना की यथार्थता का परिचय देकर फिर से भक्ति भावना की यथार्थता तथा परिणित सिद्ध करना था। यही उन्होंने जीवन भर किया भी।

वे रानी रासमणि के दक्षिणेश्वर मन्दिर में पूजा-अर्चा करते थे। साथ ही उस कार्य में गहन श्रद्धा विश्वास के साथ तल्लीन भी रहते थे। उन्होंने इसी आधार पर भक्त और भगवान के एक होने की उक्ति सही सिद्ध करके दिखादी।

साधारणतया प्रतिमाओं में कोई चमत्कार नहीं होते पर जब तक रामकृष्ण पुजारी रहे तब तक उनकी प्रतिमा चमत्कारी ही सिद्ध होती रही। मीरा के गिरधर गोपाल भी इसी प्रकार जीवन्त बने थे। एकलव्य के मृतिका विनिर्मित द्रोणाचार्य भी शरीरधारी द्रोणाचार्य से अधिक सशक्त थे।

एक दिन मन्दिर की स्वामिनी रासमणि से किसी ने चुगली की कि पुजारी माता को लगाया जाने वाला भोग स्वयं वहीं बैठकर खा जाता है। रानी ने वस्तुस्थिति जानने के लिए मन्दिर के झरोखे से आँख लगाकर बैठ गई। उनने देखा कि परमहंस माता का प्रतिमा से कह रहे हैं कि माता—भोजन करो। जब उनने न किया तो परमहंस कहने लगे—अच्छा मैं समझा—पहले बेटा खा लेगा तब माता खायेगी। उनने थाली का आधा भोजन स्वयं कर लिया और कहा—आधा तुम खाओ। रानी ने देखा कि प्रतिमा के पत्थर के हाथ उठने लगे। पत्थर का मुँह खुलने लगा और उनने शेष भोजन खा लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थाली साफ हो गई। उसे लेकर परमहंस बाहर निकले, तो रानी उनके चरणों पर गिर पड़ी और कहा—देव ! आप ही काली है। अक्षम मनुष्य शरीर से प्रत्यक्ष देवता हैं।

रामकृष्ण परमहंस विवाहित थे। उनकी पत्नी शारदामणि उनके पास मन्दिर में आ गई थी। परमहंस जी ने उन्हें कहा कि आजीवन ब्रह्मचर्य रखकर हम लोग पति-पत्नी की तरह सहोदर भाई की तरह जीवन व्यतीत करें तो कैसा। पत्नी तुरन्त सहमत हो गई। दोनों ने आजीवन सन्त का जीवन परस्पर प्रेम और घनिष्ठता भरा जीवन जिया और एक आदर्श रखा स्त्री रमणी कामिनी ही नहीं साक्षात् देवी एवं वरदात्री भी होती है।

परमहंस उपासना के उपरान्त प्रवचन शंका समाधान, वार्त्तालाप के रूप में करते थे। उनसे दूर-दूर से भक्त जन आते। शारदामणि उन सबको अपने हाथ से भोजन बनाकर खिलाती। कभी-कभी इतनी भीड़ हो जाती कि उनका आधा दिन उसी में लग जाता और हाथ दुखने लगते पर कभी उनने उससे अनख न माना। उनका वात्सल्य इतना उभर आया था कि १६ वर्ष की आयु में ही लोग उन्हें माता कहने लगे थे।

वे परिव्राजक की तरह प्रचार में नहीं जा सकते थे। क्योंकि मन्दिर की व्यवस्था उनके कन्धे पर थी। पर अनेक जिज्ञासु और तत्वज्ञानी उनके अमृत वचन सुनने स्वयं ही परमहंस जी के पास पहुँचते थे। उनके सामने सरल हृदयग्राही और दृष्टान्त सहित शैली में असंख्यों को भक्ति का वास्तविक स्वरूप बताया और कहा उसके साथ आदर्श जीवन और लोक मंगल का पुरुषार्थ जुड़ा होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। मात्र नाम रटने से ही भगवान नहीं मिलते।

रामकृष्ण परमहंस सिद्ध पुरुष के रूप में भी प्रख्यात हो गये। उनके पास आये दिन दीन-दुःखी आते और उनका आशीर्वाद पाकर संकट से मुक्त हो जाते। इस दृष्टि से उनके पास आने वालों की संख्या भी कम न थी।

वे सदा इस टोह में रहते थे कि कोई संस्कारवान् आत्माएँ उनके सम्पर्क में आये तो उन्हें सच्चा भक्त बनाकर उसका तथा संसार का कल्याण करायें। उनकी दृष्टि एक नरेन्द्र नामक लड़के पर पड़ी। वे उसकी ओर विशेष ध्यान देने लगे। लड़का भी उनके प्रति आकर्षित हुआ और आने-जाने लगा। घनिष्ठता बढ़ी और गुरु ने शिष्य का हाथ पकड़ा।

नरेन्द्र के पिता का स्वर्गवास हो गया। वे नौकरी की तलाश में थे। आशीर्वाद माँगने परमहंस जी के पास आये। उनने उसे काली की प्रतिमा के पास अपनी कामना कहने के लिए भेजा। नरेन्द्र के विवेक चक्षु खुले उनने काली का विराट् रूप देखा। रोमाञ्च हो उठा। कहा—मैं—भक्ति, शक्ति और शान्ति माँगने आया। कामना पूर्ण कराने नहीं। काली मुस्कराई और तथास्तु कहा।

नरेन्द्र ने अपनी जीवन दिशा बदल दी और स्वामी विवेकानन्द हो गये। वे विदेशों में प्रचार करने गये।

बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर।
बैंठन को छाया नहीं, फल लागें अति दूर॥
तन को जोगी सब करें, मन को करै ना कोय।
सब सिधि सहजैं पाइये, जो मन जोगी होय॥
या दुनियाँ में आय के, छोड़ देव तू ऐंठ।
लेना है सो ले चलो, नहिं उठी जात है पैंठ॥

अमेरिका के धर्म सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने भी। उन्हें भाषण का अभ्यास न था। पर जो उन्होंने कहा उससे अमेरिका के धार्मिक और विज्ञानी चकित रह गये। वे सदा कहते रहते थे कि मेरे मुख से परमहंस बोलते हैं। मैं तो उनके हाथ का खिलौना—अबोध बालक भर हूँ।

परमहंस ने स्थूल शरीर से कम और सूक्ष्म शरीर से अधिक काम किया। उनने बंगाल की अनेक प्रतिभाओं को चमकाया और उनसे बड़े महत्व के काम कराये। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के माध्यम से विधवा विवाह के प्रचलन तथा सती-प्रथा बन्द कराने का, विधवाओं को नव जीवन देने वाला कार्य कराया।

केशवचन्द्र सेन का ब्रह्म समाज भी उन्हीं के परोक्ष सहयोग से फला फूला उसके अन्तर्गत आत्म-कल्याण और समाज सुधार की अनेक प्रक्रियाएँ सम्पन्न होती रहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजरात वीरपुर के जलाराम वापा से उनका सूक्ष्म सम्बन्ध था। उन्हें भी उन्होंने उच्चकोटि का सन्त बनाया। पति पत्नी मिलकर वे भी वही कार्य करते थे जो परमहंस जी ने किया। वापा की परीक्षा लेने भगवान स्वयं उनके घर आये थे और अक्षय अन्न भण्डार की झोली उन्हें उपहार में दे गये थे। जिस माध्यम से जलाराम के सामने से भी अधिक बढ़ा-चढ़ा अन्न क्षेत्र वीरपुर आश्रम में चलता रहता है।

परमहंस जी अपने अन्तरंग सहचरों को बताया करते थे कि इस समय सच्ची भक्ति भावना को फलती-फूलती देखने के लिए गुजरात की भूमि देश भर में सबसे अधिक उर्वर दृष्टिगोचर होती है। अब हमें उस क्षेत्र को नन्दन वन बनाने और देव मानव उगाने के लिए सर्वतोभावेन जुटना चाहिए। परमहंस अपने जीवन काल में तथा उपरान्त उस क्षेत्र पर अपना ध्यान एकाग्र किये रहे और उच्च आत्माओं को उस क्षेत्र में अवतरित करने का परिपूर्ण प्रयत्न करते रहे।

इस प्रकार उनके अपने जीवन काल में और मरणोपरान्त अनेकानेक ऐसे सन्त उत्पन्न किये जिनने भक्ति का वास्तविक स्वरूप अपनाया और प्रचार कार्य द्वारा अध्यात्म का वास्तविक स्वरूप लाखों को समझाया। बंगाल में तो उनसे उच्च आत्माओं का उन दिनों भण्डार भर दिया था। उसके अतिरिक्त उनका ध्यान गुजरात पर विशेष रूप से रहा और उस क्षेत्र में भी यथार्थवादी सन्तों की कमी न रहने दी।

परमहंस जी की मृत्यु गले के केन्सर से हुई। लोगों ने पूछा आपके आशीर्वाद से असंख्यों का कल्याण हुआ। फिर आपको यह रोग कैसे हुआ। उनने उत्तर दिया—मेरे पास पुण्य कम था और लोगों की सहायता में ज्यादा खर्च करता रहा। उसी कमी की पूर्ति में मुझे यह कष्ट भुगतना पड़ रहा है। इस सम्भावना को मैं पहले से भी जानता था। पर जन-कल्याण के लिए यह कष्ट उठाते हुए मुझे तनिक भी दुःख नहीं, वरन् प्रसन्नता है।

परमहंसजी का स्वर्गवास १८८७ में १६ अगस्त को हुआ। मरते समय उन्होंने अपनी धर्मपत्नी जिन्हें वे माताजी कहते थे, यह कार्य सौंपा कि वे भक्त जनों की जिज्ञासा पूर्ति मेरी ही भाँति करती रहें और अपनी साधना के प्रतिफल दीन दुःखियों में वितरित करती रहें, उन्होंने आजीवन अपने पति का आदेश पालन किया। उन्हें वे औरों की तरह बाबा कहती थीं। सभी भक्त जन उन्हें साक्षात् देवी की प्रतिमा मानते थे। उनका व्यक्तित्व भी ऐसा ही था। ★

रामकृष्ण परमहंस अपने शिष्यों के साथ टहलते हुये एक नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ मछुए जालफेंक कर मछलियाँ पकड़ रहे थे। एक मछुए के पास स्वामीजी खड़े हो गये और शिष्यों से कहा—"तुम लोग ध्यान पूर्वक इस जाल में फँसी मछलियों की गतिविधि देखो।"

शिष्यों ने देखा कि कुछ मछलियाँ तो ऐसी हैं जो जाल में निश्चल पड़ी हैं उन्होंने निकलने की कोई कोशिश ही नहीं की, कुछ मछलियाँ निकलने की कोशिश तो करती रहीं पर निकल नहीं पाईं और कुछ जाल से मुक्त होकर पुनः जल में क्रीड़ा करने लगीं।

परमहंस ने शिष्यों से कहा—"जिस प्रकार मछलियाँ तीन प्रकार की होती हैं उसी प्रकार मनुष्य भी तीन प्रकार के होते हैं। एक श्रेणी उनकी है जिनकी आत्मा ने बन्धन स्वीकार कर लिया है और इस भव-जाल से निकलने की बातें सोचते ही नहीं, दूसरी श्रेणी ऐसे व्यक्तियों की है जो वीरों की तरह प्रयत्न तो करते हैं पर मुक्ति से वंचित ही रहते हैं और तीसरी श्रेणी उन मनुष्यों की है जो चरम प्रयत्न द्वारा आखिर मुक्ति प्राप्त कर ही लेते हैं।"

परमहंस की बात समाप्त हुई जान एक शिष्य बोला--"गुरुदेव ! एक चौथी श्रेणी भी है जिसके सम्बन्ध में आपने कुछ बताया ही नहीं।"

'हाँ चौथी प्रकार की मछलियों की तरह ऐसी महान आत्माएँ भी होती है जो जाल के निकट ही नहीं आतीं फिर उनके फँसने का प्रश्न ही नहीं उठता।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कर सकें तो लाभान्वित होंगे

गत अप्रेल अंक में पृष्ठ ५४ पर छपा "बोया - काटा" लेख आपके लिए विशेष रूप से पठनीय है। इसी प्रकार पृष्ठ २८ का "दो मनों के मल्लयुद्ध" वाला लेख भी पढ़ने योग्य है। हमारा अनुरोध है कि आप इन दिनों इन दोनों प्रयासों के लिये साहस भरे कदम उठायें और वह सत्परिणाम अर्जित करें, जिनका सुयोग हमें मिल सका।

आप सत्प्रवृत्तियों के बीज बोयें और जागरुकता पूर्वक उनकी रखवाली करें। खाद पानी हम जुटा देंगे। ऐसी दशा में वह फसल पकने का विश्वास है जो आपको और हमें कृतकृत्य बना दे।

गत अंक में इसी पृष्ठ पर छह सूत्री कार्यक्रम दिया है। उनमें से आप कितनों का अगले दिनों निर्वाह करने - संकल्पित व्रत लेने जा रहे हैं और उनकी पूर्ति के लिये क्या योजना बना रहे हैं, यह जानने की प्रतीक्षा करेंगे।

विशेष पाँच दिवसीय मिलन सत्र आगामी बसन्त पर्व तक चलेंगे। उनमें से किसी में आने का प्रयास करें और उपयोगी प्रेरणा, प्राण-ऊर्जा एवं स्वयं के लिए जीवन की भावी दिशा-धारा लेकर वापस लौटें।

श्रीराम शर्मा आचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल वार्षिक ग्राहकों के लियें

रजिस्टर्ड नं. एम.टी.आर.९८
रजि. नं. आर.एन.२१६२ / ५२

अखण्ड-ज्योति मासिक
लाइसेन्स संख्या एम.टी.आर.८
डाक व्यय की पहले अदायगी किए बिना
डाक मे डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त

दाता की वेदना

है उदास कुछ अंतरतम यह, रत्नों का उपहार किसे दूं?
पात्र बहुत छोटे दिखते हैं, पावस की जलधार किसे दूं??

सागर के तल तक जाकर मुश्किल से ही ये आ पाये हैं।
किन्तु मिला न पहनने वाला, सोचं, हृदयतल-घन छाये हैं।।

विजयी कण्ठ न दिखता कोई, रत्नों का यह हार किसे दूं??

हर मन की धरती प्यासी है, किन्तु न कोई पोली करता।
पर-हित के बीजों से कोई अपना जीवन-खेत न भरता।।

उमड़ रही अंतर में, किन्तु महावट की बौछार किसे दूं??

पीर गैर की नहीं समझता कोई-मन हैं कागज कोरे।
संवेदन की भाषा खोयी, टूटे सद्भावों के डोरे।।

कौन लिखेगा गीत प्यार के, अंतर के उद्गार किसे दूं?

भौतिकता के आर्कषण ने, मनुज मात्र को भरमाया है।
भक्ति, साधना औ संयम के नाम मात्र से घबराया है।।

तप कर जिसे भरा जीवन भर, वह अक्षय भण्डार किसे दूं?

ले, पर लेकर के वह थाती, जो जन दीन-हीन को बाँटे।
जहाँ दरार दिखे उसको, अपने यत्नों से जो जन पाटे।।

मिल न सकेगा क्या ऐसा जन? अपना गुरुतर भार किसे दूं??

है उदास कुछ अंतरतम यह...............

-माया वर्मा

सम्पादक - भगवती देवी शर्मा प्रकाशक मुद्रक - मृत्युंजय शर्मा, अखण्ड-ज्यति संस्थान द्वारा
जन जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मासिक
-आर-८
ए बिना
स प्राप्त

अखण्ड ज्योति

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

अगस्त १९८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ें और पायें

१- नींव मजबूत बनाओ — १
२- उपासना में आत्मशोधन की अनिवार्यता — २
३- निराकार और साकार का स्पष्टीकरण — ३
४- सृष्टा का उत्तराधिकारी महान बनकर रहे — ६
५- परमात्म सत्ता के विराट् रूप का दर्शन — ९
६- "योगा" और "मेडीटेशन" का कौतुक — ११
७- अहन्ता के नाग पाश से जीवन मुक्ति — १३
८- कबीरदास जी का रहस्यवाद — १६
९- काश ! हम दिशा बदल सकें — १७
१० आत्म देव परामर्श नहीं मानता — २०
११ संकल्प बल और स्वस्थता — २१
१२- इनका कारण ढूँढ़ना अभी शेष है — २४
१३- प्रतिभावान क्या सचमुच पागल होते हैं ? — २५
१४- सनकियों की कमी नहीं — २७
१५- पृथ्वी पर होते रहे परिवर्तन — ३०
१६- पुरातन चिकित्सा पद्धतियों को नये सिरे से खोजा जाय — ३३
१७- दैनिक जीवन में क्रियाशील "टैलीपैथी" — ३७
१८- उद्धत यौनाचार के भयावह दुष्परिणाम — ३७
१९- नोस्ट्राडमस की भविष्यवाणियाँ — ४०
२०- छाया पुरुष हमारा सूक्ष्म शरीर — ४१
२१- "यत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम्" — ४३
२२- संगीत का विज्ञान क्षेत्र में उपयोग — ४६
२३- विशिष्टताओं से सम्पन्न ये तुच्छ जीव-जन्तु — ४९
२४- श्रेष्ठतम का वरण — ५२
२५- गायत्री मन्त्र में हजार अणु बमों से अधिक शक्ति — ५३
२६- अणुविकिरण और यज्ञ विज्ञान — ५५
२७- क्या पृथ्वी का नक्शा बदलने जा रहा है — ५७
२८- महाविनाश रुक सकता है — ५९
२९- स्नेह दुलार-सुधार का कारगर प्रदर्शन — ६२
३०- अपनों से अपनी बात — ६३

अगस्त — १९८५
अङ्क — ८
वर्ष — ४८
वार्षिक चन्दा — २०)
आजीवन — २००)

पता—अखण्ड-ज्योति संस्थान, मथुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

वर्ष ४८ | अगस्त १९८५ | वार्षिक २०)
अङ्क ८ | | आजीवन २००)

नींव मजबूत बनाओ

भवन जितना ऊँचा बनाना होता है नींव उतनी ही गहरी खोदनी पड़ती है। नींव की गहराई पर ही भवन की ऊँचाई निर्भर है। ध्येय ऊँचा हो और उसे पाना भी हो तो अपना व्यक्तित्व उतना ही गम्भीर और मजबूत बनाना होता है। ऐसे मकानों पर आँधी-तूफान और भूकम्प का असर नहीं पड़ता। नींव गहरी होने के कारण वे डगमगाते नहीं।

नींव का कार्य पूरा हो जाने के बाद भवन निर्माण की दिशा और स्वरूप बनता है। इसी प्रकार ज्ञान, चरित्र और व्यक्तित्व बन जाने के बाद ध्येय पूरा करने की यात्रा आरम्भ होती है। इस प्रकार बने हुए भवन पर छोटी बड़ी चोटें पड़ती रहती हैं और बड़े झकझोरे आते रहते हैं पर कुछ बिगाड़ नहीं पाते। जबकि कमजोर नींव वाले एक ही अन्धड़ से उखड़ कर दूसरे कोने पर जा गिरते हैं। जीवन को जितना महान बनाना है उतने ही मजबूत मनोबल वाली नींव बननी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना में आत्मशोधन की अनिवार्यता

उपासना का अर्थ है—पास बैठना। भगवान को अपने पास बिठाना या स्वयं भगवान के पास बैठना। दोनों ही स्थितियों में इसकी पात्रता आवश्यक है। राजा को अपने घर बुलाकर उसे देर तक पास बिठाये रहना या स्वयं राज महल में जाकर उनके समीप रहना एवं देर तक वार्तालाप करना, यह हर किसी के लिए सम्भव नहीं। इसके लिए पात्रता चाहिए। दीन-हीन, मलीन या रोग ग्रसित व्यक्तियों को यह सुविधा नहीं मिल सकता। उसके लिए पूर्व तैयारी करनी पड़ती है। श्रीमद् भागवत् में भगवान की समीपता प्राप्त करने के लिए चार तैयारियाँ करने की बात लिखी है।

(१) सात्विक सीमित आहार। जिससे पेट तनकर भारा रखने के कारण आलस्य प्रमाद न सताये। दूसरे अन्न के अनुरूप मन बने और भगवान में रुचिपूर्वक लग सके। अभक्ष्य, अनीति उपार्जित धान्य खाने से मन उद्विग्न एवं चंचल बनता है और भगवत् प्रसंग से हटकर बार-बार दूर भागता है।

(२) वाक् संयम। कटु वचन, मिथ्या भाषण, असत्य अश्लील जैसे भ्रष्ट वचन न बोलकर वाणी को इस योग्य बना लेना जिससे किया हुआ नाम स्मरण सार्थक हो सके।

(३) इन्द्रिय निग्रह—चटोरापन, कामुकता, मनोरंजक दृश्य देखने की चंचलता, संगीत आदि आकर्षणों की ओर दौड़ पड़ना जैसे चित्त को चंचल बनाने वाले उपक्रमों से दूर रहना। उन आकर्षणों के लिए उमंगें उठती हों तो उन्हें रोकना।

(४) स्वाध्याय और सत्संग का सुयोग बनाते रहना जिससे भगवद् भक्ति में श्रद्धा विश्वास बढ़े। जमे हुए संचित कुसंस्कारों के उन्मूलन का क्रम चलता रहे। उनके आधार पर ही लोभ मोह के दुष्परिणाम विदित होते हैं। उच्चस्तरीय चिन्तन-मनन से ही मन की भ्रष्टता का निराकरण होता है।

माता-पिता के निकट जाना या उनकी गोदी में बैठना किसी बच्चे के लिए कठिन नहीं होना चाहिए। यह सरल है और स्वाभाविक भी। भगवान के साथ मनुष्य का घनिष्टतम सम्बन्ध है। आत्मा परमात्मा से ही उत्पन्न हुई है। उसके साथ सम्बन्ध बनाये रहने से कोई मनुहार करने या अनुदान देने की आवश्यकता नहीं है। अनुनय विनय तो परायों से करना पड़ती है। भेंट पूजा तो उनकी जेब में डालनी पड़ती है जिनसे कोई अनुचित प्रयोजन सिद्ध करना है। बालक की जितनी उत्कण्ठा अभिभावकों की गोदी में चढ़ने की होती है उसकी तुलना में माता-पिता भी कम उत्सुक आतुर नहीं होते। पर इस प्रयोजन की पूर्ति में एक ही व्यवधान अड़ जाता है—बालक का शरीर गन्दगी से सना होना। मल मूत्र से बच्चे ने अपना शरीर गन्दा कर लिया हो और गोदी में चढ़ने का आग्रह कर रहा हो तो माता मन को कठोर करके उसे रोकता है, पहिले स्नान कराती, पोंछती और सुखाती है। उसके उपरान्त ही छाती से लगाकर दुलार करती और दूध पिलाती है। उसे अपना शरीर गन्दा और दुर्गन्धित होने का भय जो रहता है। विलम्ब का व्यवधान उसी कारण अड़ता है। यह विलम्ब बच्चे के हित में भी है और माता के हित में भी।

भगवद् भक्त कहलाने के लिए साधक को इस योग्य बनाना पड़ता है जिससे पास बिठाने वाले की भी निन्दा न हो। जिन अधम और अनाचारियों को भगवत् अनुग्रह प्राप्त हुआ है उन सभी को अपने दुर्गुणों का परिशोधन करना पड़ा है। इसके बिना अब तक किसी को भी उपासना का आनन्द नहीं मिला। परिशोधन भक्त की अनिवार्य कसौटी है। उसका श्रेय चाहे भक्त स्वयं ले ले या भगवानको दे दे। पर है इस प्रक्रिया की हर हालत में अनिवार्यता। मनुष्य एक ओर तो अनाचाररत रहे और दूसरी ओर उथले कर्मकाण्डों के बल पर ईश्वरीय अनुकम्पा का आनन्द लेना चाहे तो उसे अब तक की परम्परा और शास्त्र मर्यादा के सर्वथा प्रतिकूल ही समझना चाहिए। श्रीमद् भागवत में इसी तथ्य को उपासना प्रेमियों के सम्मुख उद्घाटित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

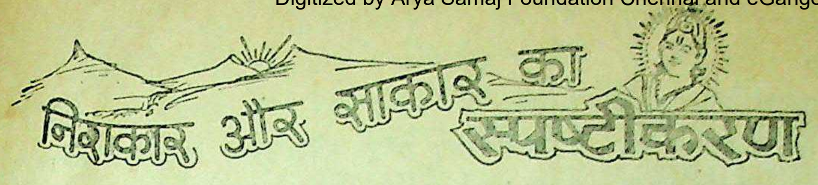

निराकार और साकार का स्पष्टीकरण

निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त नियामक सत्ता का कोई एक आकार नहीं बन सकता । जो एक स्थानीय होगा वह सर्वव्यापक नहीं बन सकता । एक स्थान पर तो उस पर ब्रह्म सत्ता का एक अंश या एक घटक ही किसी कलेवर में सीमाबद्ध देखा जा सकता है । व्यापक अग्नि तत्व समेट कर एक स्थान में केन्द्रित नहीं किया जा सकता । मोमबत्ती में जलता हुआ उसका एक अंश ही देखा जा सकता है । इस प्रकार प्रत्येक प्राणी या पदार्थ में भगवान की अंश रूप में झाँकी की जा सकती है । पर उसे पूर्ण ब्रह्म या परब्रह्म नहीं कह सकते हैं । मिट्टी के ढेले को चन्दन, पुष्प, कलाया आदि से सुसज्जित करके उसे पूजा प्रकरण में गणेश बनाया जाता है । भक्त का श्रद्धा सम्वर्धन का कार्य इतने से भी सध जाता है । पर कोई यह दावा नहीं कर सकता कि ब्रह्माण्डव्यापी गणेश तत्व सिमट कर उसके जल कलश में केन्द्रित हो गया है । भगवान का एक अंश प्रत्येक व्यक्ति या पदार्थ में है । इस प्रकार समझने को तो किसी भी प्राणी या पदार्थ को भगवान का अंश प्रतीक मान सकते हैं । पर यह मान्यता भर की बात है । तत्वतः वह व्यापक सत्ता अपने व्यापक रूप में ही समग्र रहेगी ।

भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन करने का आग्रह अर्जुन को हो रहा था । वह इसके लिए हठ कर रहा था । कृष्ण उसे बार-बार समझा रहे थे कि चर्म चक्षुओं से आज तक भगवान को न किसी ने देखा है न कोई देख सकेगा । आग्रह हो तो ज्ञान चक्षु भाव चक्षु—इसके लिये खोलने पड़ेंगे । कृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान चक्षु प्रदान करते हुए अपना विराट् रूप दिखाया और कहा देख, यह विश्व ब्रह्माण्ड ही मेरा रूप है । अर्जुन ने वैसी ही भावना की और अपना समाधान कर लिया । यशोदा भी ऐसे ही प्रत्यक्ष दर्शन चाहती थीं उन्हें भी विराट् रूप दिखाकर सन्तोष कराया गया । राम के समय भी कौशिल्या और काकभुसुण्डि इसी प्रकार विराट् विश्व की भाव कल्पना से अपना समाधान कर सके ।

पूजा प्रयोजन के लिए काष्ठ, मृत्तिका, पीतल, कांस्य आदि धातुओं की मूर्तियाँ बनाई जाती हैं । दिवाली के अवसर पर गणेश लक्ष्मी प्रायः मिट्टी के बने ही पूजे जाते हैं । बंगाल में नवरात्रि के समय दुर्गा की और महाराष्ट्र में गणेश पूजा के अवसर पर गणेश जी की भव्य मूर्तियाँ बनती हैं वे मिट्टी, लुगदी, जूट, बाँस आदि को मिलाकर बनाई जाती हैं । पूजा के उपरान्त किसी जलाशय में विसर्जन कर देते हैं । इसे प्रतीक पूजा कहते हैं । मन्दिरों में पत्थर या धातु की प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं और भक्त जन उसी बैसाखी के सहारे अपनी भाव यात्रा का अभ्यास जारी रखते हैं । छोटे बच्चों को जब तक चलना नहीं आता तब तक तीन पहियों की गाड़ी हाथ में थमाकर चलने का अभ्यास कराते हैं । स्कूल में भर्ती होने वाले बालकों को क—कबूतर, ख—खरगोश, ग—गाय, घ—घड़ी की छवियाँ दिखाकर स्मरण और उच्चारण का अभ्यास कराते हैं । किन्नर गार्डन के लकड़ी के टुकड़े भी इस प्रयोजन में सहायता करते हैं । प्रतीक पूजा का विधान इसी आवश्यकता की पूर्ति करता है । इतने पर भी बच्चे जानते हैं कि तीन पहिये की गाड़ी पैर नहीं हो सकती, कबूतर, खरगोश, गाय, घड़ी देखते रहने से शिक्षा का प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता । किन्नर गार्डन के लकड़ी के टुकड़े जेबों में भरे फिरने भर से कोई विद्वान नहीं बन सका है । यह सब आरम्भिक आश्रय मात्र हैं । देव पूजा में प्रतिमाएँ, उस तत्व का स्मरण भर दिलाती हैं और बिखरे हुए ध्यान को एकाग्र करने के काम आती हैं ।

सजीव सत्ताओं के बीच घनिष्टता उत्पन्न करने का काम प्रेम करता है । वह अन्तःकरणों को परस्पर जोड़ने का गोंद है । इसीलिए प्रेम को परमेश्वर कहा गया है । भक्त और भगवान के बीच घनिष्टता स्थापित करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए प्रेम भावना प्रदीप्त करनी होती है। मनुष्यों के बीच भी यही अवलम्बन काम देता है। इससे पराये अपने बन जाते हैं। इसके अभाव में अपने भी परायों की अपेक्षा अधिक दूर लगते हैं। पति-पत्नी, विवाह से पूर्व अपरिचित होते और दूर रहते हैं पर जब उनके भीतर आत्मीयता उगती और प्रेम भावना उफनती है तो एक दूसरे के लिए प्राण प्रिय हो जाते हैं। दो शरीर एक आत्मा जैसी अनुभूति होती है। बच्चे, कुटुम्बी, मित्र, पड़ौसी इसी आधार पर आत्मीयता के बन्धनों में बँधे होते हैं और अपने ही शरीर के अंग अवयवों जैसे लगते हैं। जड़ पदार्थों को परस्पर जोड़ने के लिए कील ठोंकने, सरेस चिपकाने, सिलाई या बेल्डिंग करने जैसे उपाय काम में लाये जाते हैं। आत्माओं को एकीभूत बनाने के लिए प्रेम ही एक-मात्र उपाय है।

आत्मा को परमात्मा के निकटतम लाने ले जाने के लिए उच्चस्तरीय प्रेम का अभ्यास करना पड़ता है। उच्चस्तरीय का तात्पर्य है—उत्कृष्ट, आदर्श, निस्वार्थ, पुनीत। बाजारू प्यार तो रण्डी भडुओं के बीच भी होता है। ठग अपनी शिकार को मीठी बातें करके फँसाते हैं। चाटुकारों का धन्धा ही यह है। चमचागीरी से जिसे चुना जाता है उसके प्रति असमय सद्भावना का लवादा ओढ़ना पड़ता है। यह बाजारू बातें हुईं जिसमें झूठ-मूठ का प्रेम दिखाया जाता है। किन्तु सच्चे आत्मीयजनों के लिए प्यार की परिपूर्ण वास्तविकता रहती है। आत्मा और परमात्मा के बीच घनिष्ठ आत्मीयता उत्पन्न करने के लिए उच्चस्तरीय प्रेम का आश्रय लेना पड़ता है।

प्रेम की प्रकृति ऐसी है जो दृश्यमानों के साथ ही निभती है। अदृश्य के प्रति नहीं। वायु, ऊष्मा, ऊर्जा, प्रकाश, शब्द आदि शक्तियाँ निराकार हैं। उनका उपयोग ही सावधानी से हो सकता है पर इनसे प्रेम नहीं हो सकता। प्रेमी का शरीरधारी होना आवश्यक है। वस्तुएँ भी तभी प्यारी लगती हैं जब उनका कोई आकार हो। साकार उपासना में इष्टदेव की प्रतिमा इसी प्रयोजन के लिए कल्पित करनी पड़ती है और उस कल्पना में घनिष्ठता का पुट लगाना पड़ता है।

आत्मिक प्रगति के तीन आधार हैं (१) ज्ञान (२) कर्म और (३) भक्ति। ज्ञान के लिए स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन और मनन से काम लेना पड़ता है। कर्म के लिए उद्देश्यपूर्ण प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। भक्ति के लिए कोई उच्चस्तरीय आधार भगवान का गढ़ना पड़ता है। यों प्यार तो स्त्री बच्चों से भी होता है पर उसके पीछे स्वार्थ और आदान-प्रदान के तत्व काम करते हैं। जिसमें विशुद्ध समर्पण हो उसे पवित्र प्रेम या भक्ति कहते हैं। इस अभ्यास को आगे बढ़ाने के लिए आदर्श के समुच्चय इष्टदेव की प्रतिमा गढ़ते हैं और एकान्त एकाग्रता के समय अन्तर्मुखी होकर उसके साथ अपने को घुला देने की भावना करते हैं। हिन्दू समाज में, राम, कृष्ण, शिव, सूर्य, हनुमान, दुर्गा, सरस्वती, गायत्री आदि की छवि इतनी अच्छी तरह अन्तःक्षेत्र में उभारते हैं जिसमें वह काल्पनिक न होकर वास्तविक प्रतीत होने लगे। अन्य धर्मावलम्बी अपने-अपने मजहब में ईश्वर की जो छवियाँ प्रचलित हैं उन्हें काम में ले सकते हैं। ईसाई धर्मानुयायी, ईसा, मरियम की, मुसलमान, पैगम्बर अल्लाह की, बौद्ध बुद्ध की छवियों को इष्टदेव मानते हैं और उनकी छवि को इतनी अधिक आत्मीयता से निहारते हैं मानो वे काल्पनिक न होकर वास्तविक ही हों। इसी कारण विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच इस प्रसंग को लेकर कोई विग्रह नहीं होता क्योंकि वे वास्तविकता को जानते हैं कि इष्टदेव अपनी ही भावभूमि में अपने ही द्वारा गढ़े गये हैं।

प्रेम की एक प्रकृति और है कि वह घनिष्ठ बनाने के लिए पूर्वाभ्यासों का सहारा लेता है और कोई रिश्तेदारी जमाता है। प्रियजनों में, माता, पिता, सहायक, स्वामी, सखा, पति प्रमुख हैं। भगवान को अपने से ऊँचे स्तर का रखना है इसलिए पत्नी पुत्र या नौकर के रूप में वह प्यार निम्न स्तरीय हो जाता है। इष्टदेव की छवि के साथ उपरोक्त उच्च सम्बन्धियों में से एक मानकर अपनी आत्मीय अनन्यता बढ़ानी पड़ती है। इसमें भावोद्रेक होने लगते हैं। विश्वास बँधता है श्रद्धा तत्व को अपने भीतर अधिकाधिक मात्रा में बढ़ाने का अवसर मिलता है।

प्रतिमा पूजन का मूल उद्देश्य श्रद्धा सम्वर्धन का आधार निश्चित करना है। आत्मिक सफलताओं में श्रद्धा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे बड़ा तत्व है। मीरा के गिरधर गुपाल, बौड़ाना के रणछोड़जी, रामकृष्ण परमहंस की काली, एकलव्य के द्रोणाचार्य श्रद्धा के कारण ही अपनी चमत्कारी शक्ति का परिचय दे सके थे। साकार उपासना की विशेषतया इसी निमित्त आवश्यकता पड़ती है। जो आस्तिक नास्तिक—साकारवादी निराकारवादी—सभी क्षेत्रों में ऐसे श्रद्धा सम्वर्धक आधारों का आश्रय लिया जाता है। मुसलमान संगे असवद के प्रति असीम श्रद्धा रखते हैं। राष्ट्रीय क्षेत्रों में झण्डे का श्रद्धापूर्ण सम्मान किया जाता है। कलश स्थापन, दीपक प्रज्वलन आदि के पीछे यही भाव है। तत्वतः भगवान को सर्वव्यापी निराकार मानने वालों को भी श्रद्धा सम्वर्धन के लिए—भक्ति भावना विकसित करने के लिए प्रतीक पूजा का आश्रय लेना पड़ता है। क्रमिक साधना का यह एक सुनिश्चित अंग है।

विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों एवं परम्परायों में अनेकानेक प्रतिमाओं को मान्यता मिलती चली आई है। इनमें से जिनके साथ पूर्व घनिष्ठता चल रही हो उसे चलते रखा जाता है। गायत्री उपासना में साकार उपासना वाले हंसारूढ़ देवमाता को प्रतीक बनाते हैं और निराकारवादी प्रातःकाल के उदीयमान स्वर्णिम सूर्य—सविता का ध्यान करते हैं। ध्यान या पूजन के साथ घनिष्ठ आत्मीयता की भावना करना आवश्यक है।

श्रद्धा के संयोग से ही प्रतिमा में शक्तिदायिनी क्षमता उत्पन्न न हो तो फिर काम नहीं चलेगा। मुसलमानी काल में सोमनाथ, विश्वनाथ, कृष्ण जन्मभूमि, राम जन्मभूमि आदि की प्रतिमाओं को यह कहकर खण्डित किया गया कि इनमें निजी शक्ति होगी तो तोड़ने में अनिष्ट करेंगी पर वैसा कुछ नहीं हुआ। स्पष्ट है कि स्थापित प्रतीक अपने आप में शक्ति पुंज नहीं होते श्रद्धा का आरोपण ही भक्त के अन्तराल को हुलसित करता है।

इष्टदेव को सद्भावनाओं, सद्गुणों और सत्प्रवृत्तियों का केन्द्र माना जाय। पवित्रता और प्रखरता का भाण्डागार। उसके साथ प्रेम सम्बन्ध स्थापित करते हुए एक ही भाव रखा जाय समर्पण। द्वैत की समाप्ति और अद्वैत का आरम्भ जिस प्रकार आग में ईंधन पड़ने से तद्रूप हो जाता है समझा जाना चाहिए कि आत्मा सत्ता परमात्मा की विभूतियों के साथ एकीभूत हो रही है। नाला नदी में मिलकर नदी बनता है। बेल पेड़ से लिपटकर उतनी ही ऊँची उठ जाती है। पोली बाँसुरी वादक की फूँक से स्वर निकालती है। पत्नी अपना अस्तित्व पति के व्यक्तित्व में घुला देती है, अनुभव करना चाहिए अपनी सत्ता इष्टदेव के साथ एकीकार हो रही है और परमात्मा की पवित्रता, प्रखरता अपनी अन्तरात्मा के कण-कण में ओत-प्रोत हुई जा रही है।

इस अभ्यास में बढ़ी हुई भक्ति भावना को अधिक व्यावहारिक बनाने का एक ही व्यावहारिक स्वरूप है कि इस विश्व उद्यान को अधिक सुखी, समुन्नत और सुसंस्कृत बनाने के लिए अपनी समस्त क्षमताओं का उत्सर्ग कर दिया जाय। व्यायामशाला में अर्जित की गई बलिष्टता का दंगल में अथवा दूसरे सत्प्रयोजनों में खर्च किया जाता है। निश्चय होना चाहिए कि भक्ति भावना का इष्टदेव के साथ एकात्म भाव स्थापित करने के उपरान्त जो अभिवर्धन किया गया है उसे प्राणिमात्र की सेवा साधना में—जनमानस के परिष्कार में—सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन में किया जायगा। ऐसा न होगा कि पूजा के समय भाव तरंगें उठाकर उसी मनोविनोद को जहाँ का तहाँ समाप्त कर दिया जाय। भगवत् भक्ति की सार्थकता उसके इस विराट् विश्व को अधिकाधिक हरा-भरा फला-फूला बनाने में है।

स्मरण रहे इस भक्ति भावना की परिपुष्टि के लिए इष्टदेव के साथ एकात्म होने में याचना जैसा कुछ नहीं है। प्रेम में दिया ही दिया जाता है उसमें लेने की कहीं कोई गुन्जायश नहीं है।

भगवान के दर्शन को लेकर अति भ्रम पैदा करना व्यर्थ है। वह तो भक्त की अपनी निज की भावना है जो घनिष्ठ होने पर दिवा स्वप्न की तरह दृष्टिगोचर होती है। भगवान की मूर्ति रही भी होती तो वह केवल एक होती। हर सम्प्रदाय वालों के लिए अलग-अलग प्रकार के रूप वे कैसे बनाते और दर्शन देने के लिए अपना लोक अथवा काम छोड़कर कैसे भागे आते। इसलिए प्रतीकों से ही काम चलाना चाहिए प्रत्यक्ष दर्शन का आग्रह किसी को भी नहीं करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टा का उत्तराधिकारी महान बनकर रहे

मानवी विकास का वास्तविक स्वरूप निर्धारित करना हो तो यह मानकर नहीं चला जा सकता कि मनुष्य शरीर पाने तक ही उसकी अन्तिम परिधि है। उसे विकासोन्मुख होने के लिए शरीरगत जीवनयापन को भी सब कुछ न मानकर अपनी सत्ता उस चेतना के साथ जोड़नी पड़ेगी जो इस ब्रह्माण्ड पर अनुशासन करती और अन्तराल को सुविकसित स्वच्छ बना लेने वालों पर अपनी उच्च-स्तरीय अनुकम्पा बरसाती है। साथ ही मनुष्य को इस प्रकार का चिन्तन अपनाने के लिए भी प्रोत्साहित करती है कि उसके अन्तराल में अति महत्वपूर्ण क्षमताओं का भी भण्डार भरा पड़ा है जिसे थोड़ा विकसित कर लेने पर वह काया की दृष्टि से यथावत् रहते हुए भी व्यक्तित्व की दृष्टि से महानतम बन सकता है।

इस अध्यात्म विकास के तत्वज्ञान के अनुरूप चेतना को विकसित परिष्कृत, समर्थ, विलक्षण बनाने का द्वार मनुष्य शरीर मिलने के उपरान्त खुलता है। इससे पूर्व तो वह मात्र जीवधारी ही बनकर रहता है। साथ ही प्रकृति का अनुशासन मानने के लिए बाधित रहता है। उसे प्रकृति पर अनुशासन करने, उसे अपने अनुकूल बनाने की विद्या का ज्ञान तक नहीं होता। प्रकृति पर परमात्मा का स्वामित्व है। दूसरा हस्तान्तरण उसके युवराज मनुष्य को उसकी परिपक्वता विकसित होते ही उपलब्ध होने लगता है। यह दूसरी बात है कि वह उस अनुदान का कितनी बुद्धिमत्ता के साथ किन प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त करता है।

विकास की मानवी परत में उभरते ही उसे आत्म-बोध की एक नई उपलब्धि हस्तगत होती है वह अनुभव करता है कि काय कलेवर उसका समग्र स्वरूप नहीं वरन् एक वाहन उपकरण आच्छादन मात्र है। उसके भीतर रहने वाली चेतना ही मनुष्य को ऊँचा उठाती नीचे गिराती है। मनःस्थिति ही परिस्थितियों की जन्मदाता है। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। वह प्रकृति की कठपुतली मात्र नहीं है। अन्य प्राणियों की तरह मात्र निर्वाह ही उसकी एकमात्र आवश्यकता नहीं है। वरन् व्यक्तित्व का स्तर उठाकर जीवन सज्जा को—अनेकों उपलब्धियों विभूतियों से अलंकृत करना भी एक विशिष्ट उद्देश्य है। जब तक यह विचारणा नहीं उठती तब तक वस्तुतः मनुष्य नर पशु ही रहता है और इन्द्रिय लिप्साओं तथा मानसिक तृष्णाओं तक ही उसकी गतिविधियाँ सीमित रहती हैं, न वह जीवन का महत्व समझ पाता है और न उसे चेतना की पृथकता—विशिष्टता सम्बन्धी कुछ ज्ञान होता है।

विकास की दृष्टि से पेड़ की ऊँचाई एक सीमा तक बढ़ती जाती है। वह सीमा पूरी होने पर उसका फैलाव एवं मोटाई की अभिवृद्धि होती है तथा फूल फल लगने लगते हैं। योनियों की दृष्टि से हाथी, सिंह, ह्वेल आदि का विस्तार तथा प्रभाव बढ़ा-चढ़ा है, पर शरीर संरचना और मानसिक स्तर की दृष्टि से मनुष्य ही मूर्धन्य है। इसीलिए उसे सृष्टि शिरोमणि कहा जाता है। प्राणि जगत पर उसका अधिकार है। इतना ही नहीं प्रकृति के अनेकानेक रहस्यों की परतें उसने उघाड़ी हैं और एक सीमा तक उस पर आधिपत्य भी प्राप्त किया है। सुख साधन उसके पास असीम मात्रा में हैं। अस्त्र-शस्त्रों सहित रण कौशल में उसकी प्रवीणता है। समाज गठन और शासनतन्त्र का निर्माण उसी का अनुपम कौशल है। पदार्थ विज्ञान में उसने असाधारण उन्नति की है। यह सब बातें इस बात का प्रमाण हैं कि प्राणि जगत में उसकी प्रमुखता असंदिग्ध है।

पेड़ की ऊँचाई पूरी हो जाने पर उसकी प्रगति फल फूलों की दिशा पकड़ती हैं। यह बात मनुष्य के सम्बन्ध में भी है उसका विकास मानसिक और आत्मिक दिशाओं में प्रस्फुटित होता है और इन क्षेत्रों की बड़ी-बड़ी सफलताओं में अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास अविरल गति से चलता है इससे मानवी सन्दर्भ में भौतिक उन्नति एवं आध्यात्मिक प्रगति के नाम से जाना जाता है। यही उत्कर्ष की दो दिशाएँ हैं। सम्पदाओं से सुसम्पन्न व्यक्ति को अति मानव कहा गया है और आत्मिक उत्कृष्टता को अति मानस।

भौतिक प्रगति में शरीर बल, बुद्धि बल, साधनबल, संगठन बल, अधिकार, कला कौशल आदि की गणना होती है। ऐसे लोग श्रीमन्त, सामन्त, शासक, विद्वान आदि नामों से जाने जाते हैं। उनकी महत्वाकांक्षा इस दिशा में बढ़ती है कि अधिकाधिक वैभव, क्षेत्र एवं जन समुदाय पर उनका आधिपत्य हो और अधिकाधिक लोग उनका लोहा मानें, सम्मान प्रदान करें। ऐसे लोग सामान्य क्षेत्र में भी बहुत होते हैं और उन्हें वरिष्ठ कहते हैं। जब वे आर्थिक या शासकीय क्षेत्र में समर्थ होते हैं तो उनकी महत्वाकांक्षा और भी अधिक तीव्र हो जाती है। इतिहास ऐसे लोगों के प्रमाण उदाहरणों से भरा पड़ा है। हिरण्याक्ष, वृत्रासुर, रावण आदि की चर्चा इसी वर्ग में होती है। पिछले दो महायुद्ध जर्मनी के शासकों की महत्वाकांक्षाओं के कारण ही लड़े गये और उनमें मरने वालों तथा तबाह होने वालों की संख्या करोड़ों तक पहुँची। हिटलर, मुसोलिनी ऐसे ही महत्वाकांक्षी थे। आज भी रूस और अमेरिका पर परस्पर ऐसी ही तैयारियों में संलग्न होने का दोषारोपण करते हैं। दार्शनिक नीत्से के शब्दों में यह वर्ग विश्व विजय का स्वप्न देखता है उसकी पूर्ति के लिए असंख्यों के विनाश में नहीं चूकता। लोग इन्हीं का लोहा मानते हैं और आतंक से भयभीत होकर अथवा चापलूसी में शेर के द्वारा किये शिकार में शृंगाल को भी कुछ झूठन मिल जाने का ताना-बाना बुनते हैं। इस वर्ग को तथा इनके समर्थकों को अतिमानव शब्द से सम्बोधित किया जा सकता है जो महामानव शब्द से सर्वथा प्रतिकूल शब्द है।

आन्तरिक विकास की आध्यात्म उत्कर्ष की दूसरी दिशा धारा है। उसे योगी अरविन्द के शब्दों में अति मानस कहा जा सकता है। इसका सर्वसुलभ उपाय है--सज्जनता। जिसे उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्शचरित्र और उदार व्यवहार का समन्वय कह सकते हैं। यह सहजीवन का महा मानव स्तर है। इसे जो अपनाते हैं वे क्षुद्र प्रयोजनों में निरत नहीं रहते। पेट और प्रजनन का कार्य भी वे निपटाते तो रहते हैं, पर ऐसा नहीं होता कि उन्हीं में अपना सीमा बन्धन बाँध लें। वे लोक कल्याण एवं सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के सामयिक क्रिया कलापों को अपने जीवन क्रम में अविच्छिन्न रूप से सम्मिलित करते हैं। इसके लिए निजी आवश्यकताओं में कटौती करनी पड़ती है तो उसे भी करते हैं, और कार्य भार तथा विरोधियों का दबाव बढ़ने से जो कठिनाई उठानी पड़ती है उन्हें भी सहन करते हैं। उन्हें सन्त, सुधार, शहीद के नाम से इतिहासकार स्मरण करते हैं। महापुरुषों, महामानव या युग पुरुष के नाम से ऐसे ही लोगों को श्रेय सम्मान दिया जाता है और उनकी उत्कृष्टता से प्रभावित होकर अगणित व्यक्ति उनका अभिनन्दन अनुकरण करते हैं।

इससे भी सूक्ष्म क्षेत्र में उतरने वाले व्यक्ति अपने अन्तराल को अधिकाधिक परिशोधन और परिष्कार करते हैं। कषाय-कल्मषों को सतर्कतापूर्वक बुहारते हैं और क्रिया क्षेत्र में ही नहीं अन्तराल में उठते रहने वाले उतार-चढ़ावों को भी सन्तुलित करते हैं। उनके भीतर पवित्रता और बाहर प्रखरता का समावेश रहता है। ऐसे लोग तप का आश्रय लेकर अपनी प्रसुप्तियों को जगाते और प्रखरताओं को तेजस्वी करते हैं। योग के सहारे आत्मा और परमात्मा के बीच समन्वय का आदान-प्रदान का पथ-प्रशस्त करते हैं। जिनकी तपश्चर्या और योग साधना बलवती होती है उन्हें ऋषि, देवता, अवतार आदि नामों से पुकारते हैं। वे लोक कल्याण के लिए स्वाध्याय सामग्री विनिर्मित करते हैं और सामयिक समस्याओं के समाधान के सत्संग का ऐसा भाण्डागार विनिर्मित करते हैं जिसमें से अमृत जल भर कर विज्ञजन लोकमानस को परिष्कृत करने में जुट पड़ते हैं। इस आधार पर वे स्वयं दौड़ धूप करने की अपेक्षा दिशा निर्धारण एवं योजना निर्माण की दृष्टि से लोक सेवा की तुलना में कहीं अधिक काम कर गुजरते हैं।

हर कोई नहीं जानता, पर सूक्ष्मदर्शी जानते हैं कि प्रयत्न प्रयासों के महत्व की उपेक्षा न करते हुए सूक्ष्म वातावरण में लोक मानस को किसी भी दिशा में तूफान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह उड़ा ले जाने की विशेष सामर्थ्य होती है। सूक्ष्म वातावरण यदि भावनात्मक प्रदूषणों से, दुष्प्रवृत्तियों से भर रहा हो तो उसका प्रभाव समूचे संसार या समुदाय पर पड़ता है। उसमें विकृतियाँ भरती चली जायँ तो छूत की बीमारियों की तरह अगणित लोग उससे प्रभावित होते हैं और अच्छी राह छोड़कर कुमार्ग पर घिसटते जाते हैं। इसके विपरीत यदि सूक्ष्म वातावरण को तेजस्वी ऋषि कल्प व्यक्तियों द्वारा भर दिया जाय तो चन्दन के पेड़ की तरह उसका प्रभाव न केवल समीपवर्ती झाड़-झंखाड़ों को सुगन्धित बना देता है वरन् दूर-दूर के वातावरण में मनोरम सुगन्ध की मनोरमा सद्भावना भर देता है।

ऋषि कल्प व्यक्ति अदृश्य वातावरण पर प्रभाव छोड़ते हैं और अपने तेजस्वी व्यक्तित्व द्वारा समय के अनुपयुक्त प्रवाह को उलट कर सीधा करते हैं। इतने पर भी उनकी कार्यपद्धति हर किसी के समझने की नहीं होती। वे अपनी अतीन्द्रिय क्षमताएँ उभारते हैं और उनके सहारे अनेक असमर्थों को सामर्थ्यवान बनाकर ऐसे लक्ष्यों की पूर्ति करते हैं जिसे ईश्वर की चमत्कारी अनुकम्पा ही कहा जा सके। आत्मबल में अलंकारिक रूप से हजार हाथियों का बल बताया गया है।

यों लोक सेवी महामानव यदि अपना व्यक्तित्व निखार कर सामयिक आवश्यकताओं को पूरी करने में सफल होते हैं। अतिमानस का पहला या दूसरा चरण जो भी अपनाया जा सके अपने और समस्त समाज के विश्व ब्रह्माण्ड के उत्कर्ष में सहायक ही होते हैं।

सांसारिक दृष्टि से चर्म चक्षुओं से अतिमानवों का ही अधिक महत्व माना और उल्लेख होता है, पर सच्चाई यह है अतिमानस विनिर्मित करने की दिशाधारा ऐसी है जिसमें अपना ही नहीं विश्व मानव का ही वास्तविक हित साधन होता है।

●

दिल्ली में एक संत थे—हजरत निजामुद्दीन। उनके यहाँ ईश्वर की वंदना वाला संगीत चलता ही रहता था।

उन दिनों दिल्ली के राजा थे—गयासुद्दीन तुगलक। उनने संत को गाना बजाना बन्द करने का हुक्म भेजा। उनने फरमान मानने से इनकार कर दिया।

तुगलक ने सीधा दण्ड तो न दिया पर उन्हें हैरान करने की ठानी।

निजामुद्दीन एक बावड़ी बनवा रहे थे। उसमें लगे मजूरों को उनने किले में काम करने के लिए बुला लिया। ताकि काम रुक जाय।

मजूर दिन में किले का काम करते और रात को चुपके से बावड़ी बनाने आ जाते। रात को दिये की जरूरत पड़ती। तेल के ढेरों दिये जलते और बावड़ी बनती।

तुगलक ने हुक्म दिया—हजरत के हाथों कोई तेल न वेचे।

हजरत ने पानी भर कर दिये जलाना शुरू कर दिया और बावड़ी बनती रही।

इस चमत्कार से तुगलक का शिर नीचा हो गया बावड़ी पूरी होने तक पानी के चिराग जलते ही रहे।

तब से उस बावड़ी का दरगाह का नाम चिराग निजामुद्दीन पड़ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्म सत्ता के विराट् रूप का दर्शन

परमात्मा का दर्शन एक प्रिय और आकर्षक विषय है। लोगों की मान्यता है—इस दर्शन भर से ईश्वर को इतना अनुग्रहीत किया जा सकता है कि उससे जो कुछ भी उचित अनुचित माँगा जाय वह निश्चित रूप से मिल जाय।

इस सम्बन्ध में संव्याप्त भ्रम धारणा इतनी बड़ी और गहरी है कि उसके निरस्त करने में कुछ समय लग सकता है। किन्तु यह निश्चित है कि भ्रम का अपना कोई अस्तित्व नहीं और वह वास्तविकता का प्रकाश प्रकट होते ही क्षण भर में तिरोहित हो जाता है।

ईश्वर का मनुष्य आकृति में या किसी देवता के रूप में प्रकट होना, दर्शन देना, यह विशुद्ध रूप से अपनी कल्पना अथवा मान्यता का खेल है। सर्वव्यापी कोई भी वस्तु या शक्ति निराकार ही हो सकती है और जो निराकार है उसके प्रत्यक्ष दर्शन कैसे हों?

मात्र इतना हो सकता है कि अपनी भावनाएँ यदि प्रगाढ़ हों तो वे कल्पित स्वरूप के अनुरूप दिवा स्वप्न की तरह दर्शन देने लगे। भगवान भावना स्तर पर मनुष्य के साथ सम्पर्क साधते हैं। इसलिए उनकी अनुभूति अन्तःकरण में दिव्य विचारों के रूप में हो सकती है। वह भी यदि वास्तविक होगी तो उस अनुभूति को व्यावहारिक जीवन में उतारे बिना रहने नहीं दे सकती।

यदि जीवन क्रम पुराने ढर्रे का गये-बीते लोगों के स्तर का बना रहे। चिन्तन में पवित्रता और प्रखरता का काया-कल्प स्तर का परिवर्त्तन न हुआ हो तो समझना चाहिए कि वह दिव्य दर्शन भी दिवा स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। ऐसा तो हिप्नोटिज्म के आधार पर किसी को भी ईश्वर, देवता या और कुछ दिखाया जा सकता है।

यहाँ ईश्वर को साकार मानने के उपरान्त ही चर्म चक्षुओं से उसके देखे जाने की आशा की जा सकती है। पर क्या ईश्वर जन्म लेते और मरते हैं? निश्चय ही नहीं। इस मान्यता की अपेक्षा तो विराट् ब्रह्म—विशाल विश्व के रूप में ईश्वर का भाव क्षेत्र में प्रतिष्ठित करना श्रेष्ठ है। तुलसीदास जी ने "सियाराम मय सब जग जानी" के रूप में ही उनका दर्शन और अभिवन्दन किया था।

विष्णु सहस्र नाम में पहले 'विश्व' का नाम आता है। पर्वत, नदी, वन आदि समस्त विश्व परमात्मा का ही स्वरूप है। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में भी ऋषियों ने परमात्मा के दर्शन किये। इसी परमात्मा बोध के कारण हिमालय, गंगा, आदि पवित्र समझे जाने लगे। यह अज्ञानवश प्रकृति में ईश्वरत्व का आरोप नहीं है।

श्रुति का कथन है कि एक ही ब्रह्म का विद्वानों द्वारा बहुत नाम रूपों में वर्णन किया गया है। पृथक-पृथक सम्प्रदायों में उनके विभिन्न नाम रूप हैं। पर इससे अनेक ईश्वरों का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता।

परमात्मा कर्त्तव्य निष्ठ है। उससे उत्पन्न देव गण सदा क्रियाशील और अनुशासित रहकर कार्य करते हैं उन्हें भय है कि यदि अकर्मण्यता और प्रमाद बरता गया तो प्रकोप का भाजन बनना पड़ेगा। अतः नियत समय पर कर्त्तव्यरत रहते और कार्य अन्जाम के प्रति सजग रहते हैं। इन्द्र, अग्नि तथा मृत्यु भी इसीलिए आज्ञानुवर्ती होकर कार्य करते हैं।

भीषास्माद वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।
भीषास्मादिन्द्रश्चाग्निश्च। मृत्यु-र्धावति पंचम।

यह ईश्वर नियम रूप है। यदि हम ईश्वरीय नियमों का प्रति पालन करते हैं तो समझना चाहिए कि हमारी आस्तिकता सच्ची है।

अनेक देवताओं की मान्यता से एकेश्वरवाद के सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं आता। नदी या तालाब में लहरें उठती रहती हैं। उनके स्वरूप अलग-अलग दृष्टि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोचर होते हैं। इतने पर भी वे वस्तुतः जलाशय के अविच्छिन्न अंग ही हैं। इसी प्रकार अगणित देवताओं सम्बन्धी मान्यताओं के पीछे भी एक ही परम तत्व को समाहित समझा जाना चाहिए।

पुरुष सूक्त के अनुसार देवताओं की उत्पत्ति ईश्वर के अंगों से बताई गई है। पुरुष की संज्ञा परमात्मा को दी गई है। पुरुष का स्वरूप शब्दातीत है। उसके हाथ पैर सिर आदि अनन्त हैं। उसकी शक्ति अनन्त, अपरिमित है। इसी कारण उन्हें "सहस्र शीर्षा पुरुषः। सहस्राक्षः सहस्र पात्।" कहकर विराट् रूप में सम्बोधित किया गया है।

ईश्वर के मुँह से अग्नि और इन्द्र की उत्पत्ति बताई जाती है। मन से चन्द्रमा और प्राण से वायु की उत्पत्ति बताई जाती है। नाभि से अन्तरिक्ष की उत्पत्ति हुई है। "चन्द्रमा मनसो जातः। चक्षो सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च। प्राणाद्वायुर जायत। नाभ्या आसीन्दन्तरिक्षम्। पद्भ्याँ भूमि दिशः श्रोत्रात।"

अच्छा हो हम ईश्वर या देवताओं की व्यक्ति विशेष के स्तर की मान्यता न बनाये। उसे एक व्यापक सत्ता के रूप में हृदयंगम करें। विभिन्न देवी-देवताओं या अवतारों की प्रतिमा बनाने और पूजने में हर्ज नहीं किन्तु उसकी निराकारिता, सर्वव्यापकता और न्यायशीलता में सन्देह करके वैसा कुछ नहीं सोचा जाना चाहिए जैसा कि भक्त जन दर्शन करने के फेर में इसलिए रहते हैं कि उनकी इच्छित मनोकामनाएँ इतने भर से पूर्ण हो जायगीं।

वस्तुतः ईश्वर की अनुकम्पा या सांसारिक सफलता पाने के लिए हमें अपनी पात्रता का विकास करना चाहिए। उपलब्धियाँ उसी आधार पर हस्तगत होती हैं। पूजा उपासना का तात्पर्य भी पात्रता विकसित करना भर है। न कि ईश्वर को फुसलाना।

ऋषि अंगिरा के शिष्य उदयन बड़े प्रतिभाशाली थे, पर अपनी प्रतिभा के स्वतन्त्र प्रदर्शन की उमंग उनमें रहती थी। साथी सहयोगियों से अलग अपना प्रभाव दिखाने का प्रयास यदा-कदा किया करते थे। ऋषि ने सोचा यह वृत्ति इसे ले डूबेगी..........समय रहते समझना होगा।

सर्दी का दिन था बीच में अंगीठी में कोयले दहक रहे थे, सत्संग चल रहा था। ऋषि बोले कैसी सुन्दर अंगीठी दहक रही है। इसका श्रेय इसमें दहक रहे कोयलों को है न? सभी ने स्वीकार किया।

ऋषि पुनः बोले—देखो—अमुक कोयला सबसे बड़ा—सबसे तेजस्वी है। इसे निकालकर मेरे पास रख दो। ऐसे तेजस्वी का लाभ अधिक निकट से लूँगा।

चिमटे से पकड़कर वह बड़ा तेजस्वी अंगार ऋषि के समीप रख दिया गया।

चर्चा चल पड़ी।—पर यह क्या? अंगार मुर्झा सा गया। उस पर राख की पर्त आ गयी और वह तेजस्वी अंगार काला कोयला भर रह गया।

ऋषि बोले—बच्चो देखा, तुम चाहे जितने तेजस्वी हो, पर इस कोयले जैसी भूल मत कर बैठना। अंगीठी में यह अन्त तक तेजस्वी रहता और सबसे बाद तक गर्मी देता। पर अब न इसका श्रेय रहा—न इसकी प्रतिभा का लाभ हम उठा सके।

शिष्य समझ गये—ऋषि परम्परा वह अंगीठी है जिसमें प्रतिभाएँ संयुक्त रूप से सार्थक होती हैं। व्यक्तिगत प्रतिभा का अहंकार न टिकता है न फलित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"योगा" और "मैडीटेशन" का कौतुक

योग का वास्तविक अर्थ और स्वरूप है आत्मा और परमात्मा का एकीकरण। इससे आत्मा की ही अपनी क्षमता, पवित्रता और पात्रता बढ़ानी पड़ती है ताकि वह परमात्मा में घुल सकने योग्य बन सके।

योग अर्थात् मिलन। मिलन में सहधर्मी होना आवश्यक है। अन्यथा स्तर में असाधारण अन्तर रहने पर यह प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता। पानी में नमक, चीनी, दूध जैसे पदार्थ ही घुल सकते हैं क्योंकि उनके परमाणुओं का भार जल के अणुओं जितना ही होता है। लोहे का, पत्थर का चूरा यदि पानी में मिलाया जाय तो वह तलहटी में बैठ जायगा और कभी भी आत्मसात न होगा। योग में परमात्मा से मिलने की प्रक्रिया पूरी करने के लिए जीव को ही अपना स्तर ईश्वर के समतुल्य विकसित करना होता है। ईश्वर को जीव की मनमर्जी पर चलने के लिए प्रयत्न करना उपहासास्पद है। इस अवैज्ञानिक विद्या से कभी किसी को सफलता नहीं मिली और न मिल सकती है।

गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने, प्रशंसा भरी मनुहार करने, भेंट पूजा का लालच दिखाने, कर्मकाण्डों में रिझाने या किसी स्थान विशेष पर विराजमान समझकर उसके दर्शन करने के लिए तीर्थयात्रा पर निकल पड़ने जैसे क्रिया-कृत्य उसे लुभाने, फुसलाने और वरगलाने में सफल नहीं हो सकते। इतनी चालाकी को सामान्य बुद्धि वाले भी समझ लेते हैं कि अनधिकारी रहते हुए भी बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त करने की आशाएँ लगाये बैठे रहने की बात सर्वथा सिद्धान्त हीन और बेतुकी है।

इसमें भक्त या साधक को अपना समूचा व्यक्तित्व विकसित और परिष्कृत करना होता है। शरीर मन और अन्तःकरण को तद्नुरूप ढाँचे में ढालना पड़ता है। इसी निमित्त विभिन्न कर्मकाण्डों की—योग साधनाओं की संरचना हुई है। क्रिया के सहारे व्यक्तित्व को समुन्नत करने की पद्धति ही दिव्य मिलन का—योग का प्रयोजन पूरा करती है।

योग के कितने ही मार्ग हैं। साधन विधान अनेकानेक हैं। यह भिन्न निर्धारण व्यक्ति की सामयिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए करने होते हैं। उनमें अन्तर हो सकता है। यह रुचि और परम्परा का विषय है। किन्तु इस तथ्य में कभी कहीं अन्तर नहीं आ सकता कि योग मार्ग पर चलने वाले को अपने समग्र व्यक्तित्व को ऊँचा उठाना पड़ता है। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उन आदर्शों का समावेश करना होता है जो मानवी गरिमा के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। तथ्य एक ही है। उसके निमित्त अपनाये गये उपचारों में प्रकृति भिन्नता के कारण अन्तर हो सकता है। पर जिसमें क्रिया काण्ड ही सब कुछ समझा गया हो और व्यक्तित्व को सामान्य जनों की अपेक्षा अधिकाधिक उत्कृष्ट बनाने की उपेक्षा की जा रही हो, समझना चाहिए कि बाल कौतूहल जैसी विडम्बना मात्र है। भले ही उसका नाम साधना रख लिया जाय। इन कौतूहलों में नवधा भक्ति के नाम पर प्रतिमा पूजन भी हो सकता है और कथा कीर्तन भी।

कर्मकाण्डों से कुछ आशा तभी रखी जा सकती है जब वह मानवी चरित्र की ऊँचाई की ओर उछालने का प्रयोजन पूरा कर सकें। हेय जीवन जीते हुए नाम जाप, देव दर्शन, जलाशयों का स्नान मात्र मार्गदर्शन में सहायक हो सकता है लक्ष्य पूर्ति में सहायता नहीं कर सकता।

योग एक चेतना परक विज्ञान है। उसमें स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को जाग्रत, सशक्त और प्रखर बनाने के लिए उसी प्रकार सोपान निर्धारित हैं जैसे छत पर चढ़ने के लिए जीने की सीढ़ियों में सन्निहित होता है।

राजयोग, हठयोग, लययोग, प्राण योग, कुण्डलिनी योग, चक्रवेधन, ज्ञान योग, भक्तियोग, कर्मयोग, ध्यानयोग आदि अनेकानेक राजमार्ग निर्धारित हैं। उनमें से प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आरम्भ से चलकर अन्त तक क्रमबद्ध रूप से निर्धारण अपनाने पड़ते हैं यथा राजयोग में, यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान, समाधि की एक क्रमबद्ध योजना है। हठयोग में नाड़ी शोधन, नेति, धोति, वस्ति, वज्रोली, कपाल आदि का प्रयोग होता है। यही बात अन्यान्य योगों के सम्बन्ध में भी है। उस समूचे विज्ञान को स्कूली कक्षाओं की तरह एक के बाद एक को अपनाया जाना चाहिए। कृषि कर्म जुताई, बुवाई, खाद, पानी, रखवाली आदि की एक क्रमबद्ध प्रक्रिया पर आधारित है।

मेले में जिसे जो अच्छा लगे वह उसे खरीद सकता है। किन्तु स्कूल में वर्णमाला, गणित आदि की उपेक्षा करके सीधे एम० ए० में दाखिला लेने का मनोरथ पूरा नहीं हो सकता। विद्यार्थी को एक-एक कक्षा उत्तीर्ण करनी होती है। स्कूल और मेले में यही अन्तर है। योग में स्कूली विधान लागू होने की बात हृदयंगम करनी होती है। इस क्षेत्र में मेले की तरह चाहे जहाँ से आरम्भ करने और चाहे जो खरीदने की सुविधा नहीं है। कोई साधक समाधि या ईश्वर दर्शन को प्रथम चरण मान बैठे तो यह उसकी ऐसी भूल है जिसमें निराशा के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगने वाला नहीं है।

इन दिनों आसन व्यायामों को ही 'योग' कहा जाने लगा है। शरीर शुद्धि के लिए वे भी एक अंग हो सकते हैं। पर उन्हें योग शब्द से सम्बोधित नहीं किया जा सकता। अधिक से अधिक उन्हें 'योगासन' कह सकते हैं। व्यायाम का अंग संचालन का प्रयोजन दूसरे तरीकों से भी हो सकता है। उसके लिए निर्धारित आसनों के लिए हठ करना व्यर्थ है। हो सकता है कि कभी आसन पद्धति को ही सर्वोत्तम व्यायाम पद्धति माना गया हो पर अब तो हम उससे भी सरल तथा लाभप्रद दूसरे प्रकार के व्यायाम भी अपना सकते हैं।

रुपये का एक अंश पैसा भी है। सौ पैसे मिलकर एक रुपया बनता है। यह सब ठीक है। पर यह भी गलत नहीं कि पैसे का नाम रुपया नहीं दिया जाना चाहिए। इसमें अकारण भ्रम पैदा होता है। विदेशों में प्रचलित "योगा" मात्र आसन व्यायामों तक सीमित होता दीखता है।

यही बात 'मेडीटेशन' के सम्बन्ध में भी है। ध्यान की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं उनसे एकाग्रता सधती है। जो हर काम में सफलता की बात जोड़ती है। बन्दूक का सही निशाना साधने वाले शिकारियों की सफलता का श्रेय उनकी एकाग्रता है। सरकस में दिखाये जाने वाले अधिकांश खेल 'एकाग्रता' के आधार पर ही चमत्कार दिखाते हैं। बही खाते का सही हिसाब रखने वाले एवं परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास होने वाले छात्रों की सफलता भी उनकी मानसिक बुद्धि पर निर्भर करती है। पर इन सब को योगी तो नहीं कह सकते। एकाग्रता एक सामान्य कौशल है जो मनुष्य को इच्छित दिशा में सफलता प्रदान करने में अच्छी भूमिका निभाता है। मस्तिष्क से काम लेने वाले हर व्यक्ति को ध्यान पूर्वक काम करना चाहिए। और उस विशिष्टता का सम्पादन करने के लिए किसी न किसी मानसिक व्यायाम का अवलम्बन करना चाहिए। इन सभी माध्यमों को ध्यान या 'मेडीटेशन' कहा जा सकता है। इन्हें करने वालों को उसकी उतनी ही प्रतिक्रिया का अनुमान लगाना चाहिए जितनी कि वह है। उसे योग सिद्धि की आशा से नहीं करना चाहिए।

योग की ध्यान धारणा में अन्तर्मुखी होकर अनेकानेक रहस्यमय केन्द्रों पर चित्त एकाग्र करना होता है। चित्त अर्थात् अचेतन मन। योगिक ध्यान को विचार नियन्त्रण तक सीमित रहकर अचेतन मन की क्रिया प्रक्रिया पर अधिकार प्राप्त करना होता है। निष्ठा, प्रज्ञा और श्रद्धा को प्रदीप्त करना। यह उस 'मेडीटेशन' से बहुत आगे का चरण है जिसे कौतुकी लोग ध्यान शिक्षा के माध्यम से कराते हैं। किन्तु आत्मा और परमात्मा के मिलन में इस क्षमता का प्रयोग किये जाने की ओर संकेत भी नहीं करते और इसके लिए चरित्र निर्माण तथा भावनात्मक परिष्कार की आवश्यकता नहीं समझते।

प्रचलित 'योगा' और मेडीटेशन योग विज्ञान का एक कौतूहल परक पक्ष है। वैसा ही जैसा कि सिद्ध पुरुषों की नकल पर मदारी लोग अनोखे करतब दिखाते हुए बच्चों का मन बहलाते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहन्ता के नागपाश से जीवन मुक्ति

आत्मा की आकांक्षाओं, मान्यताओं और भावनाओं को क्रियान्वित करने का भार मन को वहन करना पड़ता है। वह कार्यान्वियन की योजना बनाकर शरीर को देता है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के सहारे वह उन्हें चरितार्थ करता रहता है। यही है जीवनचर्या का सामान्य क्रिया-कलाप और विधि-विधान। प्रत्यक्ष कृत्य शरीर करता है इसलिए दोष अथवा श्रेय उसी को मिलता है पर यह भुला दिया जाता है कि शरीर जड़ पंच तत्वों का बना हुआ है। उसमें न सोचने की क्षमता है न करने की। रेल, मोटर, साइकिल आदि यन्त्र वाहन अपनी मर्जी से भला बुरा कुछ भी करने में असमर्थ रहते हैं। ड्राइवर ही उन्हें जहाँ-तहाँ घसीटे फिरते हैं। यही विधा जीवन-क्रम में चरितार्थ होती है।

आत्मा का परिधान अन्तःकरण है। उससे चेतना प्रभावित है। समर्थ एवं परिष्कृत आत्माएँ साधना द्वारा मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाल लेती है फलतः व्यक्तित्व परिष्कृत स्तर का बनता है और मनुष्य कलेवर में देवत्व की आभा झलकती है। इसके विपरीत यदि तमोगुणी असुरता अन्तराल की गहराई तक चली जाय तो प्रवृत्ति एवं आकांक्षा अनुपयुक्त कामों में रस लेती है और फिर तद्नुकूल प्रवृत्तियों का प्रवाह बहने लगता है।

आन्तरिक दुष्प्रवृत्तियों में वासना, तृष्णा और अहन्ता का असामान्य, उद्धत हो उठना, अनेकानेक दोष-दुर्गुणों का सृजन करता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर यह छै षड् रिपु माने गये हैं। यही प्रमुख मनोविकार हैं। क्रियाओं में यही उभरते दीखते हैं, किन्तु वस्तुतः उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है उपरोक्त तीन दुष्प्रवृत्तियों का फलितार्थ ही उन्हें समझा जाना चाहिए।

वासना और तृष्णाजन्य विकृतियों का विवरण पिछले अंकों में प्रस्तुत किया जा चुका है। अब अहन्ता पर विचार किया जाना चाहिए। यह अहङ्कार का दूसरा नाम है। व्यक्ति अपने आप को दूसरों की आँखों में वरिष्ठ प्रदर्शित करना चाहता है और उसके लिए अनेक तरह के सरंजाम जुटाता है। यों इसका सीधा सरल और सौम्य मार्ग है कि साधारण लोग गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से हेय जीवन जीते हैं। षड् ऋपुओं के चंगुल में बुरी तरह फँसे होते हैं। फलतः चिन्तन और चरित्र की दृष्टि से उनकी स्थिति नर पशु, नर पामर या नर पिशाच जैसी होती है।इन दुष्प्रवृत्तियों के क्षेत्र में कौन अग्रिणी रहा इसी की प्रतिस्पर्धा उनमें चलती रहती है। इसी हेय स्तर की सफलताओं को अपनी चतुरता, कुशलता एवं सफलता के नाम से दिखाते बखानते रहते हैं। औसत आदमी की अहन्ता इसी रूप में प्रकट होती है। दुष्ट दुराचारी अपने अनीति कृत्यों को गौरव गरिमा में सम्मिलित करते हैं और छल प्रपंच की अनीति और आक्रमण की घटनाओं को अपनी विशिष्टता के रूप में देखते और दिखाते हैं।

यदि इस कुपन्थ को उलटकर सज्जनोचित शालीनता अपनाई जा सके तो वास्तविक प्रशंसा और प्रतिष्ठा का आधार बन जाती है। उतने भर से आत्म प्रतिष्ठा, आत्म-गौरव एवं आत्मोत्कर्ष की स्थिति बन जाती है। लोगों का यह मिथ्या भ्रम है कि ओछे हथकन्डे अपनाकर येन-केन प्रकारेण अपनी महिमा का विज्ञापन किया जा सकता है और उससे लोगों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करके अपने को वरिष्ठ सिद्ध किया जाता है। इस आधार पर प्रशंसा करने वाले दूसरे ही क्षण मुँह फेरते ही निन्दा करने में भी नहीं चूकते। सामने की चापलूसी और परदा हटते ही यथार्थता बखानने लगती है।

फैशन सजधज, अमीरों जैसे ठाट-बाट किसी दुर्बल पर आक्रमण किसी सज्जन को ठगना, घर में विपुल सम्पदा जमा करना, चाटुकारों का मुँह मीठा करके अपनी प्रशंसा सुनना आदि करतूतें उद्धत अहन्ता वाले लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते रहते हैं और उसी में अपना ढेरों,समय,श्रम,धन तथा चिन्तन गँवाते रहते हैं। इस आधार पर जो प्रदर्शनात्मक प्रपंच खड़ा किया गया था। वह क्षणिक और अवास्तविक विडम्बना खड़ा करने के अतिरिक्त और किसी काम नहीं आता।

श्रृंगारिक वेश विन्यास बनाने वाले, कीमती वस्त्र आभूषणों से लदने और तेल-फुलेल से महँकने वाले लड़की लड़के सोचते हैं कि वे जिस राह भी निकलेंगे उधर ही दर्शक उनकी कलाकारिता, सुन्दरता एवं सम्पन्नता को सराहेंगे। पर होता उससे ठीक उलटा है। उनके चरित्र पर उँगली उठती है। दुराचार का आमन्त्रण देते फिरने वाला माना जाता है। फिजूल खर्च को अदूरदर्शी एवं बाल बुद्धि बचकाना माना जाता है। श्रृंगारिकता हर किसी पर यही छाप छोड़ती है भले ही किसी अनुचित लाभ के लिए कोई मुँह सामने कुछ प्रशंसा के शब्द भले ही कह दे।

सादगी का सबल सम्बन्ध उच्च विचारों से है। गान्धी, ईसा, बुद्ध जैनों के परिधान सस्ते और स्वल्प थे। ऋषि और महापुरुष भी अपनी सज्जा औसत देश वासियों से अधिक मँहगी नहीं होने देते थे। यह शालीनता के परिधान हैं। इस प्रकार के आच्छादन से किसी की प्रतिष्ठा घटती नहीं वरन् बढ़ती है। महँगे वस्त्र और मँहगे आभूषण धारण किये फिरने वालों को स्वांग नाटकों के प्रदर्शन कारी माना जाता है। अथवा यह कहा जाता है कि पैसे को उपयुक्त कार्य में लगाकर सत्प्रवृतियों के सम्वर्धन में लगाने की अपेक्षा मूर्खता द्वारा अपव्यय का कैसा कौतुक कौतूहल किया जा रहा है। अहन्ता का सबसे घटिया प्रदर्शन साज-सज्जा की श्रृंगारिकता के रूपमें ही होता देखा जाता है।

समाज में फैली हुई बुराइयों में अपनी बुराई को वढ़-चढ़कर सिद्ध करने पर उस स्तर के लोग प्रशंसा करेंगे ही जेल में वन्द अपराधियों में से जो अपनी करतूतों का अधिक रोमांचक या भयानक विवरण सुनाते हैं उनकी बात सुनकर दूसरे लोग अवाक् तो रह जाते हैं, पर कभी अवसर पड़ने पर उनका साथ देने के लिए भूलकर भी तैयार नहीं होते। सोचते हैं ऐसे लोग किसी की भी हजामत बना सकते हैं। इनका कोई सगा सम्बन्धी नहीं होता। वो जिसके साथ मित्रता जोड़ते हैं पहले उसी को हलाल करते हैं।

दुष्कर्मों में दिखाई गई धूर्तता या निष्ठुरता किसी के लिए गौरव या प्रतिष्ठा की बात नहीं हो सकती। ऐसे लोगों पर दशों दिशाओं से घृणा और भर्त्सना बरसती है। रन्डी भड़ुए आपस में मीठी बातें करते हैं और आदान-प्रदान भी किन्तु दोनों में से कोई किसी का मित्र नहीं होता। मौका पड़ने पर उन्हें मुँह मोड़ने में ही नहीं, घात मारने में भी देर नहीं लगती है। दुर्जनों का संसार भर में न कोई प्रशंसक होता है और न सहयोगी। सज्जनता अपनाने वालों की मुँह आगे प्रशंसा भले ही न हो, भीतर से हर व्यक्ति उनके लिए श्रद्धा रखता है और साथ ही सहयोग की भावना भी। यह किसी प्रकार कम महत्व की उपलब्धियाँ नहीं हैं। महापुरुष सामान्य स्थिति से ऊँचा उठकर महान पद और प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं इसमें सज्जनता के आधार,पर उपलब्ध हुआ सम्मान और सहयोग ही प्रधान कारण होता है।

अपने मुँह मियाँ मिठ्ठू बनने, शेखी बघारने को आत्मश्लाघा ग्रस्त मनोरोगी माना जाता है। सज्जनों का सुनिश्चित गुण है नम्रता और विनयशीलता। उनकी सादगी देखते ही बनती है। महामना मालवीय जी को भारत सरकार ने "सर" की उपाधि दे रखी थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें मानद 'डाक्टरेट' स्वीकार करने के लिए आमन्त्रित किया। पण्डित महासभा ने उन्हें पण्डित शिरोमणि की उपाधि दी थी। इन तीनों पदवियों को उनने अस्वीकृत कर दिया और कहा मेरे पिताजी 'पण्डित' की परम्परागत उपाधि दे गये हैं उसका निर्वाह ही मुझे अत्यधिक भारी प्रतीत होता है फिर और उपाधियों से लद कर उन्हें वहन कर सकना मेरे लिए कैसे सम्भव होगा। यह नम्रता का एक उदाहरण है। इस कारण मालवीय जी की गरिमा घटी नहीं, बढ़ी ही। सूर, तुलसी, मीरा, कबीर जैसे सन्त अपना परिचय सामान्य लोगों की पंक्ति में ही खड़ा होकर देते रहे हैं। यदि उनने बड़प्पन की प्रशंसात्मक डींगें हाँकी होती तो निश्चित रूप से वे विज्ञजनों की दृष्टि में गये-गुजरे समझे गये होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य के लिए यह क्या कम गौरव की बात है कि वह परमेश्वर का युवराज है। इस पदवी को सार्थक बनाने के लिए उसे अपना व्यक्तित्व और कर्तृत्व ऐसा बनाना चाहिए जो उस गरिमा के अनुरूप हो। इसके लिए उसे अपनी निजी पवित्रता और प्रखरता उच्च स्तर की विनिर्मित करनी चाहिए। निजी अभिलाषाओं को इतना कम करना चाहिए कि उसे अपरिग्रही ब्राह्मण कहा जा सके। ब्राह्मण को भगवान भी अपेक्षाकृत अधिक प्यार करते हैं और चारों वर्णों में उसकी श्रेष्ठता मानी गई है। इसका एक ही कारण है कि उसका निजी निर्वाह अति सामान्य होता है और अभिमान इतना गलित होता है कि भिक्षा माँगने में भी अवमानना अनुभव न करे यह नम्रता की चरम सीमा है। फलों से लदे हुए वृक्ष की हर डाली नीचे झुक जाती है।

आत्म गौरव की अनुभूति और लोक प्रतिष्ठा की प्राप्ति का एक ही मार्ग है—पुण्य परोपकार में रसानुभूति और लोक सेवा में निरन्तर प्रवृत्ति। जो इस मार्ग को अपनाते हैं वे हर घड़ी अपनी और दूसरों की दृष्टि में गौरव गरिमा से भरे-पूरे माने जाते हैं। इसके बिना अन्य पगडण्डियाँ ढूँढ़ने वाले काँटों में उलझते और भटकाव में फँसते हैं।

सूरज, चन्द्रमा निस्वार्थ भाव से प्रकाश वितरण के लिए निरन्तर भ्रमण करते हैं। बादलों के लिए एक ही काम है समुद्र से पानी लाना और सूखे भूखण्डों में शीतलता एवं हरीतिमा उगाना। वृक्ष दूसरों के लिए फलते हैं। पवन दूसरों के लिए चलता और अग्नि दूसरों के लिए जलता है। यह श्रेष्ठतम युक्त कर्तृत्व ही उन्हें भरपूर सम्मान प्रदान करता है। इससे बढ़कर अहन्ता की पूर्ति और क्या हो सकती है। मनुष्य को भगवान के विश्व उद्यान का माली बनाकर भेजा गया है और दायित्व सौंपा गया है कि वह उसे सुन्दर, समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाने में तन्मयता और तत्परता के साथ लगा रहे। यह लगन जिसकी जितनी बढ़ी-चढ़ी होगी उसकी अहन्ता उतनी ही विगलित होती जायगी। इस आधार पर भार मुक्त हुई आत्मा इसी शरीर के रहते जीवन मुक्त का आनन्द उपलब्ध करेगी। ★

तीन पहाड़ थे। तीनों में बहुत दूरी न थी। देवताओं का आगमन उधर हुआ। उनकी स्थिति और इच्छा पूछी और सहायता करने का आश्वासन दिया।

सबसे ऊंचे पहाड़ ने कहा—"उसे और ऊँचा उठा दिया जाय ताकि वह दूर-दूर से लोगों को दीखने लगे।"

दूसरे ने कहा—"उसे हरा-भरा बना दिया जाय ताकि साधकों को आश्रय और लाभ मिले।"

तीसरे ने कहा- "उसकी निरर्थक ऊँचाई समाप्त करके समतल खेत बना दिया जाय।"

देवताओं ने तीनों की इच्छा पूरी कर दी। उन वरदानों से किसे क्या लाभ मिला, इसकी खोज-खबर लेने वालों ने बताया कि अधिक ऊँचा उठ जाने के उपरान्त बड़े पहाड़ को अधिक सर्दी-गर्मी सहनी पड़ती है। हवाएँ टकराती हैं और कड़कती बिजली के आघात उसी को सहने पड़ते थे। मध्यवर्ती पहाड़ की शोभा तो बढ़ी पर ऊँचाई अधिक रहने के कारण लोग वहाँ तक पहुँच न सके और बढ़े हुए वन्य पशुओं के उपद्रवों से आये दिन अनुपयुक्त दृश्य दीखने लगे।

सबसे नफे में वह रहा जिसने ऊँचाई का झंझट छोड़कर स्वयं को समतल बना लिया था। लहलहाती फसलों और फल-फूलों से लदी उस घाटी के सहारे अनेकों की अन्नपूर्णा चल रही है। खेत का महत्व, गौरव और मूल्य पहाड़ों की तुलना में कहीं अधिक बढ़ गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीरदास जी का रहस्यवाद

सन्त कबीर अपनी उलटवांसियों में साधारण सी किन्तु अलंकारिक भाषा के माध्यम से ऐसा तत्व दर्शन प्रस्तुत कर गए हैं जो जीवन के विभिन्न पक्षों को छूता एवं मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है। यह शैली अध्यात्म क्षेत्र में और कहीं देखने में नहीं आती। कुछ की झलक यहाँ है।

एक अचम्भा देखा रे भाई,
ठाड़ा सिंह चरावै गाई।
पहले पूत पीछे भई माई,
चेला के गुरु लगै पाई॥
जल की मछली तरुवर व्याई,
पकड़ि बिलाई मुर्गा खाई॥
बैलहि डारि गूति घर लाई,
कुत्ता कूलै गई बिलाई॥

शब्दार्थ—कबीरदास कहते हैं—मैने एक अचम्भा देखा। सिंह खड़ा-खड़ा गाय चरा रहा था। पहले पुत्र जन्मा, बाद में माता ने जन्म लिया। गुरु चेला के पैर लग रहा था। जल में रहने वाली मछली ने पेड़ पर प्रसव किया। मुर्गा ने बिल्ली को पकड़कर खा लिया। बैल को पटककर मुनि घर लाया। कुत्ते के साथ बिल्ली प्रणय कर रही थी। माँस फैला हुआ था और उसकी रखवाली चील कर रही थी।

तात्पर्य—स्वभाव संस्कार एक प्रकार का सिंह है। बुरी आदतों का अभ्यस्त हो जाने पर सब कुछ चीर-फाड़ कर रख देता है, पर यदि उसे साध लिया जाय तो गाय चरा लेने जैसा भोलापन भी प्रदर्शित करता है। फिर हानि के स्थान पर लाभ ही लाभ करता है।

आत्मा माता है और मन पुत्र। पर आत्मबोध मन को सुसंस्कृत बनाने के बाद होता है। इस प्रकार पुत्र पहले जन्मा और माता पीछे। आत्म ज्ञान गुरु है और संसार ज्ञान चेला। संसार ज्ञान के उपरान्त आत्म ज्ञान होता है। इस प्रकार चेला का पैर गुरु नमन करता है। बुद्धि मछली है। यह जब ब्रह्मलोक में प्रवेश करती है तो उपयोगी अण्डे बच्चे देती है। मुर्गा वैराग्य है और बिलाई माया। इस प्रकार मुर्गा बिलाई को खा जाता है। बैल आलसी मन है, इसे साधक कन्धे पर डालकर ले जाता है संस्कार कुत्ता है और तप तितीक्षा बिल्ली। साधना का प्रताप देखिये, दोनों शत्रुता छोड़कर मित्रता साधते हैं।

धरति उलटि आकासहि जाई।
चिउटी के मुख हस्ति समाई॥
बिन पौने जहं परवत उड़ै।
जीव जन्तु सब बिरछा बुड़ै॥
सुखे सरवर उठै हिलोर।
बिन जल चकवा करै किलोल॥

—कबीरदास

शब्दार्थ—धरती उलटकर आकाश को चली, चींटी के मुँह में हाथी समा गया, हवा के बिना ही पर्वत उड़ने लगा, जीव जन्तु सब वृक्ष में बूड़ने लगे। सूखे सरोवर में हिलोरें उठने लगीं, चकवा बिना पानी के ही कलोल करने लगा।

तात्पर्य—माया मोह ग्रसित जीवन में जो कर्म व्यवहार होते हैं वे साधनारत जीवन में एकदम उलट जाते हैं। दृश्य जगत अदृश्य जगत में समा जाता है। यह संसार हाथी है, आत्मा जब जाग्रत होती है तो उसमें सारा संसार विलीन हो जाता है। पर्वत जैसा दीखने वाला माया मोह बिना प्रयास के ही, बिना हवा के ही गायब हो जाता है।

जमीन में छेद करके अधोगति को जाने वाले गुण कर्म स्वभाव आत्मा के आनन्दरूपी वृक्ष में डूबने लगते हैं। यह भौतिक जीवन मायाग्रस्त, नीरस और दुःख दरिद्र से भरा है तो उसी सूखे सरोवर में अन्तःकरण आनन्द की हिलोरें लेने लगता है। चित्त रूपी चकवा को जब आत्मज्ञान का अमृत मिल जाता है तो वह कलोल करने लगता है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काश हम दिशा बदल सकें

क्या मनुष्य ने नीचता और नृशंसता ही सीखी है। क्या उसका पराक्रम स्वार्थपरता और विनाश विग्रह के लिए ही है? यह बातें तभी सच मालूम पड़ती हैं जब भूतकाल में हुए इस प्रकार के उदाहरणों की खोज करते हैं। खोजने में क्या नहीं मिल जाता? यहाँ जमीन में साँप, बिच्छू, काँतर और कानखजरे ही भरे पड़े हैं? इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक ही नहीं नकारात्मक भी मिलता है यदि ऐसे ही घिनौने जन्तुओं से धरती भरी पड़ी होती तो यहाँ कृषि उद्यान किस प्रकार उगा पाते? और बहुमूल्य खनिजों की सम्पदा कहाँ से उपलब्ध होती? यदि दुष्ट दुराचारी ही इस संसार में भरे होते तो ऋषि तपस्वियों और वीर बलिदानियों की कथा गाथाएँ हमें सुनने को कहाँ से मिलतीं। यह सही है कि कभी कंस, रावण, जरासिन्ध जैसे भी यहाँ उत्पन्न हुए और अनाचारों की भरमार करते रहे हैं। पर जनक, हरिश्चन्द्र, अश्वपति, भागीरथ जैसे राजवंशी भी इसी वसुधा को गौरवान्वित करते रहे हैं।

भविष्य को अन्धकारमय देखने के लिए विज्ञान के सिर पर अनेक दोष मढ़े जा सकते हैं पर शल्य चिकित्सा जैसे अनुसन्धानों में मृत प्रायों को जीवन भी उसी आधार पर मिला है। संचार और परिवहन के—सिंचाई और मुद्रण की अनेक उपयोगी धाराएँ भी उसी के माध्यम से हस्तगत हुई हैं। भविष्य को अन्धकारमय देखने के लिए अनेकों कारण और प्रमाण दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु सृजन और सहयोग के सभी आधार नष्ट हो गये हों सो बात भी नहीं है।

मनुष्य जाति ज्वार भाटों की अभ्यस्त है। उसे ढेरों समय अन्धकार में गँवाना पड़ता है, पर सदा रात्रि ही नहीं होती। सूरज, चन्द्रमा का प्रकाश हमारी कार्य पद्धति को समुन्नत बनाने के लिए कारगर भी होता है। इतिहास में विनाश के दुर्दिनों की ही भरमार नहीं दीखती, वरन् ऐसा भी होता रहा है कि उपयोगी कठिन कार्य भी मनुष्य ने ही कर दिखाये हैं। स्वर्ग से धरती पर गंगा उतरने, समुद्र छलांगने, गोवर्धन उठाने जैसे मिशन दूसरी घटनाओं के रूप में इस प्रकार भी प्रस्तुत हुए हैं कि मनुष्य की अपार सामर्थ्य और सूझ-बूझ का परिचय भी प्राप्त किया जा सकता है।

स्वेज और पनामा की नहरें मनुष्य की अनोखी पुरुषार्थ परायणता है। थल में जल भर देने के इन प्रयासों में कितनी जन शक्ति, कितनी धन शक्ति एवं कितनी कार्य कुशलता का नियोजन हुआ है और उनके कारण संसार को कितनी सुविधाओं का लाभ मिला है, इसे हम सहज ही देख सकते हैं। चीन की दीवार और मिश्र के पिरामिड, मनुष्य की बुद्धिमत्ता और असाधारण सूझ-बूझ को कार्यान्वित कर दिखाने के प्रमाण हैं। मनुष्य जब सृजन की दिशा में सोचता है तो उसे इतना अद्भुत सोचने और विकट पराक्रम प्रदर्शित करते हुए देखा जाता है जिसके कारण कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़े। जलचरों की तरह समुद्र में किलोल करने और पक्षियों की तरह आकाश में स्वच्छन्द विचरते मनुष्य को देखते हैं तो यह विश्वास करते नहीं बनता कि उसे मात्र विनाश ही विनाश आता है वह इस धरित्री को नरक बनाने के लिए ही उत्पन्न हुआ है उसने हत्या की कला में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए युद्ध कौशल भर सीखा है। वह अनादि काल से सृजन भी सोचता रहा है और विश्वास करना चाहिए कि उसकी इस सृजन क्षमता का सर्वथा समापन ही नहीं होने जा रहा। उसने श्रम और सहयोग की विशिष्टता को सर्वथा भुला दिया है।

बहुत लम्बा समय नहीं हुआ। नीदरलैण्ड ने समुद्र को पीछे धकेलते-धकेलते उससे २,०५,००० हैक्टर जमीन हथिया ली और अपने देश का क्षेत्रफल ८ प्रतिशत बढ़ा लिया। इस भूमि पर प्रायः ढाई लाख लोग न केवल रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रन् खेती-बाड़ी, व्यवसाय, उद्यान, निवास आदि के साधन खड़े कर लिये हैं।

यह कार्य अनायास ही नहीं हो गया। उसके लिए उन्हें उस समुद्र से लड़ना पड़ा। जिसने १९१६ में प्रलयंकर बाढ़ बनकर एमस्टरडम का सारा उत्तरी इलाका उदरस्थ कर लिया था और खारा पानी भरकर उस भूमि को बेकार बना दिया था। इस प्रकार मात खाते रहने की अपेक्षा उस देश के निवासियों ने निश्चय किया कि समुद्र को मजा चखाना चाहिए। तब कोई अगस्त मुनि तीन चुल्लू में सागर सोखने नहीं आये और न किसी लक्ष्मण ने धनुष बाण उठाकर उसे क्षमा माँगने के लिए बाधित किया। वरन् मनुष्य का कौशल ही आगे आया जिसका कर्तृत्व देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। जूडर की खाड़ी में १५ से ५० किलोमीटर की चौड़ाई में प्रायः १३० किलोमीटर धँस कर असाधारण बाँध बाँधा गया। यह समुद्र तल से ६ मीटर ऊँचा है। इसकी नींव १८० मीटर चौड़ी है। बाँध बनाते समय सन् १९१६ से १९२० तक समुद्र के साथ आँख मिचौनी खेलनी पड़ी जैसे ही भाटा पीछे हटता बजरी, सीमेन्ट आदि का इतनी मुस्तैदी से वजन डाला जाता कि जब तक ज्वार वापस लौटे तब तक डाला हुआ मसाला पत्थर जैसी मजबूती पकड़ ले। मिलिक, इन्जीनियर, नाविक एक मुस्तैद सेना की तरह छापा मारते और समुद्री उछालों की कमर तोड़ देते। यह प्रयास बिना नागा पूरे ४ वर्ष तक चला और वह प्रयोजन सिद्ध हो गया जिसकी योजना बनाने वालों को स्वप्नदर्शी कहा जाता था। इस टकराव में प्रायः आधा श्रम आधा मसाला समुद्र ने बर्बाद कर दिया तो भी अन्ततः उसे हार ही माननी पड़ी। सन् १९२० में बाँध बनकर तैयार हो गया। उसका सिरा इतना चौड़ा और इतना मजबूत है कि उस पर ट्रकों, बसों, और कारों की निरन्तर धमा-चौकड़ी मची रहती है।

इस निर्माण कार्य में जो साधन, उपकरण एवं धन जन का भारी प्रबन्ध करना पड़ा उसे उस छोटे से देश के निवासियों ने किस प्रकार जुटाया होगा और बीच-बीच में आने वाली निराशाजनक कठिनाइयों का किस प्रकार सामना किया होगा। इसका सुविस्तृत विवरण पढ़ने पर पता चलता है कि मनुष्य की सृजनात्मक शक्ति भी कितनी प्रचण्ड है आवश्यकता उसे नियोजित करने भर की है।

संसार में अभावों की शिकायत बहुत की जाती है। जनसंख्या की तुलना में जमीन कम पड़ने की बात भी कही जाती है। पर कभी सृजन के क्षेत्रों पर दृष्टि नहीं जाती। अफ्रीका का इतना बड़ा क्षेत्र वीरान पड़ा है जिसे सहयोगपूर्वक समुन्नत किया जाय तो न केवल उस देश के निवासियों को भारत जैसे एक समूचे देश का उसमें अभिनव निर्वाह हो सकता है। ब्रह्मपुत्र के प्रभाव से बने हुए दलदलों को यदि पर्वतीय चूरे से पाटा जा सके तो एक नया बर्मा बस सकने जितनी भूमि हस्तगत हो सकती है।

पारस्परिक भय और अविश्वास यदि बड़े देश अपने मन से निकाल सकें और मिल-जुलकर प्रस्तुत शक्तियों को विकास कार्यों में लगा सकें तो पिछड़ी हुई और दरिद्र दुर्बल दुनियाँ उतनी ही समृद्ध दृष्टिगोचर हो सकती है जैसी कि आज जापान जर्मनी आदि दृष्टिगोचर होते हैं।

अन्तरिक्षीय कार्यक्रम का उद्देश्य अगले दिनों आकाश को कुरुक्षेत्र बनाना और प्रतिद्वन्द्वियों को भूनकर खाक बना देना है। यदि यह इरादे बदले जा सकें और युद्ध आयुधों में लगने वाली राशि एवं कुशलता को जन साधारण की कठिनाइयों से उबारने में लगाया जा सके तो एक पंच वर्षीय हो जाने में न केवल आर्थिक समस्याओं का समाधान हो सकता है वरन् प्रगति के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है उन्हें जुटा सकना नितान्त सरल हो सकता है।

बात दिशा बदलने भर की है विश्व विजय की महत्वाकांक्षाओं को विश्व निर्माण के लिए नियोजित किया जा सके तो सर्वत्र उतनी खुशहाली उत्पन्न हो सकती है जिसके आधार पर सभी बिना किसी टकराव के जीवनोपयोगी समस्त साधन प्राप्त कर सकें और उन्हें मिल बाँटकर खाते हुए हँसती-हँसाती जिन्दगी जी सकें। इस दिशा परिवर्त्तन में उतना जोखिम नहीं है जितना कि विनाश पर उतारू मनःस्थिति में अपनी प्रतिपक्षी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अगणित निर्दोषों की न पूरी हो सकने वाली क्षति की सम्भावना है।

आज सबसे बड़ी आवश्यकता मानवी चिन्तन की दिशा बदलने की है। विद्वता, बुद्धिमत्ता की कहीं कमी नहीं। सफलता के एक से एक बड़े कीर्तिमान प्रस्तुत करने वालों की सामर्थ्य और प्रतिभा भी कम नहीं आँकी जा सकती। वैभव भी कम नहीं। जितना धन सरकारों के--सम्पन्नों के पास है वह इसके लिए पर्याप्त है कि संसार के दो तिहाई वनमानुषों और पिछड़ों को उनकी स्थिति से उबार कर देवोपम न बन पड़े तो भी बुद्धिमान मनुष्यों की तरह सुविधा सम्पन्न जीवन तो जी ही सकते हैं।

जिस परिवर्तन को लाने की आज महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है उसे उपलब्ध करने का राजमार्ग एक ही है कि मनुष्य आपा-धापी और छीन-झपट का विचार छोड़कर मिल-जुलकर रहने और सहयोगपूर्वक आगे बढ़ने का मन बनाये और उसी के लिए योजनाबद्ध कदम उठाये।

मनुष्य के पास न साधनों की कमी है न सूझ-बूझ की। उसका सहयोगपूर्ण पराक्रम यदि सृजन की दिशा में नियोजित हो सके तो कोई कारण नहीं कि सर्वत्र संव्याप्त चिन्ता, आशंका, उद्विग्नता, से छुटकारा न मिल सके। स्नेह सहयोग की प्रवृत्ति अपनाई जा सके और जो अभाव इन दिनों खलते हैं उन्हें पूरा करने के लिए नीदरलैण्ड निवासियों जैसा संकल्प किया जा सके तो हर क्षेत्र में हर स्तर की चमत्कारी प्रगति का आश्चर्य देखा जा सकता है।

सिकन्दर जिस देश पर आक्रमण करने की तैयारी में था, उसी देश का राजा जब अपने सामने उपस्थित देखा तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने सोचा कि यह हमारे सैन्य-बल से भयभीत हो आत्म-समर्पण हेतु आया है। अतः वह गर्व से फूल उठा। पर बातों ही बातों में उसने सिकन्दर से कहा--"कृपया यह तो बताइये कि हमने आपका कोई अपकार तो किया नहीं, फिर हमारे राज्य पर आक्रमण की तैयारी कैसे कर दी ?"

अभिमान के नशे में चूर सिकन्दर बोला--"तुम तो कायरों की तरह बातें करते हो, जाओ अब तुम्हारे राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे पर कम से कम सात वर्ष तक तुम्हें कर देना होगा।"

"आप जैसे ऐश्वर्यशाली राजा के लिए थोड़े से कर की शर्त्त शोभा नहीं देती। फिर इतनी कम धनराशि से आपका क्या बनता-बिगड़ता है ? क्या ही अच्छा हो कि हम दोनों मित्रता कर लें और अपनी प्रजा को सुख-शान्तिमय जीवन व्यतीत करने दें।" राजा ने सिकन्दर को समझाते हुए कहा।

सिकन्दर, राजा की बात मान गया। अन्त में राजा ने सिकन्दर को अपनी सम्पूर्ण सेना सहित राज्य में प्रीति-भोज हेतु आमन्त्रित किया। निश्चितसमय सिकन्दर सारी सेना सहित पहुँच गया। स्वागत के लिए वहाँ राजा, मन्त्रीगण और समस्त सशस्त्र सैनिक उपस्थित थे। सिकन्दर ने अपनी सेना को चारों ओर से घिरा देखा तो काँप उठा। उसे मित्रता के बीच विश्वासघात की गन्ध आने लगी।

राजा ने बड़े प्रेम से अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा--"सिकन्दर ! मैं सेना की छोटी-सी टुकड़ी को लेकर आप सबका स्वागत करने आया था। वैभवशाली सम्राट् का स्वागत भी तो उसी स्तर का होना चाहिए था। शायद आपको यह शंका है कि मैंने सैन्य दुर्बलता के कारण आपसे मैत्री की, पर इस विचार को आप भूल जाइये। मुझे व्यर्थ में ही लोगों का खून बहाना पसन्द नहीं है और न अब ही मैं युद्ध की इच्छा से यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। हम सब आपकी अगवानी करने आये हैं। हमारा विश्वास शान्ति और प्रेम में है, घृणा और युद्ध में नहीं।" इतना सुनकर सिकन्दर का सिर लज्जा से झुक गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मदेव परामर्श नहीं मानता

भागवत् माहात्म्य में एक कथा है, आत्मदेव नामक ब्राह्मण की। कथा लौकिक और आध्यात्मिक दोनों अर्थों में प्रेरक है।

ब्राह्मण 'आत्मदेव' तुंगभद्रा नदी के किनारे रहता था। साथ रहती थी पत्नी नाम था 'धुँधली'। आत्मदेव निर्मल स्वभाव के थे, घर में खाने-पीने की ठीक व्यवस्था थी। परन्तु पत्नी क्रूर झगड़ालू स्वभाव की थी। उनके सन्तान भी नहीं थी। इसलिए दुःखी रहते थे।

एक बार जंगल में नदी के किनारे एक सन्त मिले। आत्मदेव ने अपना दुःख प्रकट किया। कहा पुत्र हीन, कर्कश पत्नी, इन कारणों से दुःखी आत्महत्या करने का मन होता है। आप कृपा करें तो ही जीवन में रस आ सकता है।

सन्त ने कहा—अनेक सत्पुरुषों की पत्नियाँ कर्कश हुईं हैं। उससे उन्होंने घर से मोहमुक्ति पायी और ईश कार्य में लगे। तुम भी ऐसा ही करो। पुत्र न होना तो ईश कार्य करने वाले के लिए वरदान होता है। पुत्र तो दुःख रूप भी सिद्ध होते हैं, ईश कार्य तो सदैव कल्याणकारी है। तुम उसी ओर ध्यान लगाओ।

आत्मदेव की समझ में बात नहीं आयी। वह अपने पक्ष में तर्क देते हुए बोले "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" अपुत्री की सद्गति नहीं होती। मुझे सद्गति के लिए पुत्र चाहिए।

सन्त ने समझाया भागवत् शास्त्र में यह भी लिखा है कि पुत्र से सद्गति नहीं मिलती। पुत्र तो लगभग सभी के होते हैं। पुत्र से सद्गति मिलती होती तो सभी को सद्गति मिल जाती। परन्तु ऐसा होता नहीं है। पुत्र द्वारा श्राद्ध पिण्डदान से सद्गति की कामना करने वाला पिता हीन माना गया है। सद्गति तो केवल सत्कर्मों से मिलती है। असली श्राद्ध श्रद्धापूर्वक किया गया कर्म है। पिण्ड शरीर को कहा गया है। अपना शरीर ईश्वरार्पण कर देना, उसी के काम में पूरी तरह लगा देना वास्तविक पिण्डदान है। इसलिए तुम सद्गति के लिए पुत्र की कामना छोड़ कर सत्कर्मों की कामना करो।

परन्तु ब्राह्मण आत्मदेव नहीं माना, किसी भी तरह पुत्र पाने के लिए अड़ गया। सन्त ने उसे एक फल दिया कहा अपनी पत्नी को वह श्रद्धापूर्वक सेवन करा देना। उसके समय पर सन्तान उत्पन्न होगी। ब्राह्मण फल लेकर घर गया, पत्नी को दिया। दुष्टा पत्नी श्रद्धा के स्थान पर कुतर्क गढ़ने लगी। गर्भधारण के कष्ट से भयभीत होने लगी। उसकी छोटी बहिन गर्भवती थी। उसने सुझाया "दीदी तुम गर्भधारण का नाटक करो, मेरा बच्चा अपना बच्चा बतलाकर छुट्टी पा लेना।"

धुँधली को यह सलाह जँच गयी। फल गऊ को खिला दिया। बहन के घर प्रसव के लिए गयी। उसका बच्चा अपना बच्चा कह कर लौट आयी। आत्मदेव प्रसन्न हुआ। धुँधली ने अपने पुत्र का नाम रखा धुँधकारी। बालक पहले तो प्यारा लगा पर ज्यों-ज्यों बढ़ा उसके कुसंस्कारों से सब तंग होने लगे। वह मन-मानी करने लगा रोकने पर माता को पीटने लगा। अब आत्मदेव को लगा कि इससे तो निपुत्री ही भले थे।

उधर सन्त के फल के प्रभाव से गऊ के गर्भ से गौकर्ण हुए। वे विद्वान सुसंस्कारी निकले। उन्होंने पिता आत्मदेव को घर का मोह छोड़कर तपस्वी जीवन जीने की सलाह दी। उससे उन्हें शान्ति मिली। धुँधकारी अपने कुकृत्यों से जल्दी मरा और प्रेत योनि में जा पड़ा। गौकर्ण ने उसे भगवत् चरित्र सुनाकर उसके कुसंस्कार छुड़ाये तब वह मुक्त हुआ।

यह लौकिक अर्थ हुआ। आध्यात्मिक अर्थ हर व्यक्ति पर लागू होता है। आत्मदेव मनुष्य के अन्दर आत्म चेतना जीव है। उसकी पत्नी है धुँधली, अर्थात् अविकसित बुद्धि जिसे धुँधला दीखता है। वह लौकिक कामना करता है, सन्त का परामर्श नहीं मानता। इसलिए दुःख को

(शेष पृष्ठ २३ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्प बल और स्वस्थता

सभी रोग भावना से सम्बन्धित नहीं होते। कुछ ऐसे शारीरिक कष्ट होते हैं जिन्हें मनोवैज्ञानिक रूप से दूर किये बिना भी उनसे उत्पन्न तकलीफों से छुटकारा पाया जा सकता है।

एक फ्राँसीसी प्रौढ़ जो कि काफी हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ था, चालीस की अवस्था में 'आर्क्राइटीस' रोग से आक्रान्त हो गया। कुछ दिनों तक इसके ग्रस्त रहने के उपरान्त असीम पीड़ा शुरू हुई, लेकिन कुछ ही दिनों में वह दौर समाप्त हो गया और वह विक्रेता के रूप में यात्रा पर निकल पड़ा।

अन्त में उसे घड़ी का सहारा लेना पड़ा। पैर और ऊँगलियों के जोड़ों में भयंकर गाँठें पड़ गई। एक यात्रा में उसकी पत्नी भी उसके साथ थी। उसकी हालत बहुत ही दयनीय थी। आज वह गलियों में लड़खड़ाता हुआ चल रहा था तथा चलने में अपनी असमर्थता जाहिर कर रहा था।

तभी अचानक एक नवयुवक उनके सामने से गुजरा। वह काफी प्रसन्न था तथा सीटी बजाते हुए जा रहा था। उसके हाथ नहीं थे। उनकी जगह उन्होंने हुक लगा रखा था। महिला ने अपने पति का उस ओर ध्यान आकर्षित किया। उसे देखकर उनके दिमाग में एक ऐसे युवक का चित्र उभरा जिसके समक्ष अपना सारा का सारा जीवन अभी भी पड़ा हुआ हो, जिनके हाथों को काट दिया गया हो और उनकी जगह हुक लगे हों। फिर भी वह खुश हो।

युवक को अति प्रसन्न देखकर उस व्यक्ति ने भी दृढ़-संकल्प लिया कि मैं भी अब किसी से कोई शिकायत नहीं करूँगा। इसके बाद उसे अनेक प्रकार की बीमारियाँ हुईं। उसका यकृत बढ़ गया। उसने अपनी नेत्र ज्योति खो डाली, ऊँगलियाँ इतनी मुड़ गईं कि बटन लगाना भी दूभर हो गया। फिर भी उसके मुँह से आह तक नहीं निकली।

अब वह काफी खुश था मनोबल उसका दृढ़ था। हालांकि उसकी शारीरिक समस्याओं का निदान नहीं हो पाया था। उसकी मुड़ी ऊँगलियाँ पूर्ववत् थीं। यकृत अभी भी बढ़ा हुआ था, लेकिन उसने उन सभी समस्याओं का हल ढूँढ़ निकाला था।

जिन्हें ईश्वर पर विश्वास होता है वे समस्याओं के रहते हुए भी उनकी तकलीफों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

इस रोगी ने ऋणात्मक विचारणाओं को अपने से बिल्कुल निकाल दिया। अतः आर्क्राइटीस रोग यद्यपि रहा अवश्य पर उसके लिए वैसा कष्ट साध्य नहीं रहा।

दृढ़-संकल्प और विधेयात्मक कथन भी स्वास्थ्य पर चमत्कारिक असर डालते हैं। यदि प्रतिदिन स्वास्थ्य के प्रति दृढ़तापूर्वक विधेयात्मक कथन यथा—"मैं निरोग हूँ, स्वस्थ हूँ। कभी भी रोगी नहीं बनूँगा।" आदि-आदि कहा जाय तो बहिरंगों एवं अन्तरंगों पर उसका अनुकूल प्रभाव पड़ता है और सचमुच व्यक्ति आजीवन स्वस्थ बना रहता है। इसके विपरीत यदि निषेधात्मक कथन कहा जाय तो स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ग्रन्थियाँ एवं अन्य अन्तरांग स्वाभाविक रूप से अपना काम नहीं कर पाते। फलतः शारीरिक विकार उत्पन्न होने लगता है।

"सायकोसोमैटिक मेडिसीन अकादमी" के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं फिजीसियन, अल्फ्रेड जे० केन्टर ने यहाँ तक सचेत किया है कि हमें स्वास्थ्य के प्रति अर्ध-धनात्मक कथन भी नहीं कहना चाहिए। यथा—"मैं आज बीमार नहीं पड़ूँगा।" इसके बदले हमें पूर्ण धनात्मक कथन का प्रयोग करना चाहिए, जैसे मैं आज अच्छा हो जाऊँगा।"

डा० केन्टर का कहना है कि ये सभी वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं। यदि ऐसे दृढ़-संकल्प को अपना कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने दैनिक जीवन में इसे व्यवहार में लाया जाय तो सेहत अच्छी हो जायेगी। जीवन-अवधि बढ़ जायेगी, स्फूर्ति और ताजगी का आभास होगा, खुशहाली बढ़ जायेगी एवं मानव जीवन का सबसे बड़ा उपहार—'शान्ति' मिलेगी।

एक व्यक्ति की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई। जब उसका शव परीक्षण किया गया तो उसमें बहुत तरह की शिकायतें पायी गईं। उसके दिल और वृक्क खराब थे। टी बी० और अल्सर से भी वह ग्रस्त था। इतना सब होने के बावजूद भी वह ८४ वर्ष की आयु में पहुँच चुका था। उसके बारे में डाक्टरों का कहना था कि इसे ३० वर्ष पहले मर जाना चाहिए था। उसकी उत्तरजीविता के राज के बारे में जब उसकी पत्नी से पूछताछ की गई तो उसने बताया कि वे हमेशा इस बात पर दृढ़ रहते थे कि "हमारा आने वाला कल बहुत अच्छा होगा।"

इस प्रकार संकल्प-शक्ति के द्वारा रोगों पर नियन्त्रण रखा जा सकता है एवं दीर्घायु बना जा सकता है। अच्छी भावना, संकल्प, एवं व्यवहार को अपने दैनिक-जीवन में अपना कर कोई भी आजीवन स्वस्थ रह सकता है।

आशावादी चिन्तन के निम्न सिद्धान्तों को जो कि तथ्य परक हैं, अपना कर स्वास्थ्य-लाभ किया जा सकता है—

१- दृढ़तापूर्वक यह स्वीकारना चाहिए कि मैं स्वस्थ हूँ।

२- अपने मन-मस्तिष्क में अपना चित्र एक अच्छे व्यक्ति के रूप में बनाये रखना चाहिए।

३- अद्भुत जीवनी शक्ति प्रदान करने के कारण भगवान का प्रतिदिन बार-बार धन्यवाद करना चाहिए।

४- मन को बेकार की चिन्ताओं एवं परेशानियों से मुक्त रखने का हर सम्भव प्रयत्न करना चाहिए। बैर-भाव, शत्रुता, पश्चात्ताप, हीनता, नैराश्य आदि को मन से निकाल कर उनकी जगह अच्छे स्वास्थ्यकर विचार लाना चाहिए।

५- ऐसी कोई भी चीज हमें अपने अन्दर नहीं लाना चाहिए जो शरीर के विभिन्न तन्त्रों को कमजोर कर दे।

६- अपना शारीरिक वजन उतना ही रखना चाहिए जितना डाक्टर के अनुसार होना चाहिए।

७- नियमित व्यायाम अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। इसके चयन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कौन-सा व्यायाम हमारे लिए रुचिकर है। किसी ऐसे व्यायाम का चयन नहीं करना चाहिए जो अपने लिए उबाऊ हो जिससे हम उसमें अनियमित बन जायँ।

८- अपनी शारीरिक जाँच नियमित रूप से करवाते रहना चाहिए।

९- "आत्मा अथवा मन को आरोग्य किये बिना शरीर को आरोग्य करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।" यह प्लेटो का प्रसिद्ध कथन है। सचमुच, मन को अस्वास्थ्यकर विचारों से मुक्त कर ही हम अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

स्वास्थ्य का ठीक रहना नित्य के जीवन व्यापार के लिये अनिवार्य है। स्वस्थ शरीर ही सही चिन्तन कर पाता है एवं सही चिन्तन ही स्वल्प काया के लिये उत्तरदायी है। यह एक प्रतिष्ठित प्रामाणित तथ्य है। बहिरंग उपचार पर तो अधिकांश पद्धतियाँ, मन एवं विशेषज्ञ जोर देते चले आये हैं। पर अन्तरंग जिसे स्थूल का पोषण करने वाला मूल केन्द्र कहा जा सकता है, पर कारगर होने वाली पद्धति के लिये समुचित प्रयास चिकित्सा जगत में नहीं किये गये।

अन्तरंग के दो पक्ष हैं। एक मन अर्थात् संकल्प शक्ति तथा दूसरा अन्तःकरण, आस्थाओं का मूल उद्गम केन्द्र। मन की इन्द्रियपरक (ग्यारवी इन्द्रिय) एवं अतीन्द्रिय सामर्थ्य को अब वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं। परन्तु इसका सूक्ष्म पक्ष और भी बलवान एवं सामर्थ्यों से भरपूर है। यह जीवनी शक्ति का मानसिक पक्ष है जिसके बल पर प्रतिकूलताओं में भी शरीर न केवल जीवित बना रहता है वरन् स्वास्थ्य को कदापि प्रभावित नहीं होने देता। जीवनेच्छा, जिजीविषा के नाम से जानी जाने वाली यह शक्ति प्रत्येक के भीतर विद्यमान है। जो इसे पहचानकर इसका उपयोग कर लेता है वह ऐसे असम्भव काम कर बैठता है जिन्हें नादान लोग चमत्कार कह बैठते हैं। वस्तुतः वह मनःशक्ति का ही एक स्वरूप।

प्रसिद्ध विचारक नारमन वींसेन्ट पील कहते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्थ रहने के लिये यह जरूरी है कि व्यक्ति अपनी जीवनी शक्ति की असीम सामर्थ्य को दृढ़ता से स्वीकार करे। इसे जीवन की रचनात्मक शक्ति भी कहा जा सकता है। विचारों की विधेयात्मक सामर्थ्य का उपयोग कर कई असाध्य रोगी मृत्यु के मुख से निकलते देखे गये हैं। विडम्बना यह है कि अधिकाधिक व्यक्ति ठीक इसके विपरीत, निषेधात्मक चिन्तन में निरत दिखाई देते हैं। उनका एक ही रोना रहता है कि वे मजबूर हैं, अक्षम हैं, परिस्थितियों के कारण कार्य कर पाने में असमर्थ हैं एवं ये परिस्थतियाँ ही उनकी समस्त विपत्तियों का, यहाँ तक कि कुस्वास्थ्य का भी प्रधान कारण हैं। पश्चिम में भौतिक सुख-सुविधाओं के वावजूद सर्जनात्मकता का अभाव कुस्वास्थ्य का कारण बनता चला जा रहा है। सर पील के अनुसार "जो कुछ भी मनुष्य कहता है, वह उसके विचारों में होता है एवं जो कुछ भी विचारों में होता है, वह निश्चय ही जीवन में क्रियान्वित होता है। जो व्यक्ति वय की दृष्टि से वृद्ध होते हुये भी यह कहता है कि अभी तो मैं स्वस्थ हूँ, युवा हूँ, निश्चित मानिये, उसे 'जरा' स्पर्श भी नहीं कर सकती।" पर होता उल्टा ही है। तीस वर्ष पार करते-करते ही आज का नवयुवक दैनिक जीवन के तनावों का सामना करने में स्वयं को असमर्थ मान 'प्रिमेच्योर एजींग" बुढ़ापे से ग्रस्त होता चला जाता है। यही कारण है कि प्राचीनकाल में वृद्धावस्था में पाये जाने वाले सारे रोग अब ३०-३५ वर्ष के आसपास ही दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

ईसाई धर्म गुरुओं का कहना है कि भगवान ने स्वयं मनुष्य के जीवन में श्वास फूँकी है। हमारा यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि हम अपने प्रत्येक दिन का शुभारम्भ इस घोषणा से करें कि "मैं ईश्वर का ही एक अंश हूँ। जब ईश्वर प्रदत्त जीवन मेरे अन्दर स्पन्दित हो रहा है, मैं ईश्वर के गुणों से अभिपूरित हूँ तो फिर निराशाग्रस्त होकर उसकी अवमानना क्यों करूँ? जब तक उस आनन्द प्रदायक सृष्टा की इच्छा होगी, मेरा आयुष्य काल चलता रहेगा। क्यों न मैं इस अवधि को पूरी क्षमता से जीकर पूरा करूँ।

●

(शेष पृष्ठ २० का)

न्योता देता है। धुँधली बुद्धि सन्त का सत्परामर्श कैसे स्वीकार करती। उसे तो छोटी बहन 'स्वार्थ बुद्धि' का प्रस्ताव अच्छा लगा। तप से बचो, पर पुत्र का लाभ लो।

कुसंस्कारी पुत्र धुँधकारी 'स्वार्थ बुद्धि द्वारा पैदा स्वार्थी स्वभाव है। अहङ्कार उसका मुख्य गुण है। वह मनमानी करता है, बुद्धि और जीव को भी सताता और पीटता है। सब नर्क का कष्ट पाते हैं। पर सन्त के प्रसाद के प्रभाव से गो 'इन्द्रियों के सुसंस्कार जो सत्कर्म-रत हैं वे सहायता करते हैं। आत्मदेव को वैराग्य और धुँधकारी को निरहंकारिता सरलता का संस्कार देकर उन्हें कष्ट से छुड़ाता है।

आत्मदेव स्वयं निर्मल हैं, पर सन्त का परामर्श नहीं मानता। धुँधली को अपने प्रभाव से निर्मल नहीं बनाता स्वयं उसके चक्कर में फँस जाता है। जो अन्त में दुःख से त्रस्त होकर किया, वह पहले सन्त के सद् परामर्श से करता व धुँधली को सुसंस्कार दे पाता तो दुःख के चक्र में लम्बे समय तक क्यों पिसता? ●

अब से कोई दो हजार वर्ष पूर्व सिसली में जन्मा आर्किमिडीज अपने समय का अद्वितीय विद्वान और वैज्ञानिक था। उसके प्रतिप्रादनों और आविष्कारों से उस समय का विज्ञ समुदाय चमत्कृत था। एक दिन सिसली के सेनापति को उससे मिलने की इच्छा हुई सो एक सिपाही भेज कर बुलाया। उस समय आर्किमिडीज रेखागणित का कोई हल निकालने में व्यस्त थे। सो चलने में आनाकानी करने लगे। उस पर सन्देश वाहक सिपाही आग बबूला हो गया और तलवार निकालकर उसका सिर काट दिया। फलतः एक ऐसी ज्योति बुझ गई जैसी कि कभी-कभी ही संसार में उदय होती और चमकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका कारण ढूँढ़ना अभी शेष है

लन्दन के बीरवेक कालेज में भौतिकी के प्राध्यापक जान हस्टेड ने इस प्रसंग में भी रुचि लेनी आरम्भ की कि क्या मानवी चेतना में कुछ ऐसी विलक्षणताएँ भी हैं जिन्हें प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सके। इस सन्दर्भ में उनने तथाकथित कितने ही गूढ़ विद्या विशारदों से सम्पर्क स्थापित किया कि वे अपने सम्बन्ध में तथाकथित किम्वदन्तियों के सम्बन्ध में निराकरण करें और जन साधारण को यथार्थता से अवगत करने के सम्बन्ध में अवसर प्रदान करें।

इस चुनौती को अधिकांश ख्यातिनामाओं ने टाल दिया। कइयों ने अपनी तलाशी देने और जिन उपकरणों का वे प्रयोग करते हैं उनकी पूर्व परीक्षा करने के अवसर दें इस बात को भी उनने अस्वीकार कर दिया। इससे हस्टेड को निराशा हुई उनने समझा जादूगरी के हथकण्डों को सिद्धि कहा और विश्वासी भावुकों की श्रद्धा का दोहन किया जा रहा है।

किन्तु एक सज्जन ने अपने को उनकी शर्त्त के अनुरूप अपनी परीक्षा करने और जो वे अद्भुत दिखा सकते थे उसके लिए तैयार हुए उनका नाम था—यूरी गेलर। इस इस्राइली युवक ने अपने को क्रेम्ब्रिज युनिवर्सिटी को प्रस्तुत किया और विभिन्न विचारों के तथा विभिन्न योग्यताओं के निरीक्षकों की एक मण्डली बुलाये जाने का अनुरोध किया। इनमें हस्टेड प्रमुख थे।

यूरी गेलर ने आत्मिकी क्षेत्र का भौतिक पदार्थों पर प्रभाव सिद्ध करने के लिए कुछ वस्तुएँ प्रस्तुत कीं।

(१) उनने एक अति कठोर काँच का गोला कपड़ों में लपेटकर बक्से में बन्द कराया। स्वयं उससे एक फुट दूर रहे। सिर्फ उसे घूरते भर रहे। थोड़ी देर में बक्से में छेद कर उसी गोले में से छोटी-छोटी गोलियाँ निकलीं। जिन्हें बीन लिया गया। अब गोला खोला गया। वह अपने पूर्व रूप में ही था। पर वजन घट गया था। बाहर उछली हुई गोलियों को गोले के साथ रखा गया तो उसका पूर्व वजन पूरा हो गया। उपस्थित निरीक्षकों को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि इस प्रयोग में कोई चालाकी नहीं हुई है।

(२) दूसरा प्रयोग उनने एक हाथी दाँत की माला आकाश से टपकने का वायदा किया। अपने हाथ पीछे की तरफ बँधवा लिए और लेबोरेटरी की पूरी तरह सफाई करा ली कि कहीं उस तरह की माला छिपी हुई तो नहीं है। उनके कपड़े भी बदल दिये गये। इस पर उनके कथनानुसार मेज पर तीन फुट ऊपर से माला गिरी। उसे भी परीक्षण के लिए इसलिए भेजा गया कि कहीं हिप्नोटिज्म के आधार पर मति भ्रम तो उत्पन्न नहीं किया गया है। माला असली पाई गई।

(३) एक क्लॉक घड़ी कमरे में टांगी गई उसमें चाबी नहीं। जिस फिनर के दबाव से घड़ी चलती है उसे भी हटा दिया गया। पर नियत समय पर घण्टे बजते रहे। जबकि टाइम बताने वाली सुई स्थिर ही बनी रही।

(४) चौथा प्रयोग उनने लन्दन से शिकागो की लैबोरेटरी में भेजा। वहाँ भी निरीक्षकों की एक मण्डली बैठी थी। हवा में तैरता हुआ एक पार्सल वहाँ पहुँचा। इस पार्सल को लन्दन के निरीक्षकों ने स्वयं ही अपने हाथ से बन्द किया था। उसमें एक गुलदस्ता, एक टमाटर और एक छोटा टेलीविजन सैट था। वह सभी वस्तुएँ आधे घण्टे के भीतर उड़कर पहुँच गईं। जबकि इतनी तेजी से उड़कर और किसी साधन से उसे नहीं पहुँचाया जा सकता था।

इसके अतिरिक्त इसी जाँच पड़ताल में कुछ स्वतन्त्र घटनाएँ और भी जुड़ गईं। पश्चिम जर्मनी के अन्वेषक प्रो० हेन्स बेण्डर ने बताया कि एक बार उनके कमरे में

(शेष पृष्ठ २६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभावान क्या सचमुच पागल होते हैं ?

विद्वान आफिसर होम्स का पाला अनेक प्रतिभाशालियों से पड़ा था। उनसे उनका परिचय भी था। इतना ही नहीं उनके गुण दोषों को देखते हुए निष्कर्ष स्पष्ट था कि—'प्रतिभावान्' एक सीमा तक पागल होते हैं। वे अपनी सनक को इस कदर सही मानते हैं कि उन्हें यथार्थता के रूप में अनुभव करने लगते हैं। उनकी यह धारणा अकारण नहीं थी। इसके पक्ष में उनने अनेक प्रमाण और उदाहरण भी एकत्रित किये थे।

होम्स का कथन है कि प्रतिभावानों को किसी एक सनक की पूर्ति में अपनी समग्र मानसिक चेतना झोंकनी पड़ती है। इसका परिणाम यह होता है कि विभिन्न प्रयोजनों में काम करने वाली मानसिक क्षमताएँ जब एक केन्द्र पर केन्द्रीभूत होती हैं, तो वे उस प्रयोजन में तो असाधारण रूप से सफल होते हैं किन्तु मस्तिष्कीय क्षमता के अन्य क्षेत्र में अविकसित रह जाते हैं। फलतः उनके दैनिक जीवन की सामान्य प्रवृत्तियाँ सीमित एवं अस्त-व्यस्त रह जाती हैं। कोई सर्वांगीण प्रतिभावान नहीं होता वरन् किसी दिशा विशेष में ही उनका चिन्तन तल्लीन रहने से उसी सीमा तक सीमित रह जाता है। फलतः उनके दैनिक जीवन की गतिविधियों को देखकर लोग जहाँ सनकी मानने लगते हैं। वहाँ उनकी कार्य विशेष में अद्‌भुतता की छाप भी मानते हैं।

शेक्सपीयर ने भी इस मान्यता की पुष्टि की है और कहा है कि प्रतिभावान सचमुच पागल नहीं होते। वे निर्धारित कार्यों को लगन पूर्वक करते हैं। पर इस अत्युत्साह में वे उन तथ्यों की उपेक्षा करने लगते हैं जो दूसरों की दृष्टि से किसी सुयोग्य व्यक्ति में अनिवार्य रूप से होने चाहिए।

वालटस्काट योरोप के एक अच्छे कवि हो गये हैं। वे बहुधा स्वरचित कविताओं को महाकवि 'वायरिन' की मान बैठते थे और बहुत ही भावना पूर्वक उन्हें सुनाते थे। उन्हें अपनी भूल का पता तब चलता जब प्रकाशित पुस्तक में वह उन्हीं द्वारा विनिर्मित दिखाई जाती थी।

दार्शनिक स्विष्ट किन्हीं विचारों में इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें सामने बैठे मित्रों तक में उनका नाम और परिचय पूछना पड़ता था। विचारों की मस्ती से जब उनकी व्यावहारिकता नीचे उतरती तब वे अपनी भूल पर पश्चात्ताप करते और आगन्तुक मित्र से क्षमा माँगते।

आइन्स्टीन एक मित्र के यहाँ रात्रि भोज पर गये। उन्हें जल्दी ही वापस लौटना था। पर वे यह समझ बैठे कि यह घर मेरा है और मित्र दावत पर आये हैं। वे बार-बार घड़ी देखते पर मित्र के न जाने पर उनसे शिष्टाचार वश कुछ वार्ता करने लगते। इस प्रसंग में जब बहुत देर हो गई तो उनने अपने मित्र को पधारने तथा इतना समय देने के लिए धन्यवाद दिया और उन्हें फिर कभी पधारने की बात कहकर विदाई शिष्टाचार निभाया। जब मित्र हँस पड़े तो उन्हें पता चला कि यह उस मित्र का घर है और यहाँ मैं ही निमन्त्रित के रूप में आया था। कई घण्टे का समय इसी भ्रम में नष्ट हुआ।

फ्राँस के साहित्यकार एलनेजेक्टर ड्यूमा ने बहुत लिखा है पर उनकी एक सनक थी कि वे उपन्यास नीले कागज पर कविताएँ पीले कागज पर और नाटक लाल पर लिखते थे। उन्हें नीली स्याही से चिढ़ थी। जब भी लिखते किसी दूसरे रंग की स्याही का प्रयोग करते।

मोपासां अपने कमरे के दाँये कोने में लिखने के आदी थे पर उन्हें अक्सर दिशा भ्रम होता था और बाँये कोने में बैठकर लिखता रहता। काम समाप्त करने के बाद ही उन्हें अपनी अस्त-व्यस्तता का पता चलता।

कार्लाइल ने प्रसिद्ध साहित्कार चार्ल्स लेम्ब की कृतियों तथा दैनिक जीवन की अस्त-व्यस्तताओं की समीक्षा करते हुए लिखा है कि वह साहित्यकारिता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से सर्वथा माननीय थे। पर अपने निजी तथा पारिवारिक जीवन में वे जिस तरह समय गुजारते थे उसे देखते हुए उन्हें एक विचित्र प्रकार का पागल ही कहा जा सकता था।

संसार प्रसिद्ध कलाकार वायरिन को रात्रि के समय भयंकर सपने आते थे। कई बार वे उस उनींदी अवस्था में बुरी तरह चिल्लाने लगते थे और हवा में पिस्तौल के फायर करने लगते थे। पीछे परिवार वालों ने किसी दुर्घटना की आशंका से उनकी पिस्तौल ही छीन ली थी।

अँग्रेज कवि शैली को विश्वयुद्ध की योजनाएँ बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने वालों से बड़ी चिढ़ थी। वे उन्हें समझाने बुझाने के लिए लम्बे पत्र लिखते पर उन्हें डाक में नहीं डालते थे। वे उन्हें बोतलों में बन्द करके टैम्स नदी में बहा दिया करते थे और सोचते रहते थे कि वे उन व्यक्तियों तक जल माध्यम से सहज ही पहुँच जायेंगे। ऐसे पत्र उनने सैकड़ों की संख्या में लिखे थे।

जर्मन कवि पैरों तले बर्फ की सिल्ली रखकर और ठण्ड के दिनों में भी कमरे की सभी खिड़कियाँ खोलकर बैठता था। तभी वह अच्छी कविताएँ लिख पाता था।

पोलैण्ड के पियानो वादक नाटकों में बड़े सम्मान के साथ बुलाये जाते और पारिश्रमिक के अच्छे पैसे वसूल करते थे। पर उन्हें एक सनक थी कि जहाँ पियानो रखा जाता था। वहाँ न बैठकर अपना स्टूल जहाँ तहाँ जमाते-फिरते जब उनके मन की जगह मिल जाती तब वे भारी पियानों को उठवाकर वहाँ ले जाते जहाँ उनो स्टूल जमाया था।

समरमेट अपनी मेज पर रखे कागजों पर एक कुटिल आँख का चित्र बनाया करते थे। इन चित्रों के सम्बन्ध में पूछा जाता तो वे उसका कुछ उत्तर न दे पाते और किसी अज्ञात शक्ति की प्रेरणा बताया करते थे।

फ्राँसीसी लेखक ऐमिले कभी-किसी गली से गुजरता तो उसमें लगे बिजली के खम्भों को गिनता जाता। भूल जाता तो लौटकर गली के कोने से उन्हें दुबारा गिनना शुरू करता। ऐसा करने में उसका क्या अभिप्राय है इसका उत्तर देते उसे कभी न बन पड़ा। मात्र उसे आदत बताता था।

बेकन वर्षा के दिनों में खुली घोड़ा गाड़ी में बैठकर बहुत देर तक घूमता रहता। उसका विश्वास था कि जिस प्रकार वर्षा के पानी में खेती को—पौधों को लाभ होता है वैसा ही उसे भी मिलेगा।

ऐसे उदाहरण एक नहीं अनेकों हैं चँगेज खाँ, सिकन्दर, तुगलक, नादिरशाह, औरंगजेब आदि की नये इलाके जीतने और नये आक्रमण करने की धुन रहती थी। वे यह नहीं देख पाते थे कि पिछले दिनों जो इलाके जीते गये थे उनकी सही व्यवस्था बनी या नहीं। अथवा जितना जीता गया है वह हजम हो सकता है या नहीं। हिटलर का मानसिक विश्लेषण करने वालों का कहना है कि वह दुस्साहसी भर था। उसे परिणामों की सही अनुमान लगाने की क्षमता नहीं के बराबर थी।

अधिक पढ़ने-लिखने वालों को भी कभी-कभी सनकी पाया गया है। बाइबिल में एक स्थान पर उल्लेख है कि—ज्यादा पढ़ने ने तुझे पागल बना दिया है। ★

(शेष पृष्ठ २४ का)

जमीन से छत्त तक गरम पत्थर उछलने गिरने का सिलसिला चला। उन्होंने किसी की दुष्टता हो तो उसे पकड़ने के लिए कई गार्ड नियुक्त किये। पर उनके होते हुए भी जब घटना न रुकी तो उन्हें वह मकान बदलना पड़ा। उनका कहना था कि इन घटनाओं को भूतों का उपद्रव समझने के अतिरिक्त और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके।

इसी प्रकार उनने यह भी बताया कि उनकी ताला बन्द अलमारी में रखी हुई वस्तुएँ अलमारी बन्द रहते हुए भी उड़ीं, एक-एक करके सारे मकान में बिखर गई।

यह दो घटनाएँ यद्यपि यूरी गेलर से सम्बन्धित नहीं पर वे इतना तो बताती ही हैं कि भौतिकी के नियमानुसार सारा जगत चलता हो ऐसी बात नहीं है। उसमें ऐसी विलक्षणताएँ भी मौजूद हैं जिनका कारण ढूँढ़ निकालना अभी विज्ञान के लिए शेष है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सनकियों की कमी नहीं

मनुष्य जितना बुद्धिमान विचारशील है उतना ही मूर्ख और सनकी भी है। कहावत है कि दुनिया में अकल का परिमाण डेढ़ है। इसमें से एक अपने पास होना समझा जाता है और आधी सारी दुनिया के हिस्से में आई है।

कुछ आदमी बुद्धि पर जोर देते और उचित अनुचित का विचार करते हैं। पर कुछ ऐसे हैं जिनकी खोपड़ी में जो सनक उठती है उसी को करते रहते हैं। किसी से सलाह लेने की भी उन्हें आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

जूनागढ़ के नवाब महावत खाँ कुत्ते पालने के शौकीन थे। उन्होंने लगभग ढाई हजार कुत्ते पाल रखे थे। प्रत्येक कुत्ते के लिये नल, बिजली, पंखे से युक्त विशेष कमरे निर्मित किये गये थे। कई नौकर केवल इसी काम के लिए नियुक्त थे। उन्होंने अपनी एक कुतिया का विवाह रचाया जिसमें ढाई लाख मेहमान पधारे थे और करीब सात लाख रुपये खर्च हुए थे।

एंतारियो के एक पुलिस कर्मी जान पावर्स तितली पालने के शौकीन थे। उसने छह हजार से अधिक तितलियाँ पाली थीं। ये तितलियाँ जाली में बन्द रहने की अपेक्षा जान पावर्स के शरीर पर बैठना अधिक पसन्द करती थीं।

कुआलालम्पूर के निवासी 'विपमास' सून मधुमक्खियाँ पालने के शौकीन थे। उसकी मधुमक्खियों ने उसके बाँये हाथ पर छत्ता रख लिया था।

भोजन के शौकीन पटियाला के राजा भोपेन्द्रसिंह के रसोईघर में १४२ रसोइये थे। उनमें से १६ केवल 'एग-करी' बनाया करते थे।

रोमन सम्राट 'मैक्सी मख' शराब पीने और मांस खाने के शौकीन थे। वे प्रतिदिन लगभग १८ किलो मांस और २० गेलन शराब पीते थे।

सेवाइल के शासक 'अवादेल मोता दिल' खोपड़ियों के गुलदस्ते बनाकर उनमें आकर्षक फूल लगवाया करता था। इसके लिये वह अपने शत्रुओं को मारता था उनकी खोपड़ियाँ साफ कराकर उनका उपयोग करता था।

इंग्लैण्ड के प्रख्यात कवि बायरन को खोपड़ियों के पात्रों में मदिरा पीने पिलाने का शौक था।

मुगल बादशाह को "कल्ला मीनार" बनवाने का शौक था। मुगलों की ओर से बैरम खाँ ने जब सिकन्दर शाह की सेनाओं को परास्त किया तो उसके सम्मान में बादशाह ने दस हजार दुश्मनों की खोपड़ियों की कल्लामीनार बनवाई थी।

चीन के नानकिंग नामक स्थान में निवास करने वाली 'ताई लो' नामक एक लड़की को खोपड़ियाँ एकत्र करने का इतना शौक था कि उसके पिता की मृत्यु पर उसकी खोपड़ी भी सुरक्षित रख ली थी।

जार्जडन नामक एक व्यक्ति को भयानक चेहरों, खालों व चित्रों को एकत्रित कर अपने कमरे सजाने का शौक था और अपने दरवाजे पर बैठकर जोर-जोर से शोर मचाता था। वह रेडियो बहुत जोर से बजाता था।

'गार्ड स्टोन' नामक एक लार्ड अपनी वेशभूषा बड़ी विचित्र बनाये रखता था और अपने सोने के कमरे में भयानक व टूटी-फूटी वस्तुएँ भरे रहता था। उसके कमरे में मृत देहें और भयानक चित्र फैले पड़े रहते थे।

जोजर नामक एक पादरी हर दूसरे-तीसरे दिन हैट खरीदता और उन्हें कब्रिस्तान में रख आया करता था ताकि मृतकों की प्रेतात्मायें उन्हें पहिनें।

पश्चिम जर्मनी का एक रिक्शा चालक 'जान म्यूटर' प्रतिदिन पाँच घण्टे नहाता था।

रोम के बादशाह नीरा की महारानी पपिया गधी के दूध से स्नान किया करती थी। विश्व सुन्दरी 'क्लियोपेट्रा' भी गधी के दूध में नहाने की शौकीन थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन की पत्नी जोसेफाइन स्ट्राबेरी के फूलों के रस से नहाने की शौकीन थी।

स्पेन की सुन्दरी 'मेरिया द पाडिल्ल' शराब से भरे हम्मामों में नहाने की शौकीन थी।

फ्रांस की अद्वितीय सुन्दरी 'मादाम द मैसेनान' प्रतिदिन दो बार सुगन्धित इत्रों से स्नान किया करती थी।

फिलिपसासूनं लन्दन का एक बैंक कर्मचारी था। यात्रा के लिए एक दिन वह रेलवे स्टेशन पहुँचा, किन्तु दुर्भाग्यवश ट्रेन छूट चुकी थी और वह यात्रा नहीं कर सका। वह तुरन्त स्टेशन मास्टर के पास पहुँचा और अपने लिए स्पेशल ट्रेन की व्यवस्था करने का आग्रह किया। वहाँ कोई दूसरी ट्रेन उस रोज उपलब्ध नहीं थी, अतः उसके लिए किसी स्पेशल ट्रेन की व्यवस्था नहीं हो पायी। स्टेशन मास्टर ने उसे किसी दूसरी ट्रेन से यात्रा करने की सलाह दी, पर स्पेशल ट्रेन से यात्रा करने की उस पर तो धुन सवार हो गयी थी। किसी अन्य गाड़ी से सफर करने के लिए वह राजी नहीं हुआ। अन्ततः तीसरे दिन स्पेशल ट्रेन का आदेश हुआ, जिसमें बैठकर उसने अकेले यात्रा की। इस सनक में उसकी सारी सम्पदा लग गई साथ ही बैंक से भी बड़ी धनराशि कर्ज लेनी पड़ी, जिसे वह जीवन भर नहीं चुका सका। अन्ततः बैंक को उसके मकान व जमीन नीलाम कराना पड़ा तथा उसे नौकरी से भी निकाल दिया गया।

कनाडा का एक व्यापारी जो अपने जीवन में एक फिल्म अभिनेता तो नहीं बन सका किन्तु उसने अपनी वसीयत में लिखा था कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरी सारी सम्पत्ति किसी ऐसे नाटक कार को दी जाय जो प्रति वर्ष शेक्सपीयर का नाटक हेलमेट का प्रदर्शन करे और इस प्रदर्शन में कब्रिस्तान का दृश्य दर्शाने के लिए उसकी निजी खोपड़ी का ही उपयोग किया करे।

एक अमेरिकी जो अपने जीवन में सम्मानित न हो सका अपनी मृत्यु के पूर्व उसने अपनी सम्पत्ति की वसीयत में लिखा कि 'उसकी मृत्यु के बाद उसकी चमड़ी से ढोल बनाया जाय और जब भी स्वतन्त्रता दिवस आए वाशिंगटन में झण्डोत्तोलन के समय उसे बजाया जाय। जो भी व्यक्ति यह कार्य कर सके सरकार उसी को मेरी सारी सम्पत्ति सौंप दे।"

जैरेमी बैंथन नामक व्यक्ति जो अपने जीवन में किसी भी मेडिकल कालेज का सदस्य भी नहीं बन पाया अपनी वसीयत में लिखा था कि—"मेरी मृत्यु के बाद मेरी सारी सम्पत्ति ऐसे मेडीकल कालेज को दे दी जाय जो प्रबन्धक समिति की बैठक में उसकी खोपड़ी को एक ऊँचे आसन पर रख सके।"

समेइल ब्रांट नामक अँग्रेज ने अपनी पत्नी से परेशान होकर अपनी वसीयत में लिखा कि उसकी सारी सम्पत्ति को तभी उसकी पत्नी को दी जाय जब वह प्रतिदिन ५ सिगरेट पिया करे अन्यथा सरकारी खजाने में जमा करा दिया जाय।"

काउण्ट लियो जो एक प्रसिद्ध उपन्यासकार था अपनी वसीयत में लिखा था कि मृत्यु के बाद उसके शव के पास उसकी पत्नी को न आने दिया जाय। यह मानने पर ही उसकी सम्पत्ति उसे सौंपी जाय।

स्वेम नामक एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी से परेशान होकर अपनी वसीयत में मात्र ६ पैसे अपनी पत्नी को इसलिए दिया था कि वह इससे अपने लिए फाँसी की रस्सी खरीद ले।"

न्यूयार्क के एक व्यक्ति ने अपनी वसीयत में लिखा था कि "वह अपनी दुश्चरित्र पत्नी को उसका प्रेमी तथा चोर नौकर को फटे पैन्ट तथा लापरवाह को टूटी कारें छोड़ रहा है तथा सम्पूर्ण धन अपने पुत्र के लिए छोड़कर जा रहा है।"

बेल्जियम के एक व्यक्ति ने अपने परिवार वालों से परेशान होकर अपनी सारी सम्पत्ति अपने प्रिय कुत्ते के नाम ही कर दी क्योंकि संसार में उसने ही उसे सबसे ज्यादा प्यार किया था।

मेक्सिको के एक किसान डब्ल्यू डेरेन ने अपनी सारी सम्पत्ति अपने खच्चर के नाम कर दिया जिसने उसके २० एकड़ खेत को उर्वरा बनाने में पूरा सहयोग किया था।

अमेरिका के एक व्यक्ति ने अपनी सारी सम्पत्ति अपने तोते के नाम करके मरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरीका की श्रीमती मैक हेनरी ने अपनी सारी सम्पत्ति अपनी बिल्ली के ही नाम कर दिया था।

एक महिला ने अपनी सारी सम्पत्ति अपनी पाँच बिल्लियों के नाम बराबर-बराबर बाँट देने की वसीयत लिखी थी।

इटली की एक महिला ने अपनी २३०० पौण्ड की सम्पत्ति अपने कुत्ते के नाम कर दिया था।

लन्दन के फाँकिस नामक पियक्कड़ ने अपनी वसीयत में लिखा था कि "उसकी सम्पत्ति का एक भाग प्रति वर्ष उसकी जयन्ती पर शराबियों को शराब पिलाने में खर्च किया जाय।"

यूगोस्लाविया के एक शराबी ने अपनी वसीयत में लिखा था कि प्रति वर्ष बर्षी के समय उसकी कब्र को शराब से धोया जाय और शहर के सभी शराबियों को कब्र में बैठाकर खूब शराब पिलायी जाय।

बर्म के एक शराबी ने अपनी मृत्यु के पूर्व वसीयत लिखी जिसमें से १००० पौण्ड प्रति वर्ष उसकी बर्षी के समय शराब में व्यय करने को कहा था।

स्काट लैण्ड के एक व्यापारी ने अपनी दो पुत्रियों के लिए लिखी वसीयत में लिखा था कि उसकी सम्पत्ति का बँटवारा उनकी पुत्रियों में उनके वजन के अनुपात में किया जाय।

एक अमेरिकी धनी ने अपने जीवन में ७१ पायजामें बनवाये। मृत्यु के पूर्व उसने अपनी वसीयत में लिखा कि उसके सभी पायजामें एक-एक करके नीलाम कर दिये जाँय। नीलाम लेने वालों के आश्चर्य का तब ठिकाना न रहा जब उन सभी पायजामों में एक-एक हजार का बेनामी चैक मिला पाया।

फ्राँस के एक धनी ने अपनी वसीयत में लिखा कि उसकी सम्पत्ति के ब्याज को सालाना ऐसे व्यक्तियों को पुरस्कार देने में व्यय किया जाय जिनकी आँखे, नाक, बाल तथा कलाई अति सुन्दर हो।

दार्शनिक क्रोट्स ने अपनी वसीयत में अपनी सारी सम्पत्ति अपने मित्र को सौंपकर यह सुझाव दिया कि उसके लड़के यदि मूर्ख सिद्ध हों तो यह धनराशि उन्हें दे दें अन्यथा गरीबों की भलाई में लगा दें।

प्राचीन कलात्मक वस्तुओं का संग्रहालय तो सभी ने देखा सुना होगा किन्तु पश्चिम जर्मनी में कुछ अजीबो-गरीब संग्रहालय बनाए गए हैं। उदाहरणार्थ—

खटमल-मक्खी ऐसे घृणित जीव जिनका नाम लेना भी घृणास्पद लगता है। पश्चिम जर्मनी के अस्चेफन वर्ग में १००० किस्म की प्रजाति के खटमल-मक्खी एकत्र कर रखे हैं उनके बढ़ने एवं रहन-सहन की भी ठीक व्यवस्था की गई है।

जर्मनी के मुएन्दे नगर में धूम्रपान के सभी साधन संग्रहीत किए गये हैं। एडवर्ड सप्तम के समय की सिगरेट से लेकर आज तक के सिगार व बीड़ी आदि विश्व के समस्त धूम्रपान के साधन एकत्रित हैं। यहाँ पर एक ६ फीट लम्बी सिगार भी है जिसे एक आदमी १ माह तक पी सकता है।

प० जर्मनी के हेम्वर्ग नगर में आदिकाल से आज तक के सभी मिट्टी, पत्थर, लकड़ी, काँच प्लास्टिक आदि के बोतल व पात्र संग्रहीत हैं। प्राचीन काल में समुद्री जलयानों को सन्देश भेजने वाला बोतल भी है।

जर्मनी के एक स्थान पर प्राचीन काल से आज तक की रोटियों के नमूनों का संग्रहालय है इसी प्रकार का संग्रहालय काहिरा में भी है जहाँ पर ई० पूर्व से ५००० वर्ष पूर्व की गेहूँ की रोटी सुरक्षित हैं।

प० जर्मनी के आफन बैंक में प्राचीन काल से अब तक के जूतों चप्पलों के नमूनों का भण्डार किया गया है।

प० जर्मनी के फ्रेन्टेन्स्टाड में प्राचीन काल से आज तक के टैक्स प्रपत्र संग्रहीत हैं सबसे पुराना टैक्स फार्म ३००० ई० पूर्व का है।

प० जर्मनी की स्टटगर्ट नगर में छातों और टोपियों पगड़ियों के विश्व भर के हजारों नमूने प्राचीन काल से अब तक के संग्रहीत हैं। इनमें भारी से भारी व जेब में रखकर चलने वाले छाते तक शामिल हैं।

सम्पन्न और सुशिक्षित बुद्धिमान विचारशील होते हैं यह मानने में कोई तुक नहीं। उनमें भी ढेरों ऐसे होते हैं जो ऊट-पटांग सोचते और जो मनमर्जी आये सो करते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

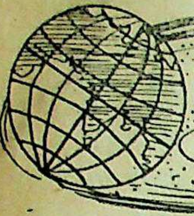

पृथ्वी पर होते रहे परिवर्त्तन

पृथ्वी की स्थिति में समय-समय पर भयानक परिवर्तन होते रहे हैं। इन्हें महाप्रलय या खण्ड प्रलय कहा जाय तो भी आश्चर्य नहीं। यह परिवर्त्तन भूत काल में भी हुए हैं और भविष्य में भी उनके होने की सम्भावना है।

इन परिवर्तनों के उपरान्त प्राणी स्वल्प काल में ही विकसित कैसे हो गये यह आश्चर्य की बात है। इसका एक और समाधान निकला है कि पाषाणों के मध्य प्राणी चिरकाल तक जीवित रह सकते हैं। इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि मनुष्य भी वहीं सुरक्षित स्थानों पर अपना अस्तित्व बनाये रहे हों।

कहा जाता है कि आदिम काल का मनुष्य अनगढ़ गुफाओं में रहता था, पर अब पर्वतीय प्रदेशों में ऐसी भव्य भवन ढूँढ़ निकाले गये हैं जो प्राकृतिक अनगढ़ नहीं हैंवरन् मनुष्यों द्वारा उच्चस्तरीय कला-कौशल के साथ बनाये गये हैं।

पृथ्वी की, समुद्री द्वीपों की खोज के श्रेय अमुक मनुष्यों को दिये जाते हैं पर प्रश्न यह उठता है कि उनने इतनी जल्दी इतनी सरलतापूर्वक वे स्थान कैसे ढूँढ़ निकाले। इसका समाधान उन मानचित्रों से मिला है जो अतीव पुरातन हैं और पृथ्वी एवं समुद्र की सही स्थिति के विवरण बताने की स्थिति में उपलब्ध हुए हैं। नवीन शोध कर्ताओं ने सम्भवतः इन्हीं मानचित्रों से सहायता ली है और खोज का काम शीघ्रतापूर्वक समग्र रूप से सम्पन्न किया है।

सभ्यताओं का इतिहास इतना नवीन नहीं है जितना कि पाठ्य पुस्तकों में पढ़ाया जाता है। वरन् वास्तविकता यह है कि अनुमानित काल की अपेक्षा कहीं पहले ऐसी सभ्यताओं का विकास विद्यमान था, आज की वैज्ञानिक प्रगति से किसी भी प्रकार कम महत्व की नहीं माना जा सकता।

चेचेन-इंगुशेती पहाड़ियों में पुरावेत्ताओं की एक खोज ने मनुष्य के गुफा-निवास की 'असभ्यता' के बारे में पुरानी भ्रान्त धारणाओं को भंग कर दिया है। यहाँ बड़ी ऊँचाइयों पर चट्टानों को तराशकर बनाये दो तले—तीन तले आवास मिले हैं, जिन्हें बहुकक्षी गुफाओं की संज्ञा दी जा सकती है। इस गुफा नगरी में लोगों के रहने के अतिरिक्त घरेलू कामकाज और पशुओं के लिए भी जगहें बनी हैं।

सन् १९०० में काईथेरा टापू के पास समुद्र में जब गोताखोरों ने स्पान्ज ढूँढ़ने के लिए डुबकी लगायी, तो उन्हें एक ध्वस्त जहाज का मलवा मिला। १८० फुट नीचे समुद्र तल पर इस मलवे में जब खोजबीन की तो विभिन्न प्रकार की धात्विक मूर्तियों और बरतनों के अतिरिक्त उन्हें किसी यन्त्र का एक भाग भी मिला। यह यन्त्र का गियर वाला भाग था, जिसमें प्रयुक्त तकनीक अत्यन्त जटिल थी। सूक्ष्म निरीक्षण से यह किसी अत्यन्त परिष्कृत यन्त्र का कोई हिस्सा मालूम पड़ा। सम्भवतः यह किसी खगोलीय कैलेण्डर का भाग हो, क्योंकि इसमें चन्द्रमा और ग्रह-मण्डलों की स्थितियाँ दिखायी गई हैं।

शोधकर्त्ताओं ने इस यन्त्र को १०० ई० पू० के हेलेनिस्टिक युग का बताया, किन्तु उनका कहना है कि इस युग में टेक्नालाजी का सर्वथा अभाव था। जब उस गियर तन्त्र की शुद्धता की परीक्षा की गई, तो इस कसौटी में भी वह खरा उतरा। उसमें त्रुटि एक मिली मीटर के १० वें भाग से अधिक न थी। यह त्रुटि कोई बहुत अधिक नहीं मानी जा सकती। जब उस काल के लोग टेक्नलाजी से बिल्कुल ही अनभिज्ञ थे, तो इतना परिष्कृत यन्त्र उन्हें कहाँ से प्राप्त हुआ? वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों का कहना है कि यह यन्त्र सम्भव है उन्हें किसी अन्तरिक्षीय अतिविकसित सभ्यता से प्राप्त हुआ हो।

सन १९२९ में टर्किश नेशनल म्यूजियम के डायरेक्टर बी० हैलिल एडेम को एक अति प्राचीन नक्शे के कुछ टुकड़े प्राप्त हुए। नक्शा रैडसी एवं परसियन गल्फ के फ्लीट एडमीरल पीरीरेस द्वारा विनिर्मित है। उक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एडमीरल ने नक्शे को सन् १५१३ में बनाया। म्यूजियम से प्राप्त टुकड़े उसके विश्व नक्शे के ही भाग हैं। सन् १९४० में इसकी अनेक प्रतियाँ तैयार करवायी गईं। सन् १९५४ में यह नक्शा विख्यात अमरीकी मानचित्रकार अरलिंग्टन एच० मैलरी के हाथ लगा। मैलरी प्राचीन नक्शे के विशेषज्ञ माने जाते हैं। उन्होंने बताया कि पीरी रेस के नक्शे में महाद्वीपों एवं दक्षिणी ध्रुव को स्पष्ट दिखाया गया है। उनके अनुसार सन् १५१३ तक दक्षिणी ध्रुव की खोज नहीं हो पायी थी। उसके मानचित्र में अमरीका का भी उल्लेख है, जिसके बारे में तत्कालीन लोगों को कोई जानकारी नहीं थी। जब दो स्थानों के बीच की दूरी जानने के लिए आधुनिक मानचित्र एवं पीरी रेस के नक्शे का तुलनात्मक अध्ययन किया गया, तो यह जानकर अचम्भा हुआ कि पुराने नक्शे में भी विभिन्न स्थानों के बीच की दूरियों को बिल्कुल सही-सही आंका गया है। इसके अतिरिक्त मानचित्र में विभिन्न स्थानों का सही-सही निरूपण भी नक्शे की विलक्षणता है। विशेषज्ञों का कहना है कि इतना सही मानचित्र किसी अतिविकसित टेक्नालाजी के बिना सम्भव नहीं। आधुनिक युग में ऐसे मानचित्र बनाने के लिए वायुयानों एवं जलयानों के माध्यम से इन्फ्रारेड फोटोग्राफी एवं प्रतिध्वनि का सहारा लिया जाता है। दक्षिणी ध्रुव के बारे में तो सन् १९४९ तक विज्ञानियों को सही जानकारी नहीं थी। फिर इतना सही मानचित्र १५ वीं सदी में कैसे बना लिया गया, जबकि नक्शे में उल्लिखित अधिकांश स्थानों के बारे में तत्कालीन लोगों की कोई जानकारी नहीं थी।

डेनिकेन का कहना है—नक्शा देवमानवों द्वारा कक्षा में घूमते स्पेश-स्टेशन से बनाया गया और इसे पृथ्वी वासियों को भेंट स्वरूप प्रदान किया।

सन् १८९८ में सक्कारा के निकट एक कब्र में वायुयान का एक मॉडल प्राप्त हुआ। वायुयान का नम्बर ६३४७ उसमें स्पष्ट अंकित है यह माडेल लकड़ी का बना है वजन ३९·७२ ग्राम पाया गया। दोनों डैनों का फैलाव १८ से० मी० है, नाक ३·२ से० मी० और इसकी सम्पूर्ण लम्बाई १४ से० मी०। मॉडल का आकार-प्रकार हवाई उड़ान के अनुकूल है। विशेषज्ञों के अनुसार इसके डैने, पूँछ, एवं शरीर की लम्बाई का अनुपात एक आदर्श वायुयान का है। इस पर मिश्री भाषा में "पा-डायमेन" अंकित हैं जिसका अर्थ है "अमन का उपहार"। यह 'अमन' कौन हो सकता है? डेनिकेन के अनुसार अमन और कोई नहीं अन्तरिक्षवासी देवमानव ही हैं। विभिन्न स्थानों में इस प्रकार के अनेक वायुयान मॉडल पाये गये हैं। ये सभी 'हाल आफ इजिप्टियन म्यूजियम फार एन्टिक्वीटिज' में सुरक्षित हैं। वर्त्तमान समय में यहाँ इस प्रकार के १४ मॉडल उपलब्ध हैं।

कार्सन सिटि, नेवादा के सन्निकट प्रान्तीय जेल के आहाते में उत्खनन के समय सन् १८८२ में सैण्ड स्टोन की एक परत में जूते पहने हुए मनुष्य के पद चिन्ह प्राप्त हुए थे। जिनकी लम्बाई १८-२० इंच और चौड़ाई ८ इंच थी। इसके साथ ही उस ट्रैक में अनेकों अन्य पशुओं जैसे—हाथी, घोड़े, हिरण, भेड़ियों के पद चिन्ह मिले थे। इन पद चिन्हों तथा शैलाभों की उम्र २०००००० से ३०००००० वर्ष आँकी गई थी।

नेवादा के पर्शिंग काउन्टी स्थित फिशर कैनन क्षेत्र में सन् १९२७ में अल्फ्रेड ई० नैप को ट्राइऐसिक लाइमस्टोन में धँसे चमड़े के जूतों के चिन्ह अंकित मिले। प्रिन्टों के फोटोमाइक्रोग्राफ लेने पर ज्ञात हुआ कि जूतों के चमड़े पतले धागों से हाथों द्वारा टाँके गये थे। इस विधि को १९२७ में जूते बनाने वाले अपना रहे थे। ट्राइऐसिक लाइम स्टोन की उम्र १८००००००० से २२५०००००० वर्ष तक आँकी गई।

ओहियो के कोसोक्टन नामक स्थान के समीप उत्खनन करते समय सन् १८३७ में बौनों का एक कब्रिस्तान मिला। नर कंकालों की लम्बाई ३ से साढ़े चार फुट लम्बी थी और सभी अलग-अलग लकड़ी के ताबूतों में बन्द करके दफनाये गये थे। बौनी सभ्यता से सम्बन्धित कोई शिल्प तथ्य उपलब्ध न होने के कारण उनकी अवधि निश्चित नहीं हो सकी, लेकिन कब्रों की संख्या देखते हुए इस सभ्यता के कार्य काल और सम्भावित शहर की सम्भावना सुनिश्चित है।

इसी तरह १८९१ में ओहियो के एक बहुत बड़े कब्रिस्तानी टीले की खुदाई करने पर एक पुरुष का स्थूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काय भारी भरकम शरीर ताँबे की चद्दर में लिपटा हुआ पाया गया। सिर पर ताँबे की टोपी, हाथ-पैर और पेट-पीठ सभी ताँबे से ढके हुए थे। मुँह के अन्दर मोतियाँ ठुसी हुई थीं और गले में मोतियों तथा भालू के दाँतों से बना हार पहनाया गया था। इस कब्र के समीप ही एक महिला का अस्थि पंजर दफनाया हुआ मिला।

ये सभी कंकाल ५०० फीट लम्बे, २०० फीट चौड़े और २८ फीट ऊँचे टीले की १४ फीट गहराई में दफन किए हुए मिले थे।

सन् १८५३ में अमेरिका के एक खान उत्खनन में शिलाखण्ड में चारों तरफ से बन्द एक हार्नी लिजार्ड छिपकली निकली। पूर्ण विवरण ज्ञात करने के लिए न्यू मेक्सिको के न्यायाधीश हाटन ने इस छिपकली को वाशिंगटन स्थित स्मिथसोनिएन संस्थान को भेज दिया। पत्थर को तोड़कर बाहर निकाले जाने के बाद यह छिपकली दो दिन बाद मर गई।

१८६५ में इंग्लैण्ड के दुरहम प्रान्त के हार्टलेपूल वाटरवर्क्स की खुदाई का कार्य प्रगति पर था। २५ फीट की गहराई पर मैग्नीसिया लाइम स्टोन के भारी भरकम पत्थर हटाये जा रहे थे। पत्थर के एक बड़े टुकड़े के टूटने पर उस पत्थर के एक छोटे सी गुफा में बन्द एक जीवित टोड टर्र-टर्र करता हुआ बाहर निकला जिसकी आँखें चमक रही थीं और मुँह बन्द था। आवाज नासा-छिद्रों द्वारा निकल रही थी। सुप्रसिद्ध भू विज्ञानी राबर्ट टेलर ने बताया कि टोड की उम्र ६००० (छः हजार) वर्ष की थी।

सन् १८५२ में इंग्लैण्ड के डर्बी प्रान्त में पासविक स्थित खान की खुदाई करते समय मजदूरों को १२ फीट की गहराई में पत्थरों को तोड़ते समय एक बड़े शैल खण्ड के मध्य एक छोटी-सी गुफा में ६ इंच व्यास वाला मेंढ़क बैठा हुआ मिला। मेंढ़क की बाह्य त्वचा कैल्सियम कार्बोनेट के क्रिस्टलों से ढकी हुई थी। जैसे ही मेंढ़क का सम्पर्क बाह्य वातावरण से हुआ वह मर गया।

इसी तरह १८३५ में लन्दन में रेलवे लाइन बिछाते समय मजदूरों ने पत्थर के एक खण्ड को तोड़कर एक जीवित मेंढ़क निकाला था। प्रारम्भ में मेंढ़क का रंग चमकीला भूरा था, परन्तु १० मिनट बाद बाह्य वातावरण के सम्पर्क में आते ही उसका रंग बदल कर काला हो गया। यह मेंढ़क चार दिन तक जीवित रहा।

सन् १७८६-८८ के मध्य फ्रांस के ऐक्सिन प्राविन्स में शहर के समीप वृहत् उत्खनन कार्य जोर-शोर से चल रहा था। खान से पत्थर निकाल कर जस्टिस पैलेस का पुनर्निर्माण कराना था। पत्थरों की चट्टानें बालू और मिट्टी की तहों से अलग-अलग परतों में जमी थी जिन्हें एक के बाद दूसरी परत की खुदाई करके निकाला जा रहा था। ४० फीट की गहराई में से पत्थरों की ११ वीं परत निकाली जा चुकी थी। बालू हटाकर पत्थरों को तोड़ा गया। उसके नीचे पृथ्वी के गर्भ में समाई हुई ३००००० ००० वर्ष पुरानी मानवीं सभ्यता के दर्शन हुए। पत्थरों के खम्भे, अर्धनिर्मित पत्थर, सिक्के, लकड़ी से बने हथौड़े की मुठिया, आठ फीट लम्बा और एक इंच मोटा लकड़ी का सुन्दर बोर्ड, तथा कई अन्य प्रकार के बुडेन टूल्स को देखकर सभी हतप्रभ हो गये। उनमें से अधिकांश चीजें एवं डिजाइनें फ्रांस में १८ वीं सदी में, प्रचलित थीं।

तथ्यों को देखते हुए हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि मानव सभ्यता अति पुरातन है और वह जीवाणु से नहीं ब्रह्माण्ड के अन्याय लोकों में निवास करने वाले देव मानवों से अनुदान में मिली है। ●

फ्रांस के महान रसायन शास्त्री वैज्ञानिक लेवोशिये ही थे। उन्होंने आक्सिजन को ज्वलनशीलता और दो गैसों के मिलने से पानी बनने जैसे आविष्कार कर दिखाये थे। साथ ही वे ऐसे अर्थ शास्त्री भी थे। जिनके प्रतिपादनों ने उस देश की अर्थ व्यवस्था सुधारने में भारी योगदान दिये। राज्य क्रान्ति की उथल-पुथल वाले दिनों किसी ने झूठी चुगली करके उन्हें मौत के घाट उतार दिया। मरने के बाद फ्रांस की विद्वत सभा ने उन्हें श्रद्धांजली अर्पित करते हुए कहा— वह सिर जो एक क्षण में ही काट दिया गया वह फिर से इस देश को नसीब हो, इसकी हजारों वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

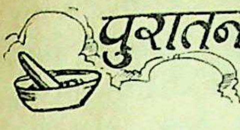

पुरातन चिकित्सा पद्धतियों को नये सिरे से खोजा जाय

"सोशल साइकिट्री ऑफ लीमा, पेरु" संस्था के डायरेक्टर डा० सी० ए० सीगुयेन ने एक "इन्टर नेशनल कांग्रेस ऑफ साइकिट्रिस्ट्स" के एक सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा कि "वास्तविक मानवीय गौरव-गरिमा मानवीय जाति की प्राचीन परम्पराओं में ही निहित है, अतः उसी के पुनर्जागरण और पुनरुत्थान के लिए आज इस बात की आवश्यकता है कि नये सिरे से उसी की खोज की जानी चाहिए।

पैराग्वे में ट्यूपम्बेय नाम के एक विश्व ख्याति के नीम-हकीम हैं। इन्होंने अपनी घ्राण—इन्द्रिय को अपने संकल्प बल से इतना अधिक विकसित कर लिया है कि वे अपने गम्भीर से गम्भीरतम रोगियों का रोग निदान मात्र उनके पहनने के वस्त्रों को सूँघकर ही करते हैं वस्त्रों को सूँघकर ही रोग का पता लगाते हैं और पुनः उस बीमारी के निदान स्वरूप औषधियाँ निर्धारित करते हैं और परहेज कराते हैं आधुनिक शरीर शास्त्री उनकी इस विलक्षण क्षमता का लोहा मानने लगे हैं। भौतिक विज्ञान जहाँ असफल होता है वहाँ वे मात्र वस्त्रों की गन्ध विशेष को सूँघकर रोग-लक्षण ज्ञात कर लेते हैं। अब तक उनके पास जो भी रोगी पहुँचे हैं शत-प्रतिशत रोग मुक्त हुए हैं।

पुरातन काल के चिकित्सक जड़ी-बूटियों के सूक्ष्म गुणों से अवगत रहते थे। साथ ही रोगी के पथ्य से असाधारण परिवर्त्तन करते थे। अपनी बढ़ी हुई संकल्प शक्ति से रोगी को निश्चित रूप से निरोग होने का आश्वासन दिलाते हैं। यह उपचार पद्धति आधुनिक रोग कीटाणुओं को मारने के प्रयास में स्वस्थ कीटाणुओं को नाश करने की तुलना में कहीं अधिक प्रभावी और हानि रहित थी।

इसी में एक उपचार श्रद्धा प्रयोग का भी जुड़ता था। दैवी अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के कर्मकाण्ड कराये जाते थे। इनका भी रोगी के मनःक्षेत्र पर तथा पारिवारिक वातावरण पर प्रभाव पड़ता है।

संगीत उपचार इन्हीं अचूक प्रयोगों में ही एक है। संकीर्त्तन तथा दूसरे प्रकार के गायन वादन रोगी पर अपने अतिरिक्त प्रभाव छोड़ते थे और उसे जल्दी अच्छा करने में सहायक सिद्ध होते थे।

तीसरी प्रकार की एक विचित्र चिकित्सा प्रणाली भी प्रचलित है जिसे एनीमल मैगनेटिज्म (प्राणी की विद्युत) कहते हैं यह शक्ति मनुष्य में जितनी अधिक मात्रा में होती है उतना ही वह प्रभावशाली, तेजस्वी, उत्साही, आत्म-विश्वासी आशावादी और कार्य कुशल होता है। उसका ओजस्, तेजस्, (aura) उसके चेहरे, आँख, मुँह, नाक और मस्तिष्क द्वारा निकलता रहता है।

चेहरे के अतिरिक्त हाथों और उँगलियों से भी इसकी किरणें निकलती रहती हैं। इस प्रकार का व्यक्ति अपने किसी भी रोगी को स्पर्श मात्र से रोग मुक्त कर सकता है। महापुरुष जीसस जिनके नाम पर आज संसार फूल चढ़ाता है और जिन्हें अत्यन्त आदर से भगवान का अवतार मानकर स्मरण करता है, मात्र अपने हाथ के स्पर्श से किसी भी व्यक्ति के गम्भीर से गम्भीरतम रोग को दूर कर देते थे। महापुरुष जीसस ने रोग मुक्ति के लिए प्रायश्चित्त विधान भी निश्चित किया था।

इन औपचारिक प्रणालियों के अतिरिक्त एक चिकित्सा प्रणाली मैस्मेरिज्म पर आधारित है। योरोप में सबसे प्रथम आस्ट्रिया के वियाना नगर के मैस्मर नामक व्यक्ति ने सन् १७७० में यह सिद्धान्त ढूँढ़ निकाला था। उसी मैस्मर के नाम पर इस विद्या का नाम मैस्मेरिज्म और इसके प्रयोगकर्त्ता का नाम मैस्मेराजर प्रचलित हुआ। इस पद्धति के द्वारा रोगोपचार करने की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए "फ्रैंच एकेडेमी ऑफ साइन्सेस" ने एक "इन्क्वायरी कमेटी" का गठन किया। अध्ययन के दौरान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगियों के उपचार करने में मैस्मर की प्रणाली पूर्ण रूपेण सफल होती पाई गयी। मैस्मर ने कमेटी के एक साक्षात्कार में बताया कि वह ईथर की शक्ति जो आकाश में विद्यमान है, जिस पर संकल्प की तरंगें भरी पड़ी हैं अतः आकर्षण शक्ति से उस संकल्प शक्ति, चुम्बकत्व शक्ति को आकर्षित करता है। जिससे अपने रोगियों का उपचार करता है।

"मैस्मेरिज्म" चिकित्सा प्रणाली से ही आगे चलकर "हिप्नोटिज्म" चिकित्सा प्रणाली का विकास हुआ। मैनचेस्टर के एक डाक्टर, ब्रेड ने सन् १८४१ में यह अनुभव किया कि कृत्रिम निद्रा को उत्पन्न करके रोगी के रोग की सूचना Suggestions (सुझाव) द्वारा निवृत्त किया जा सकता है। कृत्रिम निद्रा को हिप्नोसिस कहते हैं, इसलिए इसी के नाम के आधार पर इस चिकित्सा प्रणाली का नाम हिप्नोटिज्म पड़ा और इस विद्या के प्रयोग कर्त्ता का नाम हिप्नोटिस्ट प्रचलित हुआ। इस चिकित्सा प्रणाली के आधार पर एक लड़की के रोग का निवारण सफलतापूर्वक हो जाने से अत्यधिक प्रभावित हुई। अतः उस मैरी बेकर एड्डी नामक लड़की ने एक नवीन चिकित्सा प्रणाली का प्रचलन किया जिसका नाम "क्रिश्चियन साइंस" रखा।

अतीन्द्रिय क्षमताओं का पाश्चात्य प्रयोग उत्साहवर्धक परिणाम उत्पन्न कर रहा है यह शुभ लक्षण है और उस आवश्यकता का प्रतिपादन करता है कि हमें पुरातन चिकित्सा पद्धतियों की अन्यान्य पक्षों की गम्भीर शोध करके जनसाधारण की शारीरिक और मानसिक रोगों से मुक्त करने की उपयोगी पद्धतियाँ खोज निकालनी चाहिए। **

दधीचि पुत्र पिप्पलाद ने जब माता से अपने पिता की देवताओं द्वारा अस्थियाँ माँगे जाने और उनके बने वज्र से अपने प्राण बचाने का विवरण सुना, तो उन्हें देवताओं के प्रति बड़ी घृणा उपजी। अपना स्वार्थ साधने के लिए दूसरों के प्राण हरण करने का छल करने वाले यह कितने नीच हैं। इनसे पिता को सताने का बदला लूँगा।

पिप्पलाद तप करने लगे। लम्बी अवधि तक कठोर तपश्चर्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव प्रकट हुए और बोले—'वर माँग'।

पिप्पलाद ने नमन किया और बोले—'देव प्रसन्न है, तो अपना रुद्र रूप प्रकट कीजिए और इन देवताओं को जलाकर भस्म कर दीजिए।'

शिव स्तब्ध रह गये, पर वचन तो पूरा करना था।' देवताओं को जलाने के लिए तीसरा नेत्र खोलने का उपक्रम करने लगे। इस आरम्भ की प्रथम परिणति यह हुई, कि पिप्पलाद का रोम-रोम जलने लगा। वे चिल्लाये—'बोले भगवन्! यह क्या हो रहा है? 'देवता नहीं, उल्टा मैं जला जा रहा हूँ।'

शिव ने कहा—'देवता तुम्हारी देह में ही समाये हुये हैं। अवयवों की शक्ति उन्हीं की सामर्थ्य है। देव जलें और तुम अछूते बच रहो यह नहीं हो सकेगा। कपड़ों में आग लगाने वाला स्वयं ही जल मरता है।

पिप्पलाद ने अपनी याचना लौटा ली। शिव ने कहा—'देवताओं ने त्याग का अवसर देकर तुम्हारे पिता को कृत-कृत्य और तुम्हें गौरवान्वित किया है। मरण तो होता ही, न तुम्हारे पिता बचते न काल के ग्रास से वृत्रासुर बचा रहता। यश गौरव प्राप्त करने का लाभ प्रदान करने के लिए देवताओं के प्रति कृतज्ञ होना ही उचित है।

पिप्पलाद का भ्रम दूर हो गया। उनकी तपस्या आत्म-कल्याण की दिशा में मुड़ गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनिक जीवन में क्रियाशील "टैलीपैथी"

विचार सम्प्रेषण को यों अभ्यास द्वारा उच्च शक्ति सम्पन्न भी बनाया जाता है पर दैनिक जीवन में भी उसके प्रमाण कम नहीं मिलते। वे घनिष्ठ प्रियजनों के बीच आन्तरिक एकात्मा के आधार पर एक की बात दूसरे तक पहुँचाते रहते हैं। इसमें टेलीफोन टेलीविजन जैसे उपकरणों की आवश्यकता नहीं पड़ती। आन्तरिक घनिष्ठता ही यह कार्य सहज सम्पन्न कर देती है।

उत्तरी इंगलैण्ड के कॉनिस्टन वाटर शहर की घटना है। श्रीमती जॉन सेवर्न सन् १८८० की एक प्रातः अत्यधिक व्यग्र-व्यथित और उत्तेजित अवस्था में सोने से यकायक चौंक कर जाग पड़ीं। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि मानो किसी ने मुख पर तीव्र घूंसा प्रहार किया है जिससे निचला ओठ पूरी तरह दाँतों तले कट चुका है। अतः बहते हुए खून को रोकने के लिए आँखें मलते हुए हड़बड़ाकर रुमाल ढूँढ़ा और ज्यों ही ओठ के बहते रक्त को पोंछकर रुमाल को आँखों के सामने लायीं, तो उसमें यत्किञ्चित भी खून का निशान न पाकर वह और भी हक्की-बक्की रह गयीं। इस अनिश्चय की स्थिति में ज्यों ही दर्पण में अपना मुँह देखा तो किसी भी प्रकार की चोट लगने एवं ओठ कटने जैसी बात नजर नहीं आई। इससे तो उनकी हैरानी और भी बढ़ गई। पति आर्थर के बिस्तर पर नजर डाली तो बिस्तर खाली पाया। घड़ी पर नजर डाली तो पाया कि प्रातः के ७ बज रहे हैं। अतः उसने समझा कि वह प्रातः नौका बिहार के लिए चला गया है। वह बड़ी असमंजस और उधेड़ बुन की धुन में गृह कार्यों में लग गई।

आर्थर के लौटने पर नाश्ते के लिए मेज लगायी इसी बीच उसने पाया कि उसका पति उसके रूमाल को बार-बार अपने मुँह से लगा रहा है जिज्ञासा वश उसने पूछ ही लिया कि आज क्या मजाक सूझी है जो मेरे रूमाल का बार-बार चुम्बन ले रहे हो। इस पर चेहरे पर अत्यधिक विषाद लाते हुए कहा कि आज मुझे नया जीवन मिला है, नौका विहार करते समय यकायक समुद्री चक्रवातीय झंझावात में वह बुरी तरह से फँस गया। हवा के तीव्र वेग से उत्पन्न उत्ताल तरंगों के बीच अथाह जलराशि में नौका अपने असन्तुलन को खोकर डगमगाने लगी। इस विपन्नावस्था में नाव में बैठे हुए—कृषक के ऊपर गिरा, वह भी जीवन-मौत की क्षणों से गुजर रहा था। अतः रोष में आकर उसने मेरे मुँह पर एक तीव्र प्रहार किया, जिससे निचला ओठ दाँतों तले आ जाने से रक्त-रंजित हो गया था। मैं तुम्हारी सहायता पाने के लिए छटपटाने लगा। इसी बीच धीरे-धीरे चक्रवात का प्रकोप शान्त हुआ, तब कहीं जाकर जान में जान आई और घर की राह ली।

इस प्रकार का आत्मिक चमत्कार विचार सम्प्रेषण की अनेकों घटनाओं का उल्लेख "कानिस्टन वाटर इपीसोड" नाम के शोध-निबन्ध में किया गया है, जिसमें हजारों ही घटनायें परीक्षा करने पर सत्य सिद्ध हुई हैं।

कुछ लोग इस प्रकार की घटनाओं को अतीन्द्रिय क्षमताओं के विकास की फलश्रुति मानते हैं, तो फ्रांस के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक कैमायल—फ्लैमेरियन अपने प्रसिद्ध शोध ग्रन्थ "लिनकोनू" में टैलीपैथी नाम देते हैं। उन्होंने इस ग्रन्थ में उल्लेख किया है कि 'टैलीपैथी' उस विधा का नाम है जिसके अन्तर्गत किसी दूरस्थ व्यक्ति की भाव-सम्वेदनाओं वैचारिक निर्देशों से प्रभावित किया जा सके। इस तथ्य को उन्होंने एक घटना के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। एक बार गृह मालिक की अनुपस्थिति में एक गृहिणी ने अपनी मित्र-मण्डली को अपने घर पर सामूहिक प्रीति-भोज के लिए आमन्त्रित किया। संयोग वश उस दिन उसका पति शिकार के लिए जंगल में गया हुआ था। यद्यपि आज का दिन अत्यधिक शान्त, स्वच्छ आकाश व सुहावना मौसम था। यकायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"डाइनिंग रूम" की पहले से ही खुली खिड़की तीव्र आवाज के साथ बन्द हुई और पुनः तीव्र आवाज के साथ खुल गई।

गृहिणी के हृदय में अपूर्व स्पन्दन होने लगा, उसकी मनोदशा यकायक विलक्षण हो गई। उसने अपने मित्रों को विदा करते हुए कहा कि आज कुछ अनहोनी अप्रत्याशित दुःखद घटना घटित हुई है, इसको सुनने के लिए मुझे तैयार रहना है। मुश्किल से पौन घण्टा बीता ही था कि उसके पति का मृतक शरीर लाया गया जिसको किसी व्यक्ति ने गोली मारकर हत्या कर दी थी।

इस प्रकार डा० फ्लैमेरियम का कहना है कि टैलीपैथिकी घटना वह होती है जिसमें किसी दूरस्थ स्थान से किसी भावी विपत्ति की सूचना दे दी जाती है। इस प्रकार की घटनाओं के हजारों उदाहरण पाए गए हैं, इनमें से अत्यधिक महत्वपूर्ण घटनाओं को—उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लिनकोन्यू' में रिकार्ड किया है।

इस प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लिनकोन्यू' में सर्वाधिक चर्चित एवं प्रामाणिक घटना फ्रांस की है। फ्रांस के थल सेना के कैप्टन सेनेगल सन् १८८६ में एक रात्रि को ११.३० बजे पर अपने बिस्तर पर प्रगाढ़ निद्रा में सोए हुए थे इसका उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं" कि तभी मैंने यकायक यह महसूस किया कि किसी ने मेरी छाती पर अत्यधिक दबाव डाला, जिससे तहस-नहस हो मैं अत्यधिक भयभीत हो गया। जब आँख मलते हुए कुहनी के बल बिस्तर से उठा और इधर-उधर निगाह डाली तो अपनी बूढ़ी दादी माँ यह कहते हुए दिखाई पड़ी "मेरे प्रिय मुन्ने, मैं तुझे अन्तिम अलविदा करने आई हूँ, अब तू मुझे फिर कभी नहीं देख सकेगा।" जैसे ही मैं उस छाया-प्रकाश की तरफ आगे बढ़ा, वैसे ही वह अदृश हो गया। मैं यह सभी देख सुन स्तम्भित सा रह गया। निश्चित रूप से यह स्वप्न नहीं था।" उन्होंने आगे अत्यधिक विस्मित होते हुए बताया कि मुझे आश्चर्य तो तब और अधिक बढ़ गया जब प्रातः टेलीग्राम से रात्रि के ११-३० बजे दादी माँ की मृत्यु यह कहते हुए हुई कि मृत्यु की गोद में जाने से पूर्व मैं अपने मुन्ने को अब कभी नहीं देख सकूँगी।" श्री फ्लैमेरियन ने इस प्रकार की घटनाओं का जहाँ उल्लेख किया है वहाँ ठोस प्रमाण और पुष्टियाँ भी दी हैं।

"बीयोन्ड टैलीपैथी" ग्रन्थ के प्रसिद्ध विद्वान लेखक एन्ड्रिजा पुहेरिच ने वोस्टन शहर के एक वैल्डिंग करने वाले कर्मचारी जैक सुलेवन के जीवन की एक आश्चर्यजनक घटना का विवरण देते हुए लिखा है कि एक बार जब वह वाशिंगटन नगर की एक स्ट्रीट में कार्य कर रहा था जहाँ पर, अन्य कोई सहायक उस समय उसके पास नहीं था, दुर्भाग्य से उसका पैर कीचड़ की नाली में फिसल गया। फिर क्या था शारीरिक यन्त्रणाओं में जिन्दगी मौत से जूझते हुए प्राण रक्षा के लिए छट-पटा रहा था उसे इस विपन्नावस्था में अपने मित्र भिट्टेकर की याद आ रही थी, जिसने हर संकट में, विपत्ति मुसीबत में साथ दिया था, मृत्यु से पहले वह उससे मिलना चाहता था। भिट्टेकर के हृदय में यकायक स्फुरणा होने लगी, उसे एकदम अपने घनिष्ठ मित्र सुलेवन की याद आयी, उसे उस रोज पता नहीं था कि सुलेवन आज कहाँ कार्य कर रहा है। उसके मस्तिष्क में रह-रहकर ये विचार कौंध रहे थे कि वाशिंगटन स्ट्रीट में कोई अप्रत्याशित घटना घट रही है उसे ऐसा लग रहा था मानो कि उस दिशा में उसे कोई खींचे लिए जा रहा है। वह अपनी ड्यूटी के कार्य भार को ज्यों का त्यों छोड़कर आनन-फानन में वाशिंगटन स्ट्रीट में दाखिल हुआ, वहाँ उसने देखा कि वैल्डिंग करने वाली जनरेटर मशीन चल रही है, किन्तु चालक कर्मचारी कोई भी नजर नहीं आया। अत्यधिक घबराहट और हड़-बड़ की स्थिति में उसने उन सड़क का नक्शा तैयार किया. तभी उसे नाली के गन्दगी लगे ढेर में किसी के छटपटाने और तड़पने जैसा दिखाई दिया। कोई व्यक्ति हाथ को ऊपर किये सहायता के लिए संकेत कर रहा था। पास पहुँचकर अपने प्रिय मित्र सुलेवन को अर्ध मृतक और अचेतन अवस्था में उस कीचड़ से निकाला।"

ऐसे सहज स्वाभाविक प्रसंग घनिष्ठता के आधार पर अनायास ही घटित होते रहते हैं। अभ्यास के द्वारा इसे और भी अधिक विकसित किया जा सकता है।

❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्धत यौनाचार के भयावह दुष्परिणाम

विवाह के साथ ही नर-नारी के बीच यौन सम्बन्धों की छूट मिलती है और उनमें ही यह प्रतिबन्ध है कि वह पतिव्रत और पत्नी व्रत की मर्यादाओं के अनुरूप ही चलें। जब सन्तानोत्पादन की आवश्यकता दोनों पक्ष समान रूप से अनुभव करें तभी उस प्रसंग में हाथ डाला जाय अन्यथा हँसी विनोद हास परिहास जैसे क्रीड़ा कौतुकों से प्रेम प्रदर्शन का उद्देश्य पूरा कर लिया जाय। स्नेह और सहयोग दिनचर्या के प्रत्येक क्रिया-कलाप में समन्वित रखा जा सकता है और उतने भर से दाम्पत्य-जीवन में उल्लास एवं उत्साह बना रह सकता है।

सृष्टि के सभी जीव जन्तु इस मर्यादा का पालन करते हैं। उनमें से अधिकांश वर्ष में एक बार ही प्रजनन प्रयोजन के लिए इस ओर कदम बढ़ाते हैं। बुद्धि हीन होते हुए भी वे प्रकृति अनुशासन का पालन करते हुए साथ-साथ रहते हुए इस मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते।

अकेला मनुष्य ही है। जो इस अनुबन्ध का उल्लंघन करता है और यौनाचार को मनोरंजन का विषय बनाता है। प्रजनन अंगों की संरचना ऐसी है जिनका यौनाचार के निमित्त न्यूनतम उपयोग ही किया जाना चाहिए। सो भी मात्र अपने जोड़ीदार के साथ। इसका उल्लंघन करने से स्वास्थ्य खोखला होता है। तेज और सौन्दर्य घटता है, जीवनी शक्ति में कमी पड़ती है। फिर कहीं यदि इस सन्दर्भ से मर्यादाओं का उल्लंघन चल पड़े। नर नारी अनेकों को अपना साथी बनाने और उच्छृंखलता बरतने लगें तो यौन रोगों की उत्पत्ति होना स्वाभाविक है। पारस्परिक सद्भावना और विश्वास पात्रता घटती है। इतना ही नहीं अनाचार की ओर देखने-सुनने वालों का भी मन चलता है और वह श्रृंखला बढ़ते चलने पर पारिवारिक ही नहीं सामाजिक जीवन का भी ढाँचा बखेर देती है। सन्तान पर बुरा असर पड़ता है और आर्थिक अपव्यय का एक नया द्वार खुलता है। इस सबमें बड़ी बात है कि अनेकों के साथ दाम्पत्य सम्पर्क स्थापित करने का प्रतिफल भयंकर यौन रोगों के रूप में सामने आते हैं। जो जीवन भर कष्ट देते हैं। उनका स्थायी उपचार भी नहीं हो पाता। एक पक्ष इस प्रकार के रोगों से ग्रसित हो तो उसकी छूत दूसरे पक्ष को लगती है। सन्तानोत्पादन का क्रम चल पड़े तो नवजात शिशु भी उस वंश परम्परा को साथ लेकर आते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी वह अभिशाप त्रास देता रहता है। व्यभिचारी और व्यभिचारणियाँ प्रायः इस प्रकार के रोगों के शिकार पाये जाते हैं। वेश्याओं के यहाँ इस व्यथा का उत्पादन होता है और उसकी बेल इतनी लम्बी चलती है कि वह न जाने कितनों को अपनी चपेट में लेकर विनाशकारी दुष्परिणाम उत्पन्न करती है। जिन देशों या समाज में यौन स्वेच्छार पनपता है उसके पारिवारिक जीवन में आशंका अविश्वास और कलह के केन्द्र रहते ही हैं साथ ही यह भयंकर रोग परम्परा इस तेजी से पनपती है कि दोषियों के साथ-साथ निर्दोष भी गेहूँ के साथ घुन की तरह पिसते हैं। पाश्चात्य देशों में यह व्यथा बेतरह बढ़ती जा रही है क्योंकि वहाँ दाम्पत्य मर्यादाओं का पालन अनिवार्य नहीं समझा जाता।

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त युवकों और प्रौढ़ों का बहुत बड़ी संख्या में संहार हुआ। फलतः आश्रितों की भावनात्मक और आर्थिक स्थिति को भारी आघात लगा। नारियों की तुलना में नर बहुत कम रह गये। अनाथ महिलाओं के सामने पारिवारिक निर्वाह की एक विकट समस्या के रूप में सामने आयी, फिर वे भावनात्मक सहयोग का अभाव भी अनुभव करने लगीं। इन दोनों कमियों की सहज पूर्ति यौन स्वेच्छाचार अपनाने से होती थी। इसलिए वह अधिक सस्ता और व्यापक होता चला गया। दाम्पत्य मर्यादाएँ नहीं के बराबर रह गईं।

इस कुप्रचलन के जहाँ अन्यान्य दुष्परिणाम सामने आये वहाँ एक महान संकट यौन रोगों के रूप में सामने आया प्रदर, प्रमेह, स्वप्न दोष, जैसे सामान्य रोगों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याधि उन महारोगों तक फैली जिन्हें सुजाक या 'सिफलिस' कहते हैं। छोटे रोगों को तो लोग चुपचुप भी सहन करते रहे, पर 'सिफलिस' जैसा रोग नहीं है जो छिपाये छिप सके। उसमें लगभग कोढ़ जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इतना ही नहीं उसमें जननेन्द्रियाँ सड़ने गलने लगती हैं और रक्त में उस रोग के विषाणुओं की अभिवृद्धि से सारे शरीर में व्रण विस्फोट होने लगते हैं। इससे भी बड़ी बात है कि वह छूत की बीमारियों में अग्रणी होने से एक से दूसरे को दौड़कर लगता है और निर्दोष भी असावधानी के कारण इस संक्रामक व्यथा के चंगुल में जकड़ जाते हैं और अपने सम्पर्क क्षेत्र इसी आग में झुलसते हैं।

सन् १९१४ से १९१९ तक चले प्रथम विश्व महायुद्ध का दौर प्रायः योरोप के देशों में रहा। विशेषतया जर्मनी के निकटवर्ती देशों में। इसलिए युद्ध के उपरान्त अन्य समस्याओं के अतिरिक्त व्यभिचार के और तज्जनित व्यभिचार की बाढ़ आई। लगे हाथों संक्रामक रोग 'सिफलिस' भी उबल पड़ा। जिनने उसका दुष्परिणाम देखा वे ऐसे रोगियों को साक्षात् यमदूत समझकर अपना प्राण बचाने के लिए घबराने और दूर रहने लगे।

जेल में एक पादरी की मृत्यु इसी रोग से हुई। एक से दूसरे में इसकी भयंकरता की जानकारी अफवाहों के साथ फैली, फलतः उस जेल के कैदी कहीं अन्यत्र तबादले के लिए आग्रह करने लगे। चूँकि चर्चा दूर-दूर तक फैल चुकी थी, इसलिए जहाँ भी उनके तबादिले होने थे वहाँ के कैदियों ने उन्हें अपने यहाँ न आने देने का हठ ठान लिया। अन्त में उस सिर दर्द से कैदियों को मुक्त करके अधिकारियों ने किसी प्रकार अपना पीछा छुड़ाया।

बात कैदियों की नहीं गली-मुहल्लों की थी। एक ही छोटे कस्बे में करीब २००० रोगी ऐसे पाये गये जिनकी बीमारी प्रत्यक्ष दीखती थी। उन्हें कोई घर में रखने को तैयार न हो रहा था। अस्पतालों के डाक्टरों ने भी उनका इलाज करने से इनकार कर दिया। ऐसी दशा में उनके लिए किसी पुराने किले का खण्डहर निवास ग्रह बनाया गया। डॉक्टर वहीं एक जगह खाने और लगाने की दवाएँ रखवा देता था। शासन भी भोजन वस्त्र का ऐसा प्रबन्ध कर देता था कि एक स्टोर से वे लोग स्वयं ही अपने काम की चीजें निकाल लिया करें। जिन्हें प्रबन्धक नियुक्त किया गया था वे भी अपनी लम्बी छुट्टी लेकर चले गये या स्तीफे भेज दिये।

वैज्ञानिक शोधों ने इसे अच्छा करने की तो नहीं पर किसी सीमा तक दबाने की औषधियाँ निकालीं। प्रतिबन्धों के बीच पीड़ित भारी संख्या में मरे और इसके उपरान्त वर्षा थमने की तरह रोगों की भ करता घटी पर उसके बीजाणु एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे।

इस संकट को युद्ध का अभिशाप माना गया। सैनिकों के गली मुहल्लों में प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध लगाये गये। बड़े जन सम्पर्क वाले कारखानों में इसकी डाक्टरी जाँच जल्दी-जल्दी होने लगी। महिलाओं के लिए अलग से अस्पताल बने। जन साधारण को इस भयंकरता से परिचित कराया गया तो एक शताब्दी में यह तूफान किसी प्रकार रुका और सामान्य स्थिति बनी।

इसके बाद दूसरा महायुद्ध आ धमका। उनने भी वही पुरानी परिस्थितियों को नया जीवन दिया। इस बीच एक और नया व्यसन पनपा 'समलिंगी यौनाचार' का। पुरुष पुरुषों से और स्त्रियाँ स्त्रियों से अपनी उच्छृंखल आदत का किसी प्रकार समाधान करने लगीं। सोचा गया था कि कदाचित उससे वह पुरानी व्यथा न उभरेगी और व्यसन को भी तृप्ति मिलती रहेगी।

यह प्रयास और भी अधिक अप्राकृतिक होने के कारण नये रूप में उभरा इस नये रोग का नाम 'एड्स' (ए० आय० डी० एस०) अर्थात् एक्वायर्ड इम्यूनो डेफीशिएन्सी सिण्ड्रोम रखा गया। ऐन्टीवायटिक्सों के नये आविष्कारों ने सिर्फ इतनी ही मदद की कि पुराने लक्षणों को नया रूप दे दिया।

इस रोग का रोगी अपने स्नायु समूहों की क्षमता तथा ज्ञान तन्तुओं की क्षमता खोता चला जाता है और कुछ ही सप्ताह में पक्षाघात पीड़ित की तरह अपंग हो जाता है। इसी स्थिति में उसकी मृत्यु हो जाती है। अच्छाई इतनी ही है कि रोगी को बहुत दिन पैर नहीं पटकने पड़ते। इलाज पर ज्यादा खर्च नहीं कराना पड़ता और जल्दी ही परलोक की टिकट कटा लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछली बार 'सिफलिस' का दौर योरोप तक सीमित रहा और क्योंकि तब तक आवागमन के साधन सीमित थे और औद्योगीकरण, पर्यटन भी इतना नहीं बढ़ा था कि उस कारण 'सिफलिस का क्षेत्र विस्तार हो सके। इसके लिए गोरों को ही चरित्र भ्रष्ट माना जाता था और युद्धोन्माद का दुहरा दण्ड भुगतते हुए देखा जाता था। पर अभी तीसरा युद्ध नहीं आया। जहाँ-तहाँ छुट-पुट लड़ाइयाँ ही चलीं किन्तु अन्य कारणों में आवागमन बढ़ गया। यह प्रायः सम्पन्न होते हैं और नई-नई जगहों में नये-नये प्रकार से व्यसन को भुनाना चाहते हैं। फलतः नया रोग 'ए० आय० डी० एस०' अब क्रमशः विश्व व्यापी होता चला जा रहा है। उसने अपनी लपेट में ऐशिया को भी ले लिया है। सिंगापुर थाईलैण्ड एक प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र बनता जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय तस्करी का भी वह अड्डा बनता जाता है साथ ही व्यभिचार का केन्द्र भी। इसका प्रतिफल स्पष्ट है। उधर से इस रोग के बीज लेकर लोग अपने-अपने यहाँ वापस लौटते हैं और फिर अपने परिवार पड़ौस को इस उपहार का वितरण करते हैं।

प्लेग हैजा की तरह द्रुतगति से इसका विस्तार नहीं होता और न लक्षण ही इतने स्पष्ट प्रकट होते हैं। जानकारी तब मिलती है जब पानी सिर के ऊपर होकर उतर जाता है। पोशाकों का फैशन जैसे जल्दी-जल्दी बदलता रहता है और उसकी नकल यहाँ से वहाँ होती रहती है उसी प्रकार अब रोगों का प्रचलन भी चित्र-विचित्र रूप में आता है। पूर्व काल में यौन रोग नपुंसकता के तथा दुर्गन्धित स्रावों के रूप में उपजते थे। पीछे वे सुजाक आतशक के रूप में बदल गये। जब तक इनकी रोकथाम के कुछ उपाय खोजे गये तब तक नये रोग एड्स की भयंकरता सामने आ गई है। उसकी पहुँच संसार के कोने-कोने में पहुँचती जाती है, पर्यवेक्षण से पता चला है कि अब इस रोग के रोगी लाखों की परिधि पार करके करोड़ों में पहुँच चुके हैं और अभी कोई कारगर उपाय इसका नहीं खोजा जा सका। जब तक खोजा जायगा तब तक प्रचलित उद्दण्डता के कारण उसका कोई और रूप सामने आ उपस्थित होगा।

कोलम्बस अमेरिका की खोज में गया था। वहाँ रैड इण्डियन महिलाओं से सम्पर्क साधा और लौटने पर इस प्रकार सड़ा कि जननेन्द्रिय से लेकर पेट तक बुरी तरह सड़ गया था।

अमेरिका की सभ्यता में रजनीश आश्रम में भी शिष्य और शिष्याएँ बड़ी संख्या में रहते हैं। उनकी शिक्षा भी 'संभोग में समाधि' की है। ऐसी दशा में उन्हें भी अपने परिवार में यह शिक्षा बहुत जोर देकर देनी पड़ी है कि जोड़े बार-बार न बदले जाय।

अभिनव 'एड्स' रोग पर नियन्त्रण कब तक हो सकेगा। इसका उत्तर एक ही है कि यौन सदाचार को अनिवार्य मानने वाली पुरातन दम्पत्ति परम्परा को अपना कर परिवार को स्वर्ग बनाने से इनकार किया जाता रहा तब तक उस क्षेत्र को नरक की अनेकानेक व्यथाओं वेदनाओं से मुक्त नहीं रखा जा सकता। इन अभिशापों में 'ऐड्स' जैसे यौन रोगों की अभिवृद्धि तो निश्चित ही है। हम अपने दुष्कर्मों का प्रतिफल हाथों हाथ भुगतेंगे ही।

उन दिनों नौकानयन ही प्रचलित था। बड़े जलयान नहीं बने थे। उनकी कल्पना और योजना राबर्ट फुल्टन ने नैपोलियन के सामने रखी तो वह आग-बबूला हो गया और एक शब्द कहकर प्रस्तोता को भगा दिया कि मेरे पास ऐसी बकवास सुनने के लिए समय नहीं है।

डबलिन की रायल सोसायटी के इन्जीनियर लारेसकर इन दिनों जाने माने शिल्पी थे जलयान के बारे में उनने भी यह मत व्यक्त किया कि इस आधार पर एक मनोरंजन का खिलौना भर बन सकता है। इसके द्वारा अटलाँटिक पार करने की बात सर्वथा बचकानी है।

सभी जानते हैं कि इस प्रकार के विरोध और उपहास के बावजूद जलयान बने और पूरी तरह सफल हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोस्ट्राडेमस की भविष्यवाणियाँ

फ्रांस में जन्मे महाप्राज्ञ नोस्ट्राड्मस का जन्म १५०३ में और मरण १५५५ में हुआ। वे डाक्टर आफ मेडीशन की उपाधि से अलंकृत थे। उनकी भविष्य वाणियाँ इतनी सही बैठती थीं कि तत्कालीन फ्रांस सम्राट चार्ल्स नवम उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धावान रहे और अपने प्रमुख दरबारियों में उनकी नियुक्ति की।

नोस्ट्राड्मस ने अपने जीवन में एक पुस्तक लिखी 'सेनचुरीज' उसमें शताब्दियों के भावी घटनाक्रमों का वर्णन है। विगत ४०० वर्षों में जो कुछ उनने लिखा है वह घटनाक्रम की दृष्टि से सही उतरता आया है। फलतः भविष्य में जो घटित होने वाला है उसके सम्बन्ध में भी उसके कथन को विश्व के अधिकांश विज्ञजन विश्वास योग्य मानते हैं।

पुस्तक की मूल प्रति फ्रांस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। उसके कई भाषाओं में अनुवाद तथा प्रकाशन हुए हैं। उसे संसार की बहुचर्चित प्रतिष्ठा प्राप्त पुस्तक माना जाता है। हिटलर ने पुस्तक की लोकप्रियता देखते हुए कुछ अंश इस प्रकार छापे थे जिससे उसका पक्ष समर्थन होता था। पर वस्तुतः पुस्तक में उल्लेख का प्रतिकूल है। उसमें लिखा है कि "हिटलर और नाजी असंख्य यहूदियों की हत्या करने के बाद दुनिया से स्वयं भी समाप्त हो जायेंगे।"

नोस्ट्राड्मस कभी फ्रांस से बाहर नहीं गये इसलिए कहीं की तात्कालिक परिस्थितियों के आधार पर भविष्य का अनुमान लगाना उनके लिए कठिन था। फिर भी उपरोक्त पुस्तक में उनने जो लिखा है वह आश्चर्य रीति से घटित होता चला गया है। फ्रांस के राष्ट्रपति मितराँ ने सन् १९८३ में दी गई एक भेंट वार्ता में स्पष्ट रूप से कहा था कि वे "सेंचुरीज" पुस्तक के एक श्रद्धावान पाठक हैं।

जो घटनाएँ सही घटित हो चुकी हैं जो होने वाली हैं उसका विस्तृत विवरण जानने के लिए अँग्रेजी में प्रकाशित उनकी मूल पुस्तक को ही पढ़ना होगा। पर यहाँ ऐसा कुछ अति संक्षेप में लिखा जा रहा है जिसकी इन दिनों हम भारतीयों को दिलचस्पी हो सकती है।

उसके कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं :—

"विश्व में २० वीं शताब्दी के उपरान्त उस देश का वर्चस्व होगा जिसकी सीमा पर तीन समुद्र मिलते हैं और जहाँ "गुरुवार को पवित्र दिन माना जाता है" (ऐसा देश हिन्दुस्तान ही हो सकता है। दक्षिण भारत में तीन समुद्रों की सीमाएँ मिलती हैं और हिन्दुओं का पवित्र दिन गुरुवार है।)

"मुसलमान वर्ग ईसाइयों के शिकंजे में फँस जायगा। और उसकी अपनी कोई स्वतन्त्र भूमिका न रहेगी।

> किसी मित्र के लिए स्वयं को मिटा देना इतनी कठिन बात नहीं है जितनी कि ऐसा मित्र पाना जिस पर अपने को निछावर किया जा सके। —होम

हिन्दुस्तान और यूरोप के सम्बन्ध घनिष्ठ होते जायेंगे। और बात यहाँ तक बढ़ेगी कि इस गुट में रूस भी सम्मिलित हो जायगा।

—सन् १९९९ में ७ वर्ष तक भारी उथल-पुथल के रहेंगे और संसार की परिस्थितियों में भारी हेर-फेर हो जायगा।

—इसी अवधि में एक निर्णायक युद्ध होगा जिसमें २ लाख ५० हजार हिन्दू मरेंगे पर अन्त में विजय उन्हीं की होगी।

—"हिन्दू धर्म विश्व धर्म बनेगा और वेद मन्त्रों से ब्रह्माण्ड गूँजेगा। भारत विश्व का मार्गदर्शक बनेगा।"

इन भविष्य वाणियों के सम्बन्ध में आज तो अनुमान ही लगाया जा सकता है। पर हैं वे सभी आश्चर्य जनक और अद्भुत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

छाया पुरुष-हमारा समर्थ सूक्ष्म शरीर

मरणोत्तर जीवन के उपरान्त कितनी ही आत्माएँ प्रेत या पितर के रूप में अपने, अस्तित्व का परिचय देती रहती हैं। पर अन्वेषकों ने ऐसा भी पाया है कि जीवित व्यक्ति भी अपने "ईथरीक डबल" का परिचय प्राप्त करते हैं। इसे पुरातन ग्रन्थों में छाया पुरुष कहा गया है। दर्पण की सहायता से अपनी काया को एक अन्य काया के रूप में अनुभव करने से कुछ समय उपरान्त यह छाया पुरुष न केवल पृथक में दृष्टिगोचर होने लगता है, वरन् कई बार एक सहायक की तरह हाथ बटाने सहयोग देने में उसकी सत्ता काम करती हुई दिखाई पड़ती है।

यह छाया पुरुष अपना ही सूक्ष्म शरीर है जो जीवन काल में आमतौर से काया के साथ गुँथा रहता है और उसका परिचय यदा-कदा ही मिलता है। कई बार ऐसे स्वप्न आते हैं कि हम कहीं गये हैं या कोई हमारे पास आया है। उनमें जो वार्त्तालाप हुआ है वह सर्वथा सार्थक था। बताई या देखी हुई घटनाएँ सर्वथा सही निकलीं।

मृतात्माओं से सम्बन्ध बनाना, उनसे वार्त्तालाप करना या सहयोग लेना पूर्णतया अपने हाथ में नहीं होता। इसमें उन आत्माओं का सहयोग भी चाहिए। वे अन्यत्र जन्म ले चुकी हों या सहयोग न करना चाहें तो वे प्रयोग सफल नहीं होते। पर अपने ही छाया पुरुष को साधने का अभ्यास किया जाय तो उनकी सत्ता का परिचय तो मिलने ही लगता है। वह क्या सहयोग कर सकता है, यह इस बात पर निर्भर रहता है कि उसके पीछे आत्मबल का कितना अनुपात है।

ऐसी घटनाएँ तो पूर्वकाल में भी घटित होती थीं, पर उन्हें मति विभ्रम (इल्युजन) या दिवा स्वप्न कह कर टाल दिया जाता था। पर अब चूँकि इस विषय पर व्यापक खोज-बीन होने लगी है और परा मनोविज्ञानियों ने ऐसे घटनाक्रमों का संकलन और पर्यवेक्षण करना आरम्भ किया है तो प्रतीत हुआ कि यह भी अन्तराल की एक विशेष क्षमता है। कितने ही व्यक्ति अन्य दर्शन, भविष्य कथन आदि की क्षमताएँ विशेष प्रयत्नपूर्वक अर्जित करते हैं पर कितने ही ऐसे भी होते हैं जिनमें ऐसी अद्भुत क्षमताएँ अनायास ही उभर आती हैं। भारतीय मान्यताओं के आधार पर यह किसी पुरातन अभ्यास का प्रतिफल होना चाहिए। जो पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करते, वे भी मनुष्य को अति मानवी—अतीन्द्रिय क्षमताओं को अनेक प्रमाणों के आधार पर मान्यता देते हैं। उनका विचार है कि कुछेक व्यक्तियों में ऐसा उभार अनायास भी हो सकता है भले ही उसका कारण कुछ भी क्यों न हो?

योग साधना में अन्य देवी देवताओं या आत्माओं को सिद्ध करने की अपेक्षा अपने ही छाया पुरुष को सिद्ध कर लेना अधिक सरल है। भले ही उसकी सामर्थ्य प्रत्यक्ष शरीर के अनुरूप प्रकृति की सीमा में या स्वल्प ही क्यों न हो।

जर्मनी के महान विद्वान जॉन गेटे ने अपने व्यक्तिगत अनुभव का उल्लेख किया है कि वह अपने मित्र फ्रेडरिक से मिलने गया। भावनापूर्ण विदाई के उपरान्त वह वापस लौटा तो उसे बगल में ही वैसे ही घोड़े पर सवार अपनी ही छाया चलती दीखी। उसकी पोशाक दूसरे प्रकार की थी। कुछ वर्ष बाद वह उस मित्र से फिर मिलने गया तो उसे ठीक वैसी ही पोशाक पहनने का अनायास सुयोग बन गया जैसा कि उसने पूर्व आगमन के समय अपने छाया पुरुष को पहने देखा था।

परा मनोविज्ञानियों ने और भी कितनी ही घटनाएँ इस सन्दर्भ में नोट की हैं। इनमें एक प० जर्मनी की कुमारी फ्रेलिक की है जो अपने सूक्ष्म शरीर को आसमान में उड़ते देखती थी और कहाँ क्या हो रहा है यह देखती थी। साथ ही स्थूल शरीर को वे पीछे सड़क पर चलते हुए भी देखती थीं। उड़ते हुए उनने जहाँ जो

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

देखा था, पीछे पता लगाने पर वह दृश्य सही पाया गया।

ब्रिटेन की परामनोविज्ञान क्षेत्र की शोधकर्त्री श्रीमती रोजा ने इस विषय पर जो घटनाएं घटित होते पाईं उनका वर्णन अपनी पुस्तक "ई० एस० पी०, ए० पर्सनल मैमुएर" में विस्तार पूर्वक लिखा है। उनका कथन है कि इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। सही एवं गलत कामों में से एक का चुनाव करते समय जो अन्तर्द्वन्द काम करता है उससे हमारे दो व्यक्तित्वों का परिचय मिलता है। इसी प्रकार सही सिद्ध होने वाले स्वप्नों में भी प्रायः अपने ही सूक्ष्म शरीर की क्षमता काम करती है।

इस प्रसंग की गवाहियों में श्रीमती हेवुड का सुविस्तृत वर्णन है जिससे उनका छाया पुरुष उनके देखते-देखते अनेक इच्छित काम कर दिया करता था।

इसी सन्दर्भ में एक पुस्तक लिखी है—एडमण्ड गर्नी ने जिसका नाम है "फेन्टाज्म आफ दि लिविंग" इनमें उनने ऐसे घटनाक्रमों का उल्लेख किया है कि एक ही व्यक्ति एक ही समय में दो जगह दो प्रकार के काम करता हुआ देखा गया।

नार्वे में ऐसी अनेक जन श्रुतियाँ प्रचलित हैं जिनमें छाया पुरुषों के कारण सम्पन्न हुए द्विधा क्रिया-कलापों का मनोरंजक वर्णन है। वहाँ इन्हें पूर्ण सत्य न सही अर्ध सत्य तो माना ही जाता है। इसी प्रकार योरोप के अनेक देशों में ऐसी गाथाओं की पुष्टि कई प्रामाणिक व्यक्ति भी करते देखे गये हैं जो मरणोत्तर काल में न सही जीवन काल में मनुष्य के दुहरे व्यक्तित्व की साक्षी देते हैं।

इंग्लैण्ड के पादरी चार्ल्स ट्वीडेल ने अपनी पुस्तक "मैन्स सर्वाइवल आफ्टर डैथ" में जहाँ मरणोत्तर जीवन के उपरान्त चेतना का अस्तित्व बना रहने सम्बन्धी प्रमाणों का उल्लेख किया है। वहाँ उनने स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर की विवेचना भी की है। वे कहते हैं जीवित रहते लोग अपने सूक्ष्म शरीर पर ध्यान नहीं देते अन्यथा उसे भी एक अभिन्न मित्र की तरह विकसित किया और काम में लाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में उनने अपनी जानकारी की अनेकों घटनाओं का विवरण भी दिया है जिससे सिद्ध होता है कि जीवन काल में भी सूक्ष्म शरीर की सत्ता बराबर काम करती रहती है। यह मनुष्यों के प्रयत्नों पर निर्भर है कि उसे प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहने दे या प्रयत्नपूर्वक विकसित करके अपने लिए एक अतिरिक्त सहायक उत्पन्न करने का लाभ उठायें।

विश्व विख्यात लेखक मोपासा को तो जीवन के अन्तिम दिनों छाया पुरुष के साथ इतना अधिक तन्मय देखा गया कि वे स्थूल शरीर का मोह त्यागकर सूक्ष्म चेतना और सूक्ष्म जगत को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाने का निश्चय कर चुके थे और इसके उपरान्त वे कम दिन ही जीवित रहे।

भारतीय योग विद्या के अन्तर्गत अनेक ऋद्धि-सिद्धियों का वर्णन आता है। उनमें से जो विशुद्ध भावात्मक हैं उन्हें छोड़कर जो अलौकिकताएं उपलब्ध होती हैं उनका निमित्त कारण सुविकसित सूक्ष्म शरीर ही है। उसी के माध्यम से अणिमा, लघिमा, महिमा, परकाया प्रवेश, आदि की शक्तियों को प्राप्त कर सकना सम्भव होता है। जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमता कहा जाता है और अचेतन मन की विशिष्टता बताया जाता है वह भी प्रकारान्तर से ऐसे सूक्ष्म शरीर के क्रिया-कलाप ही हैं, जो एक ही सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत दो व्यक्तित्व रह सकने की बात को प्रामाणित करते हैं। छाया पुरुष साधना इसी योग परिकर का एक छोटा प्रयोग है जिसे कोई चाहे तो सरलता पूर्वक विकसित कर सकता है और उसके सहज उपलब्ध सहयोग का लाभ उठा सकता है।

शक्कर के कारखाने में रहने वाली चींटी ने नमक की खदान वाली चींटी को अपने यहाँ आने की दावत दी और मिठास का आनन्द लेने के लिए कहा।

आतिथ्य प्राप्त करने के लिए वह मेहमान के यहाँ पहुँची पर उसे मिठास का आनन्द नहीं मिला। खारीपन ही पल्ले पड़ा।

निराश लौटती हुई सहेली को उसने कहा—बहन, मुँह में लगी हुई नमक की डली को छोड़ पाती तो तब कहीं मिठास का आनन्द मिलता।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्"

मनुष्य शरीर जीवात्मा को वरदान स्वरूप प्राप्त होता है। उच्च-नीच कर्मों के आधार पर ही उसे विभिन्न योनियों में जाना पड़ता है और कर्मों के अनुरूप फल भी भुगतने पड़ते हैं। प्रकृति की नियामक सत्ता अदृश्य है। मनुष्य के भले बुरे कर्मों पर वह सीधे अंकुश तो नहीं लगा पाती, पर कर्मफल की ऐसी व्यवस्था बनी हुई है, जिससे कोई बच नहीं सकता। अच्छे कर्म के फल भी उसे अच्छे मिलते हैं, जबकि पाप कर्म का प्रतिफल बुरा होता है। जब वह निकृष्ट कार्य पर उतारू होता है, तो उसे निम्न योनियों में भ्रमण करना पड़ता है। यहाँ तक कि कभी-कभी जड़ योनि भी प्राप्त होती है, किन्तु ऐसा तभी होता है, जब वह नियन्ता की निर्धारित मर्यादा को तोड़ता है।

छोटी-छोटी गलतियों के लिए जीवात्मा को इतनी बड़ी सजा नहीं मिलती, वरन् उसी योनि में रहकर तद्नुरूप कर्मफल भुगतने पड़ते हैं। इसके लिए सृष्टा ने पुनर्जन्म की व्यवस्था बनायी है। ताकि जीवात्मा को किये का उचित दण्ड अथवा पुरस्कार अगले जन्म में मिल सके। इसी शृंखला की कड़ी के रूप में हम किसी को लूला, लँगड़ा, अन्धा देखते हैं, तो किसी को पूर्णतः स्वस्थ। यत्र-तत्र अत्यल्प वय में विलक्षण प्रतिभाएँ भी दिखाई पड़ती हैं, जिन्हें देखकर अचम्भा ही होता है। सामान्यतया इस छोटी वय में प्रतिभा उसमें इस ऊँचाई तक विकसित हो जाती है, जो सामान्य स्थिति में अत्यन्त कड़ी मेहनत करने पर प्रौढ़ावस्था तक में ही सम्भव हो पाती है।

प्रकारान्तर से ये घटनाएँ पुनर्जन्म की ही परिपुष्टि करती हैं। पिछले जन्मों में किये गये प्रयास और परिश्रम ही अगले जन्म में प्रतिभा बन विकसित होते हैं। १६ वर्ष की आयु में शंकराचार्य का वेद वेदान्तों पर अधिकार प्राप्त करना, सातवलेकर का ७ वर्ष की आयु में ही फर्राटे से संस्कृत बोलना, मात्र ८ वर्ष की आयु में मोजार्ट का संगीत शास्त्र में महारत हासिल करना—ये सभी परोक्ष रूप से पुनर्जन्म के ही प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त आये दिन यदा-कदा ऐसी अनेक घटनाएँ प्रकाश में आती ही रहती हैं, जो इसकी पुष्टि करती हैं।

ऐसी ही एक घटना हरदोई जिले के पंडरवा ग्राम में घटित हुई।

बद्री प्रसाद गुप्त पंडरवा का अत्यन्त गरीब किसान था। पाँच सदस्यों की गाड़ी को बड़ी मुश्किल से खींच पाता था। परिवार व्यवस्था चलाने में खेती की सीमित आय जब अपर्याप्त साबित हुई, तो अपने निकटवर्ती गाँव के एक सम्पन्न सेठ अँगने लाल के यहाँ नौकरी कर ली। वह उसकी आटा चक्की चलाने लगा और अपने परिवार का किसी प्रकार भरण-पोषण करने लगा। सन् १९७८ में सेठ की मृत्यु हो गई।

सेठ की मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् बद्री प्रसाद के एक लड़का हुआ। कमलेश जब ५ वर्ष का हुआ, तो उस ओर से पिहानी गाँव का जो कोई भी गुजरता, उसे वह पुकार कर प्रणाम करता और हालचाल पूछता। आरम्भ में परिवार वालों ने उसके इस व्यवहार पर विशेष ध्यान नहीं दिया। एक दिन बद्रीप्रसाद ने किसी कारण वश कमलेश की पिटाई कर दी, तो गुस्से में आकर कमलेश ने कहा—'तुम तो हमारे ही नौकर हो और हमीं को पीट रहे हो। मैं पिहानी का सेठ अँगने लाल हूँ। उस दिन यदि आश्रय नहीं दिया होता, तो आज तुम कहीं और खाक छान रहे होते। उस एहसान को भूल गये और अब मुझी पर रोष दिखा रहे हो।' लड़के की इन बातों को सुन बद्री प्रसाद चौंक गया। तथ्य के प्रति और दृढ़ होने के लिए उसने कमलेश से अनेक सवाल किये। सभी का उसने सही-सही जवाब दिया। इसके अतिरिक्त उसने अपने पिता के सम्बन्ध में कुछ ऐसी घटनाएँ भी सुनायीं, जिसे सेठ अँगने लाल के सिवाय और कोई नहीं जानता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इसके बाद सेठ के परिवार को बुलाया गया। उसने अपने पत्नी, बच्चे, पुत्र, पौत्र सभी को पहचान लिया। अनेक अन्य प्रश्न भी उससे किये गये, सभी का ठीक-ठीक उत्तर दिया। यहाँ तक कि जब उसे सेठ की तस्वीर दिखाई गई, तो तुरन्त उसने पहचान ली तथा कहा—'यही तो मेरा चित्र है।' इस घटना की साक्षी आज भी उपरोक्त स्थान पर जाकर ली जा सकती है।

एक अन्य घटना प्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स की है। एक बार वे इटली भ्रमण को गये। रोम में एक होटल का कमरा किराये पर लिया और वहीं ठहर गये। आसपास के दर्शनीय स्थानों को देखने के बाद वहाँ से १२० कि० मी० दूर रोम का प्रसिद्ध पार्क देखने की उन्हें इच्छा हुई। दूसरे ही दिन एक टैक्सी से गन्तव्य के लिए निकल पड़े। अभी ८० कि० मी० रास्ता ही तय हुआ होगा कि अँग्रेज उपन्यासकार को रोड के आसपास के दृश्य कुछ परिचित से जान पड़े। वहाँ से ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़े ऐसा प्रतीत हुआ मानो सारे-के-सारे दृश्य पूर्व परिचित हों। कार जब पार्क के गेट पर रुकी, तो वहाँ के आस-पड़ोस के मकान, बहुमंजिली इमारतें, वाटर-टावर सभी जाने-पहचाने से लगे। पार्क में वे प्रविष्ट हुए। वहाँ भी वही सारे दृश्य। परिचित सा तरण ताल, जाने-पहचाने लम्बे-लम्बे यूकिलिप्टस के दरख्त, घास का लम्बा मैदान, जिसके बीचोंबीच बड़ा-सा फव्वारा। सभी दृश्य उसके दिमाग में तेजी से घूम रहे थे। वह मैदान में वहीं बैठ गये और कुछ याद करने लगे। सहसा वे उठे तथा आसपास के क्षेत्र का बिल्कुल हूबहू विवरण प्रस्तुत कर अपने मित्र को अचम्भे में डाल दिया। उनका मित्र उक्त क्षेत्र से पूर्ण भिज्ञ था। वह डिकेन्स के शत-प्रतिशत सही विवरण से सकते में आ गया। आश्चर्य की बात तो यह है कि चार्ल्स अपने जीवन में इटली पहली बार आये थे। इतनी सही-सही जानकारी कोई किसी अजनबी क्षेत्र का बिना किसी परिभ्रमण किये दे नहीं सकता। इस बारे में डिकन्स से पूछने पर उनने बताया कि रोड के पार्श्व के दृश्य देखने के बाद इस क्षेत्र के सारे दृश्य स्वतः उनके स्मृति-पटल में फिल्म की भाँति उभरने लगे।

सन् १९६० में फिरोजपुर (पंजाब) के नूरपुर गाँव में पुनर्जन्म की एक ऐसी ही घटना घटी। फिरोजपुर से १० मील दूर नूरपुर नामक गाँव के एक ब्राह्मण परिवार में एक बालक पैदा हुआ। पिता सुन्दरलाल जी गाँव के शिव मन्दिर के पुजारी थे। बालक जब ढाई वर्ष का हुआ, तो पिता से स्कूल जाने के लिए जिद करने लगा। कौतूहल शान्त करने के लिए सुन्दरलाल ने उसकी भर्ती गाँव के स्कूल में करा दी। कुछ ही दिन में बालक रमेश ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय देना आरम्भ किया। जो सवाल अन्य साथी हल नहीं कर पाते, उसका जवाब वह तुरन्त दे देता। अपनी कक्षा में वह सदा प्रथम आता। १५ वर्ष का होते-होते उसने गीता, रामायण और महाभारत में अधिकार कर लिया तथा इन विषयों पर विद्वता पूर्ण प्रवचन देने लगा, जिसे सुन सब अचम्भा करते। रमेश जब तीन वर्ष का था, तभी से स्वयं को गुजरात के एक ब्राह्मण परिवार से सम्बद्ध बताता। कहता, 'पूर्व जन्म में मैं उसी ब्राह्मण परिवार का एक सदस्य था और जगह-जगह भागवत कथा का आयोजन करता। एक दिन एक सड़क दुर्घटना में मेरी मृत्यु हो गई, उसके बाद मेरा यहाँ जन्म हुआ।' रमेश द्वारा बताये पते पर जब खोजबीन की गयी, तो घटना बिल्कुल सत्य पायी गयी। उस गुजराती परिवार वालों ने इसे स्वीकारा कि कुछ वर्ष पूर्व परिवार के एक सदस्य की मृत्यु सड़क दुर्घटना में हो गयी थी!

कभी-कभी निकृष्ट कर्मों के कारण मनुष्य को अण्डज अथवा पशु योनि भी प्राप्त होती है। यहाँ भी उसके सूक्ष्म संस्कार जीव का पीछा नहीं छोड़ते और पूर्व जन्म की उसकी प्रवृत्ति मनोवृत्ति इस योनि में भी स्पष्ट झलकती दिखाई पड़ती है। कैरेकस का तोता एवं जोहान्स वर्ग का एक बन्दर इसके स्पष्ट प्रमाण हैं जो अपनी अद्भुत गतिविधियों द्वारा लोगों को अचम्भित आकर्षित करते रहते हैं।

कैरेकस (क्यूबा) के इस तोते के बारे में कहा जाता है कि उसमें किसी कम्यूनिष्ट नेता के उग्रवादी गुण मौजूद हैं। क्यूबा के फिडल कास्ट्रो समर्थक साम्यवादी गुरिल्लों को यह तोता 'हुर्रा' कहकर उत्साहित करता है, एवं उनके तोड़-फोड़ के कार्यों में प्रोत्साहन व सहयोग देता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा जाता है। स्थानीय लोगों का कहना है कि तोता साम्यवादी गुरिल्लों को क्यूबाई भाषा में स्पष्ट निर्देश मार्गदर्शन भी देता है। तोते के उत्पात से तंग आकर वहाँ की सरकार ने बैरेकस से २७८ मील दूर सान फ्रांसिस्को में इसे बन्दी बना लिया है। वहाँ अब उसके दुर्गुणों को निकालने एवं उसमें सद्गुणों के समावेश की कोशिश की जा रही है, किन्तु अब तक इस प्रयास में असफलता ही हाथ लगी है।

कुछ वर्ष पूर्व जोहान्सबर्ग, अफ्रीका के एक औद्योगिक फार्म के पास एक ऐसा ही करामाती बन्दर था। इसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और विलक्षण प्रतिभा से परिवार वालों का मन जीत लिया था। इस ऊँचाई तक उसमें प्रतिभा का विकास क्यों और कैसे हुआ? जीव विज्ञानियों के पास इसका कोई उत्तर नहीं है।

बन्दर को प्यार से लोग सैण्डो कहकर पुकारते थे। फार्म मालिक अल्बर्टो को पशुओं से बड़ा लगाव था। इसी कारण फार्म के अन्दर ही उसने एक छोटी पशुशाला खोल रखी थी, जिसमें भेड़, बकरियाँ और गायें रहती थी। इन्हें चराने और इनकी देखभाल करने के लिए एक नौकर रखा गया था। यह बन्दर भी देखरेख के लिए नौकर को ही सौंप दिया गया।

नौकर जब गाय चराने जाता, तो प्रतिदिन बन्दर को भी अपने साथ ले जाता। धीरे-धीरे बन्दर को इसका अभ्यास हो गया। एक दिन किसी कारण वश नौकर अपने गाँव चला गया। उस दिन बन्दर बिना किसी से कुछ कहे नियत समय पर भेड़ बकरियों को बाड़े से निकाल चराने ले गया और दिन भर चराता रहा। उसने न सिर्फ पशुओं को चराया, वरन् एक कुशल चरवाहे की भूमिका भी निभायी भटके हुए मेमनों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर इकट्ठा करता और एक स्थान की घास खत्म होने पर पशुओं को घेर कर हरी घास वाले मैदान की ओर ले जाता। ठीक समय पर हर रोज पशुओं को घर भी ले आता।

एक दिन घर पहुँचने पर बकरी का एक मेमना अपनी माँ का दूध पीने लगा तथा दूसरा अन्यत्र खेलता रहा। सेण्डो ने जब देखा कि सारा दूध एक ही बच्चा चट किये जा रहा है, तो उसने उसे पकड़ कर अलग किया और उसके दूसरे मेमने को भी ढूँढकर लाया। तब फिर दोनों को एक-एक थन से लगाकर दूध पिलाया।

इस घटना से अल्बर्टो बहुत प्रसन्न हुआ। उसने नौकर को दूसरे काम पर लगा दिया और चरवाहा का काम बन्दर को सौंप दिया। लगातार १४ वर्ष तक सेण्डो यह सेवा करता रहा।

सेण्डो के बारे में लोगों का विश्वास है कि वह पूर्व जन्म में कोई गड़रिया रहा होगा। उस जन्म में उसके बुरे कर्म के कारण जीवात्मा की अवगति हुई, फलतः दूसरे जन्म में इसे बन्दर का कलेवर प्राप्त हुआ।

पुनर्जन्म की मान्यता का समर्थन करते हुए गीताकार ने भी कहा है—

'तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।'

अर्थात्, "आत्मा पहले शरीर में संग्रह किये हुए बुद्धि संयोग अर्थात् बुद्धियोग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाती है।"

इस प्रकार उपरोक्त सभी एवं ऐसी अनेकों घटनाएँ यही सिद्ध करती हैं कि जीवन अनन्त है, इसकी कोई परिसीमा नहीं। एक कलेवर की मृत्यु के बाद जीवात्मा दूसरा कलेवर ग्रहण करती है और अपने पूर्वजन्म के कर्म फल को भोगती है। कर्मफल के आधार पर ही उसके जन्म, जाति, आयु का निर्णय होता है। इस सन्दर्भ में पातञ्जलि का कथन ध्यातव्य है। योगदर्शन में वे कहते हैं—

क्लेश मूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्मवेदनीयः।
सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥

अर्थात्, सब प्रकार के क्लेशों के मूल में जीव द्वारा किये गये कर्म ही प्रधान हैं। उन्हीं के द्वारा उसकी जाति, आयु व सुख-दुःख भोग का निर्धारण होता है।

अस्तु, यदि हमें अपने अगले जन्म को सुधारना है, तो प्रयास इसी जीवन से आरम्भ हो जाना चाहिए और आचरण व व्यवहार, कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व को उस स्तर का बनाया जाना चाहिए जिसके लिए' मनुष्य में देवत्व का उदय' की बात कही गयी है और समस्त भूखण्ड पर ३३ कोटि देवताओं के निवास की प्राचीन व अलंकारिक मान्यता रही है। इसी में मनुष्य जीवन की सार्थकता भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत का विज्ञान क्षेत्र में उपयोग

अगोचर, इन्द्रियातीत, परब्रह्म परमात्मा का जब सृष्टि के आदि काल में प्रकटीकरण हुआ तो वह शब्द ब्रह्म के रूप में अविज्ञात से विज्ञात हुआ।

भारतीय तत्व ज्ञान के अनुसार प्रकृति और पुरुष का जब समागम हुआ तो उससे एक ध्वनि उत्पन्न हुई। जिसे शब्द ब्रह्म कहा गया। शब्द ब्रह्म अर्थात् 'ॐ'कार, प्रणव, अनहत नाद।

घड़ियाल पर जब हथौड़ी की चोट लगती है और वह 'टन्' के उपरान्त बहुत देर तक थरथराहट के रूप में बनी रहती है। यही क्रम निरन्तर चलता रहता है और जिस प्रकार पेण्डुलम के हिलने से घड़ी के पुर्जे चलते रहते हैं। उसी प्रकार एक आघात पुरुष प्रकृति के साथ करता है। दूसरा उलटकर प्रज्ञा प्रकृति पुरुष के साथ अपनी प्रसन्नता भरी अभिव्यक्ति करती है। इसी चुम्बन आलिंगन की क्रमबद्धता के अनुरूप एक पेण्डुलम गति बन जाती है और उसके आधार पर सृष्टि क्रम के अनेकानेक कल पुर्जे चल पड़ते हैं। पंचतत्व, पंच प्राण आदि के माध्यम से जड़ चेतन जगत में असंख्यों हलचलें अनवरत गति से चलती रहती हैं उन्हें आधार पर गतिशील रहते माना गया है।

प्रकृति पुरुष के मिलन समागम की इस गति को "ॐ" कार की थरथराहट भरी ध्वनि के रूप में मानवी भाषा में अधिक समीपवर्ती पाया गया है। यों उस स्वर की सूक्ष्मता का यथावत् अनुकरण योगीजनों के लिए शब्द ब्रह्म की साधना करते हुए ही सम्भव है। फिर भी बाल-बोध की दृष्टि से उस मनुष्य द्वारा उच्चारित शब्दों में 'ॐ' कार ही कह सकते हैं। 'ॐ'कार का अधिक सरल उच्चारण 'ऊ+उ+म्' के संयोग से बनता है। पर यह पृथक कारण भी समग्र स्थिति का परिचय नहीं देता इसलिए उसे शब्द के साथ ही रूप में भी चित्रित किया गया है। यही है—"ॐ"। भाषा विकास के आरम्भिक दिनों में इस 'ॐ' का स्वरूप स्वस्तिक (卐) जैसा था। पीछे इसमें और भी अधिक कलाकारिता का समावेश किया गया तो वह गणेश की गजानन प्रतिमा के रूप में विकसित हुआ। एक दन्त हाथी जैसी सूँड आदि की संगति इसी 'ॐ' कार या गणेश आकृति के साथ मिला दी गई।

अनादि 'ॐ' कार की थरथराहट के ऊँचे-नीचे आरोहन अवरोहों का ध्यान रखते हुए तत्वज्ञानियों ने उसे सप्त स्वरों में विभाजित किया। स, रे, ग, म, प, ध, नि, उसी ओंकार ध्वनि का वर्गीकरण है। इन्हीं स्वरों में समग्र स्वर शास्त्र का आविर्भाव हुआ और उसके उदाहरण प्रस्तुत करने के हेतु अनेकों राग रागनियों का प्रादुर्भाव हुआ। इन्हीं स्वरों की क्षेत्रीय ध्वनि प्रियता के आधार पर अनेकों वाद्य यन्त्रों का निर्माण हुआ। गले का क्रमबद्ध गुंजन-गायन और वाद्य यन्त्रों की सहगति को वादन कहा गया। गायन और वादन दोनों को मिलाकर समग्र संगीत बनता है पर यह अनिवार्य नहीं कि दोनों की संगति साथ-साथ ही होनी चाहिए। अकेला गायन भी हो सकता है और अकेला वादन भी। जहाँ जैसी सुविधा एवं आवश्यकता होती है वहाँ वैसा तालमेल बिठा लिया जाता है।

गायन के आधार पर मन्त्र विज्ञान विकसित हुआ है। उसमें शब्दों का ऐसा गुँथन ही प्रधान है, जिसकी बार-बार पुनरावृत्ति करने जप करने पर एक विशिष्ट प्रकार के कम्पन्न होते और साधन कर्ता को प्रभावित करें। इन मन्त्र तरंगों को किसी विशेष व्यक्ति के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है और विशेष प्रयोजन के लिए भी। यह एक समूचा एवं सुविस्तृत विज्ञान है। इसे जानने के लिए मन्त्र महाविज्ञान और तन्त्र महाविज्ञान का सांगोपांग अध्ययन आवश्यक है और उन मन्त्रों को सिद्ध करने के लिए जिन अनुष्ठानों की आवश्यकता पड़ती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका सही प्रकार अभ्यास कराने के लिए व्यवहार में अनुभवी और व्यक्तित्व में अतीव पवित्र परिष्कृत मार्ग-दर्शक की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे सिद्ध मन्त्र ही अपना चमत्कार दिखाते हैं अन्यथा पुस्तकों में से किसी मन्त्र शब्द गुंथन का ही अनगढ़ प्रयोग करने पर निराशा ही हाथ लगती है।

यहाँ चर्चा गायन परक उच्चस्तरीय 'मन्त्र विद्या' की नहीं हो रही है। इन पंक्तियों का प्रयोजन उस संगीत की चर्चा से है जो वादन प्रधान है, जिसमें ध्वनि तरंगें उत्पन्न की जाती हैं और उन्हें विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। साधारणतया 'संगीत' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है। मन्त्र विज्ञान को "शब्द ब्रह्म" और स्वर लहरी एवं ताल वाद्यों के समुच्चय को "नाद ब्रह्म" कहते हैं। संगीत का सामान्य अभिप्राय इस वाद्य विधा से ही समझा जाना चाहिए। उसमें गायन का समावेश आवश्यक नहीं। किन्तु यदि यह संयोग किसी प्रकार बैठ सके तो अच्छा ही है।

सामवेद में वेद मन्त्रों को संगीत प्रवाह के साथ जोड़ा जाता है। वेद तो वस्तुतः तीन ही हैं ऋक, यजु, अथर्व। प्रायः इन्हीं में वर्णित मन्त्रों की अनेकानेक विधाओं के अनुरूप गाया जाता है तब उसे सामगान कहते हैं। यह छन्द विद्या अपने आप में अनोखी है। पर अब उस विधा का प्रायः एक प्रकार से लोप ही हो गया है। कहते हैं कि कभी सामगान की सहस्र शाखाएँ थीं। पर अब उनमें से थोड़ी ही उपलब्ध हैं—जटा पाठ, घन पाठ आदि उसी प्रकरण में प्रयुक्त होते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उस लुप्त साम विधा का फिर से अन्वेषण किया जाय और उसकी लुप्त कड़ियों को नये सिरे से जोड़कर प्रस्तुत अस्त-व्यस्तता को सांगोपांग किया जाय और उस आधार पर अगणित प्रकार के लाभ उठाने का सुयोग प्राप्त किया जाय।

विज्ञान का ऊहापोह इन दिनों पाश्चात्य मनीषियों द्वारा ही हो रहा है। उनने संगीत पर प्रयोग वादन तक ही हाथ में लिया है और उसी पर कतिपय प्रकार के प्रयोग किये हैं। पाश्चात्य भौतिकवादी दृष्टिकोण यह है कि उन्हीं कार्यों में उसी हद तक हाथ डाला जाय, जिस हद तक के मनुष्य के प्रत्यक्ष लाभ में सहायक होते हों। यहाँ संगीत विद्या का अतिरिक्त अन्वेषण भी इसी आधार पर हुआ है। जल जन्तुओं में वे कृषि, शाक, फल की तरह ही खाद्य मानते हैं इसलिए मछलियों को सरलता पूर्वक पकड़ने और उनका प्रजनन बढ़ाने के लिए प्रयोग हुए हैं। मुर्गी, बतख आदि के अण्डे तथा माँस भी उनके लिए गाय के दूध की तरह ही आहार में सम्मिलित होते हैं इसलिए उनके लिए भी प्रयत्न हुए हैं। हिरन, खरगोश, बकरी, भेड़ आदि का भी इसी वर्ग में सम्मिलित करके उन्हें संगीत सुनाकर प्रभावित करने और उनसे स्वयं लाभान्वित होने की चेष्टा भी इसी आधार पर हुई है। उस प्रयत्न से उनने समुचित लाभ भी उठाया है।

मनोरंजन पक्ष में दूसरे लोग बहुत हैं जो गोष्ठियों में, उत्सवों में, नाटकों में, फिल्मों में बजने वाले तरह-तरह के गायनों और वादनों का उपयोग करते रहते हैं। इस विषय में विज्ञान ने इतना ही किया है कि इलेक्ट्रोनिक मल्टीट्यून, हाई-फी—वाद्य यन्त्र बनाये हैं जो मनुष्य के अभ्यास श्रम को बचाते हैं और हारमोनियम की तरह उँगलियाँ बदलने भर से स्वासन यन्त्रों, तार यन्त्रों, ताल वाद्यों की बाल सुलभ सरलता से बढ़ा देते हैं। यह श्रम की बचत हुई। इसके अतिरिक्त संगीत का उपयोग वैज्ञानिकों ने इस निमित्त भी किया है कि उसके आधार पर शारीरिक और मानसिक रोगों का निदान भी किया जा सके एवं छुटकारा भी पाया जाय। उपरोक्त सभी प्रयोजनों की तुलना में यह अधिक महत्वपूर्ण प्रयोग है। अब संगीत उपचार भी एक चिकित्सा पद्धति बन गई है और उसका उपयोग सफलतापूर्वक सम्पन्न हो रहा है।

चिकित्सा की अनेकानेक पद्धतियाँ हैं और उनके अपने-अपने आधार हैं। आयुर्वेद शरीर में वात, पित्त, कफ का असन्तुलन मानता है। यूनानी में आदी, बादी, खादी प्रकृति की अस्त-व्यस्तता को रोगों का कारण मानता है। ऐलोपैथी में जीवाणु विषाणुओं के आक्रमण, जीवनी शक्ति के शिथिल होने तथा रासायनिक पदार्थों की न्यूनाधिकता को निमित्त कारण बताया गया है। होम्योपैथी में उत्पन्न हुए विषों को लक्षणों के आधार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद उपचार में मानने का विधान है। बायोकेमीक में बारह प्रमुख लवणों की घट-बढ़ को निमित माना गया है और उन्हें औषधि रूप में देकर क्षति पूर्ति करने की परम्परा है। क्रोमोपैथी में सूर्य किरणों के सात रंगों में से किसी रंग की कमीबेशी को रंगीन कांचों द्वारा उन किरणों का शरीर में प्रवेश कराकर पूरा कराया जाता है। यूनानी तिब्बी प्रायः आयुर्वेद की तरह जड़ी-बूटी खनिज, उद्‌भिज उपचार पर अवलम्बित हैं।

संगीत चिकित्सा से यह मानकर चला जाता है कि स्नायु संस्थान में विद्युत प्रवाह की न्यूनता या शिथिलता उत्पन्न होने से कतिपय शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। अस्तु नाड़ी संस्थान को तरंगित, उत्तेजित करना सम्भव हो तो शिथिलताजन्य विकृतियों से छुटकारा पाया जा सकता है और अस्त-व्यस्तताओं को दूर किया जा सकता है नाड़ी संस्थान को उत्तेजित करने की क्षमता संगीत में है अतएव उसे मनोवी रोगों से छुटकारा पाने में लाभ उठाया जा सकता है। विशेषतया मानसिक रोगों में। क्योंकि संगीत का मनःसंस्थान को शिथिल कर लहराने में अधिक जल्दी एवं अधिक आसानी से प्रभाव पड़ता है।

अब अस्पतालों में चिकित्सा का एक माध्यम संगीत मान लिया गया है। अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, जापान, फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन, इटली आदि देशों में अस्पतालों में एक विधा के अनुरूप संगीत के—विभिन्न स्तर के रिकार्ड बनाकर उपचार में सहायता ली जाती है। मानसिक अस्पतालों में तो इस प्रयोग को अब एक प्रकार से अनिवार्य ही माना जाने लगा है। सरकारी अस्पतालों के अतिरिक्त कितने ही चिकित्सकों ने अपनी उपचार पद्धति पूरी तरह संगीत चिकित्सा पर केन्द्रित की है। वे रोगियों को अमुक ध्वनि के संगीत, उतने समय सुनाये और उन ध्वनि तरंगों के शरीर में प्रवेश करके आवश्यक हेर-फेर करने का सिद्धान्त लेकर किरणों की प्रक्रिया के समतुल्य बताकर समझाते हैं। इसका प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही प्रकार का लाभ रोगी को मिलता है और वे इस सहज सुलभ सस्ती और मनोरंजन पद्धति के सहारे अपेक्षाकृत अधिक जल्दी अच्छे होते हैं। अतएव उसका लोकप्रिय होना स्वाभाविक है। वह लोकप्रिय ही नहीं उत्साहवर्धक गति से सफल भी हो रही है। (क्रमशः)

कौत्स उन दिनों महर्षि कण्व के आश्रम में तप कर रहे थे। एक दिन गुरु और शिष्य दोनों जंगल में देर तक काम करते रहे। सायंकाल महर्षि ने कौत्स को थोड़ा पहले आश्रम भेज दिया आप कुछ पीछे चले।

कौत्स आश्रम आ रहे थे, तब उन्होंने मार्ग में पड़ी एक सुन्दर स्त्री देखी। स्त्री को चोट लगी थी, वह पीड़ा से कराह रही थी। कौत्स एक क्षण रुके और फिर अपनी राह चलते बने। पीछे महर्षि कण्व भी उधर से आये और युवती को यों पड़ी कराहते देखा तो अपने शिष्य पर उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। युवती को उठाकर वे आश्रम लाये और उसकी चिकित्सा की व्यवस्था कर दी।

कौत्स को बुलाकर उन्होंने पूछा—जब यह स्त्री मार्ग में तुम्हें कष्ट-पीड़ित अवस्था में मिली तब तुमने उसे उठाया क्यों नहीं, उसे आश्रम में लाकर सेवा का उचित प्रबन्ध क्यों नहीं किया। कौत्स ने सिर झुका कर कहा—भगवन् ! मुझे सन्देह था कि मैं उस स्त्री के सौन्दर्य से कहीं विचलित न हो जाऊं, इसीलिए चुपचाप चला आया।

महर्षि ने गम्भीर स्वर में कहा—वत्स ! इससे क्या सौन्दर्य से विरक्ति हो जायगी। छिपा हुआ भाव तो कभी भी प्रकट हो सकता है, इसलिए वासनाओं के आकर्षण से बचने के लिए तो यह आवश्यक है कि वैसे वातावरण में रहकर ही आत्म-नियन्त्रण का अभ्यास किया जाये। क्या तैरना सूखे में सीखा जा सकता ? उसी प्रकार आत्म-नियन्त्रण भी एकान्त में नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशिष्टताओं से सम्पन्न ये तुच्छ जीव जन्तु

उपेक्षित, असमर्थ एवं हेय समझे जाने वाले निम्न जीव जन्तुओं की जीवनचर्या को गौर से समझें तो पता चलता है कि उनके अन्दर अनेकों ऐसी विशेषताएँ हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। मनुष्य की विचारशीलता, एवं अपनी सामर्थ्यों का घमण्ड टूट जाता है सर्वश्रेष्ठ होने का दावा यदि मनुष्य बुद्धिमता के आधार पर करता है तो उसका यह दम्भ मिथ्या सिद्ध होता है। अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि विचारशीलता के गुण नन्हें जीवों में भी विद्यमान हैं? भाषा द्वारा मनोभावों के आदान-प्रदान का क्रम मनुष्य तक ही सीमित नहीं है। वरन् अन्य जीव भी संकेतों द्वारा अपने भावों को व्यक्त करते हैं। कई बातों में तो ये मनुष्य से भी आगे हैं। इनमें अतीन्द्रिय क्षमताएँ भी होती हैं जिससे प्रकृति में होने वाले परिवर्त्तनों, घटनाओं की जानकारी बहुत समय पहले ही प्राप्त कर लेते हैं।

डा० फिशर एक कीट शास्त्री के रूप में प्रख्यात हैं। कीड़ों पर लम्बे अध्ययन एवं शोध कार्य के उपरान्त उन्होंने कहा कि चींटियों में सन्देश प्रसारित करने की एक विशेष प्रक्रिया है। उन्हें जब कहीं खाद्य पदार्थ की जानकारी मिलती है तो इसकी सूचना अन्यों को देने के लिए अपने पेट से एक विशिष्ट प्रकार का रासायनिक स्राव निकालती हैं। जिसकी गंध पाकर अन्य चींटियों को पता चल जाता है कि अमुक स्थान पर खाने योग्य पदार्थ है। वे कुछ ही क्षणों में ठीक उसी स्थान पर पहुँच जाती हैं जहाँ से उनको सूचना मिली थी। बिना किसी भेदभाव, झगड़े के उनका सहयोग चलता है। मिल बाँटकर खाने, संग्रह की संकीर्णता भरी प्रवृति म अपनाने का इनका उदाहरण मानव जाति के लिए भी अनुकरणीय है।

गिलहरियों में संकेतों का आदान-प्रदान किस प्रकार होता है तथा उनके किस संकेत का क्या अर्थ होता है, इस पर ब्रिटेन के भूतपूर्व कृषि मंत्री जानटेलर ने बहुत दिनों तक अध्ययन किया? वे लिखते हैं कि एक समय दो नर गिलरियों के बीच संकेतों के संचार में एक अपनी पूछ खड़ा करता है तो दूसरा इसके उत्तर में अपनी पूंछ नीची कर लेता है। यह इस बात का परिचायक है कि कहीं चलने की बात हो रही है जिसमें पहले के प्रस्ताव को दूसरे ने स्वीकार कर लिया? पहला नर गिलहरी अपनी पूंछ को घुमाता और आँखे तरेरता है तो दूसरा अपनी आँखे फैला देता है। एक अपने कान खड़े करता है तो दूसरा नीचे कर लेता है। इससे यह पता चलता है कि पहला नर दूसरे से शक्तिशाली है। उसके वर्चस्व को दूसरा भी स्वीकार करता है सभी गिलहरियों को अपनी शक्ति का बोध कराने के लिए एक गिलहरी को साथ लेकर शक्तिशाली नर तेजी से दौड़ता सम्पर्क साधता है। परिवार के मुखिया के समान वह अपने समूह के सभी गिलहरियों से सांकेतिक भाषा में उनके समाचार पूछता है।

डा० टेलर का कहना है कि विभिन्न ऋतुओं में वे ही संकेत भिन्न अर्थ प्रकट करते हैं। वसन्त में कान खड़े करना, पूंछ उठाने का अभिप्राय है कि उस गिलहरी को अधिक फल संग्रह करने का अधिकार है। वह अपनी पसन्द की मादा को सहयोगी के रूप में चुन सकता है। यह इस बात का प्रमाण है कि विचारशीलता का गुण इनमें भी पाया जाता है। सोचने की सीमा इनकी भले ही अपनी आवश्यकताओं के इर्द-गिर्द तक ही सीमित हो। किन्तु इस सीमित क्षेत्र में भी उनकी बुद्धिमता देखते बनती है। सीमित शक्ति सीमित बुद्धि सीमित साधनों में भी इनका जीवन हल्का फुल्का, उमंगों से भरा है। सामान्य जीव अभावों में भी इतना सुखी प्रसन्नता युक्त जीवन व्यतीत कर सकते हैं, तो फिर मनुष्य क्यों नहीं सुखी सन्तुष्ट रह सकता है? साधन बुद्धि, सामर्थ्य हर दृष्टि से वह इन नन्हें जीवों से आगे है। इनसे भी मनुष्य प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।

विकसित भाषा प्रणाली ही मात्र विचारों मनोभावों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को व्यक्त करने का माध्यम हो सकती है यह आवश्यक नहीं। मानवेत्तर जीव अपनी सांकेतिक भाषा अपनी इच्छाओं, आंकाक्षाओं को भली-भाँति दूसरों तक पहुँचा देते हैं डा० सी० के० कार्पेन्टर पेन्सिलवानिया स्टेट विश्व विद्यालय के साइकोलोजिस्ट हैं। एन्थ्रोपोलाजी विभाग के अध्यक्ष भी हैं। बन्दरों के आदतों एवं संकेतों का इन्होंने अध्ययन किया। कुछ रोचक तथ्यों को उद्‌घाटन हुए। यदि कुछ बन्दर मिल-जुलकर वृक्ष की डाली को हिलाते हैं तो इसका अर्थ है कि वे अन्य बन्दरों को सूचित कर रहे हैं कि उस पेड़ पर उनका अधिकार है। दूसरे बन्दरों को उस पेड़ का फल एवं चारा खाने का कोई अधिकार नहीं है। उनके इस संकेत से दूसरा समूह चला जाता है।

कौन सी वस्तु खाने योग्य है कौन सी नहीं, यह परख करने की क्षमता भी जीवों में पूर्णतया विकसित होती है। अपनी प्रकृति एवं आवश्यकता के अनुरूप वे उन्हीं खाद्य पदार्थों का चुनाव करते हैं जो उनके लिए उपयोगी एवं लाभ प्रद होते हैं। ब्रिटेन के चिड़िया घर की अधिष्ठात्री हैं श्रीमती देवरा क्लेमान। वह प्राणिशास्त्र विशेषज्ञ भी हैं। इन्होंने कुत्तों की चौदह विभिन्न जातियों का अध्ययन किया उनका कहना है कि खाद्य-अखाद्य की परख कुत्ते तुरन्त कर लेते हैं। वे वस्तुएँ जो कुत्तों के समक्ष कभी नहीं आयी हैं। उनमें खाने योग्य और न खाने योग्य के निर्धारण की प्रक्रिया विशिष्ट है। ऐसे पदार्थों को कुत्तों के समक्ष रख देने पर वे सर्वप्रथम अपनी घ्राण शक्ति से सूँघते हैं। पुनः उन वस्तुओं पर पेशाब करके सूंघते हैं। तत्पश्चात चयन करते हैं कि वह वस्तु ग्रहण करने योग्य है अथवा नहीं। श्रीमती 'क्लेमान' ने अपने अध्ययन के द्वारा पाया कि कुत्ते इस चुनाव की प्रक्रिया में कभी भूल नहीं करते हैं।

शरीर के लिए किसी भी नई वस्तु के उपयोगी अथवा अनुपयोगी के निर्धारण में वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रयोग परीक्षण करने पड़ते हैं। तब कहीं जाकर यह निश्चत हो पाता है कि वह वस्तु कैसी है। जब कि कुत्ते इसका निर्णय तुरन्त कर लेते हैं। परमात्मा ने जीवों की इन्द्रियों को इतना समर्थ बनाया है जिससे वे बिना किसी बाह्य साधनों के अपने लिए उपयोगी का चुनाव कर सकते हैं। उनकी यह क्षमता देखकर विस्मित रह जाना पड़ता तथा श्रेष्ठता का दम्भ टूट जाता है।

अधिक संवेदनशील होने दूसरों के दुःख क्लेशों में हिस्सा बटाने के कारण ही मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ जीव घोषित किया गया है। अन्यथा शक्ति, के क्षेत्र में तो अन्य जीव मनुष्य से कहीं बहुत आगे हैं। संवेदनशीलता का गुण इनमें भी पाया जाता है। कभी-कभी तो ऐसे उदाहरण भी देखने को मिलते हैं जिन्हें देखकर हृदय जीवों के प्रति श्रद्धा से भर उठता है तथा यह सोचना पड़ता है कि ये नन्हें जीव भी मनुष्य से कम नहीं हैं।

इस्लामाबाद (पाकिस्तान) के निकट की एक घटना है। एक ट्रक तीव्र गति से चला जा रहा था। सड़क पर एक कुतिया अपने नवजात शिशु को थन से लगाये दूध पिला रही थी। कुतिया ट्रक की चपेट में आकर तुरन्त मर गई। बच्चा असहाय माँ की लाश के निकट बैठा कातर दृष्टि से चारों ओर देख रहा था। सड़क के किनारे लगे पेड़ पर एक बन्दरिया बैठी थी। बच्चे की कातर दृष्टि से उसका ममत्व उमड़ पड़ा झट वृक्ष से उतरकर उसने पिल्ले को अपने सीने से लगा लिया। उसे दूध पिलाने लगी। कहते हैं कि वह दोनों कभी एक दूसरे को छोड़कर नहीं जाते। एक माँ के समान वह पिल्ले को दूध पिलाती, देख भाल करती। कुछ समय, बाद पिल्ला मर गया। बन्दरिया को इतना अधिक सदमा पहुँचा कि उसने खाना, पीना तक छोड़ दिया। फलस्वरूप वह भी मर गई। अपने बच्चों तक ही आत्मीयता को सीमित रखने वाले मनुष्य के लिए यह घटना प्रेरणास्पद है। सामान्य जीव जिनकी सामर्थ्य अल्प है इतने संवेदनशील हो सकते हैं तो मनुष्य की सामर्थ्य, कई गुना अधिक है। उसकी सामर्थ्य का सदुपयोग एवं महत्ता तो आत्म विस्तार में ही निहित है।

इसी प्रकार की एक घटना का वर्णन दक्षिण अफ्रिका के वन में नियुक्त गेम वार्डन डेस्मोंड वाराडे करते हुए लिखते हैं कि मुझे शिकार करने में गहरी अभिरुचि थी। एक दिन ऐसी मार्मिक घटना घटी जिसने मेरे जीवन की दिशा धारा ही बदल दी। झील के पास पानी पी रहे एक चीते को मैंने गोली मार दी। निकट जाकर देखा तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मादा थी। उसके थनों से दूध बह रहा था। मादा चीते को वहीं छोड़कर उसके बच्चों की खोज करने लगा। थोड़ी दूर पर झाड़ियों के झुरमुट में दो बच्चे खेल रहे थे। चीते के दोनों बच्चों को लेकर घर आया। मेरी कुतिया ने अभी कुछ दिनों पूर्व दो पिल्लों को जन्म दिया था। वह अपने बच्चों को दूध पिला रही थी चीते के दोनों बच्चे टकटकी लगाये पिल्लों को दूध पीते देख रहे थे। लगता था कि वे भी कुतिया से दूध की माँग कर रहे हों। कुतिया की दृष्टि इन पर पड़ी। एक अनहोनी घटना घटी। वह अपने बच्चों को छोड़कर चीते के बच्चों के पास दौड़ आयी। दोनों बच्चों को अपने थनों से लगा लिया। वे भी बिना किसी डर के दूध पीने लगे। कुछ दिनों तक वह चारों बच्चों को दूध पिलाती रही। सीमित दूध एवं दो अतिरिक्त का भार आ पड़ने के कारण वह कमजोर हो गई। यह देखकर मैंने अतिरिक्त दूध की व्यवस्था बनायी। कुतिया की इस संवेदनशीलता को देखकर हमने कभी भी जीवों को न मारने की शपथ ले ली।

बन्दर भी कितना संवेदनशील एवं सहयोगी हो सकता है इसका एक उदाहरण दुर्ग (म० प्र०) में पिछले दिनों देखने को मिला। पेड़ के नीचे एक राहगीर दिन में विश्राम कर रहा था। उसका बटुआ जिसमें दो हजार रुपये थे वहीं गिर पड़ा। उसके वहाँ से चले जाने पर वृक्ष पर बैठे बन्दर की दृष्टि बटुए पर पड़ी। वह व्यक्ति सारे दिन बटुए को ढूँढ़ता रहा। उसी रास्ते सायंकाल लौट रहा था। बन्दर बटुए को लिए उसका इन्तजार कर रहा था। जैसे ही वह यात्री लौटा बन्दर दौड़कर उसके पास जा पहुँचा। रुपयों से भरे बटुए को यात्री के समक्ष फेंककर वापस वृक्ष पर जा चढ़ा। अप्रत्याशित घटना से वह आवाक रह गया। कृतज्ञता भरी दृष्टि से वह बन्दर का जाना देखता रहा।

मनुष्य समर्थ है विचारशील भी। किन्तु मात्र इस आधार पर वह अपनी श्रेष्ठता का दावा नहीं कर सकता बुद्धि' तो जीवों में भी है। सांकेतिक भाषा प्रणाली जीवों के मनोभावों को व्यक्त एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करने में पूर्णतया समर्थ है। सूझ-बूझ की दृष्टि से भी वे मनुष्य से आगे ही हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि मात्र मनुष्य ही एक समझदार प्राणी है। ★

दुर्गुणों ने बड़े-बड़ों को नीचा दिखाया है। छोटा छेद भी बड़ी नाव को नदी में डुबा देने के लिए पर्याप्त होता है।

चन्द्रमा को गृहस्थ जीवन में कुछ कमी न थी, पर कामुकता के प्रवाह में अहिल्या का शील लूटने के लिए चले और सदा के लिए कलंकित हो गये।

नहुष ने मदोन्मत्त होकर ऋषियों को पालकी में जोता और जीवन भर की कमाई गवाँ बैठे।

बेन का मात्सर्य उन्हें ले डूबा। प्रजा को विवश करते थे कि वह उन्हें ईश्वर माने और वैसा ही सत्कार करे।

लोभी सहस्रबाहु न जमदग्नि का घर खखोर लिया तो अभीष्ट सम्पत्ति के स्वामी बनने की अपेक्षा परशुराम के कुल्हाड़े से अपनी भुजाएँ कटा बैठे।

पुरोहित त्वष्टा से किसी बात पर तुनक कर क्रोधान्ध होने वाले इन्द्र को सुरपति के पद से च्युत होना पड़ा।

व्यामोह ग्रह त्रिशंकु के पराक्रम की सीमा न थी पर वे भ्रम जंजाल में उलझ कर न धरती पर चैन से रह सके और न स्वर्ग ही पहुँच सके।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के पड़ोसियों में से एक भी बड़े से बड़े प्रतापियों को नीचा दिखा सकता है तो जिनने इन मनोविकारों में से कइयों को एक साथ अपना रखा है उनकी दुर्गति होने में तो संदेह ही क्यों रहेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठतम का वरण

मगध राज की कन्या सुहासिनी जब वयष्क हुई तो उसके लिए उपयुक्त वर की तलाश होने लगी। राज कन्या ने पिता से अनुरोध किया, उसे मर्जी का पति चुनने दिया जाय। वह किसी सर्व तन्त्र स्वतन्त्र से विवाह करना चाहती है। पराधीन तो कष्ट ही कष्ट भोगते हैं। उनके साथ रहने में आनन्द कहाँ?

राजा ने इच्छित वर का चयन करने के लिए स्वयंवर की व्यवस्था कर दी। राजकुमार, व्यवसायी, विद्वान कलाकार अलग-अलग कक्षों में ठहराये गये। सबको अपने अपने समुदायों में बैठने की व्यवस्था की गई ताकि राजकुमारी जिस भी वर्ग को उपयुक्त समझे उसमें चयन कर लें।

सर्वप्रथम सुहासिनी राजकुमारों के समुदाय में गई। पूछा—आप लोगों का राज्याधिकार तो प्रजाजनों और सामन्तों सभा सदों की इच्छा पर निर्भर रहेगा। यदि वे रुष्ट हो गये तो फिर शासक बनने की स्वतन्त्रता कैसे दिखा सकेंगे?

राजकुमारों से उत्तर न बन पड़े। पहली बार उनने अपनी पराधीनता अनुभव की और निराश लौट गये।

फिर वे विद्वानों के वर्ग में गईं। उनसे पूछा—गुण ग्राहकों के अभाव में आप अपनी विद्या का परिचय कैसे देंगे और उस विशिष्टता से किस प्रकार लाभान्वित होंगे?

उत्तर उनसे भी न बन पड़ा। विद्या की उपयोगिता गुण ग्राहकों पर निर्भर है इसलिए वे भी पराधीन ही सिद्ध हुए। कन्या ने इस वर्ग को विदा कर दिया।

सम्पन्न व्यवसायियों की बारी आई। पूछा—दुर्भिक्ष पड़ा तो? अराजकता फैली तो? उपलब्ध उत्पादन की खपत न हुई तो? व्यवसाय कैसे चलेगा।

व्यवसायियों ने अपनी पराधीनता स्वीकार की और वापस लौट गये।

कलाकारों के सामने भी विद्वानों जैसी कठिनाई थी। पारखी न हों तो उनकी कला को उन्मत्तों जैसा प्रलाप ही समझा जा सकता था। उनमें से कोई भी आत्म निर्भर नहीं था। पराधीन को सुख कहा? जो सुखी नहीं उसके साथ बँधने से क्या लाभ? कन्या ने सभी अभ्यागतों को निराश कर दिया और साथ ही वह उपयुक्त वर न खोज पाने के कारण स्वयं भी निराश हो गई। खिन्न मन एकान्त सेवन करने लगी।

महामनीषी कौदन्य का उधर आगमन हुआ। मगध राज कन्या, समेत उनके दर्शन के लिए उपस्थित हुए। साथ वर न मिलने का कारण और तज्जनित निराशा का भी परिचय कराया।

> आँख मीच कर दूध पीने वाली बिल्ली समझती है कि घर का कोई व्यक्ति उसे देख नहीं रहा है, उसी प्रकार छिपकर पाप करने वाला सोचता है कि उसके कुकृत्यों पर सदा पर्दा ही पड़ा रहेगा। —महाभारत

कौदन्य ने राजकन्या से पूछा—दूसरों के सहारे सुखी रहने की इच्छा करने वाली आप भी क्या पराधीन नहीं हुईं?

बात काँटे की थी। अपनी पराधीनता का प्रथमबार पता चला। अब आगे सोचा तो आत्मा पर काया और कामना का बन्धन और भी अधिक सघन प्रतीत हुआ। सोचा—भव-बन्धनों से अपने को मुक्त करने की व्यवस्था करने के उपरान्त ही आनन्द उपलब्धि की बात सोचना चाहिए।

साथी खोजने का विचार उनने छोड़ दिया और भव-बन्धनों को काटने वाली तप साधना में निरत हो गईं। आत्म कल्याण और लोक कल्याण के समन्वय परमार्थ को अपना जीवन सहचर बना लिया। विवाह की चर्चा सदा के लिए बन्द हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायत्री मंत्र में हजार अणुबमों से अधिक शक्ति

कुछ समय पूर्व बम्बई के प्रख्यात साप्ताहिक 'ब्लिट्ज' के सम्पादक संचालक श्री करंजिया लन्दन गये थे। वहाँ रह रहे विश्व विख्यात विचारक कोयस्लर से भेंट की। इस भेंट में अन्य विषयों के अतिरिक्त परमाणु युद्ध की सम्भावना और उसकी विश्वव्यापी प्रतिक्रिया पर लम्बा वार्त्तालाप हुआ। इस सन्दर्भ में वे बहुत चिन्तित दिखाई पड़े। श्री करंजिया ने पूछा—"यदि अणु आक्रमण हुआ तो हम अपनी रक्षा कैसे करेंगे ?

इसके उत्तर में कोयस्लर ने कहा—"गायत्री मन्त्र में हजार परमाणु बमों से अधिक शक्ति है। यदि भारतवासी सामूहिक रूप से इस उपासना को आरम्भ करदें तो उससे प्रकट होने वाली शक्ति आक्रमणकारियों के हौसले पस्त कर सकती है।"

गायत्री मन्त्र के अर्थ स्वरूप और प्रभाव से अनेक लोग परिचित हैं पर उसकी भौतिक क्षेत्र में असाधारण रूप से कार्य कर सकने वाली क्षमता का अनुभव दूसरे लोगों ने नहीं किया जैसा कि उपरोक्त महान् दार्शनिक ने।

साम्यवादी से अध्यात्मवादी के रूप में बदल जाने वाले इन महा विद्वान का परिचय पाठक जानना चाहेंगे। इसलिए उनके सम्बन्ध की कुछ संक्षिप्त जानकारियाँ नीचे की पंक्तियों में दी जा रही हैं।

आर्थर कोयस्लर बुडापेस्ट हंगरी में जन्मे। उनका परिवार सुसम्पन्न था, फिर भी रूसी हलचलों के उतार-चढ़ाव में उस परिवार को बुरे दिन भी देखने पड़े। कोयस्लर लम्बे समय तक साम्यवादी प्रचारक भी रहे और पत्रकार भी। उन दिनों साम्यवाद की सर्वोत्कृष्टता का जूनून उन पर सवार था और वे उसे जनता के उद्धार का एक मात्र उपाय मानते रहे।

कोयस्लर ने मात्र वाणी और लेखनी से ही प्रचार कार्य नहीं किया। वरन् समय आने पर उनने बन्दूक भी कन्धे पर उठाई और सेना में एक वरिष्ठ योद्धा की तरह काम करते रहे। वे जनरल फ्रैंको के विरुद्ध लड़े और पकड़े जाने पर जेल में बन्द भी रहे। वहाँ से किसी प्रकार भागे तो पैरिस में पकड़े गये। बाद में वे ब्रिटिश सेना में भर्ती हुए और साम्यवाद के समर्थन में जो कुछ कर सकते करते रहे।

इस बीच उन्हें स्वतन्त्र चिन्तन का अवसर मिला और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रचलित शासन प्रणालियों में से एक भी पूर्ण निर्दोष नहीं है। इन्हें मथ कर नवनीत निकाला जाना चाहिए और समाज व्यवस्था तथा शासन प्रणाली का अभिनव गठन इसी आधार पर किया जाना चाहिए। व्यक्ति के चिन्तन चरित्र और व्यवहार का स्वरूप भी नये ढाँचे में ढाला जाना चाहिए। वर्तमान मनुष्य की उपयुक्त जीवनचर्या अपनाने की मनःस्थिति में नहीं है। ऐसी दशा में व्यक्तियों के अनुरूप ही समाज एवं शासन का स्तर हो सकता है। इस चिन्तन ने उन्हें साम्यवादी परिधि में अवरुद्ध नहीं रहने दिया वरन् मानवतावादी बन गये। उनने इंगलैण्ड की नागरिकता ग्रहण करली। इसके उपरान्त वे क्रमशः अध्यात्मवाद की ओर अधिकाधिक झुकते चले गये।

अध्यात्मवाद का उद्गम उन्हें भारत लगा और वे एक बार लम्बी भारत यात्रा पर निकले। यहाँ उनका उद्देश्य किसी राजनैतिक पर्यवेक्षण का न था वरन् यह था कि गुप्त भारत की विशिष्टताओं को खोज निकाला जाय।

इस शोध प्रयास में अनेकों विशिष्ट व्यक्तित्वों से मिले। अनेकों पुरातन इतिहास का अवशेषों के आधार पर अध्ययन किया। हिमालय के रहस्यमय क्षेत्रों की यात्रा की और इस देश की पुरातन स्थिति और आधुनिक परिवर्तन का भी गम्भीर अध्ययन किया। यह यात्रा प्रयास उन्हें बहुत ही उपयोगी प्रतीत हुआ और उसका विवरण भी सार संक्षेप में प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोयस्लर के प्रकाशित ग्रन्थों में कितने ही बहु-चर्चित और सारगर्भित हैं। उनमें से कुछ प्रमुख हैं—(१) दि योगी एण्ड कमिसार (२) इन साइड एण्ड आउट-लुक (३) लाइफ आफ्टर डैथ (४) एक्ट आफ क्रियेशन (५) लोटस एण्ड दि रावो (६) एरायवल्स एण्ड डिपार्चस् (७) पोस्ट इन दि मशीन (८) गाड दैट फेल्ड (९) डार्कनेस एट नून (१०) जेन्स ए समिंग अप' (११) क्रिक्स टू बायबल आदि। इनमें से डार्कनेस एट नून' का समस्त संसार में अत्यधिक प्रचार हुआ। इन पुस्तकों में उनने अपने दृष्टिकोण को निर्भीकता पूर्वक व्यक्त किया है और भारत की वर्तमान धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में चल रहे पाखण्ड की कटु भर्त्सना भी की है। कारण कि उनका मौलिक चिन्तन बहुत अंश तक साम्यवादी प्रभाव से ही किसी हद तक प्रभावित बना रहा और उनने श्रद्धा की तुलना में आलोचना को अधिक मान्यता दी। इस पर भी उनने वे भारतीय संस्कृति, दर्शन एवं अतीत के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है और उसे मानव जाति के उत्कर्ष में उपयुक्त योगदान दे सकने योग्य कहा है।

मूर्धा ब्रह्मा शिखान्तो विष्णुर्ललाटं रुद्रश्चक्षुषी चन्द्रादित्यौ कर्णौ शुक्रबृहस्पती नासापुटे अश्विनौ दन्तोष्ठावुभे सन्ध्ये मुखं मरुतः स्तनौ वस्वादयो हृदयं पर्जन्य उदरमाकाशो नाभिरग्निः कटिरिन्द्राग्नी जघनं प्राजापत्यमूरू कैलासमूलं जानुनी विश्वेदेवौ जंघे शिशिरः गुल्फानि पृथिवीवनिस्पत्यादीनि नखानि महती अस्थीनि नवग्रहा असृक्के तुर्मांसमृतुसन्धयः कालद्वमास्फालनं संवत्सरोनिमेषोऽहोरात्रमिति वाग्देवीं गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये।

य इदं गायत्रीरहस्यमधाते तेन क्रतुसहस्रमिष्टं भवति। य इदं गायत्रीरहस्यमधीते दिवसकृतं पापं नाशयति। सर्वान् वेदानधीतो भवति। सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति।

—गायत्री रहस्योपनिषद्

गायत्री वाणी की अधिष्ठात्री देवी है। उसका सिर ब्रह्ममय, शिखान्त विष्णु, ललाट रुद्र, दोनों नेत्र—सूर्य, चन्द्र, कानों के दो छेद—शुक्राचार्य, बृहस्पति, नाक के दो छेद—दोनों अश्विनी कुमार, दाँत-होठ—दोनों संध्याए, मुख—मरुत, स्तन-वसु, हृदय—मेघ, पेट-आकाश, नाभि, अग्नि, कटि—इन्द्र, जंघा—प्रजापति, उरु—कैलाश, घुटने—विश्वदेव, जंघा—शिशिर, गुल्फ—पृथ्वी, नख—महतत्व, अस्थि—नवग्रह, आँते—केतु, माँस—ऋतु सन्धि, दोनों काल वर्ष निमेष—दिन-रात।

ऐसी विराट् ब्रह्म स्वरूपिणी महाशक्ति गायत्री की शरण में अपने को समर्पित करता हूँ।

इस गायत्री गुह्य रहस्य का जो अवगाहन करता है सो हजारों यज्ञ करने वाले की तरह श्रेयाधिकारी बनता है। उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। जिसने यह रहस्य जाना उसने मानो समस्त वेदों का अध्ययन कर लिया। सब तीर्थों में स्नान कर लिया।

वाशिंगटन पोस्ट की समाचार सम्पादिका कुमारी जेनेट कुक को उनकी कुशलता के लिए 'पुलित्जर' पारतोषिक प्रदान किया गया। उस देश में पत्रकारिता के लिए मिलने वाला यह सबसे बड़ा पारतोषिक समझा जाता है। जो प्राप्त करते हैं, उनकी प्रतिष्ठा में चार चाँद लग जाते हैं।

इनाम की घोषणा वाले समारोह में ही कुमारी कुक ने उसे अस्वीकार कर दिया। साथ ही अपनी बहुत पैसे और प्रतिष्ठा वाली नौकरी से भी इस्तीफा दे दिया। इस अवसर पर उनने इन सभी छद्मों को प्रकट कर दिया जिनके कारण उन्हें सफलता और प्रतिष्ठा मिली।

कुक के इस साहस पर सभी ने उनको "ईमानदार अन्तरात्मा के दुस्साहस" की संज्ञा दी और भूल सुधार के पश्चात्ताप को भूरि-भूरि सराहा। उनकी प्रतिष्ठा घटी नहीं वरन् बढ़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अणु विकिरण और यज्ञ विज्ञान

मैक्सिको की एक महिला कैमिस्ट द्वारा अपने पति की हत्या कर डालने का सफल प्रयास किया गया। वह अपने पति से इस कदर चिढ़ गई थी कि उससे तलाक लेकर ही पीछा नहीं छुड़ाना चाहती थी वरन् यह चाहती थी कि वह दुनिया में ही न रहे !

इसके लिए उसने एक खास तरकीब अपनाई। जब वह भोजन करता तब उसकी थाली के नीचे "यूरेनियम" की थोड़ी मात्रा बखेर देती। उसके विकिरण का प्रभाव थाली पार करता हुआ खाद्य पदार्थ तक पहुँचता रहा। पति पहले दुर्बल, पीछे बीमार पड़ा और नाड़ियों की ऐंठन अकड़न से मर गया। रोग न होने पर भी इस तरह की मृत्यु का भेद पोस्ट मार्टम के बाद पाया गया। उसकी नसों में यूरेनियम का विकिरण पाया गया।

अणु आयुधों के निर्माण में यूरेनियम का उपयोग होता है। उसके माध्यम से जो भी वस्तुएँ बनती हैं वे विकिरण फैलाती हैं। रोगियों को अस्पताल में रेडियो आइस्टोपों का प्रचलन हुआ है। उसका तत्काल तो कोई खास असर देखने में नहीं आता पर धीरे-धीरे उसका प्रभाव शरीर में फैलता रहता है और ल्युकोमिया—रक्त कैन्सर जैसे रोग उत्पन्न करता है।

अणु आयुधों की दिनों-दिन कितने ही देश घुड़-दौड़ जैसी बाजी लगाये हुए हैं। उनके सही बनने न बनने की जाँच विस्फोट परीक्षणों द्वारा होती है। जमीन के अन्दर, हवा में, समुद्र में, रेगिस्तान में कहीं भी उसका प्रयोग परीक्षण क्यों न किया जाय थोड़े समय तो उसका असर कुछ मील की परिधि में ही होता है किन्तु वह धीरे-धीरे, समूचे वातावरण में फैलता जाता है और उसका प्रभाव, वनस्पतियों, प्राणियों तथा मनुष्यों पर विषाक्तता जैसा होता है। बिजली उत्पन्न करने के लिए अणु भट्टियाँ बन रही हैं। उसकी राख को कहाँ डाला जाय यह एक प्रश्न है। उसे जहाँ भी फेंका जाय। विकिरण दूर-दूर तक फैलता है और उस क्षेत्र के निवासी प्राणियों पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

एक बार अमेरिका ने एटाल निर्जन द्वीप पर अणु परीक्षण किया था। देखा यह जाना था कि उसका प्रभाव कितनी दूर तक पड़ता है। विस्फोट के उपरान्त थोड़ी ही देर में वहाँ से ५० मील के अन्तर पर बसे हुए रोजलैण्ड द्वीप तक असर पहुँचा और वहाँ के निवासी तेजी से बीमार पड़ने लगे। पता चलते ही उन्हें जल्दी से हटाया गया। पर इतनी ही देर में वहाँ के ढेरों निवासी बीमार पड़े। कितने ही बीमार पड़े और कितने ही असाध्य रूप से बीमार हो गये और थोड़े समय में तड़प-तड़प कर मर गये।

यह एक घटना है। ऐसे-ऐसे अनेकों उदाहरण अनेक अणु आयुधों के निर्माण वाले देश कर चुके हैं, पर यह पता नहीं चलने दिया कि उसके कारण कितनी दूर के घेरे में उस विनाश लीला की चपेट में आये।

अणु विकिरण का असर धीरे-धीरे होता है। वह पानी की लहरों की तरह चलती है और अपने प्रभाव से प्रभावित करती हुई संसार के समूचे क्षेत्र को देर-सबेर में लपेट लेती है। अणु शक्ति का अस्त्रों के अतिरिक्त अन्य कितने ही कामों में प्रयोग हो रहा है और उनमें से अधिकांश के द्वारा नाशकारी विकिरण फैल रहा है।

एक घटना इंग्लैण्ड की भी ऐसी ही प्रकाश में आई। विंडर केल नामक स्थान में एक 'रिएक्टर' चल रहा था उसने कहीं से विकिरण लीक करना आरम्भ कर दिया। उसका असर बाजार में बिकने वाली खाद्य पदार्थों पर पड़ने लगा। बीमारियों का पता चलते ही 'रिएक्टर' तुरन्त बन्द करना पड़ा।

एक बार एक सुई की बराबर अणु विषाक्तता समुद्र में गिर पड़ी फलतः २४ घण्टे में १०० मील लम्बा और १५ मील चौड़ा समुद्र उससे प्रभावित हो चुका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अणु विकिरण वायुमण्डल में मिश्रित 'ओजोन' तत्व को जर्जर कर सकती है और सूर्य की किरणों को—पृथ्वी तक आने वाली छलनी को—अस्त-व्यस्त कर सकती है। फलतः बढ़े हुए तापमान से ध्रुवों की बर्फ पिघलने और समुद्रों में बाढ़ आने का खतरा हो सकता है।

वायुमण्डल में बिखरती रेडियो संक्रियता सैकड़ों वर्षों तक बनी रह सकती है और उसका पूरा प्रभाव मिटने में हजार वर्ष भी लग सकते हैं इस अवधि में उस प्रभाव से कितने बीमार पड़ेंगे। कितने अपंग होंगे और कितने बेमौत मरेंगे इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता।

सबसे बड़ा प्रश्न इस निर्माण में बचे हुए कचरे का है। अमेरिका की टेवेसी स्थित प्रख्यात ओकरिज नेशनल लेबोरेटरी ने कचरे को जमीन में गाढ़ने का निश्चय किया। एक सीमेंट के कोठे में कचरा भरा और उसे ३०० फीट गहरा गड्ढा खोदकर दफनाया। कुछ दिन तक इसे सफल प्रयोग माना जाता रहा। किन्तु पृथ्वी के भीतर की किसी भूकम्प जैसी हलचल से वह कमरा फट गया और विकिरण बाहर आकर वनस्पतियों, प्राणियों तथा मनुष्यों पर अपना घातक प्रभाव छोड़ने लगा। प्रयोग असफल माना गया।

अणु शक्ति से लाभ उठाने के लिए सभी आतुर हैं पर यह समझ में नहीं आ रहा है कि निर्माण काल के आरम्भ एवं अन्त में जो विकिरण फैलेगा उस अवशेष का क्या किया जा सकता है। उपाय न निकला तो यह भस्मासुर महाविनाश रचकर रहेगा।

एक परीक्षण में इस विकिरण का कोमल शरीर बच्चों पर अधिक असर पाया गया। २४ बड़े देशों के पर्यवेक्षण में अफ्रीका में ४४ बच्चों में से एक, आस्ट्रेलिया में से ५३ में से एक। मिश्र में ८६ में से एक, मलेशिया में ६३ में से एक विकलांग पाया गया। सभी देशों का औसत फैलाने पर ११६ में से एक बच्चा विकलांग पाया गया। इसका कारण अणु विकिरण को माना गया। जहाँ विकिरण की भरमार है वहाँ यह विपत्ति भी अधिक है और जहाँ वायु अपेक्षाकृत शुद्ध है वहाँ दुष्प्रभाव भी कम हैं।

विकिरण की रोकथाम के सम्बन्ध में एक उपाय "यज्ञ" के प्रभाव को उपयोगी पाया गया है। अणु विज्ञान नया नहीं है। भारत में महर्षि वैशेषिक ने अणु वाद की विस्तृत विवेचना की है। इससे प्रतीत होता है कि उन दिनों इस शक्ति का प्रयोग होता होगा और उसके दुष्प्रभाव से बचने के लिए यज्ञ प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिया गया होगा।

चेचक के अन्वेषण कर्त्ता डा० डापकिन्स ने यज्ञ के धुँए को चेचक निवारण में बहुत उपयोगी पाया है। फ्रांस के वैज्ञानिक प्रो० विलवर्ट ने घी और शकर के धुँए को चेचक तपेदिक जैसी बीमारियों के विनाश में बहुत सहायक पाया है। डा० टायलिट ने किशमिश, घी, शकर के धुँए को टाइफाइड में चमत्कारी लाभ दिखाता हुआ पाया है।

> लालची अपनी योग्यता और मेहनत से अधिक चाहता है। इसलिये उसे अनीति अपनानी और कंजूसी बरतनी होती है। यह दोनों ही आधार ऐसे हैं जो किसी को भी ले डूबते हैं। इसी कारण लालची कमाते कम और गँवाते अधिक हैं।
>
> —सन्त तुकाराम

रूस में गाय के गोबर से लिपे मकानों पर विकिरण का कम प्रभाव पड़ते पाया गया है।

ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान हरिद्वार ने अपने प्रयोग परीक्षण में विभिन्न रोगों के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञ धूम को बहुत सफल पाया है। कैलीफोर्निया की अग्निहोत्र युनिवर्सिटी (बसन्त परांजपे—अक्कल कोट निवासी) की शोधों में भी यह पाया गया है कि यज्ञ मनुष्य के शारीरिक और मानसिक रोगों में से कितनों में ही अपना आश्चर्यजनक प्रभाव दिखाता है। अणु विकिरण की भयंकरता को ध्यान में रखते हुए सुरक्षात्मक साधन की दृष्टि से यज्ञ विज्ञान को विकसित किया जाय तो यह अत्यन्त सामयिक और अत्यन्त महत्वपूर्ण काम होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

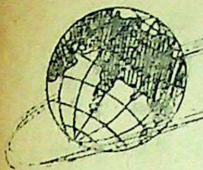

क्या पृथ्वी का नक्शा बदलने जा रहा है ?

धरातल के स्वरूप में समय-समय पर परिवर्त्तन होते रहे हैं । इनमें से कुछ ही ऐसे होते हैं जिनके लिये भूगर्भीय परिस्थितियों को उत्तरदायी ठहराया जा सके । यह क्रम तो चलता ही रहा है और चलता भी रहेगा । विचारणीय प्रश्न यह है कि अन्तरिक्षीय दबाव तथा मानवी उद्धत आचरण की इन परिस्थितियों के निर्माण में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

पृथ्वी को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला घटक सूर्य है । उसकी स्थिति में जब भी तनिक-सी उथल-पुथल होती है तो धरातल और समुद्र स्थल का सन्तुलन भी गड़बड़ा जाता है और नक्शा कुछ से कुछ बदल जाता है । इसी प्रकार मनुष्य जब भूगर्भ की सम्पदा का दोहन करने में अत्यधिक जल्दबाजी करता है तो भी स्थिति बेतरह बिगड़ जाती है ।

इन दिनों तेल, कोयला और धातुओं के उत्खनन के लिए अत्यधिक आतुरता बढ़ती जा रही है । इस बढ़ती लिप्सा का कारण यह है कि कारखानों के लिए इनकी अत्यधिक आवश्यकता पड़ रही है । द्रुतगामी वाहन भी इन्हीं के आधार पर चलते हैं । रेल, मोटर, जलयान, वायुयान आदि के लिए यही ईंधन अपेक्षित होता है । विद्युत उत्पादन में भी प्रायः इन्हीं की आवश्यकता पड़ती है ।

बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए प्रयास यह किए जा रहे हैं कि भूतल से जितना अधिक पानी निचोड़ा जा सके, निचोड़ लिया जाय । इस सबका पृथ्वी की आन्तरिक स्थिति पर भी भारी प्रभाव पड़ता है । भूगर्भ बड़ा सम्वेदनशील है । ठीक हृदय की तरह । जब शरीर पर चिन्ता, भाव सम्वेदना, आहार-व्यतिक्रम, बढ़ते कोलेस्टेरॉल, रक्तवाही नलिकाओं के मोटे होने से दबाव पड़ता है तो हृदय चीख उठता है व इसे एन्जाइना पेक्टोरिस या मायोकार्डियल इस्चीमिया कहते हैं । भूगर्भ भी जब दबाव सहन नहीं कर पाता तो ज्वालामुखी फूटने, भूकम्प आने से लेकर पर्यावरण और ऋतु परिवर्त्तन का ऐसा अवांछनीय चक्र चल पड़ता है जो भूगर्भीय समस्वरता में असाधारण परिवर्त्तन उत्पन्न करता है और उसके कारण स्थिरता पर भारी दबाव पड़ता है । इस प्रकार के परिवर्त्तनों का मनुष्य जीवन पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है, यह सहज ही समझा जा सकता है ।

पुरातत्ववेत्ताओं ने ईसा से ६००० वर्ष पुराने इतिहास में पृथ्वी पर हुई उलट-पुलट का विवरण ढूँढ़ निकाला है । "वर्ल्ड एथनालाजी फ्रॉम ६००० बी० सी०" पुस्तक में ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किए गये हैं जिनसे प्रतीत होता है कि नदियों के प्रवाह बदल गए । धरातल पर समुद्र घुस पड़े और समुद्रों की हलचलों ने कितने ही नये द्वीप विनिर्मित किए ।

"साइण्टिफिक अमेरीकन" (अप्रैल ८५) पत्रिका में वैज्ञानिक द्वय डा० ग्रेगरीविन्क एवं जैसन मॉर्गन ने "द अर्थ्स हॉट स्पॉट्स" शीर्षक से एक निबन्ध प्रस्तुत किया है जिसमें उन्होंने इस विषय का विस्तार से विवेचन किया है । वे कहते हैं कि भूगर्भ शास्त्री यह मानते हैं कि पृथ्वी की सतह स्थिर नहीं है । इसमें कुछ बड़े-बड़े टुकड़े(प्लेट्स) तैरते रहा करते हैं और कभी-कभी टकराते भी रहते हैं । विज्ञान की इस शाखा को "प्लेट टेक्टोनिक्स" नाम दिया गया है । इसके अनुसार पृथ्वी की १०० से १५० किलोमीटर मोटी ये प्लेटें होती हैं जिस पर भूखण्ड बने होते हैं किन्तु समुद्र के नीचे इस प्लेट की मोटाई ५० से ७५ किलोमीटर पायी जाती है । इस प्लेट को भूविज्ञानी "लियोस्फियर" कहते हैं । इस परत के नीचे २०० किलोमीटर मोटी दूसरी परत होती है जिसे "एस्थिनोस्फियर" कहा जाता है । आज की भूभौतिकी विज्ञान का मूल विषय यह जानना है कि जो स्थिर है, उसके ऊपर "लियोस्फियर" किस प्रकार रेंगता है, किस दिशा में सरकता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोरोण्टो विश्व विद्यालय के अध्यापक डा० जे० स्नो० विल्सन ने इस दिशा में विशेष अध्ययन हेतु हवाई द्वीप की यात्रा की। वहाँ के निवासियों के बीच प्रचलित दन्त कथाओं तथा भूभौतिकी सिद्धान्तों के बीच सम्बन्ध स्थापन का पहला प्रयास उन्हीं ने किया।

इस सम्बन्ध में हवाई द्वीप में एक दन्त कथा प्रचलित है। वहाँ के ज्वालामुखी की एक देवी 'पीली' है जिसकी एक आँख से आग निकला करती है। पहले उसका निवास हवाई द्वीप के पश्चिम में स्थित क्वाई द्वीप में था। किन्तु समुद्र के देवता ने इन्हें जब भगाया तो वे ओई द्वीप में आईं व आकर वहाँ डेरा जमा लिया। वहाँ से भी भगाई जाने पर वे मावी द्वीप में रहीं और अब अन्ततः हवाई द्वीप में आकर बस गई हैं तथा किलाऊ नामक ज्वालामुखी के मुख से ज्वाला उगला करती हैं। यह सत्य है कि यह ज्वालामुखी भूगर्भीय प्लेटों की जरा-सी हलचल से फूट पड़ता है पर इसका इस किम्वदन्ती से कितना सम्बन्ध है, कहा नहीं जा सकता। हाँ, समुद्र के ज्वार-भाटे, तूफान आदि आने के पूर्व संकेत लावा निकलने के पूर्व मिलने लगते हैं। श्री विल्सन इस कथा को भूगर्भ विद्या के "प्लेट टेक्टोनिक साइकल" से जोड़ते हैं। भूगर्भ विद्या विशारदों ने पृथ्वी की धरातल तथा महासमुद्रों में पाई जाती ज्वालामुखी शृंखलाओं की गणना भी की है व उनका वर्गीकरण पाया है कि इनमें से कुछ नई हैं एवं कुछ अति प्राचीन। पुरानी और नई शृंखलाओं को जोड़ने से एक सम्पूर्ण कड़ी बनती है। इस दिशा को भूगर्भ शास्त्रियों ने लिथोस्फियर की भिन्न-भिन्न प्लेटों के रेंगने की दिशा मानी है।

हवाई द्वीप की उक्त कथा के अनुसार पश्चिम का ज्वालामुखी पूर्व की ओर खिसकता रहा। इस बात की पुष्टि भूगर्भ शास्त्रियों द्वारा बनाए गये रेखाचित्र भी करते हैं लेकिन इस बात का अध्ययन २०० वर्षों से हो रहा है कि किसी दिशा विशेष में प्लेट्स की सरकन क्यों होती है? उसका प्रेरक बल क्या है? आज से लगभग एक शतक पूर्व अमेरीकी भूगर्भ शास्त्री डाक्टर जेम्स ह्वाइट ने यह संशोधन प्रस्तुत किया था कि लिथोस्फियर के नीचे लावा की एक जेट धारा है जिसका प्रारम्भ हवाई द्वीप के पूर्व से होता है और पश्चिम में समापन।

अमेरिका का येलोस्टोन भी इसी प्रकार ऐसा नवीनतम स्थान है। इसका प्रारम्भ मध्य अमेरीका से होता है। खिसकने की गति क्रमशः पश्चिम से पूर्व की ओर देखी गयी है। इस प्रकार भूतल पर अन्य स्थानों पर भी हॉट स्पॉट्स के स्थानान्तरण का चित्रांकन किया गया है। यह पाया गया है कि कालान्तर में पुराने स्पॉट्स घिसते जाते हैं और नवीन बनते जाते हैं। यह प्रक्रिया सारी पृथ्वी के भूगर्भ में घटती देखी जा सकती है।

उपरोक्त अन्वेषणों के आधार पर गम्भीर विचार करने वाले यह आशंका गलत व्यक्त नहीं करते कि अगले दिनों कोई ऐसी उथल-पुथल हो सकती है जो पृथ्वी के नक्शे में असाधारण परिवर्तन करके रख दें। जिस तरह महाद्वीपों के खिसकने से भूतल की आज की स्थिति हुई एवं समुद्र ने एटलांटिस उप महाद्वीप का स्थान ले लिया, हो सकता है, अगले दिनों खिसकते जाने की प्रवृत्ति बढ़े एवं पृथ्वी वैसी न रहे जैसी कि आज दिखाई देती है।

●

राजा श्रेणिक सदा अशान्त रहते थे। निद्रा की न्यूनता, चेहरे की उदास, अतृप्ति और आशंका उन्हें हर घड़ी हैरान किये रहती थी। कारण और समाधान पूछने वे भगवान बुद्ध के पास गये।

प्रवचन चल रहा था, सभी भिक्षु अति प्रसन्न मुद्रा में उसे श्रवण कर रहे थे। चेहरे पर तेजस्विता और आनन्द की पुलकन से सभी दिव्य लग रहे थे।

राजा की जिज्ञासा को समझते हुए तथागत ने उसी प्रवचन में यह तथ्य जोड़ दिया कि मनुष्य क्लान्त और उद्विग्न क्यों रहता है। उसने कहा—तृष्णाएँ ही मनुष्य को खाती हैं। उनसे बचा जा सके तो राजा रंक सभी समान रूप से सुखी रह सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाविनाश रुक सकता है

चन्द्र यात्राओं से पता चला है कि उसमें सीमित गुरुत्वाकर्षण तो है पर कोई सशक्त कवच आच्छादन नहीं है। इस अभाव ने उसे इस योग्य नहीं रहने दिया है कि वनस्पतियों या प्राणियों का उस पर निर्वाह होता रहे। सूर्य का प्रकाश पहुँचते ही वह अत्यधिक गरम हो जाता है। उसके हटते ही चरम सीमा की ठण्डक उत्पन्न हो जाती है आये दिन होने वाले उल्का पातों ने उसमें मीलों गहरे खाई खड्ड बना दिये हैं। यह सारी विभीषिकाएँ वैसे आच्छादन के अभाव में ही वहाँ खड़ी हुई हैं, जैसा कि पृथ्वी की सुरक्षा के लिए तना हुआ है। यदि अन्य ग्रह उपग्रहों की भी यही स्थिति होगी तो वहाँ भी चन्द्रमा जैसा ही संकट खड़ा रहता होगा।

पृथ्वी के ऊपर चढ़े हुए एक के बाद दूसरे आच्छादन ऐसे हैं जिसने उसे आश्चर्यजनक सुविधा एवं परिस्थिति प्रदान की है। इसलिए बुद्धिमत्ता इसी में है कि इन कवचों के साथ छेड़खानी न की जाय।

अन्तरिक्ष में जो प्रक्षेपणास्त्र भेजे जा रहे हैं वे भले ही आच्छादनों को पूरी तरह निरस्त न कर सकें पर उनमें छेद तो अवश्य ही कर सकते हैं। यह छेद छोटे से भी हों तो असाधारण संकट खड़ा कर सकते हैं। कभी उल्कापात होते हैं तो चना-मटर जैसे टुकड़े भी अजीब प्रकाश उत्पन्न करते हुए आकाश में दौड़ते चले जाते हैं। कुछ बड़े उल्कापात हों तो अनेकों अणु बम एक साथ फूटने जैसे विग्रह खड़े कर सकते हैं। इसी सदी में कुछ दशक पूर्व साइबेरिया में कुछ बड़ा उल्कापात हुआ था। उसने संसार भर में तहलका मचा दिया। समुद्र में गिरने वाली उल्काएँ समुद्री तूफान या पृथ्वी पर वात चक्रावात उत्पन्न करती है। उनकी शक्ति आश्चर्यजनक होती है।

इन दिनों विज्ञान की अभिरुचि अन्तरिक्ष की ओर मुड़ी है। उसने धरती और समुद्र पर आधिपत्य प्राप्त करने के उपरान्त अपना कार्यक्षेत्र अन्तरिक्ष बनाया है। न केवल खोजी उपग्रह भेजे जा रहे हैं वरन् भावी महा-युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र आकाश को ही बनाने की तैयारी की जा रही है। आकाश मार्ग से ऐसे प्रक्षेपणास्त्र दौड़ते रहे हैं जो कुछ ही क्षणों में धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँच सकें और विघातक अस्त्र बरसाकर उस क्षेत्र को मटियामेट कर सकें। लेसर किरणों— मृत्यु किरणों का कार्यक्षेत्र भी आकाश ही है। अभी यह परीक्षण की बेला है। जो मारक अस्त्र बन पड़े हैं वे भी सीमित शक्ति के हैं। पर जब युद्ध अथवा खोज का कार्यक्षेत्र आकाश ही होता है तो यह असम्भव नहीं कि पृथ्वी की छतरी को पूरी तरह नष्ट करना सम्भव न हो तो भी उसमें दरार डाली जा सके, कोई खिड़की खोली या सेंध लगाई जा सके। ऐसा होने पर पृथ्वी की अत्यन्त बहुमूल्य सम्पदा गुरुत्वाकर्षण शक्ति एवं समुद्रीय जलराशि उस द्वार में होकर ऊपर उड़ सकती है अथवा ऐसी विपत्ति नीचे उतर सकती है जो पृथ्वी की विशिष्टता को नष्ट-भ्रष्ट करके उसे चन्द्रमा की तरह जीवधारियों के लिए रहने योग्य न रहने दे।

माना कि अन्तरिक्ष की छेड़खानी करके उसकी सामान्य प्राण वायु नष्ट करने से लेकर अनेक प्रकार की खिलवाड़ें सर्वसाधारण द्वारा नहीं की जा रही हैं। यह उद्दण्ड खेल तथाकथित विशिष्ट वैज्ञानिकों तथा राज-नेताओं द्वारा ही खेला जा रहा है पर विचारणीय यह है कि यह समूची पृथ्वी उन्हीं की सम्पदा तो नहीं है। जन-साधारण से भी उसका सम्बन्ध है। यह भूमण्डल किसी व्यक्ति विशेष अथवा समुदाय विशेष का बनाया हुआ नहीं है न ही यह किसी की बपौती है। फिर यदि बनाया हुआ भी हो तो उसे नष्ट करने की छूट नहीं है। आत्म-हत्या करना अपराध है। फिर समूचे घर या गाँव में आग लगाकर उसमें रहने वालों को समाप्त कर देना तो और भी बड़ा अपराध है चाहे वह घर या गाँव उसी का अपना बनाया हुआ है। अन्तरिक्ष को विषाक्त करके उसकी प्राण वायु को विरली कर देना अथवा पृथ्वी के आवरण कवच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से खिलवाड़ करना किसी देश विशेष से शत्रुता निभाना नहीं है। वरन् समूची चर अचर सृष्टि व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट कर देना है। उसे करने वाले जो भी हों। उस क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा जो भी बनाते बढ़ाते हों उन्हें परमात्मा की इस सुन्दर कलाकृति का विनाश करने वाले अपराधी ही गिना जायगा।

इस पृथ्वी पर जल, थल और वायु का एक सुन्दर समन्वय है। इस पर प्राणि मात्र का अधिकार है। इस सन्तुलन को स्थिर रखने में ही विश्व नागरिकता का निर्वाह है। यदि उसे नष्ट किया जाना है तो उत्पातियों और उन्मादियों को कुछ भी करते रहने की छूट नहीं दी जा सकती है। शेष लोग मूक दर्शक बनकर नहीं बैठे रह सकते। उनका अपरिहार्य कर्त्तव्य हो जाता है कि ऐसे कुकृत्यों को रोकने के लिए वातावरण बनाएँ और ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करें जिसमें किसी बड़े से बड़े को ही प्रकृति के साथ अनुपयुक्त छेड़छाड़ करने वाले अपने हाथ रोकने के लिए विवश होना पड़े।

इस सृष्टि संरचना के पीछे एक पूरक या प्रतिद्वन्दी सन्तुलन काम कर रहा है इस तथ्य को सिद्धान्ततः बहुत पहले ही स्वीकार किया जा चुका है। अणु का प्रतिद्वन्दी प्रति अणु— विश्व का प्रतिद्वन्दी प्रति विश्व की सत्ता रहने से जो है वह सन्तुलित रीति से अपनी सत्ता एवं गतिविधि ठीक तरह बनाये हुए है। बैलेन्स बनाये रहने के लिए यह आवश्यक भी था अन्यथा एक ओर समूचा वजन बढ़ जाने से असन्तुलन जन्य संकट ही खड़ा होता।

जन्म के पीछे मृत्यु, सम्पदा के पीछे दरिद्रता, आक्रमण के पीछे प्रतिशोध काम करता है। अन्यथा एक ही दिशा में सफलता मिलते जाने पर जो स्थिति बनेगी उससे क्रम निर्वाह सम्भव न होगा। विश्व का प्रतिद्वन्दी प्रति विश्व और अणु का विपक्षी प्रति अणु का अस्तित्व संरचना की स्थिरता एवं गतिशीलता का आधारभूत कारण है। पृथ्वी का वजन एक ओर अधिक दूसरी ओर कम हो तो उसकी धुरी न बनेगी और घूमने का प्रचलित क्रम अस्त-व्यस्त हो जायगा।

प्रति विश्व के सम्बन्ध में जो जानकारियाँ अब तक प्राप्त की जा सकी हैं, वे उसके अस्तित्व को तो सिद्ध करती हैं पर इस स्थिति में वह ज्ञान अभी नहीं पहुँच पाया है कि जो दृश्य है उसी की भाँति अदृश्य का भी प्रयोग उपयोग सम्भव हो सके। ब्रह्माण्डीय दैत्यों के बारे में भी यही बात है। इन्हें ब्लैक होल'' कहते हैं। इनके अस्तित्व का आकलन हो चुका है उनकी क्षमता एवं बिस्तृति इतनी बड़ी है कि वे अपनी चपेट में आने वाले ग्रह नक्षत्र को भी देखते-देखते उदरस्थ कर सकते हैं और यह बता पाना सम्भव नहीं रहता कि जो निगला गया है वह उदर दरी के किस कोने में समा गया।

इसी ''अद्‌भुत'' की अनेकानेक सत्ताओं में—''ब्लैक होल'' से मिलती-जुलती कुछ छोटी-छोटी इकाइयाँ भी हैं जिन्हें पूर्ण शून्य कहते हैं। वह स्थिति जहाँ भी होती है वहाँ की अमुक इकाइयों को काम करने से वंचित कर देती है। वे ठप्प हो जाती हैं। विस्तार के लिए पोल की आवश्यकता है। जहाँ ठोस हो वहाँ फटने फैलने एवं क्रियाशील रहने की गुंजायश नहीं रहती।

तन्त्र प्रक्रिया के अन्तर्गत मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण की तरह एक स्थिति स्तम्भन भी है। स्तम्भन अर्थात् गतिहीनता जड़ता। चल वल प्रकृति प्रक्रिया है पर इसका विपरीत भाव यह भी है कि जीवन बना रहने पर भी उसका स्वरूप गतिहीन हो चले। पौराणिक गाथाओं में अहिल्या का शिला हो जाना प्रसिद्ध है। गौतम के शाप से ऐसा हुआ था। पर उसका निवारण भगवान राम के चरण स्पर्श से हो सका। यह एक उदाहरण है जिसमें चल को अचल बना दिये जाने की प्रक्रिया है। पर्वतों की यही स्थिति होती है। उनके पाषाण परमाणु किसी गति विशेष में गतिशील रहते हैं। किन्तु वे सामान्यतया चट्टानों के रूप में स्थिर प्रतीत होते हैं। यों उस स्थिरता के अन्तर्गत काम करने वाली गतिशीलता का आकलन किया जा सकता है। अमुक पर्वत अमुक क्षेत्र में इतना धँस रहा है, इतना उभर रहा है, इतना खिसक रहा है ऐसी अन्वेषण सूचनाएँ प्रायः उपलब्ध होती रहती हैं। इन उदाहरणों से चल के साथ जुड़ने वाली अचल स्थिति को उदाहरण स्वरूप जाना जा सकता है। स्तम्भन यही है। यह कोई जादू नहीं वरन् प्रकृति की अनेकों चित्र बिचित्र गतिविधियों में से एक है। उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुव में छः महीने का दिन और छः महीने की रात होती है जबकि पृथ्वी का सामान्य भ्रमण प्रक्रिया के अनुसार वह प्रायः आधे आधे समय की होनी चाहिए। किन्तु उत्तरी ध्रुव इसका अपवाद भी है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से आश्चर्यवत् दीखता है किन्तु जिन्हें प्रकृति की बहुमुखी गतिविधियों का ज्ञान है। उनके लिए यह एक परिस्थिति विशेष पर आधारित हलचल मात्र है। स्तम्भन को ऐसे ही अनेक उदाहरणों के आधार पर समझा जा सकता है।

जिन्हें 'प्रति विश्व' की सम्भावनाओं का ज्ञान है उन्हें यह स्वीकार ने में कठिनाई नहीं होना चाहिए कि पूर्ण शून्य की स्थिति कहीं हो सकती है। कहीं पैदा की जा सकती है। अथवा किसी स्थान विशेष से घसीटकर कहीं लाई जा सकती है। 'पूर्ण शून्य' का एक अर्थ महाविनाश है। तब कोई जीवित नहीं बचेगा। शून्य के क्षेत्र में यह आवश्यक नहीं कि वहाँ की सभी वस्तुओं में स्थिरता या जड़ता उत्पन्न हो चले। यह हो सकता है कि अमुक प्रकार के अणु या पदार्थ ही उसके कारण स्थिर हों और अन्य वस्तुएँ साधारण रीति से अपना काम करती रहें।

इन दिनों सर्वाधिक भयंकर अणु विस्फोट जन्य संकट इसी सन्दर्भ में पल सकता है। लेसर किरणों जैसी तरंगों को भी इस प्रकार दिग्भ्रान्त किया जा सकता है और वे अन्धे पक्षी की तरह बेतुकी उड़ानें भरती रह सकती हैं।

पुरातन अस्त्र अब इतने भयंकर नहीं रहे जिनसे बराबरी के आधार पर न लड़ा या निपटा जा सके। बारूद, डाइनामाइट जैसी उपलब्धियाँ हाथ लगने पर पुराने युद्ध और महायुद्ध लड़े जाते रहे। सामयिक हार-जीत भी होती रही। अब यह अत्यधिक लालच का विषय नहीं रहा। जापान पर दो अणु अस्त्र गिराने और उसका परिणाम देखने के उपरान्त ही प्रमुख शक्तियों के मुँह में पानी भरा है और नये ढंग से सोचने का यह सिलसिला चला है कि विरोधी से निपटने के लिए इसी आधार को अपनाया जाय। अणु बम इसी आधार पर बनते चले गये हैं और प्रतिस्पर्धा ने बात को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया है इसी प्रकार प्रक्षेपणास्त्रों की सफलता ने अन्तरिक्ष को कुरुक्षेत्र बनाने की बात सोची है। किन्तु यदि समझा या समझाया जा सके कि अन्तरिक्षीय युद्ध को—अणु आयुधों को रोकने की कोई विधा हस्तगत हो गई है या हो सकती है तो युद्ध के लिए आतुर मस्तिष्कों को अपनी योजनाएँ बदलनी पड़ सकती हैं और शान्ति में अपना लाभ देख सकते हैं। विचार यदि गहराई तक बैठ सकें तो उनके अनुरूप गतिविधियाँ भी उलट सकती है इसमें सन्देह नहीं।

विश्वास किया जाना चाहिए कि विभीषिकाओं की काली घटाएँ हटेंगी और प्रकाश की उदीयमान किरणों का अगले ही क्षणों दर्शन होगा। ★

हेम्बर्ग (जर्मनी) के एक चौराहे पर दो कारों की टक्कर हो गई। चालक उतरे और आपस में लड़ पड़े। दोनों को चोट आई। पुलिस ने उन्हें अस्पताल पहुँचाया और मुकदमा चला दिया। अस्पताल में उन्हें एक दूसरे का परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला तो आश्चर्य-जनक संयोग के लिए वे अवाक् रह गये।

ठीक दस साल पहले उसी चौराहे पर उन दोनों की मोटर साइकिलें टकराई थीं। मारपीट हुई थी और पुलिस केस बना था।

इससे भी ठीक दस वर्ष पूर्व पहले उनकी पैर साइकिलें भी इसी चौराहे पर टकराई थीं और मार-पीट करके लहू लुहान होकर घर लौटे थे।

इससे भी मजेदार बात यह है कि जब वे छोटे थे तब एक ही मोहल्ले में रहते थे। खेल के सिलसिले में दौड़ते हुए आमने सामने से आये तो आपस में टकरा गये। गुत्थम-गुत्था होने के बाद अपने घर लौटे।

हर दस साल बाद ठीक ही एक ही स्थान पर एक ही तारीख को एक जैसी टकराने वाली घटनाओं का होते रहना एक विचित्र संयोग ही कहा जायगा ऐसे संयोगों के पीछे कोई नियति चक्र होता है। क्या यह विचारणीय है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेह दुलार सुधार का कारगर प्रदर्शन

मनुष्य से लेकर थोड़ी समझ वाले पशु-पक्षियों तक में प्रशंसा के प्रति अनुराग पाया जाता है। यह प्रेम भाव का सूचक है। प्रेम एक ऐसा चुम्बकत्व है जिसमें विकसित प्राणि वर्ग में से किसी को भी झुकाया और वशवर्ती बनाया जा सकता है।

स्वामी परमानन्द ने सिंह का एक छोटा बच्चा पाल लिया था, उन्होंने उसे शाकाहारी बना लिया था। बच्चा बड़ा होने पर भी उनके साथ चलता था। समीप ही सोता बैठता यहाँ तक कि उसने अपनी दिनचर्या का क्रम वैसा ही बना लिया था। एक बार वे पालतू सिंह समेत भारत के वायसराय से मिलने गये थे।

दक्षिण अफ्रीका की उस कुतिया की सर्वत्र चर्चा है जो अपने मालिक की भेंड़ें चराकर अकेली ही ले आती है। गलती से कोई भटक जाय तो उसे ढूँढ़ कर लाती थी। चरवाहे के चले जाने पर उसने यह कार्य स्वयं सम्भाल लिया था और जब तक जीवित रही अपने कार्य का अंजाम ठीक तरह देती रही।

इसी प्रकार कई शौकीनों ने चिंपांजी, गोरिल्ला, वनमानुष जाति के बच्चों को पालकर अनुशासन में रहना और शिष्टाचार निभाना सिखाया था। इस सिखाने के पीछे प्रेम प्रदर्शन और उसके प्रमाण में छोटे-मोटे उपहार देने गोदी में उठा लेने, पीठ थपथपा देने, सिर खुजला देने जैसे प्रमाण प्रस्तुत कर दिये जाते थे।

अन्य छोटे-बड़े जीव जन्तुओं में प्रेम प्रदर्शन करने वाले के प्रति सद्भावना रखने और निकटता में प्रसन्नता अनुभव करने की विशेषता पाई जाती है।

पशु मनोविज्ञान की अच्छी जानकारी रखने वाले सरकसों के पशु प्रशिक्षक अनगढ़ जानवरों को ऐसे खेल दिखाने के लिए अभ्यस्त कर लेते हैं जैसे कर सकना मनुष्यों के लिए भी सम्भव नहीं होता। यह कार्य वे मुख्यतया प्रेम प्रदर्शन के माध्यम से ही कर पाते हैं। भूल करने पर इतना ही दण्ड काफी होता है कि उनके प्रति रुष्ट होने, उपेक्षा दिखाने जैसा अभिनय कर दिया जाय। इतने भर में वे अपनी गलती खोजने और सुधारने का प्रयत्न करने लगते हैं।

प्रेम पाकर प्रसन्न होने और प्रेमी के साथ घनिष्टता स्थापित करने, उसके संकेतों पर चलने की विशेषता समझदार पशु-पक्षियों में पाई जाती है। वह प्रयत्न पूर्वक विकसित भी की जाती है। जिन्हें ऐसा अवसर नहीं मिलता वे उस विशेषता को गवाँ भी बैठते हैं और अनगढ़ प्रकृति के ही दूसरों की भाँति बने रहते हैं। छेड़ने, डराने से भी विद्रोह बनते एवं प्रतिशोध लेते भी देखे गये हैं।

यह स्वभाव मनुष्य में और भी अधिक विकसित स्तर पर होता है। उसे दुर्गुणी अवज्ञाकारी होने का प्रधान कारण एक ही है उनसे रुष्ट रहना, प्रताड़ना देना और समय कुसमय उनकी निन्दा करते रहना। सुधारने के यह तरीके आमतौर से नाकामयाब होते हैं। क्योंकि अविकसित व्यक्तित्व में प्रताड़ना को शत्रुता गिना जाता है। उनमें इतनी समझ नहीं होती कि नाराजी का मूल कारण सोच पायें और सुधारने की पद्धति को कार्यान्वित कर पायें।

बालकों के साथ बड़ों को विशेष रूप से यही व्यवहार करना चाहिए और उनके झलकने वाले दोष-दुर्गुणों का निराकरण इसी उपाय उपचार से करना चाहिए। बड़प्पन इसमें है कि छोटों से प्यार करें और उसका प्रदर्शन करने के लिए प्रशंसा परक शब्द बोला करे। इतना ही नहीं उनकी अच्छी क्रियाओं के लिए छोटे-मोटे उपहार भी दिया करें ताकि वे अपना सम्मान समझते हुए गर्व गौरव कर सकें। प्रेम व्यवहार के अभ्यस्त होने पर ही अपनी तनिक सी नाराजी चोट करती है और वे गलती समझने तथा सुधारने का प्रयत्न करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनों से अपनी बात

सन् ८५ को हीरक जयन्ती वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। प्रज्ञा मिशन का वर्ष वसन्त पर्व से आरम्भ होता है। उसी दिन पिछले की समाप्ति भी। इस बार जानकारी प्राप्त करते ही परिजनों में एक नई स्फुरणा कौंधी और उसके प्रकाश में उनने उस उत्सव वर्ष को बहुत ही शानदार ढंग से मनाया और उसकी तैयारी के लिये उमंग भरी हिम्मत जुटाई।

आमतौर से हर्षोत्सवों के अवसर पर धूमधाम का माहौल रहता है। त्यौहार, विवाह, शादी आदि के अवसर पर प्रदर्शन, प्रीतिभोज, गायन वादन आदि का समारोह रहता है। संस्थाएँ अपने वार्षिकोत्सव अधिवेशन मनाने में साज समूह एकत्रित करने, जुलूस निकालने, प्रवचन आयोजन, प्रदर्शनी आदि का ढाँचा खड़ा करते हैं और

हीरक जयन्ती इस प्रकार मने

उसमें धन भी सामर्थ्य भर खर्च करते हैं। समारोह कितना बड़ा हुआ, इसकी स्थिति कैसी रही, जोश कैसा था, आदि बातों से ही उनकी सफलता का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस दृष्टि से सन् ५८ में गायत्री तपोभूमि में सम्पन्न हुआ सहस्र कुण्डीय गायत्री यज्ञ हर दृष्टि से शानदार समारोह रहा। उसे अद्भुत और अनुपम की संज्ञा मिली। अब दुबारा वैसा कुछ करने का न अपना मन था, न ऊपर का आदेश और व्यवस्था आयोजन। इसबार उसे व्यक्तिगत परिष्कार और लोक मंगल के लिये बढ़-चढ़कर प्रयास करने के रूप में मनाया गया। गाँधी जी ने एक बार "व्यक्तिगत सत्याग्रह" की योजना बनाई थी और कहा था सत्याग्रही काँग्रेस उद्देश्यों के अनुरूप अन्तरात्मा की पुकार पर योजना बनायें और राष्ट्र जागरण करते हुये जेल जाँय। इस बार जेल जाने के काम को "व्यक्तित्व के परिष्कार के लिये कष्ट सहने" के रूप में कार्यान्वित कराया गया और राष्ट्र सेवियों को मिशन की प्रसार प्रक्रिया के लिए अधिक प्रयास करने के लिये कहा गया।

प्रज्ञा परिजनों का स्तर जन साधारण की दृष्टि से कहीं ऊँचा है। दूसरे लोग पेट-प्रजनन के अतिरिक्त जहाँ दूसरी बात सोचते ही नहीं वहाँ प्रज्ञा पुत्रों ने लोभ, मोह और अहंकार के त्रिविध भव-बंधन तोड़े नहीं तो ढीले अवश्य किये हैं। निजी आवश्यक कार्यों के साथ-साथ उन्होंने जन-जागृति के—युग परिवर्तन के कार्य को भी महत्व दिया है। यह साधारण बात नहीं, असाधारण बात है। अन्यान्य संस्था संगठनों की तुलना में प्रज्ञा परिवार का स्तर ऊँचा नहीं तो नीचा भी नहीं कहा जा सकता। इतने पर भी हमें शिकायत रही कि साधु, ब्राह्मण परम्परा का निर्वाह करने वाले देव मानव स्तर के लोगों की संख्या विस्तार, आत्मबल, त्याग, बलिदान और पवित्रता, प्रखरता एक दृष्टि से उतनी ऊँची नहीं उठ पायी जितनी कि हम उनसे चाहते थे। जो युग परिवर्तन के हनुमान, अर्जुन जैसे अग्रदूत बनते, उनसे उतना पुरुषार्थ बन नहीं पड़ा।

इसी प्रकार यही कमी हमें खटकती रही कि जिस आन्दोलन के द्वारा ५०० करोड़ मनुष्यों का भाग्य, भविष्य और स्वरूप ऊँचा उठाने के लिये प्रज्ञा आलोक का प्रकाश जितना व्यापक होना चाहिये था, उतना नहीं हो सका। मिशन की जानकारी भले ही करोड़ों को हो। पर उसके समर्थक सहयोगी २० लाख से अधिक नहीं बढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाये। यह संख्या जलते तवे पर पानी की कुछ बूंदे छिड़कने की तरह है। ५०० करोड़ का २५०० वाँ भाग ही २० लाख होता है। सभी परिजन यदि मिशन का सन्देश और अधिक जन-जन तक पहुँचाना चाहें तो वर्तमान प्रज्ञा परिजनों में से प्रत्येक को २५ हजार व्यक्तियों के साथ घनिष्ट सम्पर्क साधना होगा। यह मुनादी पीटने की दृष्टि से तो शायद किसी कदर सफल भी हो जाय, पर जहाँ तक चिन्तन, चरित्र, व्यवहार, दृष्टिकोण और क्रिया-कलाप से काया कल्प जैसा परिवर्तन लाने की आवश्यकता है, वहाँ यह संख्या नगण्य न सही अपर्याप्त अवश्य है। हमारा मन था कि जीवन का अन्तिम अध्याय पूरा करते-करते हम एक करोड़ हनुमान अंगद न सही पर रीछ वानर तो मोर्चे पर खड़े कर सकेंगे पर वैसा बना नहीं। अन्य सगठनों की दृष्टि से तुलनात्मक रूप से २० लाख समर्थक सदस्य होना बड़ी बात हो सकती है। पर काम जितना करने को पड़ा है और समय जितना विषम है, उसे देखते हुये साथियों की संख्या निश्चित रूप से अपर्याप्त है।

समय की विषमता दिन-दिन गम्भीर होती जाती है। सर्वनाश के बादल सभी दिशाओं से घुमड़ते आ रहे हैं। तूफानी विग्रहों की गणना नहीं। प्रदूषण, विकिरण जन संख्या उत्पादन जैसी समस्याएँ सामने हैं। जन-जन के मन-मन में पाशविक और पैशाचिक प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। दुष्टों को आक्रमण करने का जितना दुस्साहस है उससे अनेक गुना छद्म श्वेत वस्त्रधारी और भले मानुष बनने वाले लोग करते हैं। प्रपंचों, संकीर्णताओं और अवांछनीयताओं की दृष्टि से सभ्य दीखते हुये भी आदमी आदिम युग के जंगलियों जैसा असभ्य बनता जाता है। महायुद्ध की विभीषिका उन सबसे ऊपर है। किसी भी दिन बारूद के पहाड़ में कहीं से कोई चिनगारी उड़ कर पहुँच सकती है और उसका अन्त, इस सुन्दर धरती के रूप में परमात्मा की जो कलाकृति उभरी है। उस सृजन के देखते-देखते भस्म सात हो सकती है। अबकी बार का युद्ध इस धरती को सम्भवतः प्राणियों के रहने योग्य भी न रहने दे।

इस विनाश वेला में सुरक्षा शक्ति की—शान्ति सेना की जितनी बड़ी संख्या चाहिये, उसका हौसला जितना बढ़ा-चढ़ा होना चाहिये। वह प्रयत्न करने पर भी बन नहीं पड़ा। एक अच्छा संगठन खड़ा करने भर से हमें किसी भी प्रकार का सन्तोष नहीं होता। जितना बड़ा संकट है, उसके अनुरूप ही अनर्थ को रोक सकने वाली चतुरंगिणी चाहिये। वह न बन पड़े तो छुटपुट प्रयत्नों का, निर्माणों का महत्व ही क्या रह जाता है।

हमारा मन था कि यदि हीरक जयन्ती मनाना है तो या तो प्रयत्न की असफलता पर धूल डालने और असफलता घोषित करने के रूप में मनाया जाय। या फिर ऐसा हो कि जो भी साथी सहयोगी हैं वे तूफान की तरह चल पड़ें, ज्वालामुखी की तरह उबल पड़ें और वह कर गुजरें जिसके लिये महाकाल ने जीवन्तों को पुकारा है। अन्यथा अपंगों-अनाथों की तरह जो लँगड़ा-लूला ढर्रा चल रहा है उसे किसी प्रकार घसीटते हुये आत्म-प्रवंचना करते रहे।

हीरक जयन्ती वर्ष की बात जब सामने आई तो उसका स्वरूप उत्सव आयोजन पूर्वक मनाने से हमने स्पष्ट इन्कार कर दिया। सात प्रान्तों में सहस्र कुण्डीय यज्ञ और मथुरा का युग समारोह मनाने के उपरान्त यह आशा धूमिल हो गई है कि बड़े जन सम्मेलनों से कोई बड़ी बात हो सकती है। राजनैतिक संस्थाओं के एक-से बढ़कर दूसरा समारोह हर वर्ष होता है। उनमें प्रत्येक में भारी दौड़-धूप और प्रचुर पूँजी खर्च होती है। किन्तु एक सप्ताह बीतने नहीं पाता कि उस आयोजन की प्रशंसा निन्दा तक समाप्त हो जाती है और लोग मेले ठेले के माहौल जैसा मनोरंजन करके उस बात को विस्मृति के गर्त में धकेल देते हैं। उसकी चर्चा तक समाप्त हो जाती है। इन्हीं तमाशों में से एक तमाशा हम और खड़ा करें। ऐसी इच्छा स्वप्न में भी नहीं है। पूरे बीस साल ऐसा ही माहौल बनाते रहे पर उसके फलस्वरूप जो मिला है उसे निरर्थक तो नहीं कह सकते पर असन्तोष जनक अवश्य है।

क्रान्तियों में आँधी जैसा वेग चाहिये। अक्सर उखाड़ फेंकने वाले आन्दोलनों को ही क्रान्ति कहा जाता है। पर जिसका लक्ष्य सृजन हो, उत्पादन हो, अभिवर्धन हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काया-कल्प जैसा परिवर्तन हो वह देवत्व की पक्षधर क्रान्ति तो और भी कठिन होती है। एक मशाल लेकर समूचे गाँव को एक घण्टे में जलाया जा सकता है, फिर उस गाँव में लगे क्षेत्र में सिंचाई का प्रवन्ध करके हरीतिमा की मखमली चादर बिछाना कितना श्रम साध्य और समय साध्य होता है, इसे सभी जानते हैं। अग्निकाण्ड के लिये एक पागल का उद्धत आचरण भी पर्याप्त है, पर लहलहाती फसल उगाने या भव्य भवन बनाने के लिये तो कुशल कारीगरों की सुविकसित योग्यता और अगाध श्रम निष्ठा चाहिये।

प्रज्ञा परिवार सृजन का संकल्प लेकर चला है। उसके सदस्यों सैनिकों का स्तर ऊँचा चाहिये। ऐसा ऊँचा इतना अनुशासित कि उसके कर्तृत्व को देखकर अनेकों की चेतना जाग पड़े और पीछे चलने वालों की कमी न रहे। बढ़िया साँचों में ही बढ़िया आभूषण पुर्जे या खिलौने ढलते हैं। यदि साँचे ही आड़े-तिरछे हों तो उनके सम्पर्क क्षेत्र में आने वाले भी वैसे ही घटिया—वैसे ही अति सुगम और अति साधारण ही क्यों न हों। पर उनमें कुछ श्रम करना पड़ता, कुछ सोचना और कुछ कहना पड़ता है। तभी वह व्यवस्था जुटती है। ऐसे छोटे आयोजन सम्पन्न कर लेने पर मनुष्य की झिझक छूटती है, हिम्मत बढ़ती और वह क्षमता उदय होती है, जिसके माध्यम से नव सृजन प्रयोजन के लिये जिन बड़े-बड़े कार्यों की आवश्यकता है, उन्हें पूरा किया जा सके। जो कार्य अगले दिनों करने हैं, वे पुल खड़े करने, बाँध बाँधने, बिजली घर तैयार करने जैसे विशालकाय होंगे। इसके लिये इन्जीनियरों की जरूरत पड़ेगी, वे किसी कालेज में पढ़े हुए इन्जीनियर नहीं होंगे, और न ऊँचे वेतन पर उनकी क्षमता को खरीदा जा सकेगा। वे अपने ही रीछ वानरों में से होंगे। समुद्र पर पुल बाँधने जैसे कार्य में नल-नील जैसे प्रतिभावान भावनाशील ही चाहिये। इसके लिए बुद्ध, गाँधी, विनोबा जैसा चरित्र भी चाहिये और प्रयास भी।

हीरक जयन्ती वर्ष में क्या किया जाय? उस समा-

आवश्यक सूचना

आश्विन नवरात्रि के नौ दिवसीय सत्र शान्ति कुंज में ता० १४ अक्टूबर से लेकर २२ अक्टूबर तक चलेंगे। दूसरा नवरात्रि का ही सत्र एक दिन के अन्तराल पर २४ अक्टूबर से चलेगा। यह तारीख १ नवम्बर को समाप्त होगा। इनमें जो आना चाहे अभी से स्वीकृति प्राप्त करलें। इन पन्द्रह दिनों में पाँच दिन वाले सत्र नहीं चलेंगे।

फूहड़ होंगे। इसी प्रयास को सम्पन्न करने के लिये कहा गया है। इसी को उच्चस्तरीय आत्म परिष्कार कहा गया है। यही महाभारत जीतना है। इसी की "मल्लयुद्ध की विजय' शीर्षक से अप्रैल के अंक में चर्चा की है और कहा है कि जन-नेतृत्व करने वालों को आग पर भी, कसौटी पर भी खरा उतरना चाहिये। लोभ, मोह और अहंकार पर जितना अंकुश लगाया जा सके, लगाना चाहिये। तभी वर्तमान प्रज्ञा परिजनों से यह आशा की जा सकेगी कि वे अपनी प्रतिभा से अपने क्षेत्र को आलोकित कर सकेंगे और सृजन का वातावरण बना सकेंगे।

दूसरा कार्य यह है कि नवयुग के सन्देश को और भी व्यापक बनाया जाय। इसके लिये जन-जन से सम्पर्क साधा जाय। घर-घर अलख जगाया जाय। मिशन की पृष्ठभूमि से अपने समूचे सम्पर्क क्षेत्र को अवगत कराया जाय। पढ़ाकर भी और सुनाकर भी। इन अवगत होने वालों में से जो भी उत्साहित होते दिखाई पड़ें उन्हें कुछ छोटे-छोटे काम सौंपे जाँय। भले ही वे जन्म मनाने जैसे

रोह को कैसे मनाया जाय इसके सन्दर्भ में मई एवं जून के अंकों में हमारे संक्षिप्त अनुरोध मोटे अक्षरों में छापे जा चुके हैं पिछले माह के अंक में भी विस्तार से बताया जा चुका है। क्या किया जाय? इसका संकेत उनमें भी है और निरन्तर पूर्व के प्रज्ञा अभियान के मंच से अनेकों बार मौखिक और लिखित रूप से बताया जाता रहा है। उसे बार-बार कहने दुहराने की आवश्यकता नही है। उससे सभी परिजन प्रायः अवगत भी हैं।

हीरक जयन्ती मनाने के लिये कुछ करने का जिनका सचमुच ही मन हो वे दो काम करें। वे दोनों ही उनके निजी रूप से करने के हैं। उनका प्रयोग अपने ऊपर करना है और अपने सम्पर्क क्षेत्र के ऊपर। वे दो हैं आत्म परिष्कार और जन-जागरण। इन दोनों कार्यों के लिए इन दिनों जितना उत्साह जितने अधिक परिश्रम से किया होगा उसे हम आँखें उठाकर टकटकी लगाये देखते रहेंगे वे थोड़ी और प्रतीक्षा करेंगे कि क्या वस्तुतः परिजनों में तत्परता उभरी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

केवल वार्षिक ग्राहकों के लिये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर.एन. २१६२ / ५२

अखण्ड-ज्योति मासिक
लाइसेन्स संख्या एम.टी.आर. ८
डाक व्यय की पहले अदायगी किए बिना
डाक में डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त

विजय - गीत

तुम न घबराओ, न आँसू ही बहाओ अब,
और कोई हो न हो पर मैं तुम्हारा हूँ।
मैं खुशी के गीत गा - गा कर सुनाऊँगा।।

मानता हूँ, ठोकरें तुमने सदा खाईं,
जिन्दगी के दाँव में हारें सदा पाईं,
बिजलियाँ दुख की, निराशा की, सदा टूटीं,
मन गगन पर वेदना की बदलियाँ छाईं,
पोंछ दूँगा मैं तुम्हारे अश्रु गीतों से,
तुम सरीखे बेसहारों का सहारा हूँ।
मैं तुम्हारे घाव धो मरहम लगाऊँगा।
मैं विजय के गीत गा - गा कर सुनाऊँगा।।

खा गई इन्सानियत को भूख यह भूखी,
स्नेह ममता को गई पी प्यास यह सूखी,
जानवर भी पेट का साधन जुटाते हैं,
'जिन्दगी का हक' नहीं है रोटियाँ रूखी,
और कुछ माँगो, हँसी माँगो, खुशी माँगो,
खो गये हो, दे रहा तुमको इशारा हूँ।
आज जीने की कला तुमको सिखाऊँगा।
जिन्दगी के गीत गा - गा कर सुनाऊँगा।।

- अज्ञात

सम्पादक - भगवती देवी शर्मा प्रकाशक मुद्रक - मृत्युंजय शर्मा, अखण्ड - ज्योति संस्थान द्वारा
जन जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ें और पायें

१ सच्ची और झूठी प्रार्थना — १
२- अर्जुन का असमंजस — २
३- आत्मिक प्रगति का राजमार्ग — ३
४- अपने को परिष्कृत करें और सिद्धियों के भण्डार बनें — ५
५- प्रतिभा—जागरूकता और तत्परता की परिणति — ६
६- स्वर्ग या नरक में से किसी एक का चुनाव — १२
७- निष्काम कर्मयोग एवं मुक्ति — १५
८- सशक्तता शक्तियों के सदुपयोग पर अवलम्बित — १७
९- व्रतशीलता बनाम हठवादिता — १९
१०- मानवी सत्ता हर दृष्टि से अनुपम अद्भुत और आश्चर्यजनक — २१
११- तर्क एवं श्रद्धा का समन्वित रूप—धर्म — २५
१२- प्रेम ही परमेश्वर है — २७
१३- कर्मफल का सुनियोजित व्यवस्था क्रम — २८
१४- मनोनिग्रह और आत्मिक उत्कर्ष — २९
१५- मनुष्य की विलक्षण सत्ता — ३२
१६- चेतना ने पदार्थ बनाया — ३३
१७- ब्रह्माण्ड के हृदय की धड़कन — ३६
१८- विज्ञान के लिए भारी शोध कार्य करने को पड़ा है — ३७
१९- यौन परिवर्त्तन की विचित्र घटनाएँ — ४०
२०- प्रतिभा का उपयोग शालीनता के लिए — ४१
२१- शक्तियों के दो ध्रुव केन्द्र — ४४
२२- जाको राखे साँइयाँ मार सके ना कोय — ४७
२३- मानवी सत्ता चिर पुरातन है — ४९
२४- भारतीय परम्परा और संगीत उपचार — ५३
२५- प्रथम सन्तान — ५६
२६- शिखा सूत्र—हिन्दू संस्कृति के प्रतीक चिन्ह — ५७
२७- महायुद्ध की तैयारियाँ समय रहते रुक जाँय — ५९
२८- अपनों से अपनी बात—"गुरुदेव का श्रावणी सन्देश" — ६३

अक्टूबर — १९८५

अङ्क — १०

वर्ष — ४८

वार्षिक चन्दा — २०)

आजीवन — २००)

विदेश में वार्षिक — १७५)

पता-अखण्ड-ज्योति संस्थान, मथुरा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

अखण्ड ज्योति

प्रज्ञायोग अध्यात्म विज्ञान

वर्ष ४८ | अक्टूबर १९८५ | वार्षिक २०)
अङ्क १० | | आजीवन २००)
| | विदेश में : वार्षिक १३५)

सच्ची और झूठी प्रार्थना

ईसा कहते थे—"तुम मुझे प्रभु कहते हो, गुरु कहते हो, उत्तम कहते हो, मेरी सेवा करना चाहते हो और मेरे लिये सब कुछ बलिदान कर देने को भी तैयार रहते हो। किन्तु मैं तुमसे फिर कहता हूँ, तुम मेरे लिये न कुछ करते हो और न करना चाहते हो।"

"तुम जो कुछ करना चाहते हो, मेरे लिए करना चाहते हो जबकि मैं चाहता हूँ तुम औरों के लिए ही सब कुछ करो। औरों के लिये कुछ न करने पर तुम मेरे लिये भी कुछ न कर सकोगे। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि यदि तुमने इन छोटों के लिये कुछ न किया तो मेरे लिए भी कुछ न किया।"

"मैं फिर कहता हूँ कि मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न मत करो, मेरी प्रसन्नता तो इन छोटे और गरीब आदमियों की प्रसन्नता है। मुझे प्रसन्न करने के स्थान पर इनको प्रसन्न करो, मेरी सेवा की जगह इनकी सेवा और सहायता करो। यदि तुम सच्चे मन से प्रभु की प्रार्थना नहीं करते, तो तुम्हारा प्रार्थना में खड़ा होना ठीक वैसा ही है, जैसे ग्वाले के डण्डे से घेरी हुई भेड़ें बाड़े में खड़ी हो जाती हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन का असमंजस

अर्जुन ने उर्वशी के काम प्रस्ताव को अमान्य किया उसे मातृ भाव से देखा। आहत कामिनी उर्वशी ने शाप दिया "तुम्हें एक वर्ष पुरुषत्वहीन वृहन्नला बनकर रहना होगा। अर्जुन ने यह शाप भी उसी सहज भाव से स्वीकार करके उर्वशी को नमन किया।

कौरवों से हुई शर्त के अनुसार बारह वर्ष वनवास के बाद एक वर्ष अज्ञातवास के समय में अर्जुन उसी वृहन्नला स्थिति में राजा विराट् के यहाँ रहे। परन्तु उसी बीच उन्हें अकेले ही कर्ण, द्रोण, भीम सहित कौरव सेना से युद्ध करना पड़ा। राजा विराट् का साला और सेनापति कीचक द्रौपदी पर कुदृष्टि डालने के कारण भीम के हाथों मारा गया। कौरव कीचक से डरते थे। उसके मरने की सूचना पाकर उन्होंने विराट पर चढ़ाई कर दी। ऐसी विषम स्थिति में वृहन्नला अर्जुन विराट की ओर से लड़े। पुंसत्वहीनता के शाप के बीच भी उन्होंने ऐसा पुरुषार्थ दिखाया कि कौरव तो परास्त हुए ही, स्वयं उन्हें भी आश्चर्य हुआ।

बाद में भगवान कृष्ण से उस सन्दर्भ में चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—पुरुषत्वहीनता के शाप के बीच ऐसा प्रचण्ड पुरुषार्थ आपके ही आशीर्वाद से बन पड़ा।"

अर्जुन का यह कथन सुनकर कृष्ण थोड़े गम्भीर हुए, बोले—"पार्थ। यह ठीक है कि मैं तुम्हारे हित के लिए प्रयत्नशील रहता हूँ। परन्तु इस प्रसंग में तो तुम देवी उर्वशी के आशीर्वाद से ही विजयी हुए थे।"

अर्जुन चौंके, बोले "प्रभु परिहास कर रहे हैं। उर्वशी ने तो मुझे पुरुषत्वहीन होने का शाप दिया था, उनके आशीर्वाद का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

भगवान थोड़ा मुस्कराये बोले "धनंजय! ऐसा कहकर तुम अपनी ही मान्यता के साथ अन्याय कर रहे हो। क्या तुम सोचते हो कि जिस उर्वशी के प्रणय को तुमने अस्वीकार कर दिया था, वही सब कुछ थी? जिस उर्वशी के प्रति तुमने निष्ठा दिखाई, मातृ भाव से देखा ही नहीं, उसका शाप भी स्वीकार किया, वह मातृरूपा उर्वशी क्या कुछ भी नहीं थी। यदि मातृ रूपा उर्वशी कुछ नहीं थी तो तुमने उसके लिए कामिनी उर्वशी की उपेक्षा क्यों की?

अर्जुन असमंजस की स्थिति में प्रभु का मुख देखते रह गये। श्री कृष्ण ने अपने कथन को स्पष्ट करते हुए कहा "अर्जुन! तुमने कामिनी उर्वशी की उपेक्षा की थी, उसने क्रोधित होकर तुम्हें काम शक्ति हीन होने का शाप दे दिया परन्तु तुमने जिस मातृ शक्ति का सम्मान किया जिसके प्रति आस्था अडिग रखते हुए तुमने शाप भी शिरोधार्य किया उसने तुम्हें हृदय से आशीर्वाद दिया था "मेरा यह अजेय पुत्र जो वासना के सामने अजेय रहा, हे प्रभु, उसे कभी पुरुषार्थ क्षेत्र में पराजित न होना पड़े।"

हे वीर! शाप या आशीर्वाद के लिए वाणी का प्रयोग किया जाय या न किया जाय, जब वह अन्तःकरण की गहराई से निकलता है फलित होता है। शाप देने वाली उर्वशी से आशीर्वाद देने वाली उर्वशी अधिक सक्षम थी। उसका आशीर्वाद कैसे खाली जा सकता था।"

अर्जुन हर्षित हुए बोले, आज आपने मेरा एक भारी भ्रम दूर कर दिया। मुझे देवी उर्वशी के प्रति किंचित मात्र भी रोष नहीं था, और न अपने किए पर कोई पश्चात्ताप ही। परन्तु मातृ भाव का स्नेह प्रसाद मिलने का रहस्य समझ में नहीं आ रहा था।"

भगवान बोले "हे पार्थ! नारी का एक पक्ष कामिनी पक्ष है उस पर 'काम' का प्रभाव होता है। दूसरा लक्ष्मी पक्ष मातृ पक्ष है, उसमें परमात्म शक्ति का प्रत्यक्ष निवास होता है। तुम जैसे श्रेष्ठ नर नारी की उस दुर्धर्ष मातृ चेतना को भी अपने पुरुषार्थ से पा लेते हैं। तुमने वही किया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मिक प्रगति का राजमार्ग

अपने आपकी समीक्षा करना, व्यक्तित्व के वर्त्तमान स्वरूप को समझना आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है। क्योंकि इसी आधार पर त्रुटियों का संशोधन और न्यूनता की पूर्ति करना सम्भव है। इस आत्म निरीक्षण का एक और भी पहलू है कि जो विशिष्टताएँ—आत्मिक प्रगति के लिए आवश्यक हैं, उनका यदि विकास नहीं हुआ है तो उसकी आवश्यकता अनुभव करते हुए आत्मोत्कर्ष का प्रयास सम्भव हो सकेगा।

वस्तुतः मनुष्य के पास ऐसा बहुत कुछ है जो सदा अप्रकट और अविकसित ही बना रहता है। मस्तिष्कीय क्षेत्र की अतीन्द्रिय क्षमताएँ और अन्तःकरण की ऋद्धि-सिद्धियाँ ऐसी हैं जो हर किसी के पास न्यूनाधिकता में पाई जाती हैं। यदि आत्म-निरीक्षण की कला हस्तगत हो सके तो मनुष्य इन दिव्य केन्द्रों का स्थान एवं स्वरूप समझ सकता है और उन्हें विकसित करने के लिए वह सब कर सकता है जो सुदृढ़ संकल्प शक्ति के सहारे निश्चित रूप से हो सकता है। योग और तप इसी प्रयोजन के लिए किया जाता है।

यदि लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति भर हो तो भी वह कार्य अमुक कर्मकाण्डों के बलबूते नहीं हो सकता उसके लिए भी आन्तरिक परिष्कार और उपयुक्त चिन्तन चरित्र अपनाने की आवश्यकता है। तद्विषयक जो परिवर्त्तन या विकास करना है उसका स्वरूप सामने आने की बात तभी बनती है जब आत्म-निरीक्षण का सिलसिला परिपूर्ण उत्साह के साथ चलाया जाय।

यह भ्रम जितनी जल्दी दूर हो सके उतना ही अच्छा है कि ईश्वर प्राप्ति या देवाराधन के लिए अमुक कर्मकाण्ड ही सब कुछ हैं। लोग इसी भ्रम में ग्रसित रहकर अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुरूप पूजा विधानों में संलग्न रहते हैं और सोचते हैं कि ईश्वर के भी मनुष्य की भाँति चर्म चक्षु ही हैं वह मात्र क्रिया-कृत्यों को ही देख पाता है किसी का अन्तरंग देखने या परखने की उसमें क्षमता नहीं है। या है तो इसे महत्व नहीं देता और हेय व्यक्तित्वों को भी उनकी क्रियाओं से प्रभावित होकर छाती से लगा लेता है।

पापों के क्षमा होने या उनके नाम प्रताप में नष्ट हो जाने की बात सही नहीं है। तीर्थाटन आदि कृत्यों में भी यदि कोई चाहे तो दिशा निर्देशन प्राप्त कर सकता है। पर पापों के नष्ट हो जाने या कर्मफल के उलट जाने की बात सोचना प्रकारान्तर से ईश्वर की बड़ी व्यवस्था उलट जाने की दुराशा रखना है। प्रभु के दरबार में पुजारियों के साथ पक्षपात होने और बिना पुजारियों के दूध में से मक्खी को निकाल फेंकने की उपेक्षा का कोई विधान नहीं है। इस तथ्य को समझते ही तुरन्त यह समस्या आगे आती है कि हमें अन्तर्मुखी होने का अभ्यास करना चाहिए ताकि आत्म-निरीक्षण के साथ-साथ आत्म सुधार का प्रयास भी चल पड़े। इसकी अनिवार्य आवश्यकता है। इस क्षेत्र में कोई सस्ते उपचार—आत्म प्रवंचना के अतिरिक्त और किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते।

आत्म निरीक्षण में सर्वप्रथम शरीर और आत्मा की भिन्नता अनुभव करने का प्रसंग आता है। इसके बिना वह भ्रान्ति बनी ही रहती है जिसे अध्यात्म की भाषा में "माया" कहा जाता है। माया का सार संक्षेप इतना ही है कि चेतना अपने आपको मात्र शरीर मानती रहती है और उसके निर्वाह तक सीमित न रहकर उसे सजाने, समृद्ध बनाने, दर्प दिखाने में लगी रहती है। वासना, तृष्णा और अहन्ता की पूर्ति की ही सफलता एवं प्रसन्नता का केन्द्र बिन्दु मान लिया जाता है। इतना ही नहीं शरीर के साथ सम्पर्क साधने वाले कुटुम्बी, सम्बन्धी, मित्र परिचित ही इस शरीराभ्यास के क्षेत्र में घुस पड़ते हैं। इन्हीं सबको वैभववान बनाने के लिए इच्छाओं और चेष्टाओं का केन्द्रीकरण हो जाता है। जीवन की अवधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शारीरिक मानसिक शक्ति का [illegible] होता रहता है। कूप मण्डूक जैसी—गूलर के भीतर रहने वाले भुनगों की तरह मनुष्य की स्थिति हो जाती है और वह आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध में—आत्मोत्कर्ष एवं ईश्वर प्राप्ति के सम्बन्ध में कुछ गम्भीर विचार तक नहीं कर पाता। फिर सुधार विकास का उपक्रम तो चले ही कैसे?

आत्म-निरीक्षण का प्रथम चरण—आत्म-निरीक्षण जितना गम्भीर और प्रखर होता है उसी अनुपात में शरीर और आत्मा की भिन्नता का वास्तविक बोध होता है। अन्यथा तोता रटन्त की तरह आत्मा परमात्मा की चर्चा का बाल-विनोद चलता रहता है।

माया के बन्धन शिथिल होने या कटने का एकमात्र उपाय है कि अपनी सत्ता की द्विधा स्थिति को समझा जाय। यह अनुभूति विकसित हो सके तो ही आत्मा का महत्व एवं हित सूझ पड़ता है और शरीर के पक्ष में झुकी हुई सारी प्रवृत्ति को सन्तुलित करने का मन होता है। शरीर संसार में अनुरक्त करता है और आत्मा की प्रायः सर्वथा उपेक्षा करता है। यह सोच तक नहीं पाता कि हमारे भीतर आत्मा नाम की कोई वस्तु भी है और उसकी भी कुछ माँग, पुकार, सुख एवं आवश्यकताएँ भी हैं। इस प्रकार की अनुभूति तभी होती है जब शरीर पर अपना सर्वस्व निछावर किये रहने के ढर्रे में हेर-फेर किया जाता है। आत्मा को परमात्मा का सन्देश सुनने और आह्वान को अंगीकार करने की बात अन्तरंग की गहराई तक प्रवेश कर जाती है, तभी यह सूझ पड़ता है कि [illegible] के निमित्त भी कुछ किया जाना चाहिए?

क्या किया जाना चाहिए? इसके उत्तर में दो तथ्य उभर कर सामने आते हैं। एक यह कि आत्म-गौरव के अनुरूप, व्यक्तित्व के ढलने में जो त्रुटियाँ चल रही हैं इसे कठोरतापूर्वक नियमन किया जाय। इसी को तप कहते हैं। इस सन्दर्भ में कठोरता बरतनी होती है अन्यथा अभ्यस्त दुष्प्रवृत्तियाँ सहज पीछा नहीं छोड़तीं। तपश्चर्या में शरीर को अकारण काय कष्ट देना व्यर्थ है। इससे तो स्वास्थ्य गड़बड़ाता है। होना यह चाहिए कि ऐसा मनोबल विकसित किया जाय जो दुष्प्रवृत्तियों से मल्लयुद्ध करके उन्हें परास्त कर सके। यह संशोधन पक्ष हुआ।

इसके अतिरिक्त दूसरा पक्ष श्रेष्ठता के अभिवर्धन का है। यह आत्म विश्वास और आत्म-बल के आधार पर उपयुक्त कार्यक्रम बना लेने से भी सम्भव हो सकता है। पर इसके लिए सत्प्रवृत्तियों के समुच्चय ईश्वर की उपासना करने से भी सहायता मिल सकती है। इसे योग कहते है। योग का तात्पर्य है जुड़ना। किसके साथ जुड़ना? विराट् ब्रह्म—समग्र समाज के साथ अपने को जोड़ना और क्षुद्र स्वार्थपरता के—सीमा बन्धन शिथिल करने का अभ्यास करना। योगी का दृष्टिकोण समता और क्रिया-कल्याण सर्वजनीन हित साधन का होता है। इसके लिए अभ्यास स्वरूप, राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग भक्तियोग में से किसी का या सभी के समन्वयन का अभ्यास आरम्भ किया जा सकता है। यही है यथार्थवादी आत्मिक प्रगति का राजमार्ग। ❁

मध्य रात्रि में गहरी नींद सोते हुए नेपोलियन को सेनापति ने जगाया और दक्षिण मोर्चे पर शत्रु के अचानक आक्रमण का विवरण सुनाते हुए, क्या उपाय अपनाया जाय, इसका निर्देश पूछा। नेपोलियन आँख मलते हुए उठे और दीवार पर टँगे ३४ नम्बर नक्शे को उतारते हुए कहा—'इसमें बताये हुए तरीके का अवलम्बन करो।'

सेनापति चकित था, कि जिसका उसे अनुमान तक न था, उस सम्भावना को नेपोलियन ने समय से पूर्व ही कैसे सोच लिया और कैसे उसका प्रतिकार खोज लिया।

असमंजस तोड़ते हुए नेपोलियन ने कहा—'विचारशील अच्छी से अच्छी आशा करते है, किन्तु बुरी से बुरी परिस्थितियों के लिए तैयार रहते हैं। मेरी मनःस्थिति सदा से ऐसी ही रही है। इसलिए विपत्ति टूटने से पहले भी उसका अनुमान लगाने और उपाय सोचने में मुझे संकोच नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने को परिष्कृत करें और सिद्धियों के भण्डार बनें

हवा एक संसारव्यापी तत्व है। पर वह कहाँ कितनी है, इसका नाप करने के लिए उस क्षेत्र पर दृष्टि डालनी पड़ेगी जिसमें वह वायु भरी है। इसी प्रकार जलाशयों में—समुद्र सरिताओं में असीम जल भरा पड़ा है, पर किस व्यक्ति के अधिकार में कितना जल है इसका अनुमान उसके बर्तन या क्षेत्र को देखकर लगाना पड़ेगा। अग्नि का तेजस् सर्वत्र विद्यमान है पर उसकी प्रचण्डता का अनुमान इस बात पर निर्भर है कि उसे कितनी मात्रा में किस स्तर का ईंधन मिला।

परमात्मा चेतन सत्ता का एक ब्रह्माण्ड व्यापी विस्तार है, पर वह आत्माओं में उतना ही अवतरित होता है जितनी कि उसकी क्षमता है। किसी के पास वह बहुत स्वल्प होता है किसी के पास अति प्रचुर। इसका कारण उसकी धारण क्षमता पर निर्भर है। जिस कोठे में ठसाठस काठ-कबाड़ भरा हुआ है। उसमें किसी भले मानुष को ठहराने की व्यवस्था नहीं की जा सकती है। कीचड़ भरी नाली में स्वच्छ जल का प्रवाह किस प्रकार बहाया जायगा। परमात्मा के सम्बन्ध में भी यही बात है। उसका किसी से राग-द्वेष नहीं न उसे किसी की मनुहार की जरूरत है और न भेंट उपहार की आवश्यकता। उसे केवल एक बात देखनी होती है कि धारण करने की किसमें कितनी क्षमता है। हाथी जितना वजन लादकर चल सकता है उतना गधा नहीं। दुर्व्यसनी भिखारी को उपेक्षापूर्वक कुछ देकर भगा दिया जाता है किन्तु सम्बन्धियों में जमाता, अथवा लोक सेवी प्रामाणिक व्यक्तियों को सामर्थ्य भरा अधिकाधिक देने का प्रयत्न सम्मान पूर्वक किया जाता है।

भगवान भी इन्हीं नीति नियमों का पालन करते हैं और अपनी अनन्त सामर्थ्य में से अपनी सन्तानों में से प्रत्येक को उतना ही हस्तान्तरित करता है जितनी कि उसकी योग्यता है। छोटे-बच्चे को चाकलेट खरीदने के लिए दस पैसे भर मिलते हैं, पर वही जब बड़ा हो जाता है तो उसकी योग्यता और व्यवसाय की उपयुक्तता देखकर कोई बड़ी योजना कार्यान्वित करने के लिए संचित पूँजी का बड़े से बड़ा अंश पिता उस युवक को हस्तान्तरित कर देता है। छोटा बच्चा एक रुपया माँगता है तो उसके सदुपयोग पर अविश्वास करते हुए अभिभावक स्पष्ट इनकार कर देते हैं। किन्तु बड़े होने पर उसे इंजीनियरिंग कालेज की पढ़ाई पर पाँच सौ रुपया मासिक भी प्रसन्नतापूर्वक करते हैं। भगवान भी यही करते हैं।

परमात्मा की सामर्थ्य का इतना विस्तार है कि उसकी एक-एक कलाकृति देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है बीज में से पेड़ खड़ा कर देना एक आश्चर्य है। आसमान में चाँद सितारे जिस पर अधर में लटक रहे हैं। सूरज जिस प्रकार असीम ऊर्जा वितरित करता है। जलाशयों के प्राणी किस प्रकार उस कैद खाने में प्रसन्न रहते और कल्लोल करते हैं वह देखते ही बनता है। आकाश में उड़ता पक्षी और बिना इन्द्रियों वाले केंचुए किस प्रकार अपनी निर्वाह सुविधाएँ उपलब्ध कर लेते हैं यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है। आसमान से बरसने वाला मूसलाधार पानी किसी विचारशील को

> मैं धुँधले तौर पर यह अनुभव करता हूँ कि जब मेरे चारों ओर सब कुछ बदल रहा है, मर रहा है, तब भी इन सब परिवर्त्तनों के नीचे एक जीवित शक्ति है जो कभी नहीं बदलती, जो सबको एक में ग्रथित करके रखती है, उसका संहार करती है और फिर नये सिरे से पैदा करती है, यही शक्ति ईश्वर है, परमात्मा है। मैं मानता हूँ कि ईश्वर जीवन है, सत्य है, प्रकाश है, प्रेम है, वह परम मंगल है।
>
> —महात्मा गाँधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रपंचों में डाल देने और सर्व सत्ता मान की गरिमा का अनुमान लगाने में कुछ कठिनाई नहीं होती।

मनुष्य को अन्य प्राणियों की तरह पेट की भूख और जननेन्द्रिय की खुजली मिटाने भर के लिए सामान्य बुद्धि और शरीर संरचना प्रदान की है। यह बच्चों को झुन-झुने या पतंग गुब्बारे बाँटने की तरह है। यह प्राणी की न्यूनतम और अनिवार्य आवश्यकता है। इन कारणों में उसे शरीरगत तृप्ति जुटाने का अवसर मिलता है और वह अपने शरीर तथा मन को काम-धन्धे में जुटाये रहता है। यदि भूख और कामेच्छा न होती तो प्राणी ऐसे ही निठल्ले पड़े रहते और उनकी सक्रियता एवं बुद्धिमत्ता तक जीवित न रह सकती। जीवधारी को हलचल भरा जीवनयापन करने के लिए यह दो तकाजे गले से इस प्रकार बाँध दिये गये हैं, जिससे वह निठल्ला होकर अपनी सत्ता को पिछड़ेपन के गर्त में न धकेल दे।

किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि भगवान के भण्डार में या उसके भाग्य में इतना ही सीमित है। जो मिला है उससे असंख्य गुना पाने की इसमें अभी और भी गुन्जायश है। पाने वाला चाहता भी है और देने वाला भी कंजूस नहीं है। इतने पर भी देखा जाता है कि चाहने वालों को मन-मसोस कर रहना पड़ता है और देने वाला भी अपने दुर्भाग्य को कोसता है कि वह ऐसे सत्पात्र नहीं पा सका जिसे अपनी विभूतियाँ अधिकाधिक मात्रा में देकर अपने मन का भारीपन दूर करता और पाने वाला भी निहाल होकर रहता।

आत्मा परमात्मा का सजातीय और वंशज है। उसे बहुत कुछ प्राप्त करने का हक है। किन्तु देखा जाता है कि लोग क्षुद्र स्तर का—नर पशुओं जैसा ही जीवन व्यतीत करते हैं। न उन्हें स्वयं सन्तोष गर्व गौरव प्राप्त करने का अवसर मिलता और न दूसरों के लिए ही कोई प्रेरणाप्रद मार्ग छोड़कर जाते हैं।

घर में मकड़ी, छिपकली, मक्खी मच्छर जैसे प्राणी भी रहते हैं। जिन्दगी भी काट लेते हैं, पर उनकी ओर कोई दृष्टि उठाकर भी नहीं देखता और न उनकी उपस्थिति से कोई लाभ या यश देखता है। परिवार के बीच रहकर कितने ही मनुष्य इसी प्रकार मौत के दिन पूरे करते हैं। जो महत्वाकांक्षाएँ आत्मा को श्रेय, सन्तोष और यश गौरव चाहती हैं, वे एक प्रकार से अर्ध मृत, अर्ध मूर्च्छित स्थिति में ही पड़ी रहती हैं। उन्हें जगाने की भीतर से उमंग उठे तो योग्यताएँ भी उभरें। परिस्थितियाँ भी बनें। साधन भी जुटें और ऐसा अवसर मिले कि मनुष्य अपनी और दूसरों की दृष्टि में महत्वपूर्ण गिना जा सके।

इस दिशा में यदि किसी का मनचले तो समझना चाहिए कि उसकी मानवी गरिमा भ्रूण की स्थिति में न रहकर नवजात शिशु की तरह स्वयं नवजीवन पाने और सम्बन्धितों को नये उत्तरदायित्व सँभालने में सफल रही। प्रगति मार्ग की ओर यात्रा चल पड़ी। इसके लिए प्रथम लक्ष्य यही हो सकता है कि अपने व्यक्तित्व को मानवी

> एक अनपढ़ व्यक्ति दार्शनिक अरस्तु के पास पहुँचा और ब्रह्मज्ञान की दीक्षा माँगने लगा।
>
> सिर से पैर तक दृष्टि डालने के बाद उन्होंने सिखावन दी। नित्य कपड़े धोना और बाल सँवारना आरम्भ करो। गलतियाँ सुधारते चलने का सिलसिला ही साधना कहलाता है और परमात्मा तक पहुँचाता है।

गरिमा के ढाँचे में ढाला जाय। गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से अपने को परिष्कृत जनों की पंक्ति में बैठ सकने योग्य बनाया जाय। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार ऐसा बनाया जाय कि जो सम्पर्क में आये प्रभावित हुए बिना न रहे और अपनी तुलना में अधिक विकसित सद्गुणी अनुभव करते हुए सम्मान ही नहीं सहयोग भी प्रदान करे।

दूसरा चरण प्रगति के लक्ष्य पर चलने का यह है कि अपना व्यवसाय, कार्यक्रम, इस प्रकार का बनाया जाय जिससे अपने निर्वाह और लोकमंगल की सन्तुलित व्यवस्था बनी रहे। तृष्णाएँ बहुधा ऐसा वैभव माँगती हैं जिससे ओछे लोगों पर उसके दुस्साहस की छाप पड़ सके। ईमानदार और उदार आदमी का सम्पन्न बन सकना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असम्भव है। लोगों पर अपनी आदर्शवादिता का स्थायी प्रभाव छोड़ने की अपेक्षा यह सरल पड़ेगा कि अपराधियों जैसा षडयन्त्र बनाकर लोगों को ठगा या आतंकित किया जाय। आमतौर से महत्वाकांक्षी लोग यही करते और अपने को अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमान और सफल अनुभव करते हैं, पर जिन्हें उच्चस्तरीय प्रगति की आकांक्षा है। उन्हें संसार के परमार्थ परायण लोगों की जीवन गाथाएँ पढ़नी चाहिए और देखना चाहिए कि भीतर उपजी महानता उन्हें किस प्रकार ऊँचा उठा सकी। कहाँ से कितने साधन जुटा सकी। कितनों का भावभरा शानदार सहयोग उपलब्ध करा सकी।

आज का वातावरण क्षुद्र लोगों और क्षुद्र गतिविधियों से भरा हुआ है। उदाहरण समझने और अनुकरण कर बैठने की क्षुद्रता से हमें अपने को बचाना चाहिए और वर्तमान काल के तथा भूतकाल के महामानवों की विचारणा और लोकहित के लिए अपनाये गये क्रिया-कलापों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए आदर्शों पर, आदर्शवादियों पर अपनी श्रद्धा केन्द्रीभूत करना, उनके पद चिन्हों पर सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप अपनी कार्य शैली निर्धारित करना। उस निर्धारण पर सुदृढ़ रहना, ऐसा बड़ा काम है जो किसी के भी जीवन को धन्य बना सकता है। भले ही वह थोड़े ही अवधि के लिए जिया गया हो। शंकराचार्य, विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि भरी जवानी में ही उठ गये थे, पर वे ऐसा शानदार जीवन जिए जिस पर हजारों शतायुष्यों को निछावर किया जा सकता है।

बाल-बुद्धि की एक और माँग है कि वे अपने में कोई ऐसी विलक्षणता प्रकट कर सकें जिसे सिद्धियाँ चमत्कार कहा जाता है। यह प्रलोभन भूतकाल में भी था और अब भी पाया जाता है। योगी, तपस्वी, सिद्ध पुरुष अपनी विलक्षणताओं को दिखाकर सर्वसाधारण को प्रभावित करते थे। यहाँ तक कि वाम मार्ग—तन्त्र मार्ग की अवांछनीय प्रक्रिया का अवलम्बन करके हेय जीवन जीते और स्वार्थी लोगों की उचित अनुचित सहायता करते थे। जो इन प्रयोजनों के लिए कष्ट साध्य साधनाएँ नहीं कर सकते थे उनने इस प्रयोजन को जादूगरी या इन्द्रजाल से लोगों को हिप्नोटिज्म स्तर के प्रयोगों द्वारा अपने की विलक्षणता सिद्ध करने का प्रयास किया। अब भी वह शैली फल-फूल रही है और भोले भावुकों को भूत-प्रेत देवी-देवताओं के नाम पर भ्रम-जंजाल में फँसाया और उनके समय तथा धन को बर्बाद कराया जा रहा है।

यह बाल-बुद्धि किसी भी शालीनता समर्थक विज्ञजन को शोभा नहीं देती। सामान्य लोगों के बीच—सामान्य लोगों की तरह जीवनयापन करते हुए ऐसी छाप छोड़ना बहुत ही महत्वपूर्ण है। जिसमें उच्चस्तरीय यथार्थता हो और किसी छल कपट का, रहस्यवाद का आश्रय न लेना पड़ा।

चर्चा यदि सिद्धियों की ही चल पड़ी और व्यक्ति को अपनी अतीन्द्रिय क्षमताओं के प्रश्न पर विचार करना पड़े तो भी हमें यही मानकर चलना होगा कि वे विभूतियाँ श्रेष्ठ विभूतियाँ, श्रेष्ठ सज्जनों में—ऋषि मुनियों में अनायास ही उत्पन्न हो जाती हैं। संसार में कहाँ क्या हो रहा है? कब क्या होने जा रहा है? यह जानने के लिए किसी अतिरिक्त कला-कौशल को अपनाने की आवश्यकता नहीं है। यह कार्य स्वच्छ दर्पण पर प्रतिबिम्ब सही रूप में दीखने की तरह है। बढ़िया कैमरे में वस्तु-स्थिति का चित्र खिचने की तरह टेलिस्कोप से दूर-दूर तक का देखने की तरह माइक्रोस्कोप से अदृश्य कीटाणुओं को देख सकने की तरह—श्रेष्ठ जीवन में ऐसी विशेषताएँ स्वयमेव उत्पन्न हो जाती हैं।

इन दिनों परामनोविज्ञानी इस प्रकार की विलक्षणताओं को—अतीन्द्रिय क्षमता कह रहे हैं। दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, भविष्य कथन, विचार संचालन, आदि को मानसिक क्षेत्र की सिद्धियाँ मान रहे हैं और उसके लिए क्या करना चाहिए। क्या किया गया था, इसका पता लगाना चाहते हैं। किन्तु समझा जाना चाहिए कि जिन लोगों में अनायास ही ऐसी विशिष्टताएँ प्रकट होती हैं, उनमें पूर्वजन्मों की मानसिक स्वच्छता काम कर रही होती है। इस समय भी ऐसे अभ्यास किये जा सकते हैं जिनके द्वारा ऐसी विलक्षणताएँ प्रकट की जा सकें। पर देखा जाता है कि जो अपने में ऐसी विशेषताएँ प्रदर्शित करते हैं वे लोगों को अचम्भे में डालने और अपनी विलक्षणता सिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने तक ही सीमित रहते हैं। उन उपलब्धियों का उपयोग किसी ऐसे महान प्रयोजन के लिए नहीं होता जिससे व्यक्तित्वों को समुन्नत और विपन्नताओं का अनुकूलन किया जा सके। ऐसी दशा में वे अतीन्द्रिय क्षमताएँ भी चर्चा का विषय बनकर रह जाती हैं। अधिक से अधिक यह साबित कर सकती हैं कि मानवी सत्ता में कितने अनोखे रहस्य छिपे पड़े हैं। उनको हस्तगत करके अबकी अपेक्षा कितनी सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती है।

यहाँ यह समझा जाना ही चाहिए कि ख्याति के लिए स्वार्थ साधन के लिए—अन्यों को नीचा दिखाने के लिए यदि इन शक्तियों का उपयोग किया जाय तो वे अधिक दिन ठहरती भी नहीं और उस जादूगर के लिए अन्ततः पश्चात्ताप ही छोड़ जाती हैं।

इन सिद्धियों को देखकर इतना समझना ही पर्याप्त होगा कि मनुष्य उतना ही सीमित नहीं है जितना कि दृष्टिगोचर होता है। उसमें ईश्वर का अंश होने के नाते लगभग उतनी ही क्षमताएँ एवं विलक्षणताएँ भरी पड़ी हैं, जितना कि आत्मा के उद्गम केन्द्र परमात्मा में है। वे इतनी अधिक हैं कि विज्ञात ऋद्धि-सिद्धियाँ तो सहज ही उससे मिलने के कारण हस्तगत हो ही जाती हैं वरन् ऐसी विभूतियाँ भी हस्तगत हो जाती हैं जो अभी चर्चा का विषय नहीं बन पाई हैं।

सिद्धियों में उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र और परमार्थ परायण व्यवहार की तीन विभूतियाँ सर्वोपरि हैं। इनको प्राप्य करने के लिए निरन्तर जीवन को अभ्यस्त करना अपने आप में एक सर्वसुलभ और अत्यन्त उच्चस्तर का योगाभ्यास है। इसे कर गुजरने वाले अपने समीपवर्ती वातावरण को स्वर्ग जैसा सुखद पाते हैं। अनाचार की पशु प्रवृत्तियाँ छूटते ही वे भव-बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। वे सिद्धियाँ जिन्हें विलक्षणताएँ कहते हैं, वे पवित्र आत्माओं के इर्द-गिर्द अनायास ही घूमती और उपेक्षित होती रहती हैं।

मेज पर सजे गुलदस्तों में से एक तो लगे थे असली गुलाब, और दूसरे में थे नकली कागज के फूल। असली फूलों ने आते ही दुःख प्रकट किया, तो नकली फूलों ने पूछा—भाई तुम इतने सुन्दर भवन में आ गये हो फिर भी इतने दुःखी हो इसका क्या कारण है।

असली गुलाब ने कहा मैं इसलिये दुःखी हूँ कि मुझे इस सुन्दर भवन में थोड़े ही दिन रहने का सौभाग्य मिला है। कल नहीं तो परसों मुझे यहाँ से कचरा समझकर हटा दिया जायेगा। प्रसन्न होने का अधिकार तो आपको है। क्योंकि आपको शायद ही यहाँ से हटना पड़े।

नहीं भाई नहीं—कागज के फूल ने कहा---"मेरा सारा जीवन तो कृत्रिमता को खपाने में लगा है। धन्य है आप जो दो घण्टे में इतना दे जाते हैं जितना हम पूरे जीवन में नहीं देते।"

असली फूल का चेहरा खिल उठा। उसे अपनी भूल का ज्ञान हुआ कि मैं जिसे सुखी समझ रहा था। उसका स्वयं का अन्तःकरण इतना विदग्ध है। निश्चय ही सत्य है कि सुख दुःख का कारण दृष्टिकोण है, बाह्य परिस्थितियाँ नहीं।

● ★ ●

फूल से पत्थर ने कहा—"जानता नहीं मेरी शक्ति। एक ही आघात में तेरा कचूमर निकाल दूँगा।"

मुस्कराते फूल ने कहा—"तब तो आप मेरा उपकार ही करेंगे मित्र, मेरी सुगन्ध दूर-दूर तक फैला देने का अहसान ही तो करेंगे मेरे ऊपर।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोनुकूलता और तत्परता की परिणति

नीति शास्त्रियों के अनुसार व्यक्तित्व के निर्माण में मनोनुकूलता (एप्टीट्यूड) का भी योगदान होता है। व्यक्तित्व के विकास एवं निर्धारण में सन्तुष्ट मन की असाधारण भूमिका होती है। सर्वविदित है कि श्रेष्ठ कलाकार, संगीतकार, साहित्यकार, वैज्ञानिक अपनी साधना में इतनी तत्परता व मनोयोग से निरत रहते हैं कि उन्हें बाह्य दुनिया की उतनी परख नहीं रहती जितनी कि अपनी आन्तरिक आकांक्षा को पूर्ण करने की। तन्मय बने रहने से बाह्य व्यवधानों एवं आकर्षणों का प्रभाव भी उतना नहीं पड़ता। एक निश्चित दिशा में अपने चिन्तन एवं क्रिया-कलाप को लगाये रखने पर भटकाव की भी गुंजाइश नहीं रहती। मनोनुकूलता श्रेष्ठ व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक सिद्ध होती है।

किसी कार्य विशेष में शीघ्रातिशीघ्र दक्ष हो जाना इस बात का परिचायक है कि उस विषय में उस व्यक्ति की मनोनुकूलता है। मनोनुकूलता और जन्मजात क्षमता में अन्तर है। तीव्र बुद्धि और मनोनुकूलता से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह आवश्यक नहीं कि जिस व्यक्ति की बुद्धि तीव्र अधिक है वह कार्य में निपुणता एवं सफलता प्राप्त कर ही ले।

मनोनुकूलता और रुचि में भी अन्तर होता है। सम्भव है कोई व्यक्ति संगीत में रुचि रखता हो पर उसमें मनोनुकूलता न हो। वस्तुतः यह एक मानसिक प्रवृत्ति है जो किसी काम विशेष में व्यक्ति को पूरी तरह तत्पर रहने के लिए प्रेरित करती है और सफलता लक्ष्य तक पहुँचाकर रहती है।

जेम्स मैकेन्जी कहते हैं—"प्रगति के लिए जहाँ जानकारी, परिस्थिति, प्रतिभा, सुविधा आदि की आवश्यकता है, वहाँ मनोकूलता की और भी अधिक है। इच्छा करते रहने या मान्यता बना लेने मात्र से काम नहीं चलता वरन् मन को अभीष्ट लक्ष्य में समुचित रस लेने लगने के लिए भी प्रशिक्षित अभ्यस्त किया जाना चाहिए। यही है वह मनोनुकूलता जो समग्र तत्परता के साथ अभीष्ट प्रयोजन में जुटाने और सफल बनाने में प्रमुख भूमिका निभाती है।"

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाविद् हरबार्ट महोदय ने चारित्रिक विकास के लिये 'श्रेष्ठ नैतिक विचारों' को बहुत महत्वपूर्ण बताया है। वे सद्विचारों के निरन्तर सम्पर्क में रहने और स्वाध्याय के साधन जुटाने पर बल देते हुए कहते हैं कि जब सद्विचारों के फलस्वरूप उनमें रस आने लगता है जो आचरण में आने पर चरित्र का निर्माण करते हैं। उनका कहना है कि मनुष्य के आचरण और चरित्र के विकास के लिए उसका उत्कृष्ट एवं भले विचारों के सम्पर्क में रहना आवश्यक है। व्यक्ति के भले बुरे कार्यों का हेतु उसके श्रेष्ठ-निकृष्ट विचार ही होते हैं। सद्विचारों से व्यक्ति की पाशविक वासनाएँ विवेकपूर्ण भावनाओं इच्छाओं में बदलती चली जाती हैं और व्यक्ति देवोपम बन जाता है।"

"मानवी मस्तिष्क कोरे कागज के समान है, उस पर कुछ भी लिखा जा सकता है। भीतर से तो प्रेरणाएँ भर उठती हैं। उन्हें दिशा देने तथा व्यवहार में उतारने का ताना-बाना विचार तन्त्र द्वारा ही बुना जाता है। इसकी व्यवस्था न की जाय तो व्यक्ति भटकता ही रहेगा और यह न समझ सकेगा कि आज की परिस्थितियों में सत्प्रेरणाओं को क्रियान्वित करने के लिए उसे क्या और कैसे करना चाहिए।"

विचार विस्तार इन दिनों एक कंटकाकीर्ण जंगल की तरह उग पड़ा है। अनैतिक और अवांछनीय विचारों की बाढ़ तूफानी गति से आई है। साहित्य, चित्रकला के क्षेत्र में तो हानिकारक उत्पादन हुआ ही है। प्रचलन में भी ऐसे ही विचार व्यवहृत होते देखे जाते हैं जिन्हें अनैतिकता कुरुचि का सड़ी-गली संरचना कहा जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय का प्रवाह नीति-निष्ठा के पक्ष में नहीं है। जो हवाएँ बह रही हैं, वे नमी को सुखाने वाली और छत्त-छप्परों को उड़ा ले जाने वाली ही सिद्ध हो रही हैं। ऐसे समय में मानवी गरिमा को बना सकने में एक ही उपाय कारगर हो सकता है कि आदर्शवादिता के पक्षधर विचारों का न केवल उत्पादन किया जाय वरन् उन्हें जन-जन के मन-मन तक पहुँचाने का व्यापक एवं समर्थ प्रयास क्रम भी अपनाया जाय।

जीवन तो भगवान का दिया हुआ है पर उसे दिशा देने और किसी परिणाम पर पहुँचने की पूरी-पूरी जिम्मेदारी चिन्तन चेतना की है। उसी के अनुरूप व्यक्ति बनते, बढ़ते और बदलते हैं। पेट की भूख बुझाने में जो स्थान आहार का है वही मानसिक एवं भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति में विचार सम्पदा का। अभक्ष्य खाने पर रुग्णता एवं अकाल मृत्यु का संकट सामने आ खड़ा होता है। अचिन्त्य चिन्तन को उत्साहित करने वाले कुविचार भी प्रायः ऐसा ही संकट उत्पन्न करते और पतन पराभव के गर्त्त में धकेलते देखे जाते हैं।

कलिजुंग ने उच्च लक्ष्य की ओर चलने वालों को अपना गन्तव्य सुनिश्चित कर लेने पर बहुत जोर दिया है। उनका कथन है—

"अधिकांश व्यक्तियों का कोई लक्ष्य नहीं होता। वे हवा के रुख में उड़ने वाले तिनके पत्तों की तरह कभी इधर कभी उधर उड़ते भटकते देखे जाते हैं। अनेकानेक आकर्षण—अनेकानेक परामर्श—सामने आते रहते हैं इनमें से किन्हें अपनाया जाय? किन्हें छोड़ा जाय इसका निर्भीक निर्धारण न होने से कभी एक ओर बढ़ना कभी मुड़ना, उलटकर चलने लगने जैसी विक्षिप्त विचित्रता कार्यान्वित होती रहती है। ऐसे लोग बढ़ तो किसी भी दिशा में नहीं पाते। भटकावजन्य थकान और खाली हाथ रहने की निराशा मन को खिन्न उद्विग्न किये रहती है।"

"विडम्बना के कुचक्र में उलझे रहने की अपेक्षा यह उत्तम है कि जीवन का लक्ष्य निश्चित किया जाय और फिर उसकी पूर्ति के लिए अपनी योग्यता के अनुरूप छोटे शुभारम्भ से प्रयास आरम्भ कर दिया जाय।"

"एक रास्ते पर चलने वाले ही व्यवहार क्षेत्र की प्रगति में सफलता पाते हैं। विद्वान, पहलवान कलाकार स्तर की वहने योग्य सफलताएँ उन्हीं को मिली हैं जिनने एक लक्ष्य स्थिर किया और बिना मन डुलाये निर्धारित मार्ग पर चलता रहा उसे हर काम में अभीष्ट सफलता मिली है। छोटे आकार वाली चींटी भी लक्ष्य के प्रति उत्साह और प्रयास में मनोयोग सँजोये रहने पर ऊँचे पर्वत शिखर पर जा पहुँचती है।"

"लक्ष्य के अनुरूप चिन्तन, चिन्तन के अनुरूप पुरुषार्थ, पुरुषार्थ के अनुरूप सहयोग एवं साधनों का एकत्रीकरण—तदुपरान्त सफलता का श्रेय। इसी प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए सामान्य स्तर के लोग, आश्चर्यजनक सफलताएं प्राप्त करते रहे हैं।"

"व्यक्तित्व की श्रेष्ठता परक प्रगति को महत्व देने वाले आधी अधूरी कल्पना नहीं करते रहते वरन् लक्ष्य तक पहुँचने का संकल्प करते हैं और उस पर व्रतशील होकर जुट जाते हैं। जिनने अपने में इतनी साहसिकता जगा ली उनकी सफलता की आधी मंजिल पूरी हो गई। अवरोधों और अभावों से जूझना, परिश्रम और मनोयोग को अधिकाधिक प्रखर करना यों प्रत्यक्षतः सफलता के निमित्त कारण समझे जाते हैं किन्तु इससे भी बड़ी बात है लक्ष्य का निर्धारण। आदर्शवादी प्रगति के लिए तो इस प्रकार की व्रतशीलता नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार का निश्चय यदि जीवन के आरम्भिक दिनों में किया जा सके तो प्रगति के लिए पर्याप्त अवसर मिल जाता है। वैसे इस प्रकार के निर्धारण जब भी किये जा सकें तभी सराहनीय श्रेयस्कर परिणाम उत्पन्न करते आरम्भ कर देंगे।"

लार्ड एल हाल ने अपने ग्रन्थ 'प्रिंसिपल्स आफ बिहेवियर" में नीति निष्ठा की गरिमा बताते हुए लिखा है—"आचरण की सर्वोत्तम अवस्था वह मानी गई है जिसमें मनुष्य विवेकपूर्ण कार्यों को ही करता है। विवेक उसका मार्गदर्शक होता है। नैतिक दृष्टि से विकसित आचरण वाला व्यक्ति औचित्य, अनौचित्य का निर्णय अपने स्वतन्त्र विचार से करता है। उसको समाज के अनेक विरोधी रीति-रिवाजों और नियमों में से सर्वोत्तम का तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार चुनाव करना होता है। उच्चस्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आचरण उन्हीं का माना जाता है जिनमें स्वतन्त्र विचार करने की क्षमता एवं तद्नुरूप कार्य करने की योग्यता होती है। नैतिक सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करना सर्वश्रेष्ठ साहस माना गया है। संसार के महामानव अपने स्वतन्त्र चिन्तन, नीति निर्णय एवं आदर्शवादी कार्य पद्धति के बल पर ही आगे बढ़े हैं।

"सदाचार समर्थक विचारों को पढ़ना उस प्रकार के उपदेशों को रुचिपूर्वक सुनना एक सराहनीय अभिरुचि है। पर इतने भर से काम कुछ नहीं बनता। आदर्शों को अपनाने, उन्हें व्यवहार में उतारने के लिए एक विशेष प्रकार के साहस की आवश्यकता पड़ती है जो भौतिक क्षेत्र के साहसियों से भिन्न प्रकार का होता है। कठिन कार्यों में धैर्य,साहस, उत्साह, दिखाने वाले और अवरोधों की चिन्ता किये बिना हाथ में लिये काम को पूरा करने में निरत व्यक्ति साहसी कहलाते हैं। यह लौकिक प्रयोजनों को पूरा करने वाली शूरवीर स्तर की साहसिकता हुई। अपनी त्रुटियों को समझना—समझने के उपरान्त उनसे लड़ पड़ना—सम्पर्क क्षेत्र में छाये हुए अनुपयुक्त वातावरण के दबाव को अस्वीकार करना—साथ ही जो आदर्श युक्त हैं उसे अपनाते समय सामने आने वाली आन्तरिक आनाकानी और स्वभाव अभ्यास की मनमानी को उलटकर रख देना—ऐसा साहस है जिसकी परिणति महामानवों को उपलब्ध होने वाली गरिमा सफलता बनकर सामने आती है।"

सी० स्पीयर मैन की 'इन डिवीजुअल विहेवियर' के एक अध्याय का सार संक्षेप इस प्रकार है—

"असावधानी बाहर से छोटी सी भूल भर मानी जाती है पर वस्तुतः उसके द्वारा उत्पन्न हुई हानियाँ किसी बाहरी आक्रमण से कम नहीं होती। अन्तर इतना ही है कि कुल्हाड़ी से लकड़ी को तत्काल काट दिया जाता है और वह कृत्य प्रत्यक्ष दीखता है। इसके विपरीत घुन इसी कार्य को गुपचुप करता और अपेक्षाकृत देरी लगा लेता है। असावधानी के कारण होने वाली हानियों का लेखा-जोखा तैयार किया जायगा कि घाटा देने वाली समस्त मदें उतने संकट उत्पन्न नहीं करतीं जितनी अकेली असावधानी करती रहती है। अच्छे खासे लाभदायक धन्धे करने वालों में से कितने ही लोग इसी एक बुद्धि के कारण दिवालिये बनते देखे गये हैं।"

"असावधानी जीवन के हर क्षेत्र में अप्रत्याशित संकट उत्पन्न करती और अपने यजमान को पग-पग पर नीचा दिखाती, धूलि चटाती रहती है। जीवन विकास के क्षेत्र में इसका प्रभाव और भी अधिक होता है। अपने दोष दुर्गुणों के प्रति उनके कारण होने वाले हानियों के प्रति उपेक्षा बरतने वाले लोग अन्ततः ऐसे संकट में जा फँसते हैं जिससे निकलने की न सूरत बचती है और न हिम्मत रहती है। नशेबाजी की तरह ही असावधानी भी एक प्रकार की धीमी आत्म-हत्या है जिससे विनाश क्रम रहता तो धीमा है पर होता है निश्चित रूप से।"

"प्रगति के लिए किन सद्गुणों को अपनाना आवश्यक है? अवगति से निकलने के लिए किन दुर्गुणों को हटाना अनिवार्य है? इसे न देखा सोचा जाय। जैसा कुछ भी ढर्रा चल रहा है वैसा ही चलने दिया जाय तो प्रगति की

> जो कूड़े को खाद बना सके, उसे सच्चा कलाकार समझो।

आशा रखना तो दूर—वर्त्तमान दुर्गति से उबरना भी सम्भव न हो सकेगा।"

"जागरूकता उस सत्प्रवृत्ति का नाम है जो प्रगतिशीलों से प्रेरणा लेकर—विकास पथ पर चलने की उमंग उत्पन्न करती है। उसके लिए आत्म-विश्वास—साहस और पुरुषार्थ जगाती है। इतना ही नहीं उत्कर्ष पथ पर चलने में स्वभावतः आते रहने वाले अवरोधों से जूझने का शूरवीरों जैसे अविचल धैर्य और सन्तुलन भी प्रदान करती है। जागरूक भूत से सीखते हैं—भविष्य की सोचते हैं और तद्नुरूप जो आवश्यक है उसे करने के लिए न केवल दूरगामी निर्धारण करते हैं वरन् बिना समय गँवाये उन निर्धारणों को क्रियान्वित करने में जुट भी पड़ते हैं।"

नैतिक विकास हेतु जागरूकता अनिवार्य रूप से आवश्यक है। यह जागरूकता इस स्तर की होनी चाहिए जिसे न तो अवांछनीयता सहन हो और न सुधार के लिए पराक्रम बरतने में विलम्ब करने वाली आना-कानी। ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ग या नर्क में से किसी एक का चुनाव

चेतना तीन गतियों में गतिशील रहती है। प्रथम ऊर्ध्वगमन प्रगतिशील—उत्कर्ष। दूसरी जड़ता—यथा-स्थिति। तीसरी—अधोगामी, पतित। इन्हीं स्थितियों को स्वर्गलोक—मृत्यु लोक और नरक लोक कहते हैं। जिनके मन में कोई महत्वाकांक्षा नहीं उठती। खाने सोने की पशु प्रवृत्ति अपनाये रहते हैं। ज्यों-त्यों करके जिन्दगी पूरी करते रहते हैं। वे पशुवत् जीते हैं। उन्हें नर पशु भी कह सकते हैं। परिस्थितियों के झकोरे उन्हें टूटे पत्तों की तरह जहाँ-तहाँ उड़ाते रहते हैं।

जिन्हें प्रगतिशीलता की महत्वाकांक्षा है वे ऊपर उठते और आगे बढ़ते हैं। जड़ता की स्थिति में न उन्हें चैन मिलता है न सन्तोष। मनुष्य से ऊँची स्थिति महामानव की है। ऋषि,देवात्मा,सिद्ध पुरुष,जीवन मुक्ति इसी प्रगति-शीलता के स्तर हैं। यह श्रेय किसी को अनायास ही नहीं मिलता। इसके लिए उच्चस्तरीय पुरुषार्थ करना पड़ता है। आत्म-शोधन और आत्म-विकास के लिए इन्हीं दो प्रयासों को अपनाना और लक्ष्य पूर्ति तक निरन्तर जारी रखना पड़ता है। तीसरी गति अधःपतन की है। प्रयास तो इसमें भी करना पड़ता है पर वह प्रवाह में बहने जैसा नितान्त सरल होता है। समाज में चारों ओर पतनोन्मुखी प्रवृत्तियाँ संव्याप्त हैं। लोग स्वभाव में दुष्प्रवृत्तियाँ भरते और बढ़ाते रहते हैं। क्रियाएँ ऐसी होती हैं जिनमें वासना, तृष्णा और अहन्ता की पूर्ति के लिए छूट रहे। कर्त्तव्य और औचित्य का विचार न करना पड़े। अनीति अपनाने वाले और अपराधी आचरण करने वाले अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में कम समय में लाभ अर्जित कर लेते हैं पीछे क्या परिणाम भुगतना पड़ेगा यह देखने समझने की विवेक बुद्धि नहीं के बराबर होती है। यों ज्ञान चर्चा में कर्मफल की बात उनने पढ़ी-सुनी ही नहीं अनेक बार कही भी होती है। किन्तु उस पर विश्वास नहीं के बराबर होता है। कारण कि सत्कर्मों का—आदर्शवादी गति-विधियों का—प्रचलन न होने से अनुकरण प्रिय प्रवृत्ति उसे एकाकी अपनाने में झिझकती है। फिर ऐसे उदाहरण भी सामने कम ही होते हैं जिनमें सन्मार्ग पर चलने वालों ने हाथों-हाथ वैसी सफलता पाई हो जैसा कि दुष्ट दुराचारी छल प्रपंच की अपराधी दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाकर हाथों-हाथ अर्जित कर लेते हैं। यों उनके दुष्परिणाम भी होते तो निश्चित रूप से हैं पर सभी भले-बुरे कर्मों का प्रतिफल समयसाध्य होता है। इतनी देर में हुई परिणति की प्रतीक्षा कौन करे? स्मरण कौन रखे?

लोक प्रचलन अनीति की दिशा में है। वह पतन के गर्त्त में जा गिरते हैं। बर्फ पिघलने पर हिमालय का स्वच्छ जल नदी के प्रवाह में गिरकर अधोगामी बनता है और अन्त में नीचे गिरते-गिरते समुद्र के खारी जल वाले खड्ड में जा गिरता है अधः पतन का यही क्रम है। धार्मिक भाषा में इसी को नरक कहते हैं।

पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति सहज ही हर वस्तु को ऊपर से नीचे खींचती है। पानी ढलान की ओर बहता है और क्रमशः नीचे की ओर गिरता जाता है। यह सरल है। इस सरल मार्ग को अपनाकर अनेकानेक प्राणी पतन के गर्त्त में गिरते हैं उनकी देखा-देखी मनुष्यों की अनुकरण प्रिय प्रवृत्ति अन्धी भेड़ों की तरह एक के पीछे एक चलती और गर्त्त में गिरती जाती हैं। प्रचलन बड़ा प्रभावी होता है। वह परम्परागत उचित और सौभाग्य प्रतीत होता है। भले ही वह कितना ही कष्ट कर या असुविधाजनक क्यों न हो? नर पशुओं द्वारा अपनाई गई जीवनचर्या का यही स्वरूप है। उनका अनुगमन करने में कष्ट और झंझट भी सुहाते और अपनाने योग्य प्रतीत होते हैं।

नर-नारी बिना सन्तानोत्पादन किये एक दूसरे के लिए असंख्य गुने उपयोगी हो सकते हैं और समाज के लिए अति महत्वपूर्ण काम कर सकते हैं। प्रसव की मरण तुल्य व्यथा और सर्वथा अपरिचित प्राणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को घर बुलाकर उसके लिए सामर्थ्य से अधिक श्रम और धन लगाते हैं। विवेक की कसौटी पर बिना प्रचलन का विवाह एक प्रकार के सुख सौभाग्य जैसा है किन्तु लोगों की उलट बुद्धि को देखा जाय कि सन्तान न होने पर दुःख मनाते हैं और उस हर दृष्टि से कष्ट कारक उपलब्धि के प्राप्त होने पर फूले नहीं समाते हैं। इसी को कहते हैं लोक प्रचलन। सामाजिक कुरीतियाँ, अवांछनीय मान्यताएँ, दुष्प्रवृत्तियाँ इस प्रकार चलती हैं। लोग नशा पीते और अपना शरीर, धन, सम्मान, कौशल एवं परिवार अस्त-व्यस्त करते हैं। दुष्प्रवृत्तियों की छूत ऐसी ही है वह एक से दूसरे को लगती हैं और पतन पराभव का वातावरण बनाती रहती हैं। नरक इसी अधोगमन को कहते हैं।

धार्मिक भाषा में अलंकारिक रूप से स्वर्ग लोक को ऊपर बताया गया है। मर्त्य लोक वही है जिसमें हम सब बिना उठे गिरे पशुवत् पेट प्रचलन के कुचक्र में दिन गुजारते रहें। यह यथास्थिति ही मर्त्य लोक है। नरक लोक नीचे है। अर्थात् अधोगामी निकृष्टता अपनाने पर निर्भर है। वस्तुतः किसी ग्रह नक्षत्र पर यह लोक नहीं है। उनकी दूरी नहीं नापी जा सकती। यह जीवन की रीति-नीति और दिशा धाराएँ हैं। जिन्हें मनुष्य अपनाता तो स्वेच्छापूर्वक है पर कृत्यों का परिणाम भुगतने के लिए सृष्टि व्यवस्था के अन्तर्गत बाधित रहता है।

ऊर्ध्व लोक से तात्पर्य यहाँ उत्कृष्टता से है। इसके हृदयंगम भाव सम्वेदना को—सहृदयता को अपनाना स्वभाव में उतारना और आचरण में समाविष्ट करना पड़ता है। हृदय में भगवान विराजते हैं। इसका तात्पर्य करुणा, उदारता, सद्भावना, शालीनता को कार्यान्वित करना है। इससे भी एक कदम ऊर्ध्वलोक की दिशा में मस्तिष्क के अन्तराल में काम करने वाली प्रकाश ज्योति है। दूसरे शब्दों में इस दूरदर्शी विवेकशीलता—दिव्य दृष्टि कहते हैं। मस्तिष्क के मध्य भाग में ब्रह्म रन्ध्र को शेष शायी विष्णु का और कैलाशवासी शिव का अदृश्य स्थान माना गया है। विवेक को तृतीय नेत्र कहा गया है। इसी क्षेत्र में अतीन्द्रिय क्षमताओं का भण्डार भरा पड़ा है। आज्ञा चक्र को मस्तिष्क भाण्डागार की चाबी कहा गया है। इस महाकोष में से अभी मनुष्य को सात प्रतिशत का ही अनुभव अभ्यास है। यदि आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा इस क्षेत्र का जागरण, उन्नयन सम्भव हो सके तो सामान्य व्यक्ति का देव पुरुष होना सम्भव है।

दीपक जब ठीक तरह जलता है तब उसकी प्रकाश ज्योति ऊर्ध्वगामी होती और अपने प्रभाव क्षेत्र को ज्योतिर्मय बनाये रखती है। किन्तु जब दीपक के पेंदे में छेद हो जाता है तो जिस स्थान पर वह रखा था उसे गन्दला कर देता है। कोई छुए तो उस चिकनाई को हाथ या कपड़े से छुड़ाना कठिन पड़ता है। इतना ही नहीं दीपक के जल सकने की क्षमता आधी चौथाई रह जाती है। जो बत्ती देर तक काम दे सकती थी पर तेल नीचे रिस जाने पर एक बारगी जल जाती है और उसकी लपट से पास रखी हुई वस्तुओं में अग्निकाण्ड का खतरा उत्पन्न हो जाता है। देखते-देखते प्रकाश क्षेत्र अन्धकार में डूब जाता है। यह दीपक के पैंदे में छेद हो जाने की दुष्परिणितियाँ हैं हमारे मस्तिष्क में से प्रज्ञा का तिरोभाव हो जाने से दूरगामी विवेकशीलता घट जाने से ऐसी ही खेदजनक सम्भावनाएँ सामने आती हैं।

चेतना का ऊर्ध्वगमन शरीर के ऊर्ध्व लोक ऊर्ध्व भाग से सम्बन्धित है। इसके तीन कक्ष हैं। हृदय की सहृदयता, मस्तिष्क की विवेकशीलता यह दो आधार हुए तीसरा है—रसना। जिह्वा पर अंकुश रख रखकर स्वाद जयी बना जाता है। व्रत उपवास की साधना द्वारा मनोबल बढ़ाया जाता है और शरीरगत जीवनी शरीर शक्ति को आरोग्य एवं दीर्घ जीवन प्रदान करने वाली रखा जाता है। मनोनिग्रह की आधी साधना स्वाद जय से हो जाती है और मनोबल अभिवर्धन की आधी यात्रा पूरी हो जाती है। संकल्प और साहस के अभिवर्धन में उपरोक्त तीनों ही क्षेत्र में मिल-जुलकर काम करते हैं। यह ऊर्ध्व लोक की यात्रा है। इसे चेतना का ऊर्ध्वगमन कह सकते हैं।

अधोलोक—नरक यों व्यक्तित्व के साथ जुड़े हुए गुण कर्म स्वभाव से सम्बन्धित हैं। पर यदि काय विभाजन के अनुरूप वर्गीकरण किया जाय तो नाभि क्षेत्र को मर्त्य लोक कहा जायगा। पेट और प्रजनन तक सीमाबद्ध रहना और पशु प्रवृत्ति का परिचायक है। जिनका कोई आदर्श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य या लक्ष्य नहीं है। उन्हें प्रकृति प्रेरणा से दो कार्यों में निरत रहना पड़ता है। जन्म के साथ ही क्षुधा की प्रेरणा साथ आती है और जिस-जिस प्रकार पेट भरना पड़ता है। इसके उपरान्त किशोरावस्था आते-आते यौवन की सीढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते यौनाचार की उमंगें उठती हैं और जोड़ी ढूँढ़ने तथा गर्भाधान का ताना-बाना बुनने की प्रक्रिया चल पड़ती है। समस्त प्राणियों को शरीरगत श्रम के लिए भूख का और दिमाग में मधुर कल्पनाओं का संरजाम जुटाने के लिए काम-क्रीड़ा के लिए दिमाग पर जोर देना पड़ता है। समस्त जीवधारी विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ इन्हीं दो प्रयोजनों के निमित्त करते देखे जाते हैं। यह प्रकृति प्रेरणा है जो समस्त जीवित प्राणियों में पाई जाती है। इसी में नर पशु की जिन्दगी भी कट जाती है। इसलिए इसे प्राणि लोक या मनुष्य लोक कहा गया है।

अधो लोक में मल मूत्र के छिद्र आते हैं। अधिक खाने और मद्य मांस वाले इन दोनों को भी रुग्ण कर लेते हैं। पेचिस, अपच जैसे रोग घेर लेने पर मल त्याग की स्वाभाविक क्रिया में बाधा पड़ती है। बहुमूत्र, मधुमेह, सुजाक, पथरी जैसे मूत्र रोग भी एक प्रकार से अधोलोक हैं। इनके वेग न रुकने पर वस्त्र बिस्तर खराब होने और दुर्गन्ध से कुरुचि उत्पन्न का घिनौनापन देखा जाता है। यौनाचार भी इसी क्षेत्र की क्रिया है। उसका प्रभाव मस्तिष्क तक धावा बोलता है तो अगम्यागमन, व्यभिचार, बहुमैथुन, कामुक चिन्तन आदि के उद्देश्य सिर पर सवार रहते हैं और उसे मानसिक कामाचार के फलस्वरूप मनुष्य खोखला होता जाता है। मानसिक विशेषताएँ—विभूतियाँ एक-एक करके विदा होने लगती हैं और उच्च-स्तरीय चिन्तन के अभाव में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के षट रिपु शृंखलाबद्ध अथवा व्यतिरेक क्रम से मनुष्य पर आरूढ़ होने लगते हैं। उनके आवेश उद्विग्नता की आग में जलाते रहे हैं और परिणाम चित्र-विचित्र स्तर की नारकीय यातनाएँ प्रस्तुत करते रहते हैं। अपने शरीर में भी तीनों लोक हैं। उसमें से क्या चयन करता है यह मनुष्य की अपनी इच्छा के ऊपर निर्भर है।

★

भगवान महावीर आत्म संयम की साधना में उन दिनों लीन थे। उन्हें उद्विग्न करने के लिए संगम नामक एक दुष्ट पीछे पड़ा हुआ था। आये दिन वह उन्हें क्षुब्ध करने के लिए कुछ न कुछ कुचक्र रचता रहता।

एक दिन उसने खौलता दूध उनके ऊपर उलट दिया। तो भी वे अविचल भाव से अपनी साधना में निरत रहे।

संगम पिघला। वह अपने कुकृत्यों पर आँसू बहाता क्षमा माँगता विदा होने लगा।

भगवान की आँखें भी नम हो गईं। वे बोले—तात् इन कुकृत्यों का दुष्परिणाम तुम्हें कितना कष्टकारक होगा, यही सोचकर मुझे व्यथा हो रही है। दूध से जलने पर उठे हुए फफोले देखकर नहीं।

× × × ×

बंगाल के न्यायाधीश नीलम वंद्योपाध्याय ने एक बीमा एजेण्ट के फुसलाने पर पाँच हजार का बीमा करा लिया। मधुमेह के बीमार होते हुए भी स्वास्थ्य विवरण में उस बात को छिपा दिया गया।

लम्बी बीमारी के बाद जब वंद्योपाध्याय महोदय का अन्तकाल निकट आया, तो उनने बीमा एजेण्ट को बुलाकर उसे बेईमानी का इकरार नामा लिखा और बीमे को रद्द करा दिया। बोले—"जीवन भर बुराइयों से बचता रहा, तो मरते समय यह पाप सिर पर लादकर क्यों मरूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्काम कर्मयोग एवं मुक्ति

पूर्व जन्मों के प्रारब्धवश इस जीवन में जो काम, संयोग और परिस्थितियाँ मनुष्य को उपलब्ध हों, उनमें सन्तोष रखते हुए आगे की उन्नति के लिये उद्योग करना धर्म है। शरीर जिस साधना में तत्पर हो उसी को पूरा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। अपनी परिस्थितियों से बहुत अधिक की कामना करना ही मनुष्य की दुःखद स्थिति का कारण है। अनियन्त्रित मनोरथ का त्याग करना ही अपने पूर्व-प्रारब्ध के लिये सन्तोष करने का अच्छा उपाय है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि आगे के लिये अधिक सुन्दर परिस्थितियाँ प्राप्त करने की चेष्टा न करें। श्रेय की इच्छा करने वाले मनुष्य को न तो निष्क्रिय रहना चाहिये और न ही विविध कामनायें करनी चाहिये।

सेना में सिपाही की योग्यता के अनुसार कमाण्डर उसे कोई एक काम सौंप देता है। योग्यता बढ़ा लेने पर कमाण्डर क्रमशः उसे उच्च पद देता चला जाता है किन्तु सिपाही की स्थिति में रहते हुए सेनानायक के पद की आकांक्षा करने से न तो वह सिपाही के कर्त्तव्यों का भली-भाँति पालन कर सकेगा और न ही सेनानायक का पद ही मिल सकेगा। इससे दुःख तो मिलेगा ही दुष्परिणाम भी उपस्थित हो सकते हैं।

एक ही परिस्थिति में यदि दत्तचित्त से लगे रहें तो उसमें भी आशाजनक परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। कभी इधर, कभी उधर की दौड़ भाग करना मनुष्य की अस्थिरता का चिन्ह है। जो तरह-तरह की कामनायें मन में करते रहते हैं उन्हें ही यह परेशानी भुगतनी पड़ती है। अधिक से अधिक धन, अधिक सुख-सुविधाओं की लिप्सा ही मनुष्य को कमजोर और दुःखी बनाती है क्योंकि यदि उन्नति की उचित योग्यता, शक्ति और परिस्थितियाँ न हुईं तो आकांक्षाओं की कभी पूर्ति नहीं हो सकेगी और उससे दुःखी, अधीर, चिन्तित और निराश ही बने रहेंगे।

दूसरों को अधिक सुखी और सम्पन्न देखकर ईर्ष्या करना और परमात्मा को दोषी ठहराना मनुष्य की बहुत बड़ी भूल है। ऐसा वह इसलिए करता है कि उसे केवल अपने अधिकार प्रिय हैं। पूर्व जीवन में उसने क्या किया है इसकी भी तो कुछ संगत होनी चाहिए। किसी को कम किसी को अधिक देने का अन्याय भला परमात्मा क्यों करेगा? मनुष्य अपने ही कर्मों का लाभ या घाटा उठाता है। एक रुपया देकर किसी को भला पाँच रुपये की कीमत की भी कोई वस्तु मिली है? योग्यता से अधिक दे देने की भूल भला परमात्मा क्यों करेगा? ऐसा यदि हो तो उसे लोग अन्यायी ही तो कहेंगे। यही क्या कुछ कम उपकार है जो उसने आपको मनुष्य जीवन जैसा अलभ्य अवसर प्रदान किया है। आप चाहें तो अपने जीवन का मूल्य बढ़ा सकते हैं और कर्त्तव्य पालन तथा अन्य सद्गुणों द्वारा आगे के लिए शुभ परिस्थितियाँ, अच्छे परिणाम और मंगल संयोग प्राप्त कर सकते हैं।

काम बदलने की चिन्ता आप मत कीजिए। यह एक प्रकार की 'कर्ण-हिंसा' है। इसी में पुरुषार्थ करते रहिये। भली परिस्थितियों के संयोग ईश्वरीय प्रेरणा से स्वतः प्राप्त हो जाते हैं उसके लिये कोई जोड़-तोड़ नहीं करनी पड़ती। आप क्रियाशील रहिये, उद्योग करते जाइये, उन्नति के अवसर आपके जीवन में जरूर आयेंगे। पर कदाचित आपके प्रारब्ध कुछ इस तरह के नहीं हैं कि आप अधिक उन्नति कर सकें तो खीझ और उत्तेजना से प्राप्त परिस्थिति का सन्तोष भी आपको नहीं मिल सकेगा। इसीलिये फल प्राप्ति की कामना को गीताकार ने दोष बताया है और मनुष्य को निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा दी है।

जागृत मनुष्य कभी क्रिया हीन नहीं रहेगा। प्राप्त परिस्थितियों में जो लोग प्रसन्नतापूर्वक लगे रहते हैं जीवन का सुख उन्हीं को मिलता है। सुख किसी वस्तु या परिस्थिति विशेष में नहीं है। वह एक मानसिक भाव है जो प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न रहने से मिल जाता है। छोटी-छोटी बातों में दुःखी रहने का तात्पर्य यह है कि आप परमात्मा के विधान की अवहेलना करना चाहते हैं। यों न सोचिये वरन् अपने से दयनीय स्थिति के व्यक्तियों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी तुलना कीजिए और पूर्ण प्रसन्न रहने का प्रयत्न कीजिए। पुरुषार्थ करने की आप में शक्ति होगी तो अच्छे परिणाम भी मिल जायेंगे पर परिणाम की ओर अपना ध्यान बनाए रखकर प्राप्त आनन्द को क्यों छोड़ते हैं? जागृत पुरुष इसीलिए प्रत्येक परिस्थिति में सुख का अनुभव करते हैं और तप, त्याग, परोपकार द्वारा अपनी भावनाओं को उत्कृष्ट बनाकर आगे के लिए शुभ फल संचय कर लेते हैं। इसी जीवन की बढ़ी हुई योग्यता ही तो अन्य जन्मों के संस्कार रूप में दिखाई देती है।

दूसरी अवस्था में मनुष्य की कर्म-भावना का विश्लेषण आता है। पुरुषार्थ अपनी शारीरिक या पारिवारिक आवश्यकतायें पूर्ण कर लेने को ही नहीं कहते। मनुष्य इस संसार में रहकर यहाँ के हवा, पानी, धरती, प्रकाश आदि का स्वच्छन्द उपभोग करता है, इस तरह वह धरती माता का भी ऋणी है। जो उपकार प्रकृति और परमात्मा ने उस पर किये हैं उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का सही तरीका यह है कि मनुष्य भी प्राणिमात्र की सेवा और उपकार भावना से काम करे। स्वार्थों तक ही सीमित रहने से पशु और मनुष्य में भेद भी कुछ नहीं रह जाता। परमात्मा का श्रेष्ठ पुत्र कहलाने का सौभाग्य तो तब मिलता है जब निष्काम भावना से सृष्टि के अन्य प्राणियों के साथ समता, न्याय और कर्त्तव्य पालन की उदारता बनी रहे।

बच्चों का पालन-पोषण, व्यापार, देश-रक्षा, मेहनत-मजदूरी, ज्ञान-सम्पादन और जन-मार्गदर्शन, इन कर्मों में से ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, कम महत्वपूर्ण या अधिक महत्वपूर्ण होने की एक ही कसौटी है और वह है मनुष्य की भावना। स्वार्थ सम्मुख रखकर परोपकार दिखाई देने वाले कर्म भी फलदायक नहीं होते। निष्काम भाव से की हुई बच्चों की सेवा और प्राणिमात्र के हित के लिये किया गया उपदेश दोनों का ही फल समान है क्योंकि उनकी भावना एक ही है। कर्म की विविधता में उसका मूल्य भावना स्तर पर आँका जाता है। किसी व्यक्ति की आप चोरों से रक्षा करें और बदले में आधा धन माँगने लगे तो आपकी यह सेवा प्रभावशील न रहेगी। कर्म का महत्व फल त्याग से है। सच्चा सुख, सन्तोष तो तब मिलता है जब मनुष्य अपने आप को परमात्मा का एक उपकरण मानकर विशुद्ध त्याग-भावना से परोपकार करता है। जीवन-मुक्त का लक्षण फल-प्राप्ति की कामना का परित्याग ही बताया जाता है।

प्रकृति हमें नित्य, निरन्तर निष्काम कर्म करने की शिक्षा देती रहती है। सूर्य, चन्द्रमा प्रकाश देते हैं। बदले में कुछ प्राप्त करने की उनकी कोई भावना नहीं होती। वृक्ष अपने फलों का उपभोग अपने लिये नहीं करते। पहाड़ लोगों को असीम खनिज देते हैं, नदियाँ शीतल जल से लोगों को तृप्त करती रहती हैं। इन्हें कभी किसी तरह की कोई भी कामना नहीं होती। लोक-कल्याण के लिये निरन्तर एक-सी स्थिति में चलते रहना ही उनका धर्म है। मनुष्य की दशा भी इसी तरह की होनी चाहिये। सुख कर्म में है फल तो उसके विनाश का प्रारम्भ मात्र है।

विचार मंथन से विवेक मिलता है और सत्कर्मों से आत्मबल बढ़ता है भगवान उन पर प्रसन्न होते हैं जो उसकी सृष्टि को सुन्दर बनाने में निरत रहते हैं।

मुक्ति एक लक्ष्य है जो निरन्तर चलते रहने से प्राप्त होता है। उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिये मनुष्य छलाँग से काम नहीं ले सकता। बीच की साधनावस्था से होकर आगे बढ़ना ही स्वाभाविक नियम है। अकुलाहट, तीव्रता या चित्त में विकार आना मनोरथ पूरा न होने का लक्षण है।

आत्म-कल्याण के विविध साधनों में प्रत्येक स्थिति में हर मनुष्य के लिए सरल और सुलभ साधना—निष्काम कर्म की भावना ही है। कठोर साधनों की अपेक्षा यह मार्ग अधिक सरल है जिसे गीता में "निष्काम कर्म योग" के नाम से प्रतिपादित किया गया है। कर्त्तव्य भावना का ज्ञान और मनोरथ के परित्याग से परमात्मा की स्थिति का बोध हो जाता है और मनुष्य जन्म-मरण के भव-बन्धन से मुक्ति पा लेता है। यही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। इसके लिए निष्काम-कर्म से बढ़कर और कोई दूसरा उपाय श्रेष्ठ नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सशक्तता शक्तियों के सदुपयोग पर अवलम्बित

शक्ति के भाण्डागार मनुष्य के काय संचालन में वहुत सी—शक्ति खर्च होती है। एक अच्छे-खासे कारखाने में छोटे-बड़े जितने कल-पुर्जे होते हैं उसकी तुलना में शरीर-गत घटकों की संख्या कम नहीं ज्यादा ही है। यह सभी परस्पर सम्बद्ध हैं। घड़ी के पुर्जों की तरह इनमें से कुछ खराब स्थिति में होते हुए भी घिसट रहे हों तो स्वभावतः उसके खिचाव में कहीं अधिक शक्ति व्यय होती है। एक वरिष्ठ पहलवान बनने में जितनी शक्ति लगती है उससे कहीं अधिक एक फटे-टूटे सड़े-गले शरीर से काम निकालने में अधिक क्षमता का अपव्यय होता है। इस बर्बादी को रोका जा सके और इस प्रकार जो सामर्थ्य बचती है उसे उपयोगी कार्यों में लगाया जा सके तो साधारण स्थिति का मनुष्य भी इतनी क्षमता बचा सकता है जिसका सदुपयोग बन पड़ने पर आश्चर्यजनक सफलताएँ उपलब्ध होंगी।

इसके बाद मनुष्य का मस्तिष्क आता है। सारा विद्युत प्रवाह यहीं से उत्पन्न होता है। हृदय के माध्यम से होने वाला रक्त संचार प्रायः मांस पेशियों की स्थिरता एवं उनकी समर्थता में ही व्यय हो जाता है। इसमें कहीं ऊँची मस्तिष्कीय क्षमता है। उसके सचेतन भाग से हमारे विचार व्यवहार चलते हैं और अचेतन पक्ष शरीर-गत अनेकानेक रहस्यमय सूत्र संचालकों की बागडोर सम्भालता है। बौद्धिक प्रतिभा का केन्द्र विन्दु यही है। स्फूर्ति का आवेग भी यहीं उत्पन्न होता है। मनुष्य की मानसिक क्षमता का प्रायः ७ प्रतिशत अंश ही व्यवहार में आता शेष ९३ प्रतिशत ऐसा ही जो प्रसुप्त या उपेक्षित स्थिति में ही पड़ा रहता है। उसे जगाने पर मनुष्य मानसिक क्षमताओं के क्षेत्र में एक भानमती का पिटारा खोल सकता है और सामान्य लोगों की तुलना में दिव्य पुरुष या महामानव हो सकता है।

शरीरगत स्वाभाविक क्षमता का अधिकांश भाग आलस्य के गर्त में गिरकर सड़-गल जाता है। बौद्धिक क्षमताओं का आधा अधूरा अन्यमनस्क भाव से किया हुआ उपयोग प्रवाह कहलाता है। प्रमादी मनुष्य बौद्धिक क्षेत्र में पिछड़ा ही बना रहता है और भूल पर भूल करता रहता है।

शारीरिक क्षमताओं का बहुत कुछ दुरुपयोग असंयम से होता है। काम करने वाले अवयवों की सामर्थ्य निचुड़-कर वास्तविक उत्तेजनाओं में खर्च हो जाती है। सामर्थ्यों का भण्डार चुकते जाने पर मनुष्य खोखला होता जाता है। उसका आँख, कान, जिह्वा, जननेन्द्रिय तत्वानिस्वत्व हो जाती है और मांसपेशियाँ शिथिल,त्वचा निस्तेज होती जाती है। जवानी में बुढ़ापा आ धमकता है। झुर्रियाँ पड़ने की आयु आने से बहुत पूर्व ही त्वचा झूलने लगती है और युवावस्था की तेजस्विता सुन्दरता अनायास ही लटक पड़ती है।

जिह्वा का असंयम पाचन तन्त्र को लड़खड़ा देता है और जननेन्द्रिय का असंयम हृदय और मस्तिष्क दोनों को ही शिथिल करता है। यौन उत्तेजना मन्द पड़ जाती है। नपुंसकता आ घेरती है और व्यक्ति शौर्य पराक्रम से हीन होता चला जाता है। असंयम अपने हाथों अपनी जड़ें काटता है। शक्तियों का यह अपव्यय ऐसा है जो उठती उम्र नये रक्त में तो प्रतीत नहीं होता पर जैसे ही उठाव शिथिल पड़ता है वैसे ही अनुभव होता है कि सामर्थ्य के भण्डार में से कितना अधिक अपव्यय हो चुका और शरीर को किस कदर अशक्तता का अभिशाप सहना पड़ा।

मानसिक शक्ति भण्डार के अपव्यय में चिन्तन की दो विकृतियाँ हैं एक को आवेश दूसरे को अवसाद कहते हैं। चिन्ता, क्रोध, आवेश, ईर्षा, प्रतिशोध आदि से उत्तेजित व्यक्ति की स्थिति ज्वर ग्रस्त जैसी हो जाती है।

भय, आशंका, निराशा जैसी कुकल्पनाओं से संत्रस्त व्यक्ति ढेरों शक्ति गँवा बैठता है और उसे लगता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसमान फटा या जमीन धँसी । डरपोक के मन पर इतनी आशंकाएं छाई रहती हैं कि सब ओर से अनर्थ ही आक्रमण करता दृष्टिगोचर होता है । कारण कोई प्रत्यक्ष नहीं दीखता, तो ग्रह-नक्षत्र, भाग्य, भूत-प्रेत, देवी-देवता उलटे पड़ते और किसी के द्वारा जादू टोना करने संकट खड़े किये जाने का त्रास इतनी बड़ी मात्रा में दृष्टिगोचर होता है जितना कि बहादुरों को नास्तिक संकट से जूझते हुए भी भयाक्रान्त नहीं करता ।

यह मानसिक शक्तियों का अपव्यय आसानी से समाप्त हो सकता है यदि मनुष्य आत्महीनता की ग्रन्थि से ग्रसित न हो और आवश्यक पौरुष बनाये रखे । हिम्मत से काम ले और जब जो कठिनाई सामने आयेगी उससे निपट लिया जायगा ऐसी हिम्मत रखे । हिम्मत टूटते ही मनोबल ही नहीं शरीर बल भी पलायन कर जाता है और हाथ के नीचे का साधारण-सा काम भी पर्वत जितना भारी और उफनते नाले जैसा दुस्तर प्रतीत होता है ।

आत्म-बल कहीं आसमान से नहीं टूटता और न कोई देवी देवता उसे उपहार में देते हैं वह आत्म-विश्वास का प्रतिफल है । यदि हम अपने को ईश्वर की सर्वोत्तम कलाकृति समझें और शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का भाण्डागार जन्मजात रूप से लेकर जन्मे अनुभव करें तो शंका कुशंकाओं का कागज से बने रावण की तरह खोखला सिद्ध होता है । असली भूत संसार में जितने हैं उनकी तुलना में अन्धेरी झाड़ियाँ और श्मशान के पीपल पर रहने वाले काल्पनिक भूतों की संख्या कहीं अधिक है । इन सब को कोई चाहे तो चुटकी बजाते उड़नछू कर सकता है ।

अभी कितना चलना है, यह सोचने पर मंजिल बहुत लम्बी मालूम होती है और लक्ष्य तक पहुँचने में अनेक अड़चनों का भय प्रतीत होता है । किन्तु यदि अपने मजबूत पैरों तले की सड़क को देखा जाय तो प्रतीत होगा कि जो पैर जिस सड़क को इतनी दूर पार कर चुके वे शेष मंजिल को क्यों पार न कर सकेंगे ।

भाग्य ने हमें इस स्थिति में पटका यह कहने की अपेक्षा यह कथन सारगर्भित है कि भाग्य को निष्क्रिय रहने या विपन्न बनाने की जिम्मेदारी अपनी रही है और यदि पिछले अपव्ययों की रोकथाम करने उपलब्ध शक्तियों का नये सिरे से सदुपयोग करें तो भाग्य के निर्माता बनने में कोई सन्देह नहीं है । प्रगतिशीलता के दो ही उपाय हैं कि जिन-जिन छिद्रों में होकर शक्तियों का भण्डार बूँद-बूँद होकर रिसता है और भरे घड़े को खाली कर देता है उन सभी छिद्रों को बन्द कर दिया जाय। इससे अपव्यय रुकेगा । संयम थमेगा । अब एक ही बात करने योग्य शेष रह जाती है कि शक्तियों को निरन्तर कार्यरत बनाये रहने की योजना बनायें और उन्हें क्रियान्वित करने में जुट पड़ें ।

चाकू पर धार धरने से उसकी कार्य क्षमता और चमक दोनों ही बढ़ती हैं इसी प्रकार आत्म-विश्वास, साहस, पुरुषार्थ के सहारे अपनी इन्हीं शक्तियों को अनेक गुना बढ़ाया जा सकता है जो हमें इस मानव जीवन के साथ परमात्मा द्वारा आरम्भ में ही प्रदान की गई है। बीज को खाद पानी मिलने पर वह बढ़कर वृक्ष बन जाता है अपनी वर्त्तमान क्षमताओं को ही यदि बर्बादी से बचायें और उत्कर्ष की दिशा में लगायें तो अशक्ति को समर्थता में सहज ही बदला जा सकता है ।

श्रेष्ठि बंधारक ने तथागत से पूछा—आपकी मण्डली के सभी सदस्यों की कठिन और कष्टसाध्य जीवनचर्या हैं । कभी भोजन मिलता हैं, कभी नहीं । पैदल लम्बी यात्रा करते हैं, जमीन पर सोते हैं । फिर भी क्या कारण है कि हमारा श्रेष्ठि समुदाय दुर्बल और उदास रहता है और आपके परिव्राजक कमल के फूल जैसे खिले और प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं ।

तथागत ने एक ही कारण बताया—साधु जन न केवल ब्रह्मचर्य से रहते हैं, अपितु वे आज के गुजारे पर सन्तुष्ट रहते हैं, उन्हें कल की चिन्ता नहीं रहती । जो भी इस तरह रहेगा, प्रसन्नतापूर्वक जियेगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतशीलता बनाम हठवादिता

कई व्यक्ति कई प्रकार के निश्चय भावावेश में कर बैठते हैं और उनकी जोर-शोर के साथ घोषणा भी करते हैं। इतना ही नहीं उनको पूरा करने के लिए दुराग्रह भी अपनाते और हठवादिता का परिचय भी देते हैं। ऐसे निश्चय या उद्घोष जिनमें दूरदर्शिता और परिणाम की सम्भावना का समावेश न हो प्रायः अनुचित ही होते हैं और प्रतिज्ञा के स्थान पर उन्हें हेय हठवादिता ही कहा जाता है। संकल्प अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। प्रतिशोध एवं दर्प के आवेश में प्रायः लोग ऐसी प्रतिभाएँ करते देखे गये हैं जिनमें दूसरों को तो अनर्थ सहना ही पड़े और फल स्वरूप अपने को कम दुष्परिणाम न भुगतना पड़े।

अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी कि आज सूर्यास्त होने तक जयद्रथ का वध करूँगा। वह बात बनी नहीं। परिस्थितियाँ दूसरे ढर्रे पर चल पड़ीं ऐसी दशा में अर्जुन को असफल रहने पर आत्म हत्या कर लेनी चाहिए थी। पर कृष्ण ने उसमें दुहरी हानि देखी और छद्मपूर्वक नकली सूर्य चमका कर जयद्रथ वध का कुचक्र रचना पड़ा यहाँ प्रतिज्ञा रही भी और नहीं भी रही। कृष्ण ने प्रतिज्ञा निवाहने की अपेक्षा उसे टूट जाना हित कर समझा। क्योंकि वह आवेश में की गई थी और सम्भावनाओं का गम्भीरतापूर्वक अनुमान नहीं लगाया गया था।

ऐसे आवेश प्रायः हत्याएँ कराने, आत्म हत्या के लिए उभारने—या उचित कार्यों को छोड़ बैठने के लिए उकसाते हैं और संकल्प न रह कर संकट बन जाते हैं।

व्रतशीलता का उपयुक्त माध्यम एक ही है आत्मशोधन और औचित्य की मर्यादा में प्रगति पथ पर अग्रसर होते रहने का निश्चय। ऐसी प्रतिज्ञाओं में कालावधि की सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। क्योंकि मनुष्य के हाथ में इच्छित अनुकूलताएँ एवं परिस्थितियाँ नहीं हैं। ऐसी दशा में काल सीमा निर्धारित करना भी व्यर्थ है। व्रतशील को अपने निश्चय पर दृढ़ तो रहना चाहिए। किन्तु अपवादों के लिए गुंजायश भी रखनी चाहिए। गान्धी जी मंगलवार को मौन व्रत रखते थे, पर वह इसके लिए हठवादी नहीं थे। कईबार उन्हें वह व्रत आगे-पीछे भी करना पड़ा। वाह्य कृत्यों में अपवादों के लिए इतनी गुंजायश भी छोड़नी पड़ती है।

वस्तुतः व्रत शब्द से तात्पर्य आत्मशोधन के निमित्त किये गये बुद्धि संगत उपायों को दृढ़तापूर्वक अपनाये रहना है। इसमें उपवास, ब्रह्मचर्य जैसे उच्चस्तरीय नियमों का प्रतिज्ञापूर्वक परिपालन आता है। दयानन्द, शंकराचार्य आदि ब्रह्मचर्य का और कणाद, पिप्पलाद आदि आहार सम्बन्धी सीमा बन्धन का सरलतापूवक निर्वाह कर सके। श्रम सम्बन्धी नियम भी निभ सकते हैं। इतना अध्ययन, भजन, व्यायाम आदि करना हो। ऐसी प्रतिज्ञाएँ उपयुक्त भी हैं और निभती भी हैं।

यही बात सत्य के सम्बन्ध में भी है। सैन्य विभाग के रहस्यों का प्रकट करना वाचक सत्य हो सकता है पर उद्देश्य पूर्ण सत्य नहीं। चोरों और ठगों को अपनी वास्तविक स्थिति बता देना प्रकारान्तर से अनीति का ही परिपोषण है।

व्रतशील हम बनें। प्रतिज्ञाएँ भी लें, पर वे सभी विवेकपूर्ण और दूरदर्शिता युक्त होनी चाहिए। आवेश में की हुई हठवादिता को जितना जल्दी उलटा जा सके उतना ही अच्छा है।

सन्त ज्ञानेश्वर के पिताजी ने गृहस्थ के उत्तरदायित्व को अधूरा छोड़कर संन्यास ले लिया था। उनके गुरुदेव स्वामी रामानन्द को जब वस्तुस्थिति विदित हुई तो उनने उन्हें पुनः गृहस्थ धर्म में प्रवेश करने का आदेश दिया और संन्यास छुड़ा दिया। इसमें वचन भंग का दोष तो आता है, पर उससे बड़ा व्रत निभता है—भूल सुधार का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रख्यात है कि अंगुलिमाल डाकू नित्य प्रति १०८ उँगलियाँ काटकर उनकी माला देवी पर चढ़ाया करता था। इसी आधार पर उसने अपना नाम 'अंगुलिमाल' रखा हुआ था। भगवान बुद्ध के सम्पर्क में आने पर उसने उस प्रतिज्ञा से मुख मोड़ लिया और अहिंसा का प्रचारक बन गया।

कई हठवादी एक बार मुख से निकले शब्दों को पूरा करने में ही संकल्प की पूर्ति समझते हैं और अपने दर्प को पूरा हुआ समझते हैं। द्रोणाचार्य द्रुपद के दरबार में कुछ याचना करने गये और गुरुकुल में साथ पढ़ने की मित्रता का स्मरण दिलाया। इस पर द्रुपद ने उनका उपहास उड़ाया। द्रुपद से उस अपमान का बदला लेने के लिए अपने शिष्य पाण्डवों से उन्हें परास्त करने और मुश्कें बाँधकर सामने प्रस्तुत करने का आदेश दिया। वही हुआ। इसके बाद प्रतिशोध की क्रिया प्रतिक्रिया चल पड़ी और उसका अन्त महाभारत के सर्वनाशी रूप में सामने आया। चम्बल के डाकुओं की खदान उमड़ पड़ने का कारण भी प्रतिशोध की परम्परा चल पड़ना ही निमित्त कारण है। इसीलिए कहा गया है कि किसी आवेश में की हुई प्रतिज्ञा का पूर्ण करना आवश्यक नहीं। मन बदलने पर परिस्थितियों में अन्तर आ जाने पर बात को बदल देने में समझदारी ही मानी जाती है।

सम्राट अशोक ने जीवन के अन्त काल में बुद्ध संघ को सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ देने का संकल्प लिया, पर राज्य उनके उत्तराधिकारी के हाथ चले जाने पर दैनिक उपयोग की वस्तुएँ दीं और अन्त में एक सूखा आँवला जो उनके पास शेष रहा था वह उनके संघ को देकर अपने संकल्प की पूर्णाहुति मान ली।

अम्बपाली को नगर वधू रहने की शपथ दिलाई गई थी, पर उनने बुद्ध की शरण में आते ही उस अनीति बन्धन को टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया और सती साध्वी की तरह धर्म प्रचार में संन्यासिनी बनकर जुट गईं।

वचन के एक बार मुँह से निकल जाने पर वैसा ही करके रहना प्रतिज्ञा पूर्ति मानी जाती है, पर उसका मूल्य तभी है जब अपनी सामर्थ्य को तोलते हुए—परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उच्च उद्देश के निमित्त की जाय। इस कसौटी पर आत्म-शोधन के लिए किये गये व्रत, उपवास, संयम निर्वाह आदि के संकल्प ही उस मर्यादा के अन्तर्गत आते हैं जिन्हें कष्ट सहते हुए भी निवाहना चाहिए।

कई व्यक्ति एक पैर पर खड़े रहने, एक हाथ ऊँचा रखने आदि की प्रतिज्ञाएँ ले लेते हैं और उन्हें बहुमूल्य शक्तियों का समापन करते हुए निवाहते हैं। कुछ लोग कष्ट मौन धारण करते हैं और जब काम नहीं चलता तो सिलेट पेन्सिल पर अपनी इच्छाएँ व्यक्त करते रहते हैं। ऐसे व्रत धारण को अनावश्यक ही नहीं आहत कर परम्परा उत्पन्न करने वाला और दूसरों के सम्मुख अपना बड़प्पन सिद्ध करके यश लूटने का षड्यन्त्र भी माना जा सकता है। सादगी अपने आप में एक व्रत है जिसके साथ उच्च विचारों का अविच्छिन्न सम्बन्ध जुड़ा हुआ है।

> कष्ट भाग्य के धकेले नहीं आते। उन्हें अपनी अनुपयुक्त गतिविधियों द्वारा हम स्वयं न्योंत बुलाते हैं। ईश्वर तो उन्हें चिन्तन सुधारने और प्रतिभा निखारने के लिए भेजते हैं।
>
> तर्क की सार्थकता तब बढ़ती है जब उसमें श्रद्धा का समन्वय हो।

भगवान बुद्ध आरम्भ में अत्यन्त कठोर तप करने लगे थे और अस्थि पिंजर मात्र रह गये थे। तब उन्हें उस हठ को छोड़ने और मध्यम मार्ग अपनाने की प्रेरणा मिली। उनने अपनी भूल समझी और अविलम्ब सुधार ली।

व्रतशीलता और प्रतिज्ञापालन अच्छी बात है उससे मनोबल बढ़ता है, पर साथ ही यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि किसी के बहकावे से कोई कुकृत्य कर बैठने की प्रतिज्ञा तो नहीं करली गई है। यदि ऐसा हो तो उसे तत्काल सुधारा जाना चाहिए। आत्म सुधार में हठवादिता का परित्याग भी आता है जो अपने-आप में एक श्रेष्ठ व्रत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवी सत्ता हर दृष्टि से अनुपम, अद्भुत एवं आश्चर्यजनक

बाजीगर कभी-कभी ऐसे अनोखे खेल दिखाते हैं कि बच्चे तो क्या, बड़े-बड़े भी चकित रह जाते हैं और उन रहस्यों एवं करामातों के सम्बन्ध में हतप्रभ होकर रह जाते हैं ? कि यह सब किस आधार पर, क्यों कर प्रदर्शित किया गया।

भगवान की कलाकृतियाँ सदा आँखों से आगे गुजरती रहती हैं इसलिए वे एक प्रकार से अभ्यास में सम्मिलित हो जाती हैं और साधारण एवं स्वाभाविक लगती हैं। पर गम्भीरतापूर्वक उन्हें देखा जाय तो प्रतीत होगा कि यहाँ सब कुछ आश्चर्य ही आश्चर्य है। आसमान सूरज चाँद सितारे, बादलों के घटाटोप उनका बरसना और कड़कना लगता है कि यह किसी बड़े शक्तिशाली एवं असाधारण बुद्धि वाले का कौशल है। धरती पर ऊँचे पर्वत और नीचे समुद्र अपनी अनौखी छटा दिखाते हैं। बीच-बीच में जलाशय, घने जंगल, लम्बे रेगिस्तान और नदियों का प्रवाह देखकर चकित रह जाना पड़ता है कि आखिर यह सब कैसे सम्भव हो सका इस भिन्नता भरी संरचना का निर्माण किन हाथों से किन उपकरणों के सहारे बन पड़ा।

प्राणियों की आकृति और प्रकृति और भी हैरत भरी है। मिट्टी में रहकर वनस्पति उत्पादन में सहायता करने वाले अदृश्य सूक्ष्म जीवी, पानी में रहने वाले अदृश्य कीटाणु, झींगुर टिड्डी से लेकर गरुड़ जैसे पक्षी और हाथी ह्वेल जैसे प्राणियों का चित्र-विचित्र निर्माण ही नहीं उनके आहार-विहार के साधन भी इस प्रकार बनाये गये हैं कि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और कठिनाइयों का निराकरण आसानी से कर सकें।

इसके उपरान्त आता है सर्वोच्च श्रेणी का प्राणी मनुष्य उसकी शारीरिक संरचना इतनी सूक्ष्म, इतनी विचित्र और इतनी अद्भुत है कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है कि समझ में नहीं आता कि सागर को गागर में किस तरह भरा गया। ब्रह्माण्ड के सुविस्तृत घटकों की इस छोटी-सी काया में किस प्रकार समाविष्ट किया गया। किस प्रकार विशाल ब्रह्माण्ड की छोटी किन्तु समग्र इकाई के रूप में इस काय-कलेवर के कण-कण में अनोखापन भरा गया यह देखते ही बनता है।

इतना ही नहीं कि सृष्टा ने अपनी निज की सत्ता और विलक्षणता भी मनुष्य को उत्तराधिकारी युवराज के रूप में प्रदान की है। परन्तु इतनी सतर्कता भी रखी है कि कहीं इसका अत्यधिक दुरुपयोग न होने लगे। इसलिए विभूतियों को इतनी कुशलता के साथ छिपाया है कि साधारणों को उनका आभास तक न मिले किन्तु अन्तर्मुखी हो गईं। पनडुब्बों की तरह गहरे उतर सकें तो बहुमूल्य मणि मुक्तक टोकरे भर-भरकर समेट सकें।

मनुष्य प्रत्यक्षतः गया-गुजरा प्राणी है। वह न जल में डूबा रह सकता है, न आसमान में पक्षियों की तरह उड़ सकता है। बन्दर की तरह वह पेड़ पर भी नहीं चढ़ सकता। प्रतिद्वन्द्विता में छोटे से रोग कीटाणु—वायरस--ही उसका कचूमर निकाल सकते हैं। हिरन की तरह, छलांग मारना और घोड़े की तरह दौड़ना तो उसके बस की बात है ही नहीं। टक्कर में असंख्य जीव जन्तु ऐसे हैं जो उसे देखते-देखते धराशायी कर सकते हैं। इतने पर भी वह सृष्टि का मुकट मणि है। अपने पराक्रम के बल-बूते नहीं, मिले हुए दिव्य अनुदानों के आधार पर। शरीर की संरचना ही देखिए। हाथों का इतनी जगह से इस प्रकार मुड़ना और इतनी उँगलियों का होना ऐसी विलक्षणता है जैसी अन्य किसी प्राणी में नहीं मिल सकती। शरीर को सीधा होकर चलने में मेरुदण्ड की, आर्चेज ऑफ फुट की जो समर्थता है उसकी तुलना में कोई प्राणी नहीं ठहरता। सामान्य संरचना की तुलना में कितने ऊँचे स्तर के कौशल वह दिखा सकता है इसका प्रत्यक्ष दर्शन ओलम्पिक खेलों और सधे हुए सरकस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिलाड़ियों के करतब देखकर जाना जा सकता है कि इस काया को कितना साधा और कितना समुन्नत बनाया जा सकता है।

एक कदम और आगे बढ़े तो उसका कौशल वैज्ञानिकों के प्रकृति के गहरे परतों को खोलकर एक से एक बढ़कर आविष्कार करने की कृतियों में देखा जा सकता है। सृष्टि के अन्य प्राणी जहाँ जलती आग को देखकर मुसीबत मानते हैं और देखते ही भाग खड़े होते हैं वहाँ मनुष्य है जो मृत्यु की सहेली बिजली को घरेलू सेविका की तरह काम करते रहने और दिन रात में कभी छुट्टी न माँगने के लिए विवश करता है। देश-देशान्तरों के मध्यवर्ती दूरी को समाप्त करके रख देने वाले टेलीफोन, टेलेक्स, रेडियो, टेलीविजन, प्रक्षेपणास्त्र, वायुयान आदि साधनों के माध्यम से मीलों की लम्बाई वाली दूरी का कोई अस्तित्व नहीं रहा। वर्षों में हो सकने वाला कार्य मिनटों और सैकिण्डों में पूरा किया जा सकता है।

शल्य क्रिया ने यह सम्भव कर दिया है कि गोलियों से बिंधे हुए व्यक्ति भी बचाये जा सकते हैं। अंगों का प्रत्यारोपण हो सकता है। अपंगों को कार्य कर सकने योग्य बनाने के लिए अनेकों उपकरण बन चुके हैं। यह चिकित्सा क्षेत्र की करामात है। महादैत्यों और विश्वकर्माओं को चुनौती देने वाले विशालकाय कल-कारखाने मनुष्य की प्रतिभा से ही खड़े किये गये हैं। पूर्वकाल में देवलोक में इन्द्र के पास एक वज्र था। अब अणु बमों और हाइड्रोजन बमों के रूप में ऐसे हजारों वज्र बनाकर अपनी तिजोरियों में बन्द कर रखें हैं। कभी तान्त्रिक सम्मोहक स्त्री का प्रयोग करके जीवितों को मृतकवत बना देते थे आज उस कार्य को क्लोरो फार्म—पैथीडीन आदि अनेकों रसायन बाजार में उपलब्ध हैं। सोमरस पीकर कभी देवता अलौकिक अनुभूतियों का रसास्वादन करते थे। अब हीरोइन हशीश, चरस की इतनी किस्में चल पड़ी हैं जो सेवन कर्त्ता को किसी विचित्र लोक में पहुँचा देती हैं।

लेखन और भाषण उसकी विलक्षण उपलब्धि है। तत्वज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करके उससे धर्म, अध्यात्म, मनोविज्ञान ही नहीं गढ़ा है वरन् ईश्वर को भी अपनी मनमानी आकृति एवं प्रकृति का गढ़ा है। यह ठीक है कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है पर उससे भी अधिक सत्य है कि ईश्वर को मनुष्य ने ही गढ़ा है। सृष्टि के असंख्य प्राणियों को उसकी सत्ता के सम्बन्ध में ज्ञान तक नहीं है।

अन्तरिक्ष को उसने धरती के समान अपना कार्यक्षेत्र बना लिया है। देवता समझे जाने वाले चन्द्रमा का कोना-कोना छान डालने वाले और उसे सिर्फ एक घूमता हुआ मृतिका पिण्ड सिद्ध करने वाला मनुष्य ही है। सौर मण्डल की जामा तलाशी उसने ले ली है और इसके आगे ब्रह्माण्ड की टोह लेने का उसका हौसला देखने ही योग्य है। प्रकृति के बहुत कम रहस्य उसकी जानकारी से बाहर रह पाये हैं। लैसर किरणों जैसी शक्तियाँ उसने

> सम्मान सबका करो, किन्तु विश्वास केवल उनका जो प्रामाणिकता की कसौटी पर अनेकों बार परखे जा चुके हैं।
>
> × × ×
>
> अन्धा मनुष्य सर्प की आशंका से गले में डाली गयी पुष्प माला को भी उतार फेंकता है। अविवेकी लोग सत्परामर्श को भी घाटा पहुँचने की आशंका से उपेक्षापूर्वक अनसुनी कर देते हैं।

हस्तगत करली हैं। और वह दिन दूर नहीं जब वह प्राणियों का मुकट मणि ही नहीं प्रकृति का अधिष्ठाता भी बन सकेगा।

कभी दैत्य, देवताओं और अवतारों को दिव्य सत्ताओं द्वारा शक्तियाँ हस्तगत करनी पड़ती हैं और इसके लिए प्रचण्ड तप का आश्रय लेना पड़ता था। आज अस्त्रों और कुटिलताओं, उद्दण्डताओं के सहारे मनुष्य ने भूतकालीन दैत्यों की तुलना में अपने को वरिष्ठ ही सिद्ध करके दिखा दिया है। इतिहास के विगत दिनों में ही ऐसे दैत्य उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने अपनी सनकें पूरी करने के लिए लाखों करोड़ों को अपने दाँतों से पीस डाला उनके आतंक और कृत्यों को देखकर रावण कुम्भकरण जैसे भी पराभूत होकर एक कोने में बैठ सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न देवताओं और अवतारों का है। लगता है मनुष्य को वह भूमिका निभाने में देर लगेगी किन्तु बुद्धों, गाँधियों की परम्परा निकट भविष्य में कार्यान्वित होने जा रही है तब मनुष्य ही दृश्यमान देवताओं की तरह सर्व-साधारण के परिचय क्षेत्र में होगा। उन्हीं में से कुछ विश्व को काया-कल्प कर सकने में समर्थ अवतार भी हो सकते हैं।

आदिमकाल के अनगढ़ और आज के सुविकसित मनुष्य में जमीन आसमान जितना अन्तर है। कभी देवता चूहे और हंस की सवारी करते थे अब मोटर और वायुयान अपेक्षाकृत अधिक सशक्त वाहन हैं। सरस्वती ने आदमी की आधीनता स्वीकार करली है। प्रेस और प्रकाशन होते ही ज्ञान की देवी सरस्वती को पेन्शन देकर मनुष्य ने उस पद को अपने आधिपत्य में ले लिया है। विचारों के विस्तार के स्वामी गणेश अब घुड़-दौड़ में रेडियो टेलीविजन में पीछे रह गये हैं।

यह सब क्या है ? यह मनुष्य के रहस्यमय मस्तिष्क के प्रायः सोलहवें भाग की करामात है। परामनोविज्ञान ने पता लगाया है कि अतीन्द्रिय क्षमताओं के भंडारों में खोपड़ी में कैद लिवलिवा पदार्थ भरा पड़ा है। अतीन्द्रिय क्षमताएँ मात्र ऋषियों को ही उपलब्ध हों ऐसी बात नहीं। अनेकों उस सम्पदा को लेकर जन्म के आरम्भ से ही आते हैं और भविष्य कथन से लेकर अदृश्य दर्शन के ऐसे विवरण बताते हैं जिन्हें देखते हुए वह अविश्वास उठ गया जो मनुष्य की सीमित शक्ति से प्रतिबद्ध मानता था।

यह प्रतिपादन ऋषियों और शास्त्रकारों का ही नहीं कि मनुष्य की काया एक सर्वांगपूर्ण प्रयोगशाला है। उस अभिमत से भौतिक विज्ञानी और तत्वज्ञानी भी सहमत हो गये हैं। संसार में अनेकों प्रयोगशालाएँ हैं जो आविष्कारों और चमत्कारों का सृजन करती हैं। पर उन सबका एक स्थान पर समन्वय कहीं देखना हो तो उसे मानवी कार्य की अदृश्य परतों को उघाड़ कर देखा जा सकता है कि मनुष्य कितना सुसम्पन्न है। तत्वज्ञान के क्षेत्र में वह उतना ही सुसंस्कृत भी है जितनी कि ऋषियों और देवताओं के सम्बन्ध में मान्यता है। सामर्थ्यों की कमी नहीं पर भूल एक ही होती चली आ रही है कि हृदय को विशाल एवं उदार न बनाया जा सका। उप लब्धियों की संकीर्ण स्वार्थपरता के लिए प्रयुक्त किया गया और यह भुला दिया कि क्रिया की प्रतिक्रिया भी होती है-और दुष्कृत्यों का दुष्परिणाम भी होता है। कदाचित् आस्तिकता का प्रकाश उसे उपलब्ध हो सका होता तो इतना सामर्थ्यवान होने पर उपलब्ध क्षमताओं का सदुपयोग कर सकने पर स्वयं भी धन्य बनता और इस धरातल के वातावरण को स्वर्गोपम बना देता।

एक समय ऐसा भी रहा है कि कुछ अधिनायकों और आतंकवादियों को छोड़कर साधारण मनुष्य यह

> स्वेच्छा पूर्वक अपनाई गई दरिद्रता मनुष्य को महामानव बनाती है, किन्तु आलसी के ऊपर लदी हुई दरिद्रता उसकी अकर्मण्यता का स्वाभाविक दुष्परिणाम है।
>
> × × ×
>
> दरिद्र वह है जिसकी तृष्णा विशाल है। जो स्वल्प में सन्तोष कर सकता है वही सम्पन्न है और वही प्रगतिशील।
>
> × × ×
>
> मूर्ख एक ओर देखता है, बुद्धिमान सब ओर। आँखें सबके माथे में जड़ी होती है, पर विवेक दृष्टि सौभाग्यवानों को ही मिलती है।

सोचता रहा है कि वह तुच्छ, नगण्य एवं भाग्य श्रृंखला में बँधा हुआ है। पर अब विज्ञान ने उन मान्यताओं को बदल दिया और महर्षि व्यास के युधिष्ठिर के कान में कहे हुए इस वाक्य की कि 'मैं एक रहस्य बताता हूँ मनुष्य से श्रेष्ठ और कहीं कुछ नहीं है।" इन्हीं शब्दों को अब विज्ञान ने ढिंढोरा पीटते हुए सर्वसाधारण के सामने तथ्य और प्रमाण प्रस्तुत करते हुए सिद्ध कर दिया है। मनुष्य की अद्यावधि प्रगति आश्चर्यजनक हुई है किन्तु उसकी संरचना को देखते हुए सम्भावनाएँ अत्यधिक ही नहीं असीम भी हैं।

आकाश में जब तब बिजली कौंध जाने से यह अनुमान लगता है कि अनन्त आकाश में असीम विद्युत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भण्डार भरा पड़ा है। इसी प्रकार मनुष्यों में से कितने ही जब अपने कला-कौशल और प्रभावी व्यक्तित्व का परिचय देते हैं तो पता चलता है कि जो भूतकाल में हो सका वह भविष्य में भी हो सकता है। जो एक कर सका उसे दूसरा भी कर सकता है। कारण स्पष्ट है कि जिस प्रकार प्रकृति की परत खुलने पर उसके अन्तराल में असीम शक्ति का भण्डार भरा दीखता है उसी प्रकार मनुष्य की शारीरिक और मानसिक संरचना को देखते हुए यह सहज विश्व है कि जो प्रसुप्त है उसे जगाया जा सके तो हर मनुष्य महामानव बन सकता है और दैत्य या देव में से किसी की भी भूमिका निभा सकता है। वह सीमितदीखते हुए भी असंख्यों सम्भावनाओं और क्षमताओं से भरा-पूरा है।

आत्मिकी के प्रतिपादन आरम्भ से ही यह रहे हैं। समस्त दैवी शक्तियाँ और भौतिक सम्पदाएँ मनुष्य के अन्तराल में विद्यमान हैं। पर उनका प्रत्यक्षीकरण या उपयोग करने के लिए आत्म परिष्कार का प्रयत्न करने की आवश्यकता है। योग और तप द्वारा, आत्मशोधन द्वारा इसी की पूर्त्ति ऋषि युग में होती रही है और वे अपने को ऋद्धि सिद्धियों का भण्डार सिद्ध करते रहे हैं। देवताओं की भूमिका स्वयं निभा सकने के प्रमाण प्रस्तुत करते रहे हैं। अब विज्ञान ने भी उसी स्वर में स्वर मिलाया है और व्यक्ति के शारीरिक सूक्ष्म संरचना और मस्तिष्क की विलक्षणता को देखते हुए यह कहा है कि वह अद्भुत है, अनुपम है, आश्चर्य है। कदाचित हम अपनी इस वस्तुस्थिति को पहचानें और सक्षम बनने में समर्थ हो सकें तो उतना आगे बढ़ा जा सकता है जिसकी कि आज की परिस्थितियों में तो कल्पना कर सकना भी कठिन है।

पण्डित जी नाव में बैठकर नदी पार कर रहे थे। रास्ते में मांझी के साथ वार्त्तालाप चल पड़ा।

पण्डित ने पूछा—भाई, तुम गणित पढ़े हो? उसने 'ना' कह दिया। फिर वे भाषा, व्याकरण, भूगोल, इतिहास आदि के सम्बन्ध में पूछने लगे। हर बार उसने 'ना' का सिर हिला दिया। वह कुछ भी पढ़ा-लिखा नहीं था।

तो तुम्हारी जिन्दगी व्यर्थ चली गई। बिना पढ़े तो पशु होते है। मांझी चुप हो गया।

थोड़ी देर में तेज हवा चली। भयानक आंधी आई और नाव डगमगाने लगी। डूबने का खतरा देखकर, मांझी ने पण्डित से पूछा—आपको तैरना आता है क्या?

अब की बार उनका सिर हिला तो मांझी ने कहा—तब आपकी जिन्दगी पूरी तरह चली गई। मेरी तो मात्र व्यर्थ हो गई थी।

मस्तिष्कीय ज्ञान से व्यावहारिक ज्ञान की महिमा कम नहीं है।

× × × ×

एक छोटी नदी थी। पार जाने के लिए एक लम्बा लट्ठा उसके आर-पार रखा था। उस पर एक के निकलने जितनी ही जगह थी।

एक दिन दो बकरे दो ओर से एक ही समय चल पड़े और बीच में आकर अड़ गये। न किसी ने पहले सोचा और न परिस्थिति की विषमता देखकर पीछे हटने का विवेक अपनाया। अड़े सो अड़े। हेटी कौन कराये? घमण्ड कौन छोड़े? पीछे हटने और जान बचाने की बात, सोचने की बात, कौन सोचे? लड़ने मरने और दूसरे को नीचा दिखाने के उन्माद में परस्पर टकराने लगे। छोटे बकरे के बाद बड़ा गिरा और दोनों ही नदी के प्रवाह में पड़कर मौत के मुँह में चले गये। अहंकार का उन्माद, जो न कर गुजरे, सो कम ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्क एवं श्रद्धा का समन्वित रूप-धर्म

पाश्चात्य जगत में धार्मिक मान्यताओं एवं तर्क में परस्पर टकराव देखा जाता है लेकिन भारतीय दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में भिन्न है। अंग्रेजी में जिसे 'फेथ' (Faith) कहकर पुकारा जाता है, हिन्दी में उसे श्रद्धा कहते हैं। अंग्रेजी शब्द 'रीजन' (Reason) सामान्य भाषा में बुद्धि कहलाता है। पाश्चात्य संस्कृति में फेथ और रीजन में कई सदियों से संघर्ष चला आ रहा है। आर्ष मान्यताएँ शाश्वत हैं। वे बताती हैं कि श्रद्धा एवं बुद्धि के समन्वय में ही मानवता का कल्याण है। जब यह सम्बन्ध स्पष्ट होने लगता है तो व्यक्ति को दोनों की अभिन्नता, एक-दूसरे के बिना अपूर्णता का आभास होता है।

धर्म श्रद्धा पर आधारित है और विज्ञान बुद्धि पर। यह पाश्चात्य दृष्टिकोण है। वहाँ ईसाई धर्म और वैज्ञानिकों में गत चार-पाँच सदियों से पारस्परिक द्वेष एवं टकराव की स्थिति, देखी जा सकती है। वैज्ञानिक धर्म को चमत्कार और अन्ध श्रद्धा मानते आये हैं और धार्मिक कहे जाने वाले लोग वैज्ञानिकों को नास्तिक कहते आये हैं। यही नहीं धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों में भी जैसे—कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट आदि में भिन्न-भिन्न मान्यतायें होने के कारण संघर्ष होता आया है। मध्यकालीन युग में ईसाई तथा गैर ईसाईयों के बीच ही नहीं कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट के बीच भी एक-दूसरों को सफाया कर देने वाले कट्टरतावादी धर्म युद्ध हुए हैं।

धर्म के बारे में वैज्ञानिकों का ख्याल है कि धर्म-पुस्तकों में जो लिखा है उसे ही सत्य मानना, उसके बारे में कोई प्रश्न नहीं कर सकना, यह बात विज्ञान के मूल-भूत सिद्धान्तों के विरुद्ध है। पाश्चात्य देशों में आरम्भ में धर्म सत्ता का ही बोलबाला था और वैज्ञानिकों के सत्यान्वेषण करने के लिए समर्पित हो जाने के लिए अटूट श्रद्धा को तोड़ने के लिए प्रयत्न किया गया। फल-स्वरूप १९ वीं शताब्दी के अन्त में पाश्चात्य विज्ञान का नाम बुद्धिवादी हुआ और धर्म का नाम अन्ध श्रद्धालु, संकीर्ण, एवं असहिष्णु हुआ। जिसका प्रभाव यह हुआ कि उसका दुष्परिणाम हम लोग भी भुगत रहे हैं।

श्री रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के सत्प्रयत्नों ने पश्चिम की धार्मिक मान्यताओं एवं भारतीय वैदिक आध्यात्मिक विचारधाराओं के बीच के अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया।

भारत में विज्ञान का विकास करना ही होगा, बुद्धि को तीक्ष्ण करना ही होगा लेकिन भारत में विज्ञान और बुद्धि को आध्यात्मिक सिद्धान्तों से संघर्ष करने की कोई आवश्यकता नहीं है। शिक्षित वर्ग में आज यह आम मान्यता भरी हुई है कि हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करेंगे लेकिन धार्मिक मान्यताओं को दूर करेंगे। सौभाग्यवश पाश्चात्य सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों का झुकाव भारतीय अध्यात्म की ओर हुआ है तथा वे अध्यात्म और विज्ञान के संघर्ष से प्रसन्न नहीं हैं। साथ ही वे इसके समाधान के लिए प्रयत्नशील हैं। पाश्चात्य में भी धर्म के उच्च नेता गण भी अपनी धार्मिक मान्यताओं के बारे में बुद्धिगम्य और वैज्ञानिक आधार पर जोर दे रहे हैं। इसी तरह इन वैज्ञानिकों की संख्या भी बढ़ रही है जिनका मत है कि मनुष्य को धर्म और श्रद्धा की आवश्यकता है। लेकिन पाश्चात्य जगत में ऐसा बुद्धिगम्य और विज्ञान पर आधारित अध्यात्म न पाने से पश्चिम के कई मान्य धार्मिक और वैज्ञानिक लोग भी भारतीय तत्वज्ञान की ओर आकृष्ट हुए हैं।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर आर्थर एडिंगटन के कथनानुसार इस वैज्ञानिक युग में भी फेथ (श्रद्धा) का स्थान सर्वोच्च है क्योंकि बुद्धि श्रद्धा का एक छोटा अंग है।

अल्बर्ट आइन्स्टीन के अनुसार भी धर्म और विज्ञान के क्षेत्र अलग-अलग होने पर भी इन दोनों के बीच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्पर आदान-प्रदान करने की बड़ी क्षमता है। धर्म ने विज्ञान से बहुत कुछ पाया है, लेकिन धर्म ने मानवीय जीवन का जो लक्ष्य दिया है उसकी ओर बढ़ना विज्ञान के लिए बाकी है। विज्ञान को सत्य एवं विवेक का अन्वेषण करना होगा। भावनाओं का श्रोत धर्म है। आइन्सस्टाइन के मतानुसार मौलिक वैज्ञानिक वही है जिसको पूर्ण श्रद्धा है। धर्म के सिवा विज्ञान पंगु है और विज्ञान के सिवा धर्म अन्धा है।

आज के युग में आम आदमी मनहूस मनोवृत्ति वाला हो गया है जिसकी स्थिति यह है कि वह हर वस्तु की बाजारू कीमत तो जानता है, परन्तु किसी को उपयुक्त नहीं समझता। वैज्ञानिक मनहूस तो नहीं हैं लेकिन उनमें श्रद्धा भी कम हुआ करती है। उनको अपने कार्य से ही मतलब रहता है अन्य क्षेत्रों के प्रति प्रायः वह उदासीन जैसा रहता है।

बर्कले विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध भौतिकविद् प्रोफेसर फ्रिटजाफ काप्रा के कथनानुसार—वैज्ञानिक अनुसंधान में बौद्धिक तीक्ष्णता एवं बौद्धिक प्रक्रियायें ही मुख्य हुआ करती हैं लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। अगर बुद्धि के साथ अन्तःप्रेरणा का संयोग नहीं हो सके तो अनुसंधान प्रक्रिया पूरी नहीं हो पाती। ये अन्तःप्रेरणायें प्रयोगशाला के टेबुल पर नहीं आती हैं, वे आती हैं प्रायः नैसर्गिक वातावरण में--जबकि वैज्ञानिक घने जंगलों में घूम रहा हो या समुद्र के ज्वार-भाटों को मन्त्र मुग्ध की भाँति देख रहा हो, 'या' शान्त चित होता है। इसी के सहारे मनमें अपने कार्य क्षेत्र की विभिन्न परिकल्पनायें उठती रहती हैं तथा वह किसी अगम्य सत्ता से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। वैज्ञानिक कहता है कि इतना मैं जानता हूँ पर इसके आगे क्या है, मैं नहीं जानता लेकिन आगे कुछ अवश्य है, जिसे अनुभव करता है। यहीं से श्रद्धा शुरू होती है। अध्यात्म विज्ञान में श्रद्धा उसी को कहते हैं जिसमें अनजान तथ्य के प्रति सम्मानित मनःस्थित होती है। जो इन्द्रियातीत है, वही श्रद्धा है। सामान्य ख्याल है कि शून्य आकाश खाली है लेकिन विज्ञान के आधुनिक आविष्कार दर्शाते हैं कि शून्य आकाश में अगणित कण विद्यमान हैं जिनकी उत्पत्ति और लय निरन्तर हुआ करती है। आधुनिक भौतिक विज्ञान तथा भारतीय तत्वदर्शन यहाँ अति सान्निध्यता प्रकट करते हैं।

छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार ये समस्त दुनिया बहुत ही सूक्ष्म कणों की बनी हुई है, यही सत्य है। यही बात अन्यान्य उपनिषद् सन्दर्भों में भी प्रकट हुई है।

श्री रामकृष्ण परमहंस के कथनानुसार चेतना के दिव्य महासागर जिसको "ज्योतिसार ज्योतिः' अथवा सच्चिदानन्द नाम से पुकारा गया है, का रसास्वादन करने के लिए दो मार्ग हैं। प्रथम है सगुण उपासना तथा निर्गुण उपासना। श्रद्धावान साधक अपने मनोराज्य में आरोपित भावनाओं से जिस तत्व की अनुभूति करता है उसी तत्व के विभिन्न स्वरूप की अनुभूति बुद्धि से भी हो सकती है। 'एकम् सत्य विप्रा बहुधावदन्ति' सत्य एक ही है, विद्वत्जन उसका विभिन्न स्वरूपों में दर्शन करते हैं। इसी दर्शन के कारण भारत में चार्वाक जैसे ईश्वर को इंकार करने वाले, सांख्य, जैन, बौद्ध आदि अर्ध ईश्वर वादी एवं अनेक देववाद को मानने वाले, विभिन्न विचार-धाराओं वाले व्यक्तियों के बीच भी अनन्योश्रित प्रेम और आदर पाया जाता है। ठीक इसी तरह विज्ञान की चरम सीमा तक पहुँचने वाले मनीषी भी भारतीय तत्व ज्ञान में अपने ही मत का समर्थन अपने ही तौर तरीके से दर्शन कर सकते हैं।

अणुविद् वैज्ञानिक एर्विन स्त्रण्डिगर अपनी पुस्तक "जीवन क्या है?" में लिखते हैं कि चेतन तत्व की अनुभूति विभिन्न देश काल में भिन्न-भिन्न लोगों ने एक ही स्वरूप में की है। कहीं-कहीं इनमें भिन्नता भी पायी जाती है तो इसका एक ही कारण है कि तथ्य एक होने पर उसकी सजावट के साधन भिन्न हो सकते हैं।

आधुनिक भौतिकविद् दुनिया को बुद्धि युक्त मन से देखता है जबकि रहस्यवादी आध्यात्मिक सन्त अपने अन्तर्मन से देखता है। दोनों का गन्तव्य स्थान एक ही होने पर भी ऐसा लगता है दृश्य भिन्न-भिन्न हैं अगर दोनों अपने लक्ष्य के अन्त तक पहुँच जाँय तो एक ही दृश्य नजर आयेगा।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम ही परमेश्वर है

प्यार की सम्वेदना ईश्वर की प्रत्यक्ष सहानुभूति एवं अभिव्यक्ति है। हलचल तो जड़ पदार्थों में भी होती है, परमाणु, जीवाणु और विषाणु भी चलते फिरते, जीते और हलचलें करते हैं पर उन्हें आत्मा के चेतनायुक्त नहीं गिना जाता, कारण कि चल बल के रहते हुए भी उनमें भावना का समावेश नहीं होता। भावनाओं से सम्पन्न चेतना का ही दूसरा नाम आत्मा है। आत्मा की परमात्मा के रूप में परिणति तब होती है जब उसमें प्यार का अमृत भरा निर्झर लहराने लगता है। प्रेमी प्रकृति को ईश्वर की प्रतिध्वनि प्रतिच्छाया कहा जाय तो उसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

नीरस, रूखे, निष्ठुर, शून्य और शुष्क प्रकृति के मनुष्य जीवित तो कहे जा सकते हैं पर उनमें उस सद्भावना युक्त सरसता का अभाव रहता है जिसे सहृदयता कहते हैं। सहृदयता का ही दूसरा नाम प्रेम प्रकृति है। यह जिस भी अन्तःकरण में उगेगी वहाँ चन्दन जैसी शीतल सुगन्ध उमगती रहेगी। ऐसे व्यक्ति इस धरती के वरदान हैं स्थिर शान्ति और प्रगति उन्हीं के अस्तित्व से जुड़ी रहती है।

अपनी आत्मा की परिधि जो जितनी विस्तृत कर सकता है वह उतना ही प्रेम व्यवहार की व्यापकता का परिचय दे सकता है। दूसरों में अपनी आत्मा का—अपने में दूसरों का अस्तित्व समाया हुआ अनुभव करना ही वह उद्गम है जहाँ से प्रेम भावनाओं का आविर्भाव होता है। परायापन जहाँ होगा वहाँ उपेक्षा बरती जायगी और उदासीनता रहेगी। पर जहाँ अपनापन जोड़ लिया गया हो वहाँ गहरी दिलचस्पी पैदा होगी। अपने आपे को सुखी, समुन्नत बनाने का प्रयास हर कोई सहज स्वभाव से करता है। आत्मीयता की बूँदें जितने क्षेत्र में बरसेंगी उसमें उल्लास की हरियाली निश्चित रूप से उगेगी।

अधिकार में आई हुई वस्तुओं को अपना माना जाता है। जिनसे कुछ प्राप्त होने की आशा है अथवा जिनके साथ कारण वश मोह बन्धन बँध गये हैं वे सभी प्रिय लगते हैं। प्रिय पदार्थों और प्रियजनों का सान्निध्य भी प्रिय लगता है। उनके सुख सन्तोष में भी अपने को वैसी ही प्रसन्नतादायक अनुभूति होती है। आनन्द का समस्त परिवार प्रेम के केन्द्रबिन्दु से ही विनिर्मित और विकसित होता है। रुग्ण और अभावग्रस्त दुःखी मनुष्य भी प्रिय पात्रों को देखकर खिल उठते हैं यह सदा देखा जाता है। वैभव के विस्तार एवं निकटवर्ती परिजनों में जितनी ममता होती है उतना ही उनका सान्निध्य प्रिय लगता है। यदि हम इस आत्मीयता की परिधि को अधिक व्यापक और विस्तृत बना सकें तो अपनी सारी दुनिया हर्षोल्लास से भर सकती है।

समस्त सद्गुणों का मूल प्रेम है। जो अपने से प्रेम करेगा उसे व्यक्तित्व के सद्गुणों से—सत्प्रवृत्तियों से—सुसज्जित करना ही होगा। सद्ज्ञान का आहार आत्मा को देना ही पड़ेगा जो अपने से प्यार करेगा, जिसे अपने उज्जवल भविष्य की आशा है उसके लिए एक मार्ग राजमार्ग यही प्रतीत होगा कि संयम और सदाचार से शरीर को और परिष्कृत विवेक दृष्टि से अपने मनःक्षेत्र को परिष्कृत एवं सुसंस्कृत बनाने में संलग्न हो।

आत्मा का प्रकाश जितने क्षेत्र में विस्तृत होगा उतने में अपना आपा बिखरा दिखाई देगा। उसे स्वच्छ, सुरक्षित और समुन्नत बनाने के लिए अन्तःकरण में अदम्य स्फुरणा उठेगी। सेवा धर्म उसका सहज स्वभाव बन जायगा। जब अपने समान ही दूसरों को भी सुखी सम्पन्न बनाने की आत्म भावना विस्तृत हो उठेगी तो अपनी ही भाँति उन्हें भी सुखी समुन्नत बनाने के लिए ऐसी उत्कंठा जगेगी जिसे रोकना या दबाना सम्भव ही न हो सके।

प्रेम को परमेश्वर कहा गया है। यदि वह स्वार्थपरता और सङ्कीर्णता से सना नहीं है, पवित्र और प्रखर है तो उसे पाकर मनुष्य महान से महानतम होता चला जायगा और अपने में नर में नारायण की झाँकी करेगा। **

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मफल का सुनियोजित व्यवस्था क्रम

गधे के पेट से गधा पैदा होता है और बन्दर के पेट से बन्दर। गेहूँ बोया जायेगा तो गेहूँ उगेगा और चना बोये तो चने की फसल सामने आयेगी। आम की गुठली आम का ही पौधा पैदा करती है और बबूल का बीज काँटे वाला बबूल। हम जो बोते हैं वही काटते हैं।

कर्म बीज है और सुख दुःख उसके फल। बुरे कर्म दुःख और दुष्परिणाम उत्पन्न करते हैं और सत्कर्मों के प्रतिफल सुख एवं अन्य सत्परिणामों के रूप में सामने आते हैं। समय में अन्तर हो सकता है पर परिणाम अन्यथा होने की कोई गुंजायश नहीं है। सरसों का बीज दो दिन में अंकुरित होता है और ताड़ वृक्ष के बीज का अंकुर एक वर्ष में फूटता है। किस कर्म का फल मिलने में कितना समय लगेगा, यह निश्चित नहीं—पर इसे सन्देह रहित ही मानना चाहिए कि कर्मों का फल मिलकर रहता है।

कल का दूध आज दही है। कल वह पतला और मीठा था, आज उसका स्वरूप गाढ़ा और खट्टा है। नाम भी बदल गया। कल उसे दूध के नाम से पुकारा जाता था, आज उसका परिवर्तित नाम दही है। कल के कर्म आज सुख या दुःख के रूप में प्रस्तुत हैं। अथवा अगले दिन वे फलित होकर उपस्थित होंगे।

यह विश्व व्यवस्था कर्म और उसके फल के परस्पर अन्योन्याश्रित होने के कारण ही टिकी हुई है। यदि ऐसा न होता तो कोई दुष्कर्मों के तात्कालिक लाभ को छोड़ता नहीं और न सत्कर्मों में जो उचित लाभ मिलता है उतने से ही कोई सन्तुष्ट होता। दूरगामी परिणामों की सुनिश्चितता ही वह आधार है जिसने मनुष्य को मर्यादा में रहने और कर्त्तव्य को अपनाये रहने के लिए सहमत किया है।

यह हो सकता है कि कभी सत्कर्मों के परिणाम देर से मिलें और यह भी सम्भव है कि कुकर्मी सफलताएँ एवं समृद्धियाँ प्राप्त करते चले जायें। ऐसे प्रसङ्गों में कालचक्र का हेर फेर ही समझा जा सकता है। नशा पीते ही तुरन्त खुमारी नहीं आती। थोड़ी देर लगती है। पिया हुआ नशा अपना असर दिमाग तक पहुँचाये तब तक यही प्रतीत हुआ, नशे का कोई असर नहीं हुआ। पर जानकार जानते हैं कि थोड़ा समय लग जाने के कारण यह नहीं कहा जाता कि नशे का असर होता ही नहीं।

कर्मफल तुरन्त न मिलकर थोड़ी देर से मिलने की व्यवस्था इसलिए कि मनुष्य के निजी विवेक और चरित्र की परीक्षा हो सके और आत्म संयम तथा दूरदर्शिता की कसौटी पर उसे परखा जा सके। स्वतन्त्र कर्तृत्व की सुविधा देकर भगवान ने मनुष्य को अपने उत्थान और पतन की छूट दी है। यह मनुष्य को गौरव दिया गया है, उत्तरदायित्व सौंपा गया है, और प्रामाणिक समझा गया है कि वह इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग न करेगा। अन्यथा कर्मफल की तुरन्त व्यवस्था होती तो मनुष्य यन्त्रवत् रह जाता। उसकी स्वतन्त्र चेतना को न सम्मान मिलता न उत्कृष्टता सिद्ध करने का अवसर। उस यान्त्रिक व्यवस्था में श्रेष्ठता और निकृष्टता की परख और प्रतिस्पर्धा ही न रहती।

कर्मफलों से छूटने के लिए मनौती मनाना या पूजा-पत्री के कर्मकाण्डों का सहारा लेना निरर्थक है। ऐसी सस्ती व्यवस्था यहाँ यदि होती तो लोग दोनों हाथों से पाप कमाते और चट-पट उसे माफ कराने की टण्ट-घण्ट करके निपट जाते। तब इस संसार में न न्याय रहता न व्यवस्था, हर कोई पाप तो करता पर उसके फल से बच निकलने की सस्ती तरकीबें अपना लेता।

हमें दुष्कर्मों से बचना चाहिए। सत्कर्मों में प्रवृत्त रहना चाहिए। जो कर चुके हैं उसे साहस और धैर्यपूर्वक स्वीकारना चाहिए। सम्भव हो तो स्वेच्छापूर्वक आत्म दण्ड भुगतने को उद्यत रहे—प्रायश्चित्त क्रम अपना कर अपने प्रखर आत्म-बल का परिचय देना चाहिए। परमात्म सत्ता का व्यवस्था तन्त्र यही अपेक्षा मनुष्य से रखता भी है।

—✻✻—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोनिग्रह और आत्मिक उत्कर्ष

मानसिक एकाग्रता के सुनियोजित अभ्यास से हर व्यक्ति अपने अन्दर छिपी उन विभूतियों को जगा सकता है, जिन्हें अतीन्द्रिय कहा जाता है। लोग जिन्हें चमत्कार समझते हैं, वे वस्तुतः शारीरिक योगाभ्यास की अनेकों परिणतियों का एक छोटा-सा भाग भर है। इसमें ऐसा कुछ नहीं है जो असम्भव माना जा सके।

मैरीक्रैगकिमब्रो अमेरिका की एक जानी पहचानी अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न महिला रही हैं। उनके पति अपट्रान सिनक्लेयर भी इस विषय पर एक जाने-माने लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। दोनों पति-पत्नी ने मिलकर दूरानुभूति (टैलीपैथी) सम्बन्धी अनेकों प्रयोग परीक्षण कर उन्हें सही पाया है। अपने लम्बे अनुभव के उपरान्त उन्होंने पाया है कि मन की क्षमता अपार है। यदि थोड़ा भी इसे साध लिया जाय तो इससे अनेकों करतब दिखाए जा सकते हैं जो सामान्य व्यक्तियों की दृष्टि में चमत्कार होते हैं। वस्तुतः ऐसी बात है नहीं। ये मानसिक चेतना की परिधि में आने वाली क्षमताओं का विस्तार भर है।

एक प्रयोग में मैरीक्रैग को एक बन्द लिफाफा दिया गया और उसके अन्दर बन्द तस्वीर के बारेमें पूछा गया। क्रैग ने थोड़ी देर तक उसे अपने शरीर से चिपकाये रखा, ध्यानावस्था में चली गयी। १५ मिनट पश्चात् उसने कागज पर घोंसले की एक तस्वीर बनायी। इसके बाद लिफाफा खोला गया। उसके अन्दर भी पक्षी के घोंसले का चित्र बना हुआ था।

दक्षिणी कैलिफोर्निया में एक अन्य विदेशी युवक 'जान' रहता था, जो घूम-घूमकर ऐसे ही विलक्षण मानसिक करतब दिखाता था। जब वह गहरे ध्यान की स्थिति में जाता, तो उसका सम्पूर्ण शरीर कठोर व ठण्डा हो जाता था। ऐसी स्थिति में उसके सिर को एक कुर्सी पर तथा टाँग के अन्तिम सिरे को दूसरी कुर्सी में रखकर कोई उसके ऊपर खड़ा हो जाय, तो भी उसे कुछ पता नहीं चलता था। अनेक अवसरों पर समाधि की स्थिति में जान के पेट पर भारी-भरकम चट्टान रखकर वजनी हथौड़े के प्रहार से तोड़ा जाता पर उसका भी उसकी समाधि पर कोई प्रभाव पड़ता नहीं देखा गया, न ही उसे कोई तकलीफ अनुभव होती। इतना ही नहीं इस स्थिति में वह वायुरुद्ध ताबूत में बन्द होकर अनेक घन्टों तक जमीन के अन्दर पड़ा रह सकता था।

'जान' के इन प्रदर्शनों में किसी प्रकार की धोखाधड़ी अथवा छल-कपट की कोई गुंजायश नहीं थी, क्योंकि सारी नुमाइशें योग्य वैज्ञानिकों व मूर्धन्य शरीर शास्त्रियों के तत्वावधान में सम्पन्न होती, प्रदर्शन किसी कमरे में न होकर इसके लिए किसी पार्क अथवा खुले मैदान का चयन किया जाता, ताकि प्रदर्शक के लिए हाथ की सफाई का कोई अवसर ही न रह जाय।

इसी प्रकार का एक कौशल जान ने अपट्रान सिनक्लेयर के घर पर अनेक वैज्ञानिकों एवं डॉक्टरों की उपस्थिति में दिखाया था। वह एक बेंच पर लेट गया। कोई हाथ की सफाई प्रस्तुत न करे, इसलिए जान के हाथ-पैरों को सिनक्लेयर के कुछ मित्र दृढ़ता से पकड़े हुए थे। उसने आँखें बन्द कीं और थोड़ी देर पश्चात् सामने पड़ी ३४ पौण्ड वजनी मेज हवा में धीरे-धीरे ऊपर उठने लगी। शनैः शनैः कर वह चार फुट ऊपर उठकर अधर में लटक गयी, फिर मन्थर गति से हवा में वह तैरने लगी और दर्शकों के सिर के ऊपर करीब आठ फुट की दूरी तय की।

इसके अतिरिक्त जान में टैलीपैथी और फेस रीडिंग की अद्भुत क्षमता विद्यमान थी। इस प्रदर्शन के दौरान वह कमरे से बाहर आ जाता और उपस्थित लोगों में से किसी एक से कमरे की कोई वस्तु मानसिक रूप से चुन लेने व उसे स्वयं तक सीमित एवं अप्रकट रखने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहता। इसके बाद वह कमरे में प्रवेश कर उक्त व्यक्ति को अपने पीछे खड़ा होने तथा उस वस्तु पर विचार करते हुए पीछे-पीछे आने का निर्देश देता। कुछ देर तक वह कमरे का चक्कर लगाता रहता, फिर कमरे से उस वस्तु को उठाकर दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत कर देता, जिसका उस व्यक्ति ने मानसिक रूप से चयन किया था।

जॉन जब अपट्रान के घर से चला गया, तो क्रैग एक दिन ध्यान करने को बैठी। उसने अपने अवचेतन मन से कहा, कि इस वक्त जॉन कहाँ है और क्या कर रहा है? इसकी सूचना उसे दे। थोड़ी देर पश्चात् ध्यान में क्रैग को जॉन सड़क पर गुलदस्ता लेते हुए कहीं जाता दिखाई पड़ा। बाद में जॉन को टेलीफोन कर क्रैग ने तथ्य का पता लगाया। उसने बताया कि सचमुच उस समय वह लॉस एन्जिल्स की सड़कों पर गुलदस्ता लिए अपने एक मित्र को भेंट करने जा रहा था। इसके बाद क्रैग ने जॉन पर इस प्रकार के ढेर सारे प्रयोग किये।

एक ऐसे ही प्रदर्शन में कुछ लोगों ने सैकेण्ड की जानकारी रखने के लिए स्टॉप वॉच रख रखी थी। जितने समय में जानने समाधि से उठ बैठने का वचन दे रखा था, बिल्कुल उतने ही समय में उसने समाधि तोड़ी, एक सैकण्ड का भी आगे-पीछे नहीं हुआ।

मनोनिग्रह के दो रूप हैं। एक उथला—जिसमें मन की अनावश्यक दौड़-धूप की उच्छृंखलता को रोककर निर्धारित उपयोगी क्रिया-कलाप में केन्द्रित किया जाता है। यह विशुद्ध भौतिक है। हाथ पैर आँख कान को प्रयोजन विशेष में लगाये रहने के समान।

इससे भी कई उपयोगी कार्य सम्पन्न होते हैं। गणितज्ञों साहित्यकारों, वैज्ञानिकों, मदारियों, बाजीगरों, बन्दूक का निशाना लगाने वालों में इस विशेषता के कारण ही प्रवीणता पाई जाती है। सृजन प्रयोजनों में अध्ययन में यह एकाग्रता आवश्यक होती है और पहलवान, सरकस के नट नायक प्रायः इसी कला में अभ्यस्त होते हैं। रस्सी पर चलना, खेल दिखाना इसी प्रवीणता का प्रतिफल है।

व्यावहारिक मन की ही तरह अचेतन तन भी मस्तिष्क के ही एक के एक स्तर विशेष हैं। उसका नियमन अभ्यास करने से वे क्षमताएँ जागृत होती हैं जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमताएँ कहते हैं। इसके द्वारा सम्पन्न होने वाले कार्य भी मन में सन्निहित सूक्ष्म इन्द्रिय शक्ति से ही सम्पन्न होते हैं। आँखों से एक सीमित दूरी तक ही देखा जा सकता है। कानों में अमुक स्तर की आवाजें सुनी जा सकती हैं पर उनके साथ यदि निग्रह मन का संयोग बन पड़े तो दूर के दृश्यों को देख सकना और दूरवर्ती वार्त्तालाप को सुन सकना सम्भव हो सकता है। इसी प्रकार से एक इन्द्रिय का काम दूसरी इन्द्री से भी लिया जा सकता है। आँखों का काम नाक, कान या अँगुलियों से भी लिया जा सकता है। एक इन्द्रिय के न होने पर उस कार्य को अचेतन मस्तिष्क शरीर में किसी भी संवेदन शील अंग से पूरा करा सकता है। इस अभ्यास से प्राण शक्ति जासूसी कुत्तों जैसी भी हो सकती है। इसके सहारे किसी खोये या अविज्ञात व्यक्ति को ढूँढ़ा या पकड़ बुलाया जा सकता है। अन्य जीव-जन्तुओं में कई प्रकार की विलक्षणताएँ देखा जाती हैं। मकड़ी, बिल्ली आदि में मौसम ढलने या किसी दुर्घटना के घटित होने की पूर्वाभास क्षमता पाई जाती है। इस स्तर की विशेषताओं के लिए भौतिक मन का केन्द्रीकरण एक ज्ञानविधि का अभ्यास ही पर्याप्त है। मैस्मरेज्म हिप्नोटिज्म जैसे खेल सामान्य स्तर के लोग भी विकसित कर लेते हैं। कइयों में ये बिना किसी अभ्यास के जन्मजात रूप से भी पाई जाती है। पैरासाइकोलाजी परामनोविज्ञान के आधार पर ऐसी ही क्षमता सम्पन्न मनुष्यों की खोज-बीन की जा रही है। जिससे जाना जा सके कि किनमें अनायास ही यह विभूतियाँ प्रकट हुईं और किनने इसके लिए कुछ साधन या अभ्यास किया। इस सन्दर्भ में मस्तिष्क को और भी तीव्रगामी परिवर्तित स्थिति का बनाने के लिए कतिपय विश्व विद्यालयों द्वारा शोध प्रयास चल रहे हैं। इनमें सफलता भी मिल रही है। पर यह समझा जाना चाहिए कि यह समस्त घटनाक्रम मानसिक चातुर्य तक ही सीमित है। मनुष्य के कण-कण में विलक्षणताएँ भरी पड़ी हैं। एक शुक्राणु अपने जैसा एक नया मनुष्य गढ़ सकता है। इसे क्षमता के अन्तर्गत ही समझा जाना चाहिए। मस्तिष्क शरीर का ही एक अंग है।

कितने ही व्यक्ति कई प्रकार के आश्चर्यजनक शारी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिक पराक्रम दिखाते हैं। खेल प्रतियोगिताओं में ऐसा बहुत कुछ देखने को मिलता है। कई व्यक्ति अनोखेपन के कई कीर्तिमान स्थापित करते हैं। यह शारीरिक पुष्टाई का प्रमाण है। इसी प्रकार मन भी शरीर का ही एक अंग अवयव है। वह भी ग्यारहवीं इन्द्रिय है। उसके चमत्कारों को भी भौतिक विशेषताओं की परिधि में लाना पड़ेगा। बहुत से छोटी आयु के बच्चे, संगीत बजाते और प्रवचन रट लेते हैं यह उनकी बौद्धिक प्रवीणता है। इन्हें आश्चर्यजनक मानते हुए भी शारीरिक या मानसिकता की नैतिक दासता ही कहा जायगा।

आध्यात्मिक उत्कर्ष इससे आगे का चरण है। उसमें चित्त का नहीं, चित्त वृत्तियों का निरोध करना पड़ता है। चित्त वृत्तियाँ अर्थात् दुष्प्रवृत्तियाँ। संयम से लेकर योगाभ्यास तक यही विषय प्रधानता पाता रहा है। इस स्थिति से उबरने पर ही मनचाही आध्यात्मिक साधना बन पड़ती है, जिसमें वासना के लिए ही नहीं, तृष्णा के लिए भी कहीं कोई गुंजाइश नहीं है। फिर अहन्ता की, वाहवाही लूटने की, दूसरों पर, छाप छोड़ने, किसी को नीचा दिखाने की गुंजाइश कैसे हो सकती है। मांसाहार, मद्यपान जैसे आत्मा पर कलुष कषाय चढ़ाने वाले व्यवहारों की भी गुंजाइश नहीं है। ऐसे लोगों को आध्यात्मिक वातावरण में ही रहना पड़ता है। उन्हें मदारी, नट, बाजीगर एवं अविश्वासी तार्किकों के बीच में निर्वाह कर सकना कठिन होता है।

जादूगरी प्रत्यक्षतया हाथ की सफाई या छल है। भले जादूगर इस बात को प्रकट भी कर देते हैं कि यदि उनके पास सिद्धियाँ रही होतीं तो तमाशा दिखाने का व्यवसाय क्यों अपनाते। अध्यात्म वेत्ता छल क्यों करेगा? और किसलिए आत्म-प्रवंचना अपनाकर धूर्तों की बिरादरी में सम्मिलित होगा?

आध्यात्मिक सिद्धियाँ वे हैं जिनमें वे उच्चस्तरीय व्यक्ति किसी को अपना संचित विभूतियों का एक अंश देकर उसे अपनी बिरादरी में घसीट ले जाता है। ऊँचा उठाता और आगे बढ़ाता है। दोष-दुर्गुणों से छुड़ाता और कन्धे पर बिठाकर गहरी नदी में तैरते हुए अपने प्रियजनों को पार लगाता है। ***

वर्षा ऋतु निकट थी। पानी बरसने पर आश्रम में ईंधन की कमी न पड़े, इस दृष्टि से मातंग ऋषि ने गुरुकुल के छात्रों की पढ़ाई बन्द कर दी और जंगल से लकड़ी काटने और संचय करने में लगा दिया।

छात्र अभ्यस्त तो न थे पर गुरु आदेश का पालन करते हुए उत्साहपूर्वक उस कार्य में लग गये। अधिक श्रम करने और अधिक कुशलता का परिचय देने की मानो उनमें होड़ ही लग गई हो।

कई दिन के श्रम में अभीष्ट मात्रा में ईंधन एकत्रित हो गया आश्रम की समीपवर्ती सभी झाड़ियाँ समाप्त हो गईं दूर-दूर तक न कोई फूल था न पत्ता। फिर भी सुगन्ध ऐसी महक रही थी मानो आश्रम पुष्पोद्यान के बीच खड़ा हो।

छात्रों ने पूछा—देव, इतनी तीखी सुगन्ध कहाँ से आ रही है। मातंग ने छात्रों से कहा—यह गन्ध भूमि से उठ रही है। जाकर देखो किस स्थान से यह महक आती है।

छात्र भूमि सूँघते फिरे। जहाँ जहाँ से वह उठ रही थी, उन सभी स्थानों पर उनने चिन्ह लगा दिये। बढ़ी हुई जिज्ञासा ने पूछा, पुष्पों से गन्ध उठते तो हमने देखी है पर भूमि से गन्ध उभरने का क्या कारण है?

मातंग ऋषि ने कहा—वत्स, तुम्हारे श्रम सीकर जहाँ गिरे हैं वही भूमि महकने लगी। मनोयोगपूर्वक किये गये श्रम का यह चमत्कार तुम कभी भी, कहीं भी देख सकते हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की विलक्षण सत्ता

शरीर यों सभी के देखने में एक जैसे प्रतीत होते हैं, पर उनमें ऐसी विलक्षण विशेषता देखी जाती है कि आश्चर्यचकित रह जाता है। हिमालय की गुफाओं में ऐसे सन्त पाये गये हैं जिन्हें उस क्षेत्र में खाने योग्य कोई वस्तु भी नहीं मिलती थी और वे अपना नियत स्थान छोड़कर कहीं जाते भी नहीं थे। वायु में रहने वाले पोषक तत्वों से ही वे अपने लिए काम चलाऊ आहार उपलब्ध कर लेते हैं।

आहार की तरह ही नींद का स्थान भी है। सोये बिना न तो थकान दूर होती है और न मस्तिष्क को विश्राम मिलता है। बहुत दिन जागते रहने पर मनुष्य पागल हो जाता है। इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि पागल होने से पूर्व नींद आना बन्द हो जाती है।

किन्तु कभी-कभी इसके भी अपवाद पाये जाते हैं। जकार्ता से उत्तर पूर्व में एक द्वीप है—बाली। उसके अलासंकार कस्बे में एक व्यक्ति है 'केतूल' वह पिछले ४० साल से क्षण भर के लिए भी नहीं सोया।

द्वितीय महायुद्ध के समय उसने अपनी आँखों ऐसे दृश्य देखे थे जिनसे उसका कलेजा काँप गया। तब वह छोटा बालक ही था। उस घटना का उसके मन पर ऐसा घातक प्रभाव पड़ा कि उसे नींद आना बिलकुल बन्द हो गई। कुछ दिन तो उसे थकान रही किन्तु पीछे शरीर और मस्तिष्क ने अपने को ऐसे ढाँचे में ढाल लिया कि नींद की आवश्यकता शरीर दूसरी किसी विशेष प्रणाली से पूरी करने लगा। 'जकार्ता पोस्ट' नामक पत्र के अनुसार दूर-दूर के मनःशास्त्री इस रहस्य को खोजने के लिए वहाँ पहुँचे हैं, पर अभी तक उस रहस्य का उद्घाटन नहीं हो सका है।

हारमोनों की न्यूनाधिकता में तनिक-सा अन्तर आ जाने से मनुष्य बहुत लम्बा भी हो सकता है और बहुत ठिगना भी रह सकता है।

चीन में एक व्यक्ति सुनीजंग की लम्बाई ७ फुट ६।। इंच थी। बाजार में इतना बड़ा ताबूत न मिला तो उसके पैर सकोड़ कर सन्दूक में रखना और दफनाना पड़ा।

इसी प्रकार स्काटलैण्ड में एक बौना आदमी मात्र ढाई फुट का था। वह बौद्धिक दृष्टि से बौना नहीं था। समझदारी की बातें कहता और समझदारों जैसे काम करता था वह ३० वर्ष जीवित रहा।

इराक के एक नागरिक सलमाआबोदीन ने आठ साल में अपने रक्त की ४३५ वीं बोतल दान देकर रक्त दान का नया विश्व रिकार्ड कायम किया है। उसका स्वास्थ्य इन वर्षों में यथावत् बना हुआ है उसको कोई क्षति नहीं पहुँची है।

अभ्यास करने से मनुष्य अपनी कार्य क्षमता असाधारण रूप से बढ़ा सकता है। अपंगों के इतिहास में ऐसे अनेकों हुए हैं जिनने दोनों हाथ चले जाने पर पैर नेत्र और मुँह की सहायता से उच्च शिक्षा प्राप्त की और चित्रकला तथा टाइप राइटिंग जैसे कामों में सामान्य लोगों की तरह काम कर सके।

योगाभ्यास के आधार पर कई व्यक्ति अपने हृदय की धड़कन और श्वास-प्रश्वास क्रिया बन्द करके समाधिस्थ हो जाते हैं। देखने में वे मृतक जैसी स्थिति में होते हैं, पर इच्छित समय पर समाधि में लगकर फिर अपने अवयवों को जीवित मनुष्यों की तरह सक्रिय बना लेते हैं।

अतीन्द्रिय क्षमताओं के ज्ञान में जैसे-जैसे अभिवृद्धि होती जाती है। उसी आधार पर ऐसे प्रमाण मिल रहे हैं कि एक ही शरीर में दो या इससे भी अधिक व्यक्तित्व निवास कर सकते हैं। कभी-कभी एक जीवित और दूसरा मृतात्मा होता है। कभी-कभी छाया पुरुष जैसे दो व्यक्तित्व एक ही शरीर में निवास करते पाये गये हैं। उससे भी अधिक आत्माओं के एक ही शरीर में रहने की कुछ घटनाएँ देखी गई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

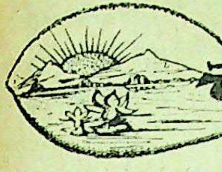

चेतना ने पदार्थ बनाया

"मिस्टीरिअस यूनीवर्स" ग्रन्थ के रचयिता सरजेम्स जीन्स ने लिखा है—'विज्ञान जगत अब पदार्थ सत्ता नियन्त्रण करने वाली चेतन सत्ता की ओर उन्मुख हो रहा है और यह खोजने में लगा है कि हर पदार्थ को गुण धर्म की रीति-नीति से नियन्त्रित रखने वाली व्यापक चेतना का स्वरूप क्या है? पदार्थ को स्वसंचालित, अचेतन, सत्ता समझने की प्रचलित मान्यता अब इतनी अपूर्ण है कि उस आधार पर प्राणियों की चिन्तन क्षमता का कोई समाधान नहीं मिलता। अब वैज्ञानिक निष्कर्ष आणविक हलचलों के ऊपर शासन करने वाली एक अज्ञात चेतन सत्ता को समझने का प्रयास गम्भीरतापूर्वक कर रहे हैं।

फिजिओलॉजीकल साइकालॉजी के लेखक श्री मेकडूगल ने लिखा है—मस्तिष्कीय संरचना को कितनी ही बारीकी से देखा समझा जाय यह उत्तर नहीं मिलता कि पाशविक स्तर से ऊँचे उठकर मानव प्राणी अपने में उच्चस्तरीय ज्ञान-विज्ञान की धारायें कैसे बहाता रहता है और भावनापूर्ण सम्वेदनाओं से कैसे ओत-प्रोत रहता है? भाव सम्वेदनाओं की गरिमा समझते हुए हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्य के भीतर कोई अमूर्तिक सत्ता भी विद्यमान है जिसे आत्मा अथवा भाव चेतना जैसा कोई नाम दिया जा सकता है।

अणु विज्ञान के आचार्य अलबर्ट आइन्स्टीन ने परमाणु प्रक्रिया का विशद् विवेचन करने के उपरान्त अपने निष्कर्ष को घोषित करते हुए कहा है—मुझे विश्वास हो गया है कि जड़ प्रकृति के भीतर एक ज्ञानवान चेतना भी काम कर रही है।

सर ए०एस० एडिंग्टन का कथन है—भौतिक पदार्थों के भीतर एक चेतन शक्ति काम कर रही है जिसे अणु प्रक्रिया का प्राण कहा जा सकता है। हम उसका सही स्वरूप और क्रिया-कलाप अभी नहीं जानते पर यह अनुभव करते हैं कि संसार में जो कुछ हो रहा है—वह अनायास, आकस्मिक या अविचारपूर्ण नहीं है।

पी० गेईडर्स अपने ग्रन्थ 'इवोल्यूशन' में अपने निष्कर्ष व्यक्त करते हुए कहते हैं—सृष्टि का आरम्भ जड़ परमाणुओं से हुआ और ज्ञान पीछे उपजा यह मान्यता सही नहीं है। लगता है सृष्टि से भी पूर्व कोई चेतना मौजूद थी और उसी ने क्रमबद्ध एवं सोद्देश्य रीति-नीति के साथ इस विश्व ब्रह्माण्ड का सृजन किया।

'इन्ट्रोडेक्शन टू साइन्स' पुस्तक में विज्ञानी जे० ए० थामसन ने कहा है—विश्व में जीवन कब और कैसे उत्पन्न हुआ उसका विज्ञान के पास कोई उत्तर नहीं है।

ख्याति प्राप्त विज्ञान वेत्ता टेण्डल ने अपने ग्रन्थ 'फ्रेगमन्ट्स आफ साइन्स' में स्वीकार किया है—हाइड्रोजन, आक्सीजन कार्बन नाइट्रोजन, फास्फोरस प्रभृति तत्वों के ज्ञान शून्य परमाणुओं से मस्तिष्क की संरचना हुई है।

जे० बी० एस हेल्डेन का कथन है पदार्थ या शक्ति ही इस संसार का समग्र स्वरूप नहीं है। हम दिन-दिन इसी निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि एक समष्टिगत मनः-तत्व समस्त विश्व पर नियन्त्रण स्थापित किये हुए है।

आर्थर एच० क्राम्पटन इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि संसार के पदार्थों को जलते हुए ईंधन जैसा समझा जा सकता है। जड़ चेतन की ज्वलन्त गतिविधियाँ ऐसे अग्नि तत्व के साथ सम्बद्ध हैं जिसे व्यापक चेतना या आत्मा आदि किसी नाम से सम्बोधित किया जा सकता है।

हर्बर्ट स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक 'फर्स्ट प्रिन्सीपल' में कहा है—एक ऐसे विश्वव्यापी चेतन तत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता जो साधारणतया सभी प्राणियों में विशेषतया मानव प्राणियों में जीवन की एक सुरम्य प्रक्रिया का निर्धारण करती है। प्राचीन काल के धर्माचार्य या दार्शनिक जिस प्रकार उसका विवेचन करते रहे हैं भले ही वह संदिग्ध हो, भले ही उसका सही स्वरूप अभी समझा न जा सका हो, पर उसका अस्तित्व असंदिग्ध रूप से है और वह ऐसा है जिसका गम्भीर अन्वेषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से है और वह ऐसा है जिसका गम्भीर अन्वेषण होना चाहिए।

डा० गार्ल कहते हैं—संसार का मुख्य तत्व पदार्थ नहीं वरन् वह चेतन सत्ता है जो समझती, अनुभव करती, सोचती, याद रखती, और प्रेम करती है। मृत्यु के उपरान्त जीवन की पुनरावृत्ति का सनातन क्रम उसी के द्वारा गतिशील रहता चला आ रहा है।

संसार के प्रमुख विज्ञान वेत्ताओं के सम्मिलित निष्कर्ष व्यक्त करने वाले ग्रन्थ "दी ग्रेट डिजाइन" में प्रतिपादन किया गया है कि यह संसार निर्जीव यन्त्र नहीं है। यह सब अनायास अकस्मात ही नहीं बन गया है। चेतन और अचेतन हर पदार्थ में एक ज्ञान शक्ति काम कर रही है उसका नाम भले ही कुछ भी दिया जाय।

"साइन्स एण्ड सोल" के लेखक आर० डवलिन इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्राणि जगत के अस्तित्व को जड़ परमाणुओं की हलचल मात्र-मान बैठने से काम नहीं चलेगा। भावना, विचारणा, कल्पना और सम्वेदना जैसी तरंगें उत्पन्न करने वाली ज्ञान सत्ता को यदि अस्वीकार किया जाय तो जीवधारियों की सत्ता की सही व्याख्या ही नहीं हो सकती।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आलिवरलाज कहते थे—"मुझे विश्वास है अब वह समय निकट आ गया है जबकि विज्ञान को नये क्षेत्र में प्रवेश करना होगा। विज्ञान अब भौतिक जगत तक ही सीमित नहीं रहेगा। चेतन जगत भी अब वैज्ञानिक प्रयोग परीक्षण का महत्वपूर्ण विषय बन गया है।"

इंगलैण्ड की रॉयल सोसायटी के सेक्रेटरी सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक 'सर जेम्स जीन्स' ने लिखा है—"पहले यह मान्यता थी कि जड़ जगत की चेतना ही उत्पत्ति का आधार है। भौतिक तत्वों के समन्वय से ही मन की उत्पत्ति होती है। लेकिन यह यथार्थवादी मान्यता अब बदल गई है। अब यह माना जाने लगा है कि चेतन सत्ता ही जड़ पदार्थों की उत्पत्ति करती है। इस जड़ जगत के पीछे एक विराट चेतना काम कर रही है।"

सर जेम्स जीन्स ने "दि न्यू बैकग्राउण्ड आफ साइन्स" नामक पुस्तक में यह उल्लेख किया है "उन्नीसवीं सदी में विज्ञान का मूल विषय भौतिक जगत था लेकिन अब प्रतीत हो रहा है कि विज्ञान जड़ पदार्थों से अधिकाधिक दूर होता जा रहा है।"

"दि मिस्टीरियस यूनिवर्स" में उन्होंने लिखा है—"वैज्ञानिक विषय के सन्दर्भ में हमने जो पूर्व मान्यता बना ली है अब उसकी पुनः परीक्षण की आवश्यकता है जड़ जगत को जो प्रधानता दे बैठे थे—अब प्रतीत हो रहा है कि वह गौण है। जड़ जगत के पीछे एक नियामक सत्ता काम कर रही है।

प्रो० ए० एस० एडिंगटन ने कहा है—अब विज्ञान इस निर्णय पर पहुँचा है कि समस्त सृष्टि को एक अज्ञात शक्ति गतिमान कर रही है।"

> उस ईश्वर को पूजो जिसे तुम जेब में रख सको या जिसकी जेब में तुम रह सको। उसे तलाशते मत फिरो जो सातवें आसमान पर रहता है और एक ही भाषा की वर्णमाला पढ़ा है।

अब विज्ञान का जड़ पदार्थों से लगाव समाप्त हो गया। चेतना, मन, आत्मा का अस्तित्व माना जाने लगा है। चेतन सत्ता ही जड़ जगत की उत्पत्ति का मूल कारण है।"

प्रसिद्ध वैज्ञानिक हरबर्ट स्पेन्सर ने कहा—"जिस शक्ति को मैं बुद्धि की पहुँच से परे मानता हूँ वह धर्म का खण्डन नहीं करती अपितु उसे और अधिक बल पहुँचाती है।"

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलफ्रेड रसल वैलेस ने अपनी पुस्तक "सोशल इनवाइरनमेण्ट एण्ड मॉरल प्रोग्रेस" में स्पष्ट लिखा है—"मुझे विश्वास है कि चेतना ही जड़ पदार्थों को गति प्रदान करती है।"

सन् १९३४ में "दि ग्रेट डिजाइन" नामक पुस्तक में चौदह वैज्ञानिकों ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया—"यह संसार चेतना रहित कोई मशीन नहीं है। इसका निर्माण अकस्मात ऐसे ही नहीं हो गया। ब्रह्माण्ड के सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिया-कलापों को एक चेतन शक्ति नियन्त्रित कर रही है चाहे हम उसे कुछ भी नाम दे दें।"

अलबर्ट आइन्स्टीन ने कहा है—"मैं ईश्वर को मानता हूँ। इस अविज्ञात सृष्टि के अद्भुत रहस्यों में वह ईश्वरीय शक्ति ही परिलक्षित होती है। अब विज्ञान भी इस बात का समर्थन कर रहा है कि सम्पूर्ण सृष्टि का नियमन एक अदृश्य चेतन सत्ता कर रही है।"

जे० बी० एस० हैलडेन ने लिखा है—"अविज्ञात सृष्टि के कुछ ही रहस्यों को हम जान पाये हैं। सृष्टि को हम एक निर्जीव मशीन मात्र समझ रहे थे। यह हमारी भूल थी। वास्तव में यह सृष्टि चेतन शक्ति से सम्बद्ध है। जड़ पदार्थों का संचालन यह चेतन शक्ति ही कर रही है।

आर्थर एस० एडिंगटन ने लिखा है—"ईश्वर का अस्तित्व नहीं है यह मान्यता टूट चुकी है। चूँकि धर्म आत्म और परमात्म शक्ति से जुड़ा हुआ है। अतः धर्म का खण्डन नहीं किया जा सकता।"

आर्थर एच० क्राम्प्टन ने कहा है—"हमारे चिन्तन-मनन को न केवल मस्तिष्क ही प्रभावित करता है वरन् इससे भी अलग एक शक्ति है जो विचारणाओं को प्रेरित करती है। उस चेतन शक्ति की सम्पूर्ण जानकारी तो नहीं मिल पायी है लेकिन यह निश्चित है कि मृत्यु के बाद भी उस चेतना का अस्तित्व बना रहता है।"

सन्त दादू में ब्रह्मज्ञानी और श्रमजीवी का समन्वय था। ऋषि परम्परा को उनने इसी रूप में समझा और अपनाया था। उपासना और सत्संग-प्रवचन के उपरान्त वे अपना बचा हुआ समय लोकोपयोगी कार्यों में लगाते थे?

उन दिनों बचे समय में वे पगडन्डी के किनारे की झाड़ियाँ काट रहे थे।

सन्त दादू से भेंट करने के लिए उस दिन शहर कोतवाल घोड़े पर चढ़कर आये। रास्ते में झाड़ी काटता एक अर्ध नग्न श्रमिक दीखा। पूछा—"बताओ सन्त दादू का आश्रम कहाँ है? उनसे भेंट कब होती है!"

दुविधा में पड़े सन्त अचकचा रहे थे कि क्या उत्तर दें? कुछ बोल नहीं पा रहे थे। इस गुमसुम स्थिति से खीजकर कोतवाल ने एक हन्टर जमा ही दिया। बोले—"गूँगा-बहरा है क्या, जो बात का जवाब तक नहीं देता।"

घोड़ा बढ़ाकर आगे पहुँचे, तो एक किसान मिला। उससे भी कोतवाल ने दादू का पता पूछा। उसने कहा—"पीछे लौट जाइए। उधर झाड़ियाँ काटते मैंने उन्हें देखा है। शायद वहीं होंगे। किसान ने जैसी आकृति बतायी, वह तो उसी व्यक्ति जैसी थी, जिसमें कि हंटर जमाकर वे आये थे।

लौट कर देखा तो दादू पीठ सहला रहे थे। हंटर जोर का पड़ा था। चमड़ी उखड़ आयी थी। कोतवाल ने उन्हें पहचाना, तो क्षमा माँगने लगा।

दादू ने कहा—"अज्ञान ही विपत्तियों का कारण है। आपने मुझे नहीं पहचाना और मैंने भी आपको जानने का प्रयत्न नहीं किया है। जानने वाले दुर्घटना करने और सहने से बच जाते हैं।"

इस संक्षिप्त से सन्त-समागम में सीखा और सिखाया गया है—ज्ञान ही सुख का कारण है। ज्ञान में सर्वोपरि महत्व का आत्मज्ञान है, जिसके सहारे बन्धन कटते और सिद्धि के द्वार खुलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्माण्ड के हृदय की धड़कन

मनुष्य का हृदय धड़कता है और उस आधार पर समस्त शरीर में रक्त संचार एवं गतिशीलता का महौल बनता है। धड़कन बन्द हो जाने पर शरीर की मृत्यु सुनिश्चित है।

ब्रह्माण्ड को भी ईश्वर का विराट रूप माना गया है। उसका भी कोई हृदय होना चाहिए। यह धड़कन वैज्ञानिकों ने सुनी है और उसे किसी तारे से आने की कल्पना छोड़कर यह स्वीकार किया है कि यह ब्रह्माण्ड की हृदय धड़कन है।

पृथ्वी पर अन्तरिक्ष से कुछ क्रमबद्ध रेडियो संकेत आते रहते हैं। उनके सम्बन्ध में कई अनुमान लगाये जाते हैं जिनमें से एक यह भी है कि किसी विकसित सभ्यता वाले लोकवासी पृथ्वी के साथ सम्बन्ध सूत्र जोड़ने के लिए यह आदान-प्रदान संकेत भेजते हैं।

अब उनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी मिली है और प्रतीत हुआ कि पलसार्स तारों से एक विशेष प्रकार के शक्तिशाली रेडियो बौछार होती है। वही इन बीप-बीप संकेतों के रूप में धरती तक आते-आते बदल जाती है। इतनी सशक्त रेडियो बौछार का समीपवर्ती क्षेत्र में और कोई उद्गम स्रोत है नहीं।

यह पलसार्स तारे क्या हैं? इनका विवेचन करते हुए अन्तरिक्ष विशेषज्ञों ने इनकी संरचना अद्भुत बताई है। वे कहते हैं जब कोई तारा जीर्ण-शीर्ण होकर मरणासन्न होता है तब उसका विस्तार सकुड़ते-सकुड़ते अत्यन्त सघन हो जाता है। विशाल विस्तार थोड़े से में सिमट जाता है। सूर्य अपनी पृथ्वी से ३३०,००० गुना भारी है। यदि इसकी ऊर्जा समाप्त हो जाय तो वह पिचककर मात्र दस किलोमीटर व्यास का गोला बन जायगा। इतने पर भी उसका भार उतना ही बना रहेगा जितना अब है। सभी मरणासन्न तारों की यही स्थिति होती है।

इस सकुड़न में जहाँ विस्तार कम होता है वहाँ उनकी रेडियो धर्मिता असंख्य गुनी बढ़ जाती है और वह समूचे ब्रह्माण्ड में फैलने लगती है। दूरी के हिसाब से जो ग्रह जितने समीप होते हैं वे उस विकरण से उतने ही अधिक प्रभावित होते हैं। दूरी बढ़ते जाने पर प्रभाव घटते जाना स्वाभाविक है।

रुक-रुक कर विकरण धरती पर आने से लगता है ब्रह्माण्ड का दिल धड़कता है। मनुष्य का हृदय जिस तरह धुक धुक करता रहता है उसी प्रकार क्रमबद्ध रूप से इन संकेतों पर ध्यान केन्द्रित करने पर लगता है कि ब्रह्माण्ड शरीर का कोई हृदय केन्द्र है और वहां यह धड़कन जैसी हलचल होती है। इस मान्यता की संगति इसलिए और भी अधिक अच्छी तरह बैठ जाती है कि प्रकृतिगत हलचलों के पीछे भी किसी पेण्डुलम गति को काम करते समझा जाता है। घड़ी का हलचल पेण्डुलम क्रम पर आधारित है। हृदय की धड़कन को भी पेण्डुलम व्यवस्था माना जाता है। ब्रह्माण्ड का क्रम भी इसी आधार पर चल रहा हो तो क्या आश्चर्य?

> जिसकी प्रेरणा परिष्कृत अन्तःकरण में उठती है वह पूरी होकर रहती है।

इस पलसार्स समूह में एक विलक्षण है इसका नाम १५३ रखा गया है। यह अपने स्थान पर अवस्थित है। अन्य साथियों की तरह अपनी धुरी पर घूमता नहीं। और बौछार का सतत् क्रम चलाता है। जब कि अन्य धुरी पर घूमने के कारण जब ध्रुव केन्द्र सामने होने पर ही पृथ्वी की ओर बौछार पहुँचा पाते हैं। इस समुदाय का एक ही स्थिर क्यों हैं इसके बारे में कहा जाता है कि यह पिछले ब्रह्माण्ड का बचा-खुचा अवशेष है जो किसी प्रकार किसी कोने में महाप्रलय और महासृजन की चपेट में आने से बच गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान के लिए भारी शोध कार्य करने को पड़ा है

प्रकृति के अगणित रहस्यों में से मनुष्य के हाथ अभी थोड़े से ही लग पाये हैं। यहाँ तक कि जिस सूर्य ऊर्जा के मध्य हम जीवन यापन करते हैं। उसका भी समुचित मात्रा में उपयोग सीख नहीं पाये हैं। अन्यथा ईंधन और ऊर्जा का जो संकट सामने खड़ा है उसका अब से बहुत पहले ही समाधान हो गया होता।

भूत और भविष्य की घटनाओं का प्रत्यक्ष दर्शन करना यों आज सर्वसाधारण के लिए सम्भव नहीं। कोई योगी सिद्ध पुरुष ही उस सन्दर्भ में कुछ बता सकते हैं। नर का यदि सुदूर नक्षत्रों तक पहुँच सकना किसी प्रकार सम्भव हो सके तो वहाँ से वे सारे दृश्य प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं जिन्हें हम आज चिर अतीत कहते हैं।

१९७१ में रूस और अमेरिका ने मिलकर एक संस्था का गठन किया, जिसे "सोवियत अमेरिकन कांग्रेस आन एण्स्ट्रा टेकिस्टेरियस लाइफ" के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह संस्था अमेरिका के 'ब्यूराकन' प्रदेश में गठित हुई।

इस संस्था ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि आकाश गंगा में ही पृथ्वी जैसी विकसित सभ्यता १ लाख आकाशीय पिण्डों में होने की सम्भावना है। इस सम्भावना की बात तय होने पर वैज्ञानिकों में यह जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता हुई कि वहाँ के लोग कैसे रहते होंगे आदि। आकाशीय पिण्डों की अति दूरी को ध्यान में रखते हुए संचार माध्यम केवल "रेडियो सिगनल" ही हो सकते हैं। ऐसा निश्चय होने के उपरान्त खगोल विद्या-विदों एवं अन्य वैज्ञानिकों ने सेटी (एस० ई० टी० ई०)—सर्च फार एक्स्ट्रा टेरिस्टेरियल इन्टेलीजेन्स) नामक संस्था गठित की। कई वर्षों से आकाश में 'रेडियो सिगनल' भेजे जा रहे हैं और प्रत्येक आकाशीय पिण्ड की रेडियो एक्टीविटी मालूम करके उनका नक्शा बनाया जा रहा है। इस कार्य की जटिलता के बारे में सेटी के पायोनियर (अग्रगामी) डॉ० फ्रैन्क डो० ड्रेक कहते हैं—'यह कार्य उस सुई को ढूँढ़ने के समान है जो विशाल घास के ढेर में खो गई है।"

प्रसिद्ध डच भूगर्भ शास्त्री प्रो० सोल्को डब्ल्यू० ट्राम्प ने साइकिल फिजिक्स' पुस्तक में विभिन्न प्रयोग परीक्षण करके यह लिखा है कि पृथ्वी अगणित विशेषताओं और धाराओं से भरे-पूरे चुम्बकत्व से भरी-पूरी है। वैज्ञानिक उपलब्धियों में प्रकारान्तर से इसी क्षमता के श्रोतों को खोजा और प्रयोग में लाया गया है इसका समर्थन (फ्रेन्च एटॉमिक एनर्जी कमीशन' के सदस्य 'इकोले नारमल और अमेरिका के सुरक्षा-विभाग एवं अर्कन्सास विश्व विद्यालय के 'डा० जावोज हारवलिक' ने भी किया है। डा० जावोज 'अमेरिकन सोसायटी आफ डाइसर्स' के प्रमुख हैं।

अन्य ग्रहों तारकों तक पहुँचने के लिए अभी तक न कोई वाहन ढूँढ़ा जा सका है और न किसी सुलभ मार्ग की जानकारी मिली है। किन्तु यदि पृथ्वी के निकटवर्ती किसी ब्लैक होल में प्रवेश किया जा सके और गन्तव्य लक्ष तथा उस विवर का अन्त जाना जा सके तो बिना किसी परिश्रम के एक से दूसरे ब्लैक होल के रास्ते उन सुदूर नीहारिकाओं में पहुँचा जा सकता है। जिनकी कि अभी तो पूरी कल्पना भी नहीं हो पाई है।

अभी बारमूडा त्रिकोड के एक छोटे से ब्लैक होल का पता चल पाया है जो वायुयानों और जलयानों को अपने उदर में ग्रास की तरह घसीट ले जाता है पर पृथ्वी भर में यह एक ही हो ऐसी बात नहीं है। ध्रुव प्रदेश और समुद्रों के सुविस्तृत क्षेत्र में और भी कितने ही ऐसे ब्लैक होल हो सकते हैं जिनका आदि अन्त जाना जा सके तो ब्रह्माण्ड यात्रा अति सरल हो सकती है।

खगोल शास्त्रियों का कहना है कि यदि ब्लैक होल के शक्ति भण्डार का उपयोग किया जा सके तो ऊर्जा के लिए मुँहताज न होना पड़े। ब्लैक होल का शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भण्डार अनन्त काल तक चलने वाला होता है, ऐसी मान्यता है।

कोई एक विशालकाय तारा जब मृत्यु के सन्निकट पहुँचता है तब उस दृश्य का अवलोकन करते हुए खगोल शास्त्रियों ने बताया कि उस अवधि में तारे का प्रकाश करोड़ों गुना बढ़ जाता है। यह इतना अधिक बढ़ता है कि सम्पूर्ण तारा समूह का प्रकाश एक ओर, इस मृतप्रायः तारे का प्रकाश और विकिरण एक ओर। कई अरब वर्षों में एक तारे से जो प्रकाश शक्ति निःसृत होती है, मृत्यु के कुछ घण्टे पूर्व उतनी ही मात्रा में शक्ति व प्रकाश प्रवाहित हो जाता है। यदि अति विशालकाय तारे की मृत्यु का गहराई से अध्ययन किया जाय तो उसकी मृत्यु के साथ कभी-कभी एक ब्लैक होल का जन्म होता है। खगोल शास्त्रियों ने मृतप्रायः तारे की तुलना करते हुए बताया है कि जिस पर ज्वलनशील पदार्थ या लकड़ी से निर्मित ४०-५० मंजिल का मकान जलते-जलते ही टूटकर गिरने लगता है और अन्त में बहुत छोटे रूप में शेष रह जाता है उसी प्रकार तारा भी जलते-जलते अपने करोड़ों गुने छोटे रूप में संकुचित हो जाता है।

यदि कोई विराट् तारा जो सूर्य से १० गुना बड़ा हो, उसकी मृत्यु हो तो वह ब्लैक होल में परिवर्तित होता है। उस स्थिति में वह कितना संकुचित होता है इसे इस प्रकार समझा जा सकता है—गुरु पृथ्वी से १३ सौ गुना बड़ा है और सूर्य गुरु से १ हजार गुना बड़ा है तो १० सूर्य जितने आकार का तारा पृथ्वी से १३० लाख गुना बड़ा होगा। ब्लैक होल बनने के बाद यह विराट् तारा पृथ्वी पर स्थित किसी 'हवाई टापू' जितना रह जाता है। अपने स्वरूप से कितने अरबों गुना छोटा हो जाता है।

ब्लैक होल दो प्रकार के होते हैं (१) भँवरदार और (२) बिना भँवर वाले। जैसे नदियों में कई स्थानों पर गहरे पानी में भँवर होती है ठीक उसी प्रकार ब्लैक होल भी अपने पास जाने वाली किसी भी वस्तु को अपनी ओर खींच लेता है। इसी एक लक्षण द्वारा ब्लैक होल का अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि यह प्रकाश भी सोख लेता है।

हमारे 'मन्दाकिनी' तारा विश्व में ही ५० लाख से अधिक ब्लैक होल होने की सम्भावना है। एक बड़ा ब्लैक होल कन्या राशि में पाया गया है जिसका एम ८५ नाम है एवं पृथ्वी से ६ करोड़ प्रकाश वर्ष दूर है।

प्रसिद्ध भौतिकविद् 'जान ए विलर' की मान्यता है कि एक ब्रह्माण्ड से दूसरे ब्रह्माण्ड में जाने के लिए गुप्त सुरंग मार्ग ब्लैक हॉल हो सकते हैं।

कैम्ब्रीज युनिवर्सिटी के अनुसन्धान कर्त्ता स्टीफन होडिंग के अनुसार ब्लैक होल में स्थल और समय का कोई बन्धन नहीं होता। ब्लैक होल के माध्यम से मनुष्य वर्त्तमान से कई लाखों वर्ष पूर्व और लाखों वर्ष आगे भी पहुँच सकता है।

स्टीफन ने कहा है कि ब्लैक होल में कण और प्रति-कण एक दूसरे को नष्ट करते रहते हैं।

दार्शनिक कानफ्युनियस जब मरने लगे तो शिष्यों को अपना मुँह फाड़कर दिखाया कि "जीभ पहले जन्मी पर अभी तक जिन्दा है। दाँत बाद में जन्मे पर पहले उखड़ गये। कठोर पहले हारता है और कामल बहुत दिन सफल रहते हैं। मेरी इस शिक्षा को सदा याद रखना" इतना उपदेश देकर उनने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

जिस प्रकार ब्लैक होल प्रत्येक प्रकार के पदार्थ एवं प्रकाश किरण सोख लेता है और कहीं कुछ दिखाई नहीं देता है, इसी ब्रह्माण्ड में खगोलविदों ने ऐसे स्थान पाये हैं जहाँ पहले कुछ नहीं था, वहाँ तीव्र गति से प्रकाश एवं अनेकों प्रकार के आयोनाइज कण पाये गये। ऐसे स्थानों को 'व्हाइट होल' नाम से जाना जाता है। खगोल शास्त्रियों की कल्पना है कि 'ब्लैक होल' और 'व्हाइट होल' के बीच आपसी सम्बन्ध हैं। दोनों के माध्यम को 'वर्म होल' कहते हैं।

व्हाइट होल की खोज के बाद वैज्ञानिक अनुमान लगा रहे हैं कि संलग्न व्हाइट होल और ब्लैक होल के माध्यम से किसी अन्य ब्रह्माण्ड में भी पहुँचा जा सकता है क्या? इस सन्दर्भ में वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संलग्न ब्लैक और व्हाइट होल के माध्यम से किसी अन्य ब्रह्माण्ड में कुछ ही समय में पहुँच सकते हैं जबकि यदि सीधे मार्ग से चला जाय तो कई अरब वर्ष लग जायेंगे।

महाभारत काल में भगीरथ के पूर्वज सगर राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया था। इस यज्ञ का घोड़ा घूमते-घूमते किसी ऐसे अज्ञात स्थान में पहुँच गया जिसका पता नहीं लगा। उसे ढूँढ़ने में ६० हजार का जन समुदाय भी गायब हो गया। किम्वदन्ति है कि वे सब पाताल पहुँच गये और भगीरथ ने तप द्वारा गंगा अवतरण कर उनका उद्धार किया। सम्भवतः ऐसी ही कुछ गति इन तारकों की भी होती होगी।

खोज के ऐसे-ऐसे अनेक क्षेत्र विज्ञान के सामने पड़े हैं पर उसे नक्षत्र युद्ध और परमाणु बम बनाने की वितृष्णा में चैन पड़े तब तो उन दिशाओं में कुछ सोच सकना सम्भव हो।

—※—

एक बार की बात है—देवताओं और असुरों में घमासान युद्ध छिड़ा। दोनों पक्षों ने अपनी समूची शक्ति दाँव पर लगा दी। आरम्भ के दिनों में देवताओं का पक्ष लड़-खड़ाया। सेनापति बदलने की आवश्यकता अनुभव हुई। निर्णय प्रजापति का करना था।

ब्रह्माजी कारण जानने और उपाय खोजने के लिए समाधिस्थ हो गये। उनने देखा देवता विलासी और प्रमादी हो गये हैं। सो अन्य गुणों का बाहुल्य होते हुए भी इन दो कमियों के कारण वे जीत न सकेंगे। संयमी और पराक्रमी सेनापति की नियुक्ति होनी चाहिए।

उन दिनों भूलोक में राजा मुचुकुन्द की समता संयम और पराक्रम में मुकाबला कर सकने वाला और कोई नहीं था। सो उन्हें ही प्रजापति के आदेश से देव वाहिनी का सेनापति बना दिया गया। उनने आते ही माहौल बदल दिया। हारते हुए देवता जीतने लगे।

युद्ध लम्बा खिंच गया। साथ ही पाशा भी पलटने लगा। असुर फिर तगड़े पड़ते गये और देवता जीती बाजी हारने लगे। चिन्ताजनक स्थिति से प्रजापति को अवगत कराया गया। उनने देखा कि विजय मिलते देख कर मुचुकुन्द अहंकारी होने लगा है। विजय के लिए अपेक्षित गुणों में संयम और पराक्रम की ही तरह निरहंकारिता भी एक महत्वपूर्ण आधार है। वह घटने लगे या हो ही नहीं तो समझना चाहिए पराभव के दुर्दिन आ गये। मुचुकुन्द को भूल सुधार साधना करने को कहा गया। नम्रता का अभ्यास करने में देर लगते देखकर नये सेनापति की नियुक्ति आवश्यक हो गई।

इसके लिए कार्तिकेय उपयुक्त पाए गये। उनमें तीनों विशेषताएँ थीं। अतएव नये सेनाध्यक्ष वे ही बने और नई रणनीति अपनाकर दैत्य समुदाय पर विजय प्राप्त करने में सफल हुए।

मानवीय गरिमा को भी सदा यही गुण प्रभावित करते हैं। यह परम्परा इस देश में सदैव चलती रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौन परिवर्तन की विचित्र घटनाएँ

यौन परिवर्तन का प्रथम आपरेशन जनवरी १९५५ में अमेरिका में हुआ था। इसके उपरान्त वह सिलसिला तेजी से चला। जिन्हें यौन विकृतियाँ थी, वे आज लज्जा वश अपनी बात किसी के सम्मुख प्रकट नहीं कर पाते थे। पर इस सफलता से अनेकों की हिम्मत बढ़ी और अनुमानत: संसार भर में अब तक ७० हजार लोगों ने अपने आपरेशन कराकर लिंग परिवर्तन किया है। इनमें से २० हजार अकेले अमेरिका में ही हुए हैं। डा० आर० विनियर ने इस सम्बन्ध में बहुत ख्याति प्राप्त की है।

ऐसे आपरेशन मात्र उन्हीं के होते हैं जिनमें पहले से ही उभय पक्षीय चिन्हों का प्रकट अस्तित्व है। आवश्यक नहीं कि यह स्थिति जन्म जात ही हो। मनोभूमि बदलने अथवा शारीरिक ज्वार-भाटों में किसी विशेष प्रकार का उफान आने से प्रजनन अंग भी नई दिशा में विकसित होने लगते हैं। यह ढलान इन दिनों नारीत्व की ओर अधिक है। इसलिए परिवर्तन भी उसी दिशा में अधिक हुए हैं और आपरेशन के उपरान्त मात्र जननेन्द्रिय के परिवर्तन नहीं हुए वरन् सन्तानोत्पादन के तद्नुरूप उपक्रम भी चल पड़े हैं।

शुक्राणुओं का डिम्बाणुओं में बदल जाना सरल है जबकि नये शुक्राणुओं का उत्पादन कठिन। जनखों में से अधिकांश में स्त्री प्रधान प्रवृत्तियाँ अधिक पाई जाती हैं जबकि उनमें पुरुषत्व प्रधान कम ही होते हैं।

यहाँ एक विशेष रूप से आश्चर्यजनक बात यह है कि खिलाड़ी महिलाओं ने पुरुष बनने के प्रयास विशेष रूप से किये क्योंकि उनमें पौरुष की प्रवृत्ति पहले से ही अधिक परिपक्व हो चुकी थी और वे अपने को पुरुषवर्ग के अधिक निकट पाती थीं। चैकोस्लोविया की धावक टेन्डा काडव कोवा—उत्तरी कोरिया की दौड़ चैम्पियन सिनाडिन डिन—ने इस सम्बन्ध में प्रयास किये और वे सफल रहीं। सन् १९७४ में भारत की हॉकी प्रतियोगिता में मूर्धन्य महिला बलजीत कौर को भी ऐसी ही सफलता मिली।

विज्ञान इस सम्बन्ध में अधिक गम्भीरता से शोधरत है कि क्या नारी को पुरुष वर्ग में परिवर्तित करने में अधिक सफलता पाई जा सकती है। क्योंकि शारीरिक श्रम की दृष्टि से वे ही अधिक समर्थ और निडर पाये गये हैं। स्त्री दिशा में परिवर्तन होने के उपरान्त उनकी कार्य क्षमता में किसी सीमा तक घटोत्तरी ही होती है।

इसी प्रकार अन्य कितनी ही प्रजातियाँ ऐसी हैं जो आवश्यकतानुसार लिंग परिवर्तन करती रहती हैं।

इसका एक कारण माँस भक्षण के समय नर के हारमोंन नारी शरीर में और मादा पशु के हारमोंन नर शरीर में जा पहुँचना भी है। इस कारण ही असमय में ही वे उभार उठने लगते हैं जो परिपक्व आयु में उठने चाहिए किन्तु समय से बहुत पहले ही परिवर्तन के चिन्ह प्रकट करने लगे।

> काँटों के साथ जिन्दगी काटना तुम्हें असह्य तो नहीं होता? चाँदनी ने गुलाब के फूल से पूछा।
>
> फूल बोला भिन्न प्रकृति वालों के बीच अपने ढंग से काँटे भी तो रहते हैं। फिर सहिष्णुता की नीति अपनाने में मुझे ही क्यों कठिनाई पड़ेगी।

हारमोंनों में स्त्री-पुरुष को और पुरुष हारमोंन स्त्री को इन्जेक्ट करके उनकी प्रवृत्तियाँ एक सीमा तक परिवर्तन हो सकती हैं। विशेषतया मूँछ के बालों की घट-बढ़ और स्तनों का उभार अधिक सरलता से हो सकता है। जननेन्द्रिय में परिवर्तन उसी दशा में सम्भव है जब दोनों प्रकार के चिन्ह पहले से ही मौजूद हों। अब ये परिवर्तन उतने विचित्र नहीं माने जाते जितने कि तीन दशक पूर्व माने जाते थे।

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभा का उपयोग शालीनता के लिए

प्रतिभा पराक्रम, मनोयोग और साहस के सम्मिश्रण से बनती है। वह कितने ही सांसारिक क्रिया कुशल पुरुषार्थ परायण, पूर्तिवान और महत्वाकांक्षी लोगों में भी पाई जाती है। उसे व्यक्तित्व का मूल्य महत्व समझने वाले अपनी आदतों को तद्नुरूप ढालकर स्वयं भी विकसित कर लेते हैं। कुछ में वह जन्मजात भी होती है जिसका कारण पूर्व संचित संस्कारों के सम्पदा को ही माना जा सकता है। राजनीति, साहित्य, कला, व्यवसाय आदि क्षेत्रों में कितने ही प्रतिभाशाली लोग आये दिन दृष्टिगोचर होते रहते हैं।

प्रखरता इससे आगे की बात है। उसमें अध्यात्म स्तर का पुरुषार्थ अनुदान जुड़ा होता है। वह आदर्शवादी भी होती है और उत्कृष्टता समर्थक उच्चस्तरीय भी। प्रखरता और प्रतिभा का अन्तर स्पष्ट है। प्रतिभा का झुकाव वैभव अर्जित करने के लिए ललकता रहता है और वह आमतौर से भौतिक सफलता सुविधा के लिए ही प्रयुक्त होती रहती है। प्रखरता का रुझान आदर्शों की ओर होता है वह सम्पदा नहीं महानता अर्जित करती है। उसका उपयोग व्यक्तिगत सुविधा सम्पादन में तो नगण्य ही होता है किन्तु अधिकांश क्षमता सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन में लगी रहती है। प्रायः लोक मंगल के परमार्थ प्रयोजनों में उसे नियोजित रहते देखा गया है।

अध्यात्म क्षेत्र से सम्बन्धित लोगों में प्रतिभा नगण्य और प्रखरता की मात्रा बढ़ी-चढ़ी होती है। ऐसे कम ही लोग हुए है जिनमें दोनों का समन्वय समान स्तर का रहा है। यह आवश्यक नहीं कि जिसमें प्रखरता हो उसमें प्रतिभा का नाम भी न हो। वह होता तो है पर उसका अनुपात अपेक्षाकृत कम ही रहता है। जिस पलड़े पर वजन पड़ेगा उसी को नीचा झुका हुआ पाया जायगा। दोनों में से जो जिसे अभीष्ट होता है वह उसे उपार्जित कर लेता है।

आद्य शंकराचार्य प्रखरता के धनी थे। सोलह वर्ष की आयु से ही वे महामानवों जैसे उच्चस्तरीय दृष्टि अपनाकर उसकी पूर्ति में जुट गये और उस तादात्म्य ने उन्हें ऐतिहासिक सफलताएँ प्राप्त करने का अवसर दिया। कुमारिल यह भी अपने समयके असाधारणव्यक्तित्व सम्पन्न थे पर उनने अपनी विशिष्टता को सामयिक विकृतियों और भ्रान्तियों से जूझने में लगाया। वे चाहते तो उस विशिष्टता के बदले प्रचुर परिमाण में धन, यश, पद आदि भी उपलब्ध कर सकते थे।

योगी अरविन्द योग्यता की दृष्टि से उच्च पदासीन रह सकते थे। बहुत समय तक रहे भी। बड़ौदा स्टेट के दीवान, नेशनल कालेज के संस्थापक और प्रतिभा सम्पन्न बुद्धि जीवी के रूप में उन दिनों उनकी ख्याति थी। देश भक्ति के क्षेत्र में भी अग्रिणी थे, क्रान्तिकारी भी रहे। किन्तु अन्ततः उनकी प्रतिभा प्रखरता में बदली। साधना परायण हुए और योगीराज बने, महर्षि कह लाये। अपने तपोबल से उन्होंने सूक्ष्म वातावरण गरम किया और एक से एक बढ़ी-चढ़ी देश भक्त प्रतिभाओं के अम्बार लगा दिये। इन दिनों जितने महामानव एक साथ एक से एक ऊँचे स्तर के उभरे वैसा इतिहास के अन्य सोपानों में नहीं देखा गया। अरुणाचलम् के महर्षि रमण की तपश्चर्या का समूचे लोक मानस पर क्या प्रभाव पड़ा होगा इसका अनुमान उनके समीपवर्ती क्षेत्र की प्रतिक्रियाओं को देखकर लगाया जा सकता है। उनके मौन सत्संग में मोर, सर्प, गिलहरी, बन्दर, कबूतर आदि नियमित रूप से आते थे और अपने नियत स्थानों पर बैठकर उस प्रवाह का आनन्द लेते थे। कईबार तो उन्हे बन्दरों के झुण्डों में चल रहे द्वन्दों से निपटने बाहर आना पड़ता था। उन्हीं की भाषा में बोलकर वे फैसला करते थे, जिसे मानकर वे भावी रीति-नीति अपनाया करते।

चाणक्य की प्रखरता उन्हें प्रधानमन्त्री और विश्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय के उच्चपद पर आसीन होने के बाद भी अपरिग्रही ब्राह्मण बनाये रहो। उनका कौशल अद्भुत था, पर निजी प्रयोजनों में उसका एक कण भी प्रयुक्त नहीं हुआ। विदेशी आक्रमणों को निरस्त करने और देश को सुविस्तृत संगठित एवं समुन्नत बनाने में उनके निर्धारणों ने चमत्कारी भूमिका निवाही। उनके सम्पर्क प्रभाव से प्रदत्त एक सामान्य बालक चन्द्रगुप्त महान कहलाया। भगवान बुद्ध को अवतार माना जाता है। यह पद उन्हें अकस्मात नहीं मिला। उत्तराधिकारियों को मिलने वाले सिंहासन या वैभव की तरह उन्हें कुछ ही हस्तगत नहीं हुआ। यात्रा आरम्भ करने से लेकर लक्ष्य तक पहुँचने की लम्बी मंजिल से कष्ट साध्य सफलताएँ उत्पन्न करने का श्रेय उनकी प्रखरता को ही है। यह एक ऐसी सशक्त आकर्षण शक्ति है जिसके कारण न सहयोगी कम पड़ते हैं न साधन। बुद्ध एक मध्यवर्ती स्तर के युवक से बढते-बढ़ते अवतार पद तक पहुँचे। वे अकेले ही गगनचुम्बी नहीं बने। अपने साथ आनन्द, राहुल कुमार जीव, हर्षवर्धन, अशोक, संघ मित्रा, अश्वपति आदि अनेकों हलके-फुलकों को भी आकाश तक उड़ सकने का श्रेय सौभाग्य प्रदान कर सके।

आयुर्विज्ञान क्षेत्र में चरक, सुश्रुत, वागभट्ट, आदि ने जिस-जिस स्तर के प्रयोग अनुसंधान किये, उसके लिए समूची मानवता चिरकाल तक कृतज्ञ रहेगी। रसायन शास्त्र के माध्यम से महत्वहीन पदार्थों को मणि-मुक्तकों से बढ़कर—अमृतोपम स्तर का बना देने में उनका कितना बड़ा योगदान रहा, इसका मूल्यांकन यह अनुमान लगाने पर हो सकता है कि उन प्रयासों के अभाव में विज्ञान जगत को चिरकाल तक कितनी पिछड़ी स्थिति में पड़ा रहना पड़ता। अन्तरिक्ष विज्ञान के रहस्योद्घाटन करने में भास्कराचार्य: आर्यभट्ट आदि की प्रखरता ने जो प्रस्तुतीकरण किया उससे मनुष्य ने वह सब जाना जिसके अभाव में उस क्षेत्र की उपलब्धियों से हम सब चिरकाल तक वंचित ही बने रहते और न पूरी हो सकने वाली क्षति उठाते। भाषा के क्षेत्र में पाणिनी, साधना में पातञ्जलि, कथा साहित्य में व्यास, दर्शन में कपिल कणाद का जो योगदान रहा उसकी तुलना सूर्य चन्द्र के अनुदानों से की जाती रहती है।

मध्यकाल के सरस्वती साधकों में, कालिदास, वोपदेव वरदराज, कैमट आदि की भावभरी चर्चा होती रहती है। यह उपार्जन उनका स्कूली नहीं था। वरन् अध्यात्म क्षेत्र के प्रयोग प्रयत्नों के माध्यम से वे सामान्य होते हुए भी विलक्षण मेधा का परिचय दे सकने में समर्थ हुए। अपनी विद्या का उन्होंने बाजारू उपयोग नहीं किया। जो सूझा जो किया उसके पीछे भाव-सम्वेदना एवं ज्ञान गरिमा को अधिकाधिक विस्तृत करने वाली उत्कंठा से ही अनुप्राणित रहा। उपरोक्त नामावली इन लोगों की है जो जन्मजात रूप से मन्द बुद्धि स्तर के थे और साथियों की उपेक्षा अवमानना सहते थे। इसी शृंखला में एक आधुनिक नाम महात्मा आनन्दस्वामी का भी जुड़ता है। वे बाईस वर्ष की आयु तक मूढ़मति समझे जाते रहे किन्तु गायत्री उपासना की चमत्कारी परिणति ने उनका भाग्य ही बदल दिया। अग्नि पूर्वका में ऋषि तैत्तरेय ने किसी की उच्छ्रिष्ट ज्ञान सम्पदा को ऐसे ही तीतर बनकर निगल लिया था और इतने भर वे देखते-देखते ब्रह्म विद्या के अधिष्ठाता बन गये थे।

अपने समय के प्रखरता सम्पन्नों में ऐसे कितने ही नाम सम्मिलित होते हैं जिनकी जन्मजात स्थिति, आर्थिक शैक्षणिक, शारीरिक एवं पारिवारिक दृष्टि से सामान्य स्तर की ही थी, पर वे प्रखरता अपनाकर महानता की दिशा में तेजी से बढ़े और वहाँ पहुँचे जहाँ से वे अनन्त काल तक असंख्यों की प्रगति पथ पर बढ़ चलने का मार्गदर्शन करते रहेंगे। ऐसे महामानवों में राणाप्रताप, छत्रपति शिवाजी, युग पुरुष गान्धी, महामना मालवीय, लोकमान्य तिलक, पंजाब केशरी लाजपत राय, नेताजी सुभाषचन्द, चन्द्रशेखर आजाद जैसे राजनैतिक क्षेत्र के महामानवों की गणना की जा सकती है। सामाजिक, क्षेत्र में विवेकानन्द, दयानन्द, रामतीर्थ, गुरु गोविन्द सिंह समर्थ रामदास, कबीर, रैदास आदि की सराहना मुक्त कण्ठ से की जा सकती है। सुसम्पन्नों में राजा कर्ण, भामाशाह, जुगलकिशोर बिड़ला, जैसों का नाम श्रद्धावन्त होकर लिया जाता रहेगा। यह इसलिए नहीं वे सर्वोपरि धनाध्यक्ष थे वरन् इसलिए उनकी प्रखरता अपने वैभव को उच्चस्तरीय प्रयोजन में लगा सकने की पृष्ठभूमि बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकी। आमतौर से लोग वैभव का उपयोग विलास, संचय एवं कुपात्रों पर अनावश्यक भार बखेरने की तरह ही करते रहते हैं। महर्षि कर्वे जैसी सूझ-बूझ कितनों की होती है कि वे थोड़ी-सी राशि से सन्तान को सुशिक्षित, स्वावलम्बी बनाने के अतिरिक्त अपने अनुदान को लोक हित में लगाने के लिए व्याज समेत वसूल भी करलें। इस समुदाय में अहिल्यावाई जैसी महिलाओं का भी उदार स्मरण किया जा सकता है। यों उस पिसनहारी का भी समूची मानवता अभिनन्दन करती रहेगी जिसने पिसाई करके निर्वाह करने की स्थिति रहने पर भी जो बच सका पूरी ईमानदारी से बचाया और लोक मंगल के लिए उदारता पूर्वक अपने हाथों ही विसर्जित कर दिया। ईश्वरचन्द विद्यासागर जो कमाते थे उसमें से एक चौथाई से परिवार पोषण करने के उपरान्त तीन चौथाई अभावग्रस्त छात्रों के निमित्त खर्च कर देते थे। यह सम्पन्नता की चर्चा नहीं वरन् उस प्रखरता का अभिनन्दन है जिसने खर्च का सही मार्ग सुझाया और थोड़े को भी बीज की तरह बो देने का साहस प्रदान करके वहुमूल्य फसल काटने का सौभाग्य दिलाया। राजा जनक, दानवीर कर्ण जैसे उदारमना भी इसी अपरिग्रही ब्राह्मण परिवार में गिने जाते हैं। हरिश्चन्द की साहसिक उदारता का स्मरण अनन्त काल तक किया जाता रहेगा।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहमलिंकन का पालन-पोषण उनकी सोतेली माँ ने किया था। गरीबी और कठिनाइयों के बीच दिन काटने वाली इस महिला ने इस बालक को ऐसी प्रेरणाएँ और नसीहतें दीं जिनसे बच्चे की समझ और शिक्षा ही नहीं, आत्मा भी ऊँची उठती चली गई और वह क्रमिक प्रगति के पथ पर चलते हुए अमेरिका का राष्ट्रपति ही नहीं विश्व के महामानवों में से एक बना। एक बार अब्राहमलिंकन से उनकी उन्नति का कारण और शिक्षा का आधार पूछा तो उसने एक शब्द में उतना ही कहा—जन्म दात्री न होते हुए भी जिसने मेरी निर्मात्री को पूरा किया उसी अपनी माँ का बनाया हुआ मैं एक खिलौना भर हूँ।

महान वैज्ञानिक टामस अथवा एडीसन बचपन में अत्यन्त मन्द बुद्धि थे। पढ़ने में उनकी अक्ल चलती ही न थी। सो अध्यापक ने बच्चों के हाथों अभिभावकों को पत्र भेजा। इसे स्कूल से उठा लें। मन्द बुद्धि होने के कारण वह पढ़ न सकेगा। बच्चे की माँ ने भरी आँखों और भारी मन से पत्र पढ़ा। बच्चे को दुलारा और छाती से चिपका कर कहा—'मेरे बच्चे, तुम मन्द बुद्धि नहीं हो सकते। मैं स्वयं ही तुम्हें पढ़ाऊँगी, बच्चे को स्कूल से उठा लिया गया और उसकी माँ ने पढ़ाना प्रारम्भ किया। परिणाम सभी के सामने है। बच्चा विश्व के मूर्धन्य वैज्ञानिकों में से एक बना।

प्रश्न न यों उच्चस्तरीय योग्यता का है और न विपुल सम्पन्नता का। वह तो दस्यु तस्करी से भी आती रहती है। कुचक्री, प्रवंची, ठग, शोषण, अपराधी प्रवृत्ति के लोग अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमान होते हैं। उनमें से अधिकांश की शिक्षा भी बढ़ी-चढ़ी होती है। इतने पर भी उन उपलब्धियों का उपयोग उच्च प्रयोजनों के लिए न बन पड़ने के कारण अन्यान्यों के साथ-साथ उनका अपना भी अहित ही होता है। साधन स्वल्प हों, योग्यता थोड़ी हो तो भी प्रखरता के सहारे उसे महान प्रयोजनों में लगाकर अनुकरणीय आदर्श पीछे वालों के लिए छोड़ा जा सकता है। ऐसा प्रकाश, उत्साह और साहस जिस अन्तः प्रेरणा आधार पर बन पड़ता है उसे प्रखरता कहते हैं। ऐसे लोगों में राजस्थान बालिका विद्यालय के संस्थापक हीरालाल शास्त्री, संगरिया विद्या पीठ के जन्मदाता स्वामी केशवानन्द, अपंगों के आश्रयदाता बाबासाहब आमटे आदि से लगनशील सेवा साधकों को काल गति भी विस्मरण के गर्त में न गिरने देगी।

भगवान की तरह ऋषि भी युग की आवश्यकता के अनुरूप अवतार लेते हैं। नई समस्याओं का समाधान नये रूप से ही होता है। पुराने समाधान नये व्यवधानों से नहीं निपट पाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तियों के दो ध्रुव केन्द्र

मस्तिष्क का कार्य मात्र इन्द्रियों पर अनुशासन बनाये रखना ही नहीं है। मस्तिष्कीय सामर्थ्य की जब भी परा-मनोविज्ञान क्षेत्र में चर्चा होती है, तब जीव-ब्रह्म सम्पर्क सूत्रों की विवेचना इसी में विद्यमान घटकों के माध्यम से की जाती है। सहस्रार ही शरीर क्षेत्र में अवस्थित ईश्वरीय सत्ता का निवास स्थान है जिसे मस्तिष्क में मध्य भाग में ब्रह्मरन्ध्र के समीपस्थ माना जा सकता है।

जिस प्रकार अणु-परमाणु से भरी पदार्थ सत्ता का उद्गम केन्द्र है—इलेक्ट्रॉन एवं उसके भी सूक्ष्म कण प्रति कण। उसी प्रकार शरीर संसार की समस्त गतिविधियों का मूल स्रोत—शक्ति केन्द्र है—सहस्रार। ब्रह्म सत्ता का अवतरण इसी स्थान पर होता है। इस शक्ति स्रोत को जिसके माध्यम से व्यष्टि चेतना समष्टि चेतना से मिलती है, कहीं ढूँढ़ना है तो उसकी झलक स्थूल रूप में मस्तिष्क मध्य में विद्यमान विद्युत्स्फुल्लिग के फव्वारे "रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम" के रूप में देखी जा सकती है। वैज्ञानिक बताते हैं कि मस्तिष्क के मध्य भाग से सहस्रों विद्युत स्पन्दन सतत् प्रस्फुटित होते दिखाई देते हैं। सुषुम्ना तथा मस्तिष्क के सन्धि स्थल से कुछ ऊपर मस्तिष्क मध्य (मिड ब्रेन) नामक स्थान से विद्युत उन्मेषों को घनीभूत होते तथा ऊपर की ओर उठकर सहस्रों स्नायु केन्द्रों तथा अरबों स्नायु कोशों को उत्तेजित प्रभावित करते देखा गया है। इन्हें 'एसेन्डिंग रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम', 'स्पेसिफिक' एवं 'डीफ्यूज' 'थेलेमिक प्रोजेक्शन' नाम दिया गया है। ये सारे शरीर को चेतन बनाये रखने तथा निद्रा-जागृति के विभिन्न चक्रों के लिये उत्तरदायी माने जाते हैं। इन स्पन्दनों को यदि इच्छानुकूल नियन्त्रित किया जा सके तो उनके प्रभाव से समग्र मस्तिष्क के किसी भी स्नायु केन्द्र को इच्छानुसार सक्रिय तथा शिथिल बनाये जा सकने जैसी असम्भव उपलब्धियों को सम्भव कर दिखाया जा सकता है।

योग एक विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है। इसमें शक्ति केन्द्र जागरण का अर्थ केवल केन्द्रों की तीक्ष्णता तथा सक्रियता को बढ़ा देना ही नहीं, उन्हें सुव्यवस्थित, सुनियोजित करना भी है। विद्युत्धाराओं के स्पन्दन विभिन्न विकृत स्थानों को उत्तेजित कर मिर्गी, हाथ-पैरों की असामान्य हलचलों को जिस प्रकार जन्म देते हैं व उसकी आंशिक विद्युत कम्पन प्रक्रिया को जिस प्रकार "इलेक्ट्रो एनसेफेलोग्राफी" यन्त्र द्वारा पकड़ा जा सका है उससे स्पष्ट होता है कि ये विद्युत्स्पन्दन सामान्य अवस्था में अति तीव्र एवं गतिमान होते हैं। इनसे भले ही निषेधात्मक पक्ष सिद्ध होता है, यह तो प्रामाणित हो ही जाता है कि इन विद्युत्धाराओं को सुनियोजित कर सहस्रार जागरण की—न्यूटान किस्टल रूपी केन्द्रों को जगाकर उनसे समष्टि चेतना से सम्पर्क की क्रिया-प्रतिक्रिया उत्पन्न करना सम्भव है। इसके लिए बाह्य इलेक्ट्रोडों की आवश्यकता नहीं। अन्दर का विद्युत्संस्थान ही इतना समर्थ सक्षम है कि उसको सुव्यवस्थित कर किसी भी प्रसुप्त केन्द्र को जगाया जा सकना पूर्ण रूपेण सम्भव है।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि पृथ्वी पर विराजमान जीवधारी मनुष्य एक विलक्षण विद्युत्दबाव से प्रतिक्षण प्रभावित होता रहता है। पृथ्वी की सतह और वायु मण्डल के आयनोस्फियर्स के मध्य लगभग तीन लाख वोल्ट की शक्ति का धन विद्युत विभव होता है। मानवी काया एक अच्छी विद्युत्चालक है। यह काया जिस विशाल विद्युत संधारक के मध्य बैठी है उसे वैज्ञानिक 'ग्लोबल केपेसिटट' कहते हैं। यह किसी भी स्थिति में हलचल रहित नहीं है। इसमें सतत् विद्युत स्खलन होता रहता है। 'शूमैन रेजोनेन्स' के नाम से ७ से ८ तरंगें प्रति सेकण्ड की आवृत्ति में विद्यमान यह विद्युत्प्रवाह जिस प्रकार मानवी काया को उत्तेजित प्रभावित करता रहता है उसका मूल कारण यह है कि इन तरंगों का गुण हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तिष्क की विद्युत्तरंगों से अत्यधिक साम्य रखता है। केवल २० वाट विद्युत शक्ति से संचालित—अरबों सक्रिय न्यूरान्स व उन्हें जोड़ने वाले तन्तु संस्थान के ढाँचे से बना यह मस्तिष्क ब्रह्माण्डीय विद्युत की आवृत्ति पर ही चलता है। यही प्रमुख कारण है कि मनुष्य के दैनन्दिन क्रिया-कलाप विद्युतीय क्षेत्रों—विद्युत्चुम्बकीय तरंगों तथा रेडिएशन की लहरों से सतत् प्रभावित होते रहते हैं।

वैज्ञानिक अध्ययन-निष्कर्ष इस कथन की पुष्टि करते हैं कि मानवी सामर्थ्य असीम है। सेन्द्रिय जगत का एक प्राणी-मानव अपनी उपलब्ध शक्ति सामर्थ्यों का सीमित उपयोग ही कर पाता है। यदि किसी प्रकार अपने संस्थान को जगाया—उत्तेजित किया जा सके तो उस महत् चेतना संस्थान शक्ति भण्डार से सम्पर्क स्थापित कर सकना भी सम्भव है। ईथर के ब्रह्माण्डव्यापी महासागर में दृश्य एवं अदृश्य—पदार्थ परक तथा चेतना प्रधान शक्ति छिपी पड़ी है। यह महाप्राण का महासागर है। इस सागर की ही लघु संरचना मानवी काया है, ब्रह्मरन्ध्र एवं सहस्रार जिसके सम्पर्क माध्यम हैं। हर जीवधारी अपनी-अपनी पात्रता के अनुसार इस भण्डार से वैभव अनुदान प्राप्त करता है। साधना उपचार—ध्यान धारणा आदि के विभिन्न प्रयोगों द्वारा इस सामर्थ्य को बढ़ाया-विकसित किया जा सकता है।

एरियल या एन्टीना ट्रांसमीटर द्वारा भेजी शब्द किरणों को पकड़ते हैं। उनको इतना शक्तिशाली बनाया जाता है कि सुदूर क्षेत्रों से आने वाली तरंगों को पकड़कर भी उन्हें ध्वनि में परिवर्त्तित किया जा सके। ठीक इसी प्रकार मस्तिष्क के न्यूरान्स एक प्रकार के रेडियो क्रिस्टल, एन्टिना या एरियल हैं। वे ब्रह्माण्ड में संव्याप्त तरंगों को पकड़ते हैं तथा वाँछित प्रवाह, को व्यक्ति को, सामर्थ्य-शाली बनाने वाली ऊर्जा में बदल देते हैं।

सहस्रार की जैव संरचना को रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम के रूप में देखते हुए उसकी एक भव्य राडार या एण्टीना के रूप में कल्पना की जा सकती है जो तरंगों को पकड़कर अरबों स्नायु कोशों तक भेजता है, उनमें विद्युत सक्रियता बढ़ाता है। अलंकारिक रूप में सहस्रार की सहस्र दल कमल—सहस्र फण सर्प के रूप में कल्पना की गयी है। ब्रह्मलोक की व्याख्या में बृहत् क्षीर सागर—सहस्र फन वाले शेषनाग की शैया एवं उस पर विष्णु भगवान के शयन का वर्णन है। वस्तुतः क्षीर सागर मस्तिष्क में विद्यमान ग्रे मैटर है। सहस्रार कमल ही रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम है जो सारे ग्रेमैटर में मध्य मस्तिष्क से ऊपर तक फैला हुआ है। इस संस्थान में अवस्थित चेतना ही ब्रह्म सत्ता की प्रतीक—भगवान विष्णु है। साधारण स्थिति में यह क्षेत्र प्रसुप्त-निष्क्रिय ही पड़ा रहता है इसी कारण इसमें भगवान सोते हुए दिखाए जाते हैं। यहीं शिवलोक है जहाँ मान सरोवर व कैलाश है। इन अलंकारिक विवरणों के पीछे एक ही उद्देश्य है—समष्टि, चेतना को अपने अन्दर अवस्थित देखना—उसकी गरिमा को पहचानना तथा उससे अनुदान प्राप्त करना। आत्मा-परमात्मा के मिलन—अद्वैत की स्थिति की अनुभूति यहीं की जाती है। योगी इसी केन्द्र में प्राण को विकेन्द्रित कर ब्रह्माण्ड का विचरण और नियन्त्रण जैसी सफलता प्राप्त करते हैं।

सहस्रार को महत् चेतना से सम्पर्क का द्वार माना गया है। मूलाधार में प्रसुप्त पड़ी सर्पिणी कुण्डलिनी यहीं पर मुखबन्द कली के खिलने के रूप में विकसित होती है तथा शतदल कमल के सहस्रार के रूप में उसका विकास होता है। सहस्रार को स्वर्गलोक का कल्पवृक्ष कहा गया है। प्रलयकाल में भी शेष रहने वाला अक्षय वट, गीता का ऊर्ध्वमूल—अश्वस्थ—बोधि वृक्ष आदि उपमाएं इस ब्रह्म बीज को इसी कारण दी गयी है कि अपनी जाग्रत स्थिति में यह साधक को दिव्य सत्ता सम्पन्न बनाता है—पिण्ड में संव्याप्त चेतन सत्ता के तारों को समष्टि सत्ता के चेतना पुंज से जोड़ता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं धन्य बनता है व अपने सम्पर्क क्षेत्र के अनेकानेक व्यक्तियों को दिव्य आलोक से भरा-पूरा बनाता है।

सहस्रार की आध्यात्मिक संरचना को दृष्टिगत रख शरीर में उसके स्थूल प्रतिनिधि की कल्पना की जाय तो सहस्राधिक स्फुल्लिंगों में विभाजित मध्य मस्तिष्क से प्रवाहित 'रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम' से उसकी संगति ठीक-ठीक बैठ जाती है। मस्तिष्क के एक-एक केन्द्रक—नाभिक, ग्रे मैटंर के गुच्छों के रूप में बिखरे पड़े न्यूरॉनल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेप्टर्स को ये प्रवाह उत्तेजित करते हैं तथा उन्हें प्रसुप्त से जागृति की स्थिति में लाते हैं। इस स्थान से न केवल काया की अचेतन गतिविधियों का नियमन होता है वरन् सूक्ष्म जगत की हलचलों की इच्छानुसार 'मानिटरिंग' भी। जैवीय विद्युत का स्वयंभू प्रवाह जो इस स्थान पर केन्द्रीभूत होता है, समग्र काया के स्नायु तन्तुओं का सम्मिश्रित स्वरूप है। इस स्थान पर विद्युत की सघनता सारी काया में सर्वाधिक पायी गयी है। यहाँ से जो प्रवाह चलते हैं वे रेटीकुलर (जालीनुमा) प्रोजेक्शन्स के माध्यम से एक-एक स्नायु कोष को प्रभावित करते हैं—उनकी आवृत्ति को ब्रह्माण्डीय तरंगों की आवृत्ति से जोड़ देते हैं। आदान-प्रदान की क्षमता—वांछित को ग्रहण करने की सामर्थ्य इसी संस्थान के माध्यम से अर्जित हो पाती है।

इस आदान-प्रदान का, समष्टि चेतना से सम्पर्क का सबसे महत्वपूर्ण एवं सशक्त पक्ष यह है कि भावना सम्बन्धी मस्तिष्कीय स्नायु रस स्रावों का नियन्त्रण भी इसी स्थान से होता है। भावनाओं का रसायन शास्त्र भी अपने आप में विचित्र है। आज का वैज्ञानिक अब उन रहस्यों को जान सकने में समर्थ हो गया है जिन्हें अपनी शैशवावस्था में अविज्ञात कहकर छोड़ दिया जाता था। भाव-सम्वेदनाओं जैसी विशिष्टताओं का सम्बन्ध अब न्यूरोकेमीकल ट्रांसमीटर्स से जोड़ा जा रहा है। यह भी कहा जा रहा है कि अब स्वेच्छा से अति भावुकता पर नियन्त्रण व सामान्य स्थिति में पायी जाने वाली भाव-परक मान्यताओं का नियमन—विस्तरण सम्भव है। मस्तिष्क के मध्य भाग से ऊपर दोनों हेमीस्फीयर्स के बीच एक संस्थान पाया जाता है—'लिम्बिक सिस्टम'। इसी में आनन्द, दुःख, भाव-सम्वेदना, यौन भावना सम्बन्धी महत्वपूर्ण केन्द्र है। हारमोन ग्रन्थियों के माध्यम से क्रियाशील यह संस्थान पूरी तरह से अपने स्नायु उत्तेजन हेतु 'रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम' के द्वारा भेजे गये सन्देशों पर निर्भर है। 'एनकेफेलीन' नामक रस स्रावों स्नायु सन्धि स्थलों से प्रवाहित कर ये आनन्द की अनुभूति कराते हैं, भावनाओं को उत्कृष्ट बनाते हैं तथा उनके सुनियोजन के लिये चिन्तन प्रदान करते हैं। कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक द्वय जॉन ह्यूजेज एवं श्री लीक्स तथा जॉन हापकिन्स मेडीकल स्कूल के 'सोलोमन स्नीडर' द्वारा आविष्कृत इन हारमोन्स से चिकित्सकों को तो मनोरोगों एवं भावनात्मक विक्षोभों का समाधान करने में सहायता मिली है परन्तु अध्यात्म विद्या के अध्येता इस अमृत कलश के सदुपयोग का, सहस्रार के जागरण से भाव योग, श्रद्धा-समर्पण से अद्वैत की स्थिति की प्राप्ति का प्रतिपादन करते हैं। यही वस्तुतः सहस्रार का शाश्वत स्वरूप भी है।

दक्षिणी ध्रुव समुद्र तल से १६००० फुट उभरा हुआ है। इसे विश्व शरीर की जननेन्द्रिय का उभार कह सकते हैं। पुराणों में इसे शिवलिंग कहा गया है। नारी की जननेन्द्रिय में भी यह उभार छोटे रूप में पाया जाता है।

मस्तिष्क ब्रह्मरन्ध्र एक गड्ढा है। आँख, कान, नाक, मुख आदि भी इसी क्षेत्र के गड्ढे हैं। इन्हें उत्तर ध्रुव कह सकते हैं। उन्हीं क्षेत्रों से विविध प्रकार की प्रेरणाएँ उत्पन्न होती हैं। इन उत्कट आकांक्षाओं को ज्ञान या काम भी कह सकते हैं। यही कुण्डलिनी भी है। **

जैन पुराणों में तपस्वी बाहुबलि के चरित्र का वर्णन है। उनने कठोर तपस्या की थी पर अहन्ता नहीं छूटी तो उस साधना से भी उन्हें शान्ति न मिली। महत्वाकांक्षाओं का उन्माद उन पर तब भी चढ़ा रहता था।

उदास बाहुबलि को उनकी बहन ने देखा तो असफलता का कारण ताड़ लिया। उसने आते ही "हाथी की पालकी से नीचे उतरो और समझदारों की तरह जमीन पर चलो। कथन का मर्म बहिन ने समझाया कि अहन्ता को छोड़ो आकांक्षाओं से छुटकारा पाओ इसके बिना सफलता मिल नहीं सकेगी।"

बाहुबलि ने वैसा ही किया और वे देखते ही देखते सिद्ध पुरुष हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाकों राखे सांइयाँ, मार सके ना कोय

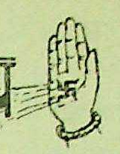

'दी रूट्स आफ कोइन्सीडेंस' में कोस्लर ने स्पष्ट लिखा है—"हम निःसन्देह ऐसे चमत्कारों से घिरे हैं जिनके अस्तित्व की अब तक हम उपेक्षा करते रहे। फलतः इसे अन्धविश्वास से अधिक कुछ माना नहीं गया, इसलिए मनुष्य ने सदियों तक यह नहीं समझा कि वह सूक्ष्म शक्तियों से घिरा है।" आगे उन्होंने कहा कि—"यह निश्चित है कि हम एक ऐसे मानसिक चुम्बकीय क्षेत्र में वास करते हैं, जो संयोग जैसी घटनाओं को प्रेरित करता है।"

न्यूजीलैण्ड के कुक जलडमरु मध्य में दो महिला नाविकों की जान एक मृत ह्वेल मछली ने बचाई। नाव समुद्री चक्रवात में फँसकर डूब गयी। नाविक महिलायें थीं। वे कुछ दूर तक तैरीं उसी बीच उन्हें एक ह्वेल मछली की लाश पानी में तैरती हुई मिल गई। वे उस पर चढ़ गयीं। और नाव की तरह उसी को खेती हुई किनारे पर आ लगीं।

फैलमाउथ (मेन) से प्राप्त समाचार के अनुसार ६२ वर्षीय एडविन रोबिन्सन के नेत्रों की ज्योति ९ वर्ष पूर्व तक सड़क दुर्घटना में विदा हो गयी थी। उनके डाक्टर विलियम टेलर ने जाँच पड़ताल के बाद बताया कि पिछले सप्ताह में रोबिन्सन तड़क-दमक वाली वर्षा तूफान में फँस गये थे। एक पेड़ के नीचे शरण पाने के लिए उन्होंने अपनी अलम्यूनियम की छड़ी का प्रयोग किया। आकाशीय विद्युत की गर्जन से धक्का खाकर रोबिन्सन जमीन पर गिरे—खरोचें आईं—किन्तु जब वे उठे तो पाये कि वे बिन किसी यन्त्र की सहायता से सुन सकते हैं और वे पुनः अपनी आँखों से पूर्ववत् देखने लगे।

मेरी गैलेन्ट प्रान्त के फ्रांसीसी गवर्नर की तीन वर्षीय पुत्री एक समुद्री यात्रा पर गयी। रास्ते में बीमार पड़ी और मर गयी। उसकी लाश बोरों में जल संस्कार के लिए सीं ली गयी। कुछ समय उपरान्त देखा गया कि जहाज की पालतू बिल्ली लाश के पास चक्कर काटती है। आमतौर से बिल्लियाँ लाश से दूर रहती हैं। सन्देह हुआ कि बच्ची जीवित तो नहीं है। बोरा खोला गया तो लड़की में हलकी सी साँस चलती मिली। उसका उपचार चला और ठीक हो गयी। बड़ी होने पर उसका विवाह फ्रांस के राजा लुई चौदहवें के साथ हुआ और वह ८४ वर्ष की आयु तक जीवित रहीं।

सन् १८२५ में पश्चिम जर्मनी के समुद्र तट पर पालने में बैठे हुए दो बच्चे पाये गये। भयानक समुद्री बाढ़ आई थी। असंख्यों घर परिवार उसमें डूब गये। किसी माता ने अपने इन बच्चों को तैरने की सुविधा सोचकर पालने से बाँध दिया होगा। वे डूबे नहीं किनारे पर आ लगे। उन्हें एक समुद्री जहाज के मालिक ने उठाया और पाल लिया। बड़े होकर वे पालने वाले के उत्तराधिकारी बने और जहाजों के मालिक कहलाये। जिन्दगी उनने समुद्र में ही बिताई अन्ततः किसी समुद्री तूफान में फँस कर जहाज समेत समुद्र के गर्भ में ही समा गये।

न्यूयार्क की एक वयोवृद्ध महिला कैथोलिन मॅक्लोइन का उदाहरण ऐसा है जिसके जीवन में आकस्मिक विपत्तियों और अप्रत्याशित सुरक्षा संयोगों का ऐसा विचित्र ताना-बाना है कि आश्चर्य से चकित रह जाना पड़ता है।

कैथोलिन सात वर्ष की थी तब वह स्कूल के बच्चों के साथ स्टीमर के द्वारा हडसन नदी में सैर करने गयी थी। स्टीमर में आग लग जाने से सभी बच्चे जल गये। जब कि कैथोलिन एक लकड़ी के तख्ते को सीने से लगाकर नदी में कूद पड़ी। लहरों में काफी देर तक झूला झूलते रहने के बाद किसी दूसरी नाव ने देखा तो बचा लिया।

१९५४ में हवाई जहाज से यात्रा कर रही थी कि उसमें आग लग जाने से पायलट के बहुत प्रयास के बाद भी सभी यात्री जल गये। केवल कैथोलिन झुलसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई जीवित बची जो कुछ दिन बाद ठीक हो गई।

सन् १९५६ में वह बस से यात्रा कर रही थी। बस का टायर फटा वह लुढ़की और खड्ड में जा गिरी। आग लग जाने से बस के सभी यात्री जलकर खाक हो गये। केवल कैथोलिन वहाँ भी शीशा तोड़कर बाहर निकल सकी।

सन् १९६१ में वह इन्जन से सटे हुए डिब्बे में बैठी यात्रा कर रही थी। सामने से आती दूसरी रेल से टक्कर हो जाने के कारण इस रेल का इन्जन चकनाचूर हो गया। कैथोलिन के डिब्बे में इस बार भी केवल वही बची शेष सब मृत्यु के ग्रास बन गये।

१९६२ में वह छुट्टी बिताने की दृष्टि से जोरजिया गयी वहाँ जिस कमरे में वह रहती थी उस पर एक दिन पहाड़ की चट्टान ऊपर से गिरी तो उसमें ठहरे तीन अन्य यात्री मर गये। संयोग कि कैथोलिन उसी समय कमरे से बाहर चली गई थी।

यही नहीं टैक्सी से यात्रा करते समय एक अन्य मोटर से टक्कर हो जाने के कारण टैक्सी का ड्राइवर मर गया अन्य सभी यात्री घायल हो गये। परन्तु कैथोलिन इस बार भी पूर्ण सुरक्षित थी।

सन् १९६७ में एक दावत में मछलियाँ परोसी गई जिसमें कैथोलिन भी निमन्त्रित थी। जहरीली मछलियाँ खाने के कारण अस्पताल में सभी की मृत्यु हो गई भरपेट खाने के बाद भी कैथोलिन पर विष का कोई प्रभाव न था।

'इनक्रेडिबल कोइन्सीडेंस' में ऐलनवान ने एक घटना का उल्लेख किया है। प्रिंस एडवर्ड द्वीप के निवासी कोगलान की टैक्साज स्थित गालवैस्टन नामक स्थान पर १८९९ में एक यात्रा के दौरान मृत्यु हुयी। उसे वहाँ के मकबरे में शीशे की परतों से मढ़े ताबूत में दफना दिया गया। एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि सितम्बर १९०० में गालवैस्टन द्वीप में भीषण तूफान आया। तूफान के कारण कोगलान का ताबूत मकबरे से निकलकर बहता-बहता मैक्सीको की खाड़ी में जा पहुँचा। वहाँ से वह ताबूत फ्लोरिडा का चक्कर काटकर अटलांटिक महासागर में आ गया। फिर पानी का प्रवाह ताबूत को उत्तर की दिशा में ले गया। आठ वर्ष बाद अक्टूबर १९०८में प्रिंस एडवर्ड द्वीप के मछुओं ने तूफानी लहरों के बीच बड़े डिब्बे को तैरते देखा। उत्सुकता वश जब वे उसे किनारे लाये तब कोगलान का नाम अंकित देख तुरन्त पहचान गये। यह समुद्री किनारा कोगलान के गाँव से कुछ ही दूर पड़ता था। कोगलान के शव को उचित सम्मान के साथ उस गिरजे के कब्र स्थान में पुनः दफना दिया गया। **

माँ हमेशा अपने बच्चों को स्वावलम्बन की शिक्षा देती, उन्हें सुसंस्कारी बनाती है। एक बार लक्ष्मी जी स्वर्ग से धरती पर आईं और लोगों को इकट्ठा करके कहा—"मनचाहा धन माँग लो।" माँगने वालों की भीड़ जमा होने लगी।

धरती ने देवी के रूप में प्रकट होकर कहा—"बच्चो ! मुफ्त का धन न लो। उससे तुम बे मौत मरोगे।" पर किसी ने उनकी सुनी नहीं। वरदान माँगते और कोठे भरते गये। देने के उपरान्त लक्ष्मी जी लौट गईं।

जिन्हें धन मिला था। उन्होंने काम धन्धा बन्द कर दिया। गुलछर्रे उड़ाने लगे। कई वर्ष इसी प्रकार बीत गये। कोई खेत, कारखाने न गया। फलतः आवश्यक वस्तुएँ समाप्त होती गईं। दुर्भिक्ष खड़ा हो गया और लोग भूखों मरने लगे। यद्यपि सोना चाँदी सभी के कोठों में भरा पड़ा था।

धरती ने लम्बी साँस भरते हुए कहा—"मुफ्त के धन में अनेकों दुर्गुण जुड़े रहते हैं। परिश्रम की कमाई पर सन्तोष करते, तो मेरे बच्चों की आज ऐसी दुर्गति क्यों होती।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवी सत्ता चिरपुरातन है

डार्विन के विकासवाद में पृथ्वी का जन्म तथा उस पर छोटे जीवाणुओं के उपरान्त बड़े जीवधारियों की उत्पत्ति का वर्णन है। प्रायः इसी को सही माना जाता और उसी अनुमान को स्कूली पुस्तकों में प्रामाणिक बताया जाता है।

किन्तु नवीनतम खोजों से जो अकाट्य प्रमाण सामने आये हैं वे उन मान्यताओं को पूरी तरह उलट देते हैं। इनसे पता चलता है कि पृथ्वी अनुमान के विपरीत कहीं अधिक पुरानी है और जीवन की शुरुआत छोटे जीवाणुओं से नहीं वरन् सभ्य मानवों से होती है। उनके न केवल शरीर असाधारण रूप से बड़े-छोटे थे वरन् उन्हें विज्ञान की भी उच्चस्तरीय जानकारी थी। इसके ऐसे प्रमाण चिन्ह मिले हैं जिन्हें झुठलाया नहीं जा सकता।

इन्हीं शोध कथनों में भूतकालीन खण्ड प्रलयों और भावी अनिष्ट सम्भावनाओं का भी उल्लेख है।

मिस्र की नील घाटी की सभ्यता को १० हजार वर्ष ई० पूर्व पुराना बताया जाता है वहाँ के सबसे पहले सम्राट 'मीन्स ने अपने दक्षिणी मिस्र के राज्य में उत्तरी भाग को भी मिलाकर राज्य चलाया था। उसके काल की भोजपत्र पर अंकित नील-नदी की स्तुति आज भी लन्दन के अजायब घर में सुरक्षित है। चौबीस अक्षरों की वर्णमाला का आविष्कार वहाँ पहले-पहल हुआ था साथ ही लेखन सामग्री का उपयोग भी होने लगा था। मिस्र के पिरामिड जो आज भी रहस्य बने हुए हैं उसी काल के निर्मित बताये जाते हैं। इन पिरामिडों में गिजे का पिरामिड २३० मीटर की भुजा के वर्गाकार आधार पर विनिर्मित है जिसकी ऊँचाई १४७ मीटर है। कहा जाता है कि इस पिरामिड को १ लाख कारीगरों ने २० वर्षों में बनाया था। इस पिरामिड में नरसिंह (सिर तथा धड़) की मूर्ति पत्थर से बनी लगभग ४६ मीटर लम्बी और २१ मीटर ऊँची है।

कोणार्क का विशाल मन्दिर ४०० मीटर लम्बा था। उसके मुख्य कक्ष की लम्बाई ५२ मीटर और चौड़ाई १०३ मीटर थी। यह कक्ष १३६ खम्भों पर पाटा गया था। इसके १२ बीच के खम्भे तो २४-२४ मीटर ऊँचे थे जिनमें से प्रत्येक पर १०० व्यक्ति एक साथ खड़े हो सकते थे।

पश्चिम एशिया में दजला-फरात नदियों के किनारे के निप्पुर, बाबुल और उरनगर ई० पू० ५००० के आसपास बसाये गये थे। इनमें बाबुल का टावर विश्वविख्यात है।

वस्तुतः इन विलक्षण पिरामिडों की संरचना भारतीय कलाकारों ने ही की थी। जिसे कभी-कभी पिरामिड-बैल्ट के नाम से भी पुकारा जाता रहा है। यह बैल्ट मिश्र से मेसोपोटेमिया से लेकर यूरोप तक तथा अमेरिका से पूर्व (भारत) तक फैली हुई है। सुमेरिया (मिश्र) में बनी इस प्रकार की विलक्षण इमारतों में सूर्य पूजा का क्रम आज भी चलता है। लोगों में धार्मिक चेतना की जागृति का इसे केन्द्र कहा जा सकता है।

पश्चिम जर्मनी के एक भूगर्भ शास्त्री का कहना है कि पृथ्वी के बनने से पहले भी ब्रह्माण्ड में प्राणियों का अस्तित्व था। पृथ्वी को बने ३८० करोड़ से ४६० करोड़ वर्ष हो गये हैं।

जर्मन शोध सेवा के अनुसार जीबेंन विश्वविद्यालय के भूगर्भ शास्त्री प्रो हांस डीटरफलग का कहना है कि उन्हें ऐसे अवयवों के अवशेष मिले हैं जो मूलतः टूटे हुये तारों के खनिज ढाँचे में बन्द थे। इलैक्ट्रान माइक्रोस्कोप से देखने पर वे अवशेष वर्तमान जीवित अवयवों के समान ही पाये गये। हालांकि इनका आकार वर्तमान अवयवों का दसवाँ हिस्सा है।

प्रो० फलग का कहना है कि हालांकि वे सक्षम अवयव केवल एक कोशिका से बने हैं और उनमें कोई हड्डी नहीं है लेकिन वे चट्टानों में अरबों वर्ष तक जीवित रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। पश्चिम ग्रीनलैण्ड की इसुआ चट्टान में पाये गये सूक्ष्म अवशेषों से यह बात सिद्ध हुई है। यह चट्टान विश्व की सबसे पुरानी चट्टान मानी जाती है। प्रो० फलग का मत है कि अल्काओं का निर्माण भी उसी समय हुआ था जब सौरमण्डल का निर्माण शुरू हुआ था। लगभग सौ वर्ष पहले स्वीडन के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक स्वांटे अरहेनियस ने एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। जिसका प्रो० फलग भी समर्थन करते हैं। इस सौ वर्ष पुराने सिद्धान्त के अनुसार जीवन सबसे पहले बाहर अन्तरिक्ष में शुरू हुआ। शक्तिशाली जीवाणु अन्तरिक्ष से पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों पर गये जहाँ उनके लिये जीवित रहने की परिस्थितियाँ थीं। इस सिद्धान्त का अभी तक पूरी तरह से खण्डन नहीं हुआ है और न ही यह पूरी तरह से सही सिद्ध हुआ है।

मानव उत्पत्ति के बारे में विभिन्न प्रकार की लोक मान्यताएँ प्रचलित हैं। मानवी सभ्यता का विकास कब हुआ? इसके सम्बन्ध में भी विद्वानों के पृथक्-पृथक् अभिमत रहे हैं। कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी के उपकुलपति डा० जान लाइटफूट के अनुसार मानवी सभ्यता का विकास ईसा से ४००४ वर्ष पूर्व २३ अक्टूबर के प्रातः से आरम्भ होता है। उन्होंने उत्पत्ति का मूल कारण त्रैयक परमेश्वर (ट्रिनिटी) को ही समझा है। डा० लाइटफूट का कहना है कि तथ्यान्वेषण का सर्वप्रथम अनुसंधान प्रयास फिलिप हेनरी गूज ने १८५७ में किया। बाइबिल में वर्णित एडम और ईव की उत्पत्ति का भी यही समय है।

भारतीय धर्म ग्रन्थों की मान्यताओं के अनुसार अब तक भगवान् विष्णु नौ बार सृष्टि का उद्धार कर चुके हैं अर्थात् महाप्रलय से मुक्ति दिलाई है। दसवीं बार महाप्रलय की प्रतीक्षा में वे इस समय बैठे हुए हैं। प्राचीन काल में मैक्सीको के एक महान मनीषी टौल्टेक, जिनके नाम से टौल्टेक कलैण्डर परम्परा चल पड़ी, ने अपनी गणनाओं के आधार पर बताया कि अब तक तीन बार इस पृथ्वी को महाप्रलयों का सामना करना । सर्वप्रथम घटित होने वाली को 'वाटर सन' यानी पृथ्वी बाढ़ों के प्रकोपों से घुल गयी। दूसरा युग 'अर्थ सन' का था। जिसमें सृष्टि के विनाश का मुख्य कारण भूकम्पों का रहा। तीसरी बार होने वाली महाप्रलय को 'विंडसन' के नाम से पुकारा जाने लगा। यह अन्तरिक्षीय वायुमण्डल में तीव्रता के कारण हुई। जिस युग में हम लोग रह रहे हैं इसे 'फाइर सन' का चौथा युग कह सकते हैं। एटमिक (आणविक) जैसे युद्ध आयुधों की बढ़ती होड़ को देखकर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यह दुनिया शीघ्र ही जल भुनकर नष्ट हो जायगी। टौल्टेक ने इस महाप्रलय का मूल कारण सूर्य को ही माना है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन किया जाय तो पता चलता है कि अपने इस युग का आरम्भ वर्ष १४५३ अर्थात् कौनस्टैन्टीनोपल के पतन से होता है।

सुप्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ, इतिहासकार एवं मानचित्रकार प्रो० चार्ल्स हैपगुड ने 'मैप्स आफ दी ऐन्सीएन्ट सी किंग्स' में अतीत के रहस्यमयी प्रमाणों को प्रस्तुत करते हुए बताया है कि कोलम्बस ने अपने पूर्वजों द्वारा बनाये गये मानचित्रों के आधार पर ही अनेकानेक अज्ञात स्थानों की खोज करने में सफलता पायी है।

अंटार्टिका महाद्वीप के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। फ्रांस के एक शिक्षा शास्त्री फिलिप बुचे ने १७३७ में अन्टार्टिका की स्थिति को अपने मानचित्र में भली-भाँति प्रदर्शित कर दिखाया। उन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुये वर्ष १९४९ में स्वीडिस ब्रिटिश-नार्वेजियन अभियान चल पड़ा और ठीक वैसी ही स्थिति वहाँ देखने को मिली।

अन्तर्राष्ट्रीय भूभौतिकी वर्ष १९५८ बड़े धूमधाम के साथ मनाया और अंटार्टिका के बारे में बताया गया कि वहाँ पर बर्फ जैसी कोई चीज है नहीं। बुचे ने यही बात बहुत पहले प्रदर्शित कर रखी थी।

जर्मन के इन्जीनियर विलहेम कौनिग ने वर्ष १९३१ में बगदाद शहर के पुरातत्व संग्रहालय में रखे पाषाणों की जाँच-पड़ताल करने के उपरान्त बताया कि आज से १७०० वर्ष पूर्व सीवर प्रोजेक्स तथा इलैक्ट्रिक बैट्री का प्रयोग अवश्य रहा होगा। बैंजामिन फ्रैंकलिन ने इन्हीं प्रमाणों के आधार पर बिजली के प्रयोग की सार्थकता को सिद्ध कर दिखाया है।

भारतीय संस्कृति विश्वव्यापी है। ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध लेखक एवं अन्वेषक कर्नल फासेट के मतानुसार अमेजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी में एक रहस्यमयी इमारतों के अवशेषों को देखकर इसका अनुमान सुगमतापूर्वक लगाया जा सकता है। इस विशालकाय भवन के पत्थर रात्रि के समय में प्रकाश किरणों की भाँति चमकते हैं। कर्नल फासेट ने सन् १९२० में अपने शोध कार्यों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि इन अलौकिक दृश्यों में भारतीय धर्म और संस्कृति की झलक-झाँकी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

डा० मैरिया रीके ने वर्ष ५०० ए० डी० की ७ बर्डस लार्जेस्ट ऐस्ट्रानामी बुक' का बड़ी गहनता के साथ अध्ययन किया और तथ्यों को प्रकट करते हुये बताया है कि ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति को समझने के लिए अन्तरिक्ष यानों की उड़ानों का विज्ञान महाभारत काल में भी था। जिन्हें रथ और विमानों के नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है।

ऐतिहासिक घटनाओं में मात्र १० प्रतिशत से भी कम के प्रमाण अवशेषों के रूप में देखने को मिलते हैं। बेबीलॉन की पुस्तकों में ऐसे शिलालेखों का प्रदर्शन है जिन्हे देखकर कहा जा सकता है कि लोगों ने बिना किसी टेलिस्कोप की सहायता के शुक्र ग्रह की स्थिति का अनुमान लगाया। 'हार्न आफ वीनस' (शुक्र के सींग) का उल्लेख भी वहाँ के ग्रन्थों में देखने को मिलता है। इसी तरह की मान्यतायें उनकी तारागणों के बारे में रही है वे उन्हें देवी-देवता, जानवर तथा वीर योद्धाओं की उपमा देते चले आये हैं। महान वैज्ञानिक, समुद्री यात्री एवं अन्वेषक सर वाल्टर रैले ने वीनस के सम्बन्ध में जिन तथ्यों का उल्लेख 'विश्व का इतिहास' (१६१६) नामक पुस्तक में किया है उसी के आधार पर गैलीलिओ जैसे विश्व विख्यात वैज्ञानिक अपने अनुसंधान कार्य में सफल हुए।

ईसा से ५८५ वर्ष पूर्व २५ मई को एक ग्रीक वैज्ञानिक एवं खगोलज्ञ थेल्स को स्टीम पावर की खोज का श्रेय दिया जाता है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार हैरोडोटस के कथनानुसार सूर्य और चन्द्र ग्रहणों की पूर्व घोषणा करने की क्षमता भी थेल्स में थी।

महाग्रन्थों के लेखक होमर और वर्जिल का कहना है कि मंगल ग्रह जब अपना स्वरूप लाल ग्रहण कर लेता है तो उसे युद्ध का देवता कहते हैं। यानी युद्धों के होने की सम्भावनायें अधिक बढ़ जाती है। यह ग्रह अपने दो विशेष दूत भेजता है—(१) फोबोस (२) डमोस। जिन्हें भय और दंगे उत्पन्न करने की पूरी छूट मिली होती है।

गिजाह के ग्रेट पिरामिडों का निर्माण लगभग आज से ५००० वर्ष पूर्व का है। जो मिस्र के ७० पिरामिडों में से सबसे बड़ा समझा जाता है। ४५ मंजिल के इस पिरामिड में ढाई से बारह टन वजन के २५ लाख शिला खण्ड लगे हुए हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के शिला लेख देखने को मिले हैं जो हमारी संस्कृति की गरिमा को प्रदर्शित करते हैं।

पेरू में माकू पिक्कू नामक स्थान पर एक बिना छत का सूर्य मन्दिर है जो मौसम परिवर्तन के बारे में पूरी जानकारी प्रदान करता है। सूर्य किरणों की घट-बढ़ से यह सब कुछ ज्ञात होता है।

> **गणेश एवं कार्तिकेय जैसे अजेय देव पुरुषों, अवतार शक्तियों को जन्म देने वाली माँ पार्वती अपनी निष्ठा के बल पर, संकल्प शक्ति के कारण ही शिव का साथ पा सकीं। भगवत् सत्ता के सम्पर्क सान्निध्य से जो संस्कार वे इन अवतार सत्ताओं को दे पाईं उसमें उनका पुरुषार्थ कम नहीं, अधिक ही था। यह नारी का ही धैर्य एवं तप, सहने की शक्ति है जो असम्भव को भी सम्भव कर सकती है।**

आर्कमिडीज तथा ग्रीक गणितज्ञों ने पाई की आधुनिक कीमत ३.१४१६ पिरामिडों पर अंकित शिला लेखों के आधार पर ही निकाली। कहने का तात्पर्य है कि मिश्र की गणितीय प्रणाली इतनी स्पष्ट थी जो आज के वैज्ञानिकों को बिना आश्चर्य में डाले नहीं रह सकती। एक वर्ष में ३६५.२४० दिन होने की गणना पिरामिडों में अंकित है। इसे पिरामिडीकल इंच के नाम से भी जाना जाता है। पिरामिड की ऊँचाई का गुणा यदि १ करोड़ से कर दिया जाय तो सूर्य और पृथ्वी के मध्य की दूरी निकल आती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिकों के अनुसार पिरामिड का वजन ६ लाख टन है यदि इतनी संख्या का गुणा १ अरब से कर दिया जाय तो लगभग पृथ्वी का वजन निकल आता है।

गिजाह के पिरामिडों के स्तम्भ-चिन्हों को देखने से पता चलता है कि मिश्रवासी सूर्य की पूजा-उपासना में अत्यधिक रुचि लेते रहे होंगे। वहाँ के फारूह सम्राट को मरणोपरान्त 'सन बोट' में देवताओं द्वारा स्वर्ग में ले जाने के संकेत स्पष्ट परिलक्षित होते हैं।

पेरू अथवा बोलीबीया के मन्दिरों, किलों तथा राज-भवनों में पाये गये इंका के ध्वंसावशेषों से विभिन्न प्रकार के देवी-देवताओं की उपासना का विधि-विधान देखने को मिलता है। भूकम्पों की पूर्व सूचना भी इनके संकेतों के आधार पर होती है।

बोलीविया के टिआहूना के नामक स्थान पर सूर्य मन्दिर आज भी वैज्ञानिकों के लिए अनुसन्धान का विषय बना है। मन्दिर के दरवाजे पर मानवाकार की चौबीस प्रतिमायें प्रज्वलित मसाल लेकर खड़ी हैं। इनमें से कुछ प्रतिमायें मनुष्य जैसी आकृति तथा कुछ पक्षियों के सदृश दृष्टिगोचर होती हैं। 'स्वर्ग से देवागमन' की पौराणिक गाथाओं के अनुसार ये प्रतिमायें दैवीय सन्देशों को मानवी चेतना तक पहुँचाने का कार्य सम्पन्न करती हैं।

पिरामिडों में स्टोनहेंज के निर्माण की विलक्षणता को देखते हुये कहा जा सकता है कि उत्कृष्ट श्रेणी के लोगों का अस्तित्व ईसा से २००० वर्ष पूर्व भी रहा होगा। पृथ्वी और सूर्य की स्थिति में परिवर्तन का अनुमान 'हील स्टोन' पर फैली हुयी सूर्य किरणों से लगाया जा सकता है। 'हील स्टोन' पर सूर्य किरणें २१ जून को बिलकुल सीधी पड़ती हैं। ऋतु परिवर्तन इसी के आधार पर स्पष्ट देखा जा सकता है। ग्लासस्टोनबरी में जोडी एकल कलैण्डर एक विशालकाय पत्थर के ऊपर अंकित है जिससे ग्रह-नक्षत्रों एवं राशिचक्रों के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त होती है। ये सारी साक्षियाँ प्रमाणित करती हैं कि मानवी सत्ता सभ्यता का आदि स्रोत बहुत पुराना है। मानव श्रेष्ठ व सभ्य के रूप में ही धरती पर आया व विकसित हुआ है।

वस्तुत: ईश्वर के प्रति दृढ़-निष्ठा, उसके अनुशासनों को मानते हुए जीवन में परिवर्त्तन लाना ही सच्ची आस्तिकता है।

जरथुश्त्र बादशाह गुश्तास्प के दरबार में पहुँचे। उन्हें ईश्वर निष्ठ जीवन जीने का सन्देश दिया। राजा ने कहा—"मैं तो सामान्य ज्ञान रखता हूँ, यदि आप हमारे दरबार के विद्वानों का समाधान कर दें तो मैं आपके निर्देश पूरी तरह मानूँगा।"

जरथुस्त्र ने विद्वानों के कठिन से कठिन प्रश्नों के समाधान बड़े ढंग से तत्काल दिए। वे सभी अत्यन्त प्रभावित हुए। शहंशाह ने कहा—"आप धन्य हैं।" वस्तुत: ऐसे उत्तर परमात्म ज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति ही दे सकता है।

बादशाह ने उन्हें सम्मानित किया और कहा—"आप कोई चमत्कार दिखाय, हम सब आपके अनुयायी बनेंगे। जरथुस्त्र ने हाथ की पुस्तक दिखाते हुए कहा—यह अवस्ता (ईश्वरीय ज्ञान) ही सबसे बड़ा चमत्कार है, जो लाखों को नयी दृष्टि देता है। इसके अलावा लोगों की आँखों में चकाचौंध पैदा करने वाले किसी चमत्कार के लिए ईश्वरीय धर्म में कोई स्थान नहीं है। बादशाह अपनी बाल-बुद्धि के लिए क्षमा माँगी और शिष्यत्व ग्रहण किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय परम्परा और संगीत उपचार

जापान में संगीत की शिक्षा को एक अनिवार्य विषय बनाया गया है। वहाँ प्राथमिक शाला से लेकर हाईस्कूल शिक्षा तक के सभी विद्यार्थियों को अन्यान्य विषयों के साथ संगीत भी अनिवार्य रूप में लेना पड़ता है। वहाँ के शिक्षार्थी भारत की तरह नौकरी पाने के लिये नहीं पढ़ते वरन् व्यक्तित्व और प्रतिभा के धनी होने की दृष्टि से पढ़ते हैं। इन दोनों कार्यों में संगीत भी अन्य विषयों से कम कारगर नहीं होता। उससे मनोबल बढ़ता है। कलाकारिता से अभ्यस्त होने का उत्साह बढ़ता है। सामाजिक बनने तथा दूसरे के सामने अपनी अभिव्यक्तियाँ प्रकट करने का अवसर मिलता है। ऐसे-ऐसे अनेक लाभों की दृष्टि रखकर संगीत को इस प्रकार की प्रमुखता दी गई है। वह पारिवारिक जीवन का सर्वसुलभ और मोद मंगल भरा मनोरंजन है। थकन और उदासी उससे सहज ही दूर होती है। यदा-कदा पारस्परिक मनो-मालिन्य चल पड़े तो भी वह इन तरंगों में सहज ही उड़ जाता है। इस प्रकार वह वैयक्तिक और पारिवारिक दोनों ही जीवन प्रसंगों में अपनी उपयोगिता प्रामाणित करता है। व्यक्ति और परिवार से मिलकर ही समाज बनता है। संगीत व्यक्ति और परिवार को भी प्रभावित करे पर सामाजिक सत्प्रवृत्तियों की सहकारिता की—हँसी-खुशी की प्रवृत्ति को उभारने में योगदान न दे ऐसा हो ही नहीं सकता।

वह दिन दूर नहीं जब संगीत को शिक्षा क्षेत्रों में ऐच्छिक विषय न रहने देकर संसार भर में उसको अनिवार्य स्तर की मान्यता मिलेगी।

शिक्षा के उपरान्त चिकित्सा का विषय आता है। रोगी को कुछ क्षण मरहम पट्टी, सुई, सफाई भोजन आदि दैनिक कार्यों से कुछ ही घण्टे में निपट लेने के उपरान्त प्रायः सारे दिन बेकार पलंग पर पड़ा रहना पड़ता है। घर कुटुम्ब के लोग कुशल क्षेम पूछने के लिए जब तब ही आ सकते हैं। उन्हें भी तो अपने आजीविका उपार्जन, व्यवस्था, आदि के काम करने पड़ते हैं। मनोरंजन करने के लिए समय काटने के लिए हर घड़ी वे भी पास बैठे नहीं रह सकते। ऐसी दशा में अकेला पड़ा हुआ रोगी, शारीरिक दृष्टि से रोगी होने के कारण मानसिक दृष्टि से भी रोगी रहता है और पड़ा-पड़ा ऐसी कल्पना करता रहता है जो उसे बीमारी की तरह ही कष्ट देती और दुःखी करती है। परिचर्या के लिए ही अस्पताल के कर्मचारी उपलब्ध हो सकते हैं। एक रोगी के लिए एक परिचारिका का होना भी सुगम नहीं ऐसी दशा में सूनेपन की व्यथा से छुटकारा पाने के लिए सुगम सरल संगीत की अपनी उपयोगिता है। पर सूनेपन का अच्छा साथी बनकर इच्छित समय तक साथ रह सकता है। टेप रिकार्डर के माध्यम से अच्छे संगीत या उपयोगी परामर्श सुनते रहने के लिए यह व्यवस्था एक ऐसे मनोवैज्ञानिक डाक्टर का काम दे सकती है जो हर समय अपना काम छोड़कर हाजिर रह सकता है।

यों यह कार्य अच्छी पुस्तकों से भी हो सकता है। पर उतनी मात्रा में उपयोगी साहित्य भी कहाँ उपलब्ध होता है।

संगीत चिकित्सा अपने आप में एक श्रेष्ठ उपचार पद्धति है। सबसे बड़ी विशेषता उसकी यह है कि अन्य किसी उपचार प्रक्रिया में वह बाधक नहीं होता। जबकि अन्य चिकित्सा विधियों में यह सुविधा नहीं है। होम्योपैथी चिकित्सा के साथ ऐलोपैथी नहीं चल सकती। एक दूसरे की दवाओं को काटती है और एक का भी समुचित लाभ नहीं मिलता। पर यह दोष संगीत चिकित्सा में नहीं है उसका निर्वाह किसी भी पद्धति के साथ भली प्रकार हो सकता है।

स्नायु समूह को—प्राण विद्युत को प्रोत्साहित करना उसका प्रधान कार्य है। इस विद्या में जितना सम्भव हो सकता होगा उतना लाभ ही होगा। उसमें ऐन्टी बायो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिक्स जैसा कोई मारक गुण नहीं है जो किसी भी रोगी को किसी भी दृष्टि से कुछ भी हानि पहुँचावे। रोगी के लिए चित्त को प्रसन्न रखने के साधन अपने आप में रोग निवारक विशेषताएँ हैं। रोते या उदास मचलते बच्चे को जिस प्रकार अच्छे खिलौने देकर मूड बदला जा सकता है उसी प्रकार संगीत भी सबके लिए विशेषतया रोगी के लिए अच्छा मनोरंजन है। उसकी शर्त एक ही है कि वह उद्देश्य के अनुरूप ऊँचे स्तर का होना चाहिए। यह गुण प्रयत्न पूर्वक उत्पन्न करने पड़ते हैं वे बाजारू फिल्मी या दूसरे तरह के विछोह भर, शिकायत भरे, अश्लील संगीत में नहीं हो सकता। फिर बाजारू रिकार्ड गायन भरे होते हैं। जबकि चिकित्सा प्रयोजन के लिए स्नायु संस्थान में उपयोगी हलचलें उत्पन्न करने वाली ध्वनि तरंगों की ही आवश्यकता है। यह कार्य विशेषतया इसी प्रयोजन के लिए विचारपूर्वक विनिर्मित किये गये संगीत टेप ही सम्पन्न कर सकते हैं।

रोगों की भिन्नता के अनुरूप स्नायु संस्थान में गड़-बड़ियाँ भी भिन्न प्रकार की होती हैं। इसलिए हर रोगी के लिए उसकी स्थिति के अनुरूप दवा का चयन करने की ही तरह उसकी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए—संगीत को प्रभाव को ध्यान में रखते हुए ऐसा चुनाव करना पड़ता है जो रोगी की स्थिति के अनुरूप हो। सबके लिए जिस प्रकार एक दवा देने से काम नहीं चलता उसी प्रकार प्रत्येक रोगी को—बिना उसकी विशिष्ट स्थिति एवं आवश्यकता को समझे किसी भी संगीत को सुनने की छूट नहीं मिल सकती। ऐसी छूट मनोरंजन मात्र के लिए मिल सकती है चिकित्सा के लिए नहीं।

जिस प्रकार रसायन चिकित्सा के लिए रक्त, मूत्र आदि विभिन्न माध्यमों से रोगी की स्थिति का विश्लेषण के उपरान्त औषधि का निर्णय करना पड़ता है उसी प्रकार स्नायविक एवं नाड़ी संस्थान की वर्त्तमान स्थिति जानने के लिए इस प्रयोजन के लिए आवश्यक उपकरणों द्वारा जाँच पड़ताल करनी पड़ती है। रोग का इतिहास, एवं वर्त्तमान स्तर प्रश्नोत्तर प्रणाली से भी जाँचना पड़ता है। तभी यह स्पष्ट होता है कि शरीर के किस भेजे में कितनी निष्क्रियता छाई है और इसके लिए इतनी शक्ति का संगीत—कितनी देर—किस समय उपयोग में लाना ठीक पड़ेगा। निदान के बिना उपचार आरम्भ कर देना तो सब धान बाईस पसेरी के भाव बेचने की तरह है। उससे लाभ के साथ निराशा भी हाथ लग सकती है और हानि भी हो सकती है।

संगीत चिकित्सा का सांगोपांग स्वरूप वर्णन करना और उसके भेद उपभेदों का बताना इस छोटे लेख में सम्भव नहीं इसके लिए एक परीक्षित, और अनुकूल पद्धति के समस्त भेद उपभेदों का जानना—जनाना आवश्यक है। इसके लिए अगले दिनों ही एक उपयुक्त प्रक्रिया पाठकों के हाथ पहुँचेगी। यहाँ तो उसका संकेत भर जान लेना और पृष्ठभूमि समझ लेने से ही काम चल सकेंगे।

विदेशों में—विशेषकर अमेरिका में—इस प्रकार के संगीत अस्पतालों की स्थापना हुई है जो दूरस्थ रोगी की भी घर बैठे सेवा करते हैं। वे प्रश्नोत्तरों द्वारा रोगी की जाँच पड़ताल करते हैं और समाधान के हेतु अमुक संगीत श्रवण की सलाह देते हैं। वे टेप डाक में भेज दिये जाते हैं और उद्देश्य पूरा होने पर वापस मँगा लिये जाते हैं। ऐसे अस्पतालों की पृष्ठभूमि में ईसाई मिशनों का हाथ है जो अपनी लोकसेवा प्रवृत्ति, वैज्ञानिकता एवं ईसाई धर्म तत्वों की जन-जन के मन-मन में गहराई तक बिठाने के लिए प्रयत्नशील हैं। इसकी प्रगति समीक्षा पढ़ने से प्रतीत होता है कि वह योजना लोकप्रिय होने के साथ-साथ सफल भी सिद्ध हुई है। अन्य देशों में भी इस योजना का विस्तार हो रहा है और मानसिक रोगियों को विशेष रूप से लाभ हो रहा है। जो अस्पताल में दाखिल होने की स्थिति में नहीं पहुँचे हैं, मात्र सनकी और कुकल्पनाओं से ग्रस्त हैं वे परिवारी लोग अपने-अपने घरों पर इस योजना का विशेषतया लाभ उठा रहे हैं।

संगीत भारत का उत्पत्ति केन्द्र है। यहाँ के अधिकांश देवी देवता संगीत उपकरणों से सुसज्जित हैं। सामगान का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। विवाह जैसे उत्सव तो उस आयजोन के बिना सम्पन्न ही नहीं होते। लोक गीतों के रूप में हर सम्पन्न और पिछले क्षेत्र में अपने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ढंग से उसका प्रचलन है। देवी-देवताओं की अभ्यर्थना में संकीर्त्तन जैसे आयोजनों की व्यवस्था देश के कोने-कोने में होती है। भूत-प्रेत भगाने और साँप का विष उतारने में अपने-अपने ढंग के आयोजन सर्वत्र होते रहते हैं। अब आवश्यकता इस बात की है कि जन-मानस के विकास, लोक शिक्षण के अतिरिक्त इस प्रक्रिया का उपयोग शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य सम्वर्धन एवं रोग निवारण के निमित्त किया जाय। यह कार्य भारत की सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप भी है और व्यवहार में सरल भी। अथर्ववेद आयुर्विज्ञान का प्रधान ग्रन्थ है। उसकी समस्त संरचना छन्द विद्या के अनुरूप हुई है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि उन मन्त्रों का अर्थ ही रोग निवारण शिक्षाओं से परिपूर्ण हो ऐसी बात नहीं है। रहस्य यह भी है कि उनका उच्चारण यदि सामवेदीय परम्परा के अनुरूप गायन क्रम से हो तो उसका असाधारण लाभ मिल सकता है। मन्त्रों के पाठ, जप परम्परा ही नहीं है उनका विधिवत् गायन भी होगा और साथ में वादन का भी संयोग रहता है। यज्ञ कृत्यों में एक अधिकारी उद्‌गाता भी होता है जिसका उत्तरदायित्व वेद मन्त्रों की प्रक्रिया में गायन विद्या का उपयोग त्रुटिपूर्ण न रहने पाये।

इस सुविस्तृत विज्ञान में विलम्ब लगता दृष्टिगोचर हो तो एकाकी वेदमाता गायत्री का उपयोग समस्त शारीरिक मानसिक उपचारों के निमित्त हो सकता है। अन्तर इतना ही है कि उसके साथ उपयुक्त वादन विधियों का भी समावेश हो। उच्चारण मानसिक हो सकता है। रोगी को मन ही मन वेदमाता का ध्यान और मानसिक जप करने में किसी प्रकार के प्रतिबन्धों जैसी कोई बात नहीं है।

ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान हरिद्वार की यह शोध प्रक्रिया कई वर्ष से चल रही है कि किस शारीरिक और किस मानसिक रोग में गायत्री मन्त्र को किस राग रागिनी में ढाल जाय तो संगीतकारों के भी अनुकूल हो और साम विद्या के अनुरूप भी वह प्रयोग लम्बे समय से चलने के उपरान्त अब उस स्थिति में आ गया है कि उसे सार्वजनिक प्रयोग के लिए प्रस्तुत किया जा सके।

शान्ति-कुञ्ज में असाध्य कष्टसाध्य और छूत के रोगियों के लिए तो व्यवस्था नहीं बन पाई है जिनके लिए अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता पड़े या दूसरों को छूत लगने का भय हो तथा आश्रमवासियों को असुविधा हो पर जो सामान्य शारीरिक मानसिक कठिनाइयों से ग्रसित हों वे भारतीय स्तर की संगीत चिकित्सा का लाभ उठा सकते हैं। जिनके पास अपने टेप रिकार्डरों का प्रबन्ध है तो यहाँ से रोग विशेष के अनुरूप टेप मँगा सकते हैं।

आशा की जानी चाहिए कि भगवान शिव के डमरू, कृष्ण की वंशी, सरस्वती की वीणा और नारद के इकतारे में निस्तृत संगीत विद्या आज की स्थिति में भावनात्मक उत्कर्ष और शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य के सम्वर्धन में महत्वपूर्ण योगदान दे सकने में समर्थ होगी।

उन दिनों अपहरण और बलात्कार का माहौल था। नारी का सम्मान उठाकर ताक पर रख दिया गया था। शासक वर्ग के लोग किसी की बहिन बेटी की बेइज्जत करते रहते थे। इसका रोष और प्रतिशोध भी हिन्दू समाज में छाया था।

उन दिनों किसी आतंकवादी शासक परिवार की एक सुन्दरी सैनिकों के हाथ पड़ गई। लाकर सम्राट शिवाजी के सम्मुख प्रस्तुत की गई कि उसे रनिवास में डाल लें।

शिवाजी ने उसे देखा और रूप की सराहना करते हुए कहा—"मेरी माता यदि इतनी ही सुन्दर होती तो मैं भी वैसा ही रहा होता।" युवती के कृतज्ञता व्यक्त करने पर शिवाजी ने कहा—"मैंने कुछ नहीं किया, पुरुषों की अनीति का प्रायश्चित्त करने का प्रयास मात्र किया है।" उस युवती को शिवाजी ने आदर पूर्वक उसके घर वापस पहुँचा देने की तत्काल व्यवस्था करदी।

शिवाजी की चरित्र निष्ठा स प्रभावित दुर्गा ने उन्हें अमोघ तलवार 'भवानी' प्रदान की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम सन्तान

कहते हैं कि पहली बार और प्रथम सन्तान बड़ी प्रतिभाशाली,और वीरता पूर्ण कार्य करने वाली होती है। इसके प्रतिपादनों से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं और अनेकों उदाहरण हमारे समक्ष हैं।

मुहम्मद अली, संसार का सर्वश्रेष्ठ हैवीवेट और बाक्सिग में चैम्पियन हुआ, क्योंकि वह अपने माता-पिता से प्रथम जन्म लेने वाला बालक था। नादिया कामन्सी नाम की महिला विश्व प्रसिद्ध हुई और अनुपम कला की प्राप्ति की। धन के क्षेत्र में एक ऐसा व्यक्ति जिसने स्वयं श्रम किया, अपनी सूझ-बूझ से करोड़पति बना। और बीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा विद्रोही पेन्टर जिसका नाम 'पापलोपिकासो' था उसने भी विश्व में ख्याति प्राप्त की तथा भारत की जानी पहचानी महिला जो राजनीति और शासन में विश्व के मूर्धन्यों में गिनी जाती है उनका नाम इन्द्रा गाँधी है इन उदाहरणों के अन्तराल में केवल एक ही प्रामाणिकता मिलती है कि वे सभी अपने माँ-बाप की प्रथम सन्तानें थीं।

इस सम्बन्ध में कुछ वर्ष पूर्व श्री विलियम आल्पस ने बड़ा गहन अध्ययन किया, कि बच्चों के जन्म, उनका वातावरण और माता-पिता की अभिरुचियाँ कैसी रहीं और प्रथम बार जन्म लेने पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है।

उनका कहना है कि पैतृक गुण और संस्कारवान वातावरण इन पर बहुत प्रभाव डालता है। माता-पिता का जैसा भाव और जीवनचर्या होती है वह बालक में परिलक्षित होती है। जैसे इन्द्रागाँधी का जन्म एक बहुत सभ्य और बहुत अच्छे वातावरण में हुआ। उनके पिता विद्वान थे अतः इस सबका प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा।

'आलफ्रेड एडलर' एक मनोवैज्ञानिक थे। १९६४ में उन्होंने एक टैस्ट आइक्यू के आधार पर किया। यू० एस० ए० राष्ट्रीय प्रतिभा छात्रवृत्ति की ओर से एक परीक्षा हुई जिसमें बहुत से लोग परीक्षा में बैठे पर ६६% बालक उन परिवारों के थे जो अपने माता-पिता की पहली सन्तानें थीं। ५२% और ५६% प्रतिशत में वे परिवार वे सन्तानें आती हैं जिनके दो-दो और तीन-तीन बच्चे हुये। मनोवैज्ञानिक इसको इनेट इन्टैलीजेन्स जन्मजात प्रतिभा के नाम से पुकारते हैं। उनका कहना है कि इस परीक्षा में भी वे ही बालक आये जो अपनी माता-पिता से पहली सन्तान कहलाये।

रोबर्ट क्लाइव बड़ा प्रतिभाशाली व्यापारी था, यद्यपि वह अपने आप में इतना प्रसिद्ध नहीं था पर दूसरों को बड़ा बना देने की उसमें अद्वतीय प्रतिभा थी। इसके अतिरिक्त एकऐसी प्रतिभाशाली महिला जिसके नीचे नी बहिनें थीं पर वह सबसे पहली लड़की होने के कारण बड़े अदम्य उत्साह और निर्भीकता की प्रतीक रही। इसने महिलाओं के अधिकारों के लिये एक संगठन बनाया जिसका नाम सफराजेट्स था और यह महिला बहुत प्रसिद्ध हुई जिसको "इम्मेलाइन पक्खुरस्ट" कहते हैं।

इसके अतिरिक्त माओत्सेतुंग अपने परिवार में सबसे पहली सन्तान थे जो बहुत बड़े दार्शनिक, दूरदर्शी और अच्छे शासक सिद्ध हुये, तथ इसके अतिरिक्त सर फैड्रिक बाकर के निर्माण कर्त्ता और मालिक थे, केवल १० वर्ष की उम्र में एक रेडियो का निर्माण किया और मात्र १२ वर्ष की उम्र में एक कार को बनाकर खड़ा कर दिया था। इस प्रकार बर्ट्रेंड रसैल एक बहुत बड़े दार्शनिक गणितज्ञ और प्रतिभाशाली पुरुष हुये। मनोविज्ञान के क्षेत्र में सिगमण्ड फ्रायड बीसवीं शताब्दी के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक हुये तथा माइकेल फाराडे बिजली का आविष्कारक था ये सभी प्रतिभाशाली पुरुष—प्रथम जन्म लेने वाले थे। इससे सिद्ध होता है कि माता-पिता की प्रथम सन्तान वातावरण और पैतृक गुणों के अनुसार श्रेष्ठ बनती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिखा सूत्र- हिन्दू संस्कृति के प्रतीक चिन्ह

रेलवे आदि सरकारी महकमों के कर्मचारियों की अलग-अलग पोशाकें होती हैं। मिलिट्री वालों की ड्रेस अलग होती है। पोस्टमैन, सफाई कर्मचारी, नर्सें आदि को अपनी-अपनी निर्धारित पोशाकें पहननी पड़ती हैं। धर्म सम्प्रदाय वाले भी ऐसे ही पहचान चिन्ह रखते हैं सिक्खों की पगड़ी और दाढ़ी उनकी अलग-अलग पहचान कराती है। अरबों और चीनियों की पोशाक में अन्तर होता है। स्कूलों के बच्चे तक अपनी-अपनी निर्धारित पोशाक पहनकर पढ़ने जाते हैं ताकि उनके स्कूल सम्बन्धी जानकारी सहज ही उपलब्ध हो सके।

हिन्दू धर्मानुयायियों की दो विशिष्ट पहचान हैं एक शिखा दूसरा सूत्र। सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत। पुलिस के सिपाहियों की पेटी और टोपी उनकी हैसियत प्रकट करती हैं उसी प्रकार शिखा, सूत्र, के दो प्रतीकों को देखकर पहचाना जा सकता है कि वे हिन्दू धर्मानुयायी हैं क्या?

मध्यकाल में एक ऐसा अन्धकार युग भी आया था जिसमें सती प्रथा, बाल-विवाह आदि मजबूरियाँ पनपीं। उन्हीं दिनों जाति-पाँति के आधार पर ऊँच-नीच की प्रथा पनपी और इसके लिए प्रतीकों के धारण पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। शूद्र वर्ण वाले जनेऊ न पहने ब्राह्मण ही पहने। अधिक से अधिक कोई क्षत्रिय वैश्य भी उसे मन-मर्जी हो तो पहन लें। स्त्रियों पर भी शूद्रों की तरह यज्ञादि कार्यों में भाग न लेने गायत्री जप करने आदि का प्रतिबन्ध लग गया। स्त्रियों के चेहरे पर तो पर्दे का नकाब तक लगा दिया गया। देवताओं के आगे पशुबलि, बहु विवाह जैसी कुप्रथाएँ उसी काल के ध्वंसावशेष हैं जो कहीं-कहीं पिछड़े क्षेत्रों में अभी भी देखा जा सकता है। अच्छा ही हुआ कि प्रगतिशीलता और मानवी अधिकारों के उठते माहौल से अवांछनीयताओं में से बहुतों को तोड़-मरोड़कर फेंक दिया। अब दास दासी भी नहीं बिकते।

शिखा, सूत्र न केवल हिन्दू धर्म का प्रतीक चिन्ह हैं वरन् वह उद्देश्यों और आदर्शों का भी प्रतिनिधित्व करता है। हिन्दू मान्यता है कि जन्म से सभी पशु स्तर के होते हैं और उनमें भी स्वार्थ की, ईर्षा की, युद्ध की अनेकों पिछड़ी आदतें पाई जाती हैं। बड़े होने पर उन्हें मानवी सभ्यता से परिचित और अभ्यस्त कराया जाता है। नवजात शिशु नंग धड़ंग पैदा होता है पर वह स्थिति आगे नहीं रहने दी जाती। उसे कपड़ा पहनना सिखाया जाता है। सर्दी-गर्मी से बचने के लिए ही नहीं मानवी सभ्यता के प्रतीक रूप में भी। जो नहीं पहनते उन्हें आदिम कालीन या आदिवासी कहा जाता है। अफ्रीका में अभी भी बहुत से ऐसे इलाके हैं जहाँ नर ही नहीं नारियाँ भी किसी तरह की पोशाक नहीं पहनतीं।

शिखा और सूत्र को द्विजत्व अपनाने, मानवी सभ्यता को स्वीकार करने के रूप में धारण कराया जाता है। मुण्डन संस्कार सभी जातियों में प्रचलित है। इसे वस्तुतः शिखा की स्थापना का हर्षोत्सव कहा जाता है। यह मस्तिष्क के ऊपर शालीनता का ध्वज लहराने के समान है। राष्ट्रीय ध्वज, देश भक्ति का प्रतीक है। प्रायः सभी राजधानियों में उसके मुख्य भवन पर राष्ट्रीय झण्डा फहराता है। ठीक उसी प्रकार मस्तिष्क रूपी किले के ऊपर मानवी गरिमा को स्वीकारने और कार्यान्वित करने का उद्देश्य सदा ध्यान रखने के निमित्त शिखा सिखाने का नियम है। वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रह्मरन्ध्र उच्च लोकों से सत्प्रवृत्तियों को आकर्षित करने और ग्रहण करने का ध्रुव केन्द्र माना गया है और कहा गया है कि शिर के बाल कटवाना, विशेषतया ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर शिखा रूप आच्छादन बनाये रहना तो सद्बुद्धि सम्पादन के एक परोक्ष उपचार हैं। नारियाँ लम्बे बाल रखाती हैं। पुरुष छोटे। पर ब्रह्मरन्ध्र की विशेषता को ध्यान में रखते हुए चोटी की तो अनिवार्यता समझी गई है।

मन्दिरों के शिखर पर ध्वजा फहराई जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वतों और टीलों के ऊपर देवियों के मन्दिर बनते हैं। मस्तिष्क रूपी शिखर देवालय पर शिखा को धर्म ध्वजा के रूप में फहराने का प्रचलन है।

देवालय आमतौर से छोटे-बड़े मन्दिरों के रूप में बनते हैं पर असमर्थ लोगों के लिए सस्ता तरीका यह निकाल दिया गया है कि एक छोटी चबूतरी बनाकर उस पर नदी का कोई गोल पत्थर जमा दिया जाता है। वह खुले में रहता है और एक लौटा जल चढ़ा देने भर से उसकी पूजा हो जाती है। शिर को एक चबूतरा और शिखा को देव प्रतिमा मानकर मस्तिष्क को एक देवालय माना गया है। ऐसा देवालय जिसमें कुविचारों के प्रवेश को निषिद्ध ठहराया जाय।

यज्ञोपवीत गायत्री मन्त्र का सूत्र सिद्धान्त है। यों देखने में वह एक धागा है पर उसके नौ धागे नौ सद्‌गुणों के प्रतीक हैं। इन गुणों को धारण किये रहने में ही मनुष्यता की गरिमा अक्षुण्ण रखी जा सकती है। इस तथ्य का स्मरण दिलाने के लिए यज्ञोपवीत पहना जाता है।

सभी धर्म सम्प्रदायों का एक विशिष्ट मन्त्र होता है। हिन्दू धर्म के तत्वावधान एवं आदर्शों के प्रचलन का रहस्य गायत्री मन्त्र में समाहित है। उसे गुरु मन्त्र कहा जाता है। प्राचीन काल में पाठशाला प्रवेश करने वाले हर विद्यार्थी को अध्यापक लोग छात्रों को इसी मन्त्र की दीक्षा देते थे और समझाते थे कि अध्ययन के आधार पर जिस ज्ञान की उपलब्धि हो उसे उत्कृष्टता, आदर्शवादिता और लोकसेवा के त्रिविधि प्रयोजनों में लगाया जाना चाहिए। यही गायत्री मन्त्र के तीन चरणों की शिक्षा है। और यही यज्ञोपवीत की गायत्री के प्रतीक रूप में धारण करने का उद्‌देश्य। नौ धागे—नौ शब्द—तीन जीवन की दिशा धाराएँ उदात्त जीवन का अवलम्बन। इसी को तीन व्याहृतियाँ या जनेऊ की तीन गाँठें कहा जाता है। इसे उपनयन, यज्ञोपवीत, ब्रह्म सूत्र आदि नामों से सम्मान पूर्वक पुकारा जाता है। यह सम्मान प्रकारान्तर में गायत्री मन्त्र का है।

उसे इस प्रकार पहना जाता है कि कन्धे पर, हृदय पर, कलेजे पर, पीठ पर, वह भली प्रकार लिपटा रहे। यही चार अवयव शरीर में सर्वोपरि महत्व के माने जाते हैं इसलिए इन सबको जनेऊ से कह दिया जाता है कि इन अवयवों में जो समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी की सत्प्रवृत्तियाँ हैं वे कभी विलग न होने पायें।

शास्त्रकारों ने इनका महत्व और रहस्य बताते हुए बहुत कुछ कहा है। इसमें से कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं—

यज्ञोपवीत में तीन तार हैं गायत्री में तीन चरण हैं। 'तत्सवितुर्वरेण्यं' प्रथम चरण, 'भर्गो देवस्य धीमहि' द्वितीय चरण और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' तृतीय चरण है। तीनों का तात्पर्य है, इनमें क्या सन्देश निहित है, यह बात समझनी हो तो गायत्री के इन तीन चरणों को भली प्रकार जान लेना चाहिए।

ऋग्वेद में कहा गया है—

त्रिरस्यता परमा संति सत्या स्पार्हा,
देवस्य जनिमान्यग्नेः।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुरियः,
शुक्तो अरयौरोरुचातः॥
(४।७।११)

इस उपवीत के तीनों सार महान हैं। उससे सत्य, तेजस्वी और पवित्र व्यवहार को ग्रहण करो। इसके मध्य में (ब्रह्मग्रन्थि में) अनन्त परमात्मा की तेजस्विता शुचिता श्रेष्ठता सन्निहित है। यह यज्ञोपवीत धारण कर्त्ता को प्राप्त होती है।

देवतास्तत्र वक्ष्यामि आनुपूवण याः स्मृताः।
ओंकारः प्रथमे तन्तौ द्वितीयेऽग्निस्तथैव च।
तृतीय नागादैवत्यं चतुर्थे सोमदेवता।
पञ्मे पितृदैवत्यं षष्ठे चैव प्रजापतिः।
सप्तमे मारुतश्चैव अष्टमे सूर्य एव च।
सर्वे देवास्तु नवम इत्येतास्तन्तु देवता।

—सामवेदीय छान्दोग्य सूत्र (परिशिष्ट)

अर्थात्—यज्ञोपवीत के नौ सूत्रों में ९ देवता वास करते हैं (१) ओंकार-ब्रह्म (२) अग्नि-तेज (३) अनन्त-धैर्य (४) चन्द्र-शीतल-प्रकाश (५) पितृगण स्नेह (६) प्रजापति-प्रजापालन (७) वायु-स्वच्छता (८) सूर्य-प्रताप (९) सब देवता-समदर्शन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महायुद्ध की तैयारियाँ समय रहते रुक जाँय

आँखों की दृश्य शक्ति पर कौन अविश्वास करेगा ? और जो दीख पड़ता है उसे असत्य कैसे कहा जाय ? किन्तु बात यह भी नहीं है कि जो आँखों से दीख पड़ता है सब कुछ उतने तक ही सीमित है। यदि ऐसा ही रहा होता तो माइक्रोस्कोप से दीख पड़ने वाले छोटे घटकों—और टैलिस्कोप से दृष्टिगोचर होने वाले दूरस्थ दृश्यों को मान्यता कैसे मिलती।

मनुष्य समझदार प्राणी है। वह वर्त्तमान के समीकरणों के अनुरूप जो कुछ भी है उसी के आधार पर अनुमान लगाता है और भविष्य को तद्‌नुरूप घटित होने की आशा लगाता है। इस बौद्धिक परिपाटी को अनुपयुक्त भी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि संसार के प्रायः समस्त कार्य इसी आधार पर सम्पन्न होते हैं फिर भी एक तथ्य अपनी जगह पर बना ही रहता है कि कोई अदृश्य शक्ति अपनी मर्जी भी कम नहीं चलाती और मनुष्य के परिश्रम के निष्कर्ष में झुठलाने से भी रुकती नहीं। कई बार प्रवीण किसानों की फसल भी पाला, सूखा, टिड्डी आदि कारणों से चौपट होते देखी गई है और कई बार अन्धे के हाथ बटेर लगते भी। कइयों को उत्तराधिकार में अनायास ही प्रचुर सम्पदा हाथ लग जाती है और कई बिना परिश्रम किये लाटरी खुलने जैसे लाभ उठाते देखे गये हैं। यह अदृश्य के अनुदान हैं। इस सम्भावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता। यह भवितव्यता है, जिसे कई बार प्रत्यक्षवादी निष्कर्षों को उलट जाते भी देखा गया है। नावें डूब जाती हैं और आत्महत्या के लिए पानी में डूबने वाले भी किनारे पर जा लगते हैं और ईश्वर की इच्छा के अनुरूप इस आचरण के उपरान्त भी लम्बे समय तक जीते हैं। इन बुद्धि क्षेत्र को चुनौती देने वाली घटनाओं के अस्तित्व से सदा इनकार नहीं ही किया जा सकता।

इन पंक्तियों में आज की परिस्थितियों के सन्दर्भ में चर्चा की जा रही है और जो कार्य करने की संगति मिलाते हुए प्रतिफल प्रतीत होता है उसके सही गलत होने के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा रहा है। ऐसा प्रकाश जिसके पीछे महत्वपूर्ण अनुभूतियाँ काम करती हैं और जिन्हें किसी सशक्त संकेतों पर अवलम्बित कहा जा सकता है। इन पंक्तियों का लेखक जिन महत्वपूर्ण प्रकाश को प्रस्तुत कर रहा है उसे उसका व्यक्तिगत अनुमान आग्रह न माना जाय तो अधिक उपयुक्त है। यह प्रतिपादन ऐसा भी है जिस पर विश्वास करने वाला समय आने पर यह अनुभव न करेगा कि हमें व्यर्थ ही फुसलाया और डराया गया। हमें अदृश्य के साथ सम्बन्ध जोड़कर काम करते हुए प्रायः पूरा जीवन बीत गया। इतने समय में जो संकेत मिलते रहे हैं वे हमारे व्यक्तिगत जीवन में अक्षरशः सही घटते रहे हैं। दूसरों के या सार्वजनिक प्रसंगों के सम्बन्ध में भी सम्भावनाएँ विदित होती रही हैं पर उन्हें प्रकट करने पर प्रतिबन्ध रहने के कारण भविष्य कथन जैसा कभी कुछ किया नहीं गया। यह प्रथम अवसर है जिनका व्यक्ति विशेष से नहीं जन-साधारण से सीधा सम्बन्ध है। यह कथन स्वेच्छापूर्वक प्रकट करने का कोई मन भी नहीं था पर सार्वजनिक हित में इसे प्रकट करने के लिए उकसाये जाने पर ही ऐसा कुछ करने का साहस सँजोया गया है जिसका निकटवर्ती भवितव्यता और समूचे विश्व के लिए विचारणीय प्रसंग है।

यहाँ सर्वप्रथम राजनैतिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में चर्चा की जा रही है। देशों के भीतर होती रहने वाली उथल-पुथल के सम्बन्ध में नहीं वरन् समूचे विश्व के समान रूप से प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के सम्बन्ध में कुछ ऐसा कहा जा रहा है जिस पर मात्र विचार ही नहीं किया जाना चाहिए वरन् यह भी मानकर चलना चाहिए कि प्रस्तुत कथन सही निकला तो किसे अपना क्या कर्त्तव्य निर्धारित करना चाहिए।

इन दिनों राजनीति के प्रसंग में सबसे प्रमुख चर्चा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय विश्व युद्ध की है। प्रमाणों से प्रत्यक्ष है उसमें तीर तलवारों का नहीं अणु आयुधों का—विषैली गैसों का और मारक किरणों का प्रयोग होगा। यदि ऐसा हुआ तो पक्ष और विपक्ष दो समान रूप से हारेंगे ही साथ ही यह पृथ्वी भी प्राणियों के जीवित रहने योग्य नहीं रहेगी। ऐसे सर्वनाश के उपरान्त किसका क्या प्रयोजन सिद्ध होगा। ऐसे कदम तो उन्मादी ही उठा सकते हैं। हमें सोचना होगा कि मनुष्य विज्ञान और कूटनीति में कितना ही आगे क्यों न बढ़ गया हो, ऐसे आत्मघाती कदम उठाने से पूर्व हजार बार सोचेगा और ऐसा न करेगा कि जिसमें विपक्ष के साथ-साथ अपना अस्तित्व भी सदा सर्वदा के लिए समाप्त हो जाय।

एक कूटनीतिक अनुमान यह है कि जापान की तरह अणु शक्ति का सीमित प्रहार करके विपक्ष को घुटने टेकने के लिए विवश किया जाय और अपनी वरिष्ठता की छाप छोड़ कर उससे मनमाना लाभ उठाया जाय? समझा जाना चाहिए कि जापान वाली घटना की अब पुनरावृत्ति हो सकना कठिन है। तब एक ही आक्रमणकारी शक्ति थी जो अस्त्र थे वे एक के ही हाथ में थे। अब वे इतने अधिक देशों के पास इतनी अधिक मात्रा में हैं कि सिलसिला आरम्भ होते ही उसकी शृंखला चल पड़ेगी और फिर मूँछ नीची करने की अपेक्षा मिट जाने या मिटा देने की अधीरता अहन्ता पूरे जोश खरोश भरे प्रतिशोध के साथ चल पड़ेगी। अब सीमित युद्ध नाम की कोई सम्भावना नहीं रही। अब सर्वनाश या सहजीवन इन दो के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है। अब आकाश-पाताल में यकायक झपट्टा मारने और शिकार को पंजों में दाब कर उड़ने की सम्भावना भी नहीं रही और न समुद्र के गर्भ में अग्नि बाण छोड़े जा सकते हैं। अस्त्र भण्डारों से भी बढ़कर अब गुप्तचरों के जाल बिछे हुए हैं। किसी योजना को आकस्मिक कार्यान्वित कर बैठने और सामने वाले को पता न चलने देने अथवा सभी गुप्त प्रकट प्रहार क्षेत्रों को काबू में कर लेने की बात भी नहीं बनने वाली।

आतंक का सबसे बड़ा कारण है भय और अविश्वास। सामने वाले को आक्रमणकारी मानकर अपनी सुरक्षा की दुहाई देते हुए अस्त्र भण्डार बढ़ाने और युद्ध के लिए उपयुक्त क्षेत्र ढूँढ़ने के कुचक्र में आज के राजनेता उलझकर रह गये हैं। किन्तु इस कल्पना में अत्युक्ति की भरमार है। हर कोई अपनी सुरक्षा चाहता है किन्तु आज की स्थिति में वह आशंकाओं का निवारण करने वाले उपाय अपनाकर ही कार्यान्वित किये जा सकते हैं। वास्तविकता यह है सामने वाले को डराने के लिए ही धमकी के रूप में यह आतंक गढ़ा जा रहा है। किसी के मन में भी मिटने या मिटाने का निश्चय नहीं है। यह तब होता जब स्वयं सुरक्षित रह सकने की कोई गुन्जायश रही होती। जो ऐसी कल्पना करता है वह वस्तुस्थिति से अपरिचित रह रहा है। यथार्थता यह है कि ऐसे वीभत्स रचने का कलंक कोई अपने सिर पर लेना नहीं चाहता। दूसरे की ओर से आक्रमण दिखाकर स्वयं चढ़ बैठने जैसा भी छद्म नहीं चल सकता है। ऐसी कल्पनाएँ सभी के मस्तिष्क में उठती और बबूले की तरह फूटती रहती हैं।

> ईश्वर एक है—कर्मफल। भले ही उसके नाम रूप अनेक हों। धर्म एक है—मानवी कर्त्तव्यों का निर्वाह। भले ही उसे किन्हीं शास्त्रों द्वारा समझा जाय।
>
> ★

कोई इस निश्चय पर नहीं पहुँच पाता कि ऐसी किसी दुर्नीति को अपनाकर विजय प्राप्त की जा सकी है।

सचाई यह है दोनों पक्ष ही डर रहे हैं और दोनों ही शान्ति चाहते हैं। इस वास्तविकता पर दैवी तत्वों की साक्षी स्वीकार की जा सकती है। हमारा पूरे साहस के साथ कथन है कि एक अधिक ईमानदार और साहसी पक्ष को अपनी ओर से एक पक्षीय पहल करनी चाहिए। दोनों की सहमति की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह तब तक सम्भव नहीं जब तक कि कोई एक बिना शर्त की पहल करने को तैयार न हो। ऐसा हो सका तो दूसरे पक्ष को झक मारकर झुकना पड़ेगा। विश्व शान्ति को अकारण नष्ट करने का साहस करेगा वह अपने मित्रों को भी शत्रु बना लेगा और छद्म के सहारे देर तक जीवित न रह सकेगा।

जापान पर एक पक्षीय अणु प्रहार होने का परिणाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह हुआ कि संसार भर की सहानुभूति उस पीड़ित के साथ हो गई। न्याय बचाने के लिए उसे स्वतन्त्र भी करना पड़ा और ऐसा समझौता जो सस्ते में नहीं हो गया। जिस दिन आइन्स्टीन ने जापान पर अणु बम गिरने का समाचार सुना उसी दिन से वे अत्यन्त दुःखी और गम्भीर देखे गये। विज्ञान क्षेत्र को नमस्कार कर दिया। वायलिन बजाया और नाव में घूमकर दिल बहलाया करते थे। अधिक बीमार पड़ने पर डाक्टरों की एक छोटा आपरेशन करने की बात को भी अस्वीकार कर दिया और जल्दी शरीर छूटने की कामना की। मरते समय उनने कड़ी हिदायत की कि उनका कोई स्मारक न बनाया जाय। यह प्रकारान्तर से विजेता पक्ष की हार है।

आगे भी लोकमत जीवित रहेगा। सृष्टा का लम्बा हाथ कार्यरत रहेगा। जो शान्ति के साथ—विश्व के मानव समुदाय के साथ खिलवाड़ करेगा वह चैन से न बैठ सकेगा और न विजय के लाभ से लाभान्वित हो सकेगा। जीत उसकी होगी, सराहनीय भी वही होगा जो अपनी ओर से कदम बढ़ाकर—सुरक्षा की चिन्ता किये बिना इस विभीषिका को निरस्त करेगा और शान्ति का पक्षधर होने की बात कथनी से नहीं करनी में सिद्ध करेगा। जो भी बहादुर हो—जो भी विवेकशील हो उसे सामने वाले की प्रतीक्षा किये बिना एकाकी पहल का शुभारम्भ करना चाहिए। जो करेगा वह घाटे में न रहने पाये इसकी जिम्मेदारी महाकाल ने ली है।

मात्र राजनीतिज्ञ को ही नहीं इस निर्णय में उन्हें भी शामिल होना चाहिए जो युद्ध के उपकरण बनाते हैं और उसी व्यवसाय में धन कुबेर बनना चाहते हैं भले ही असंख्यों के प्राण जांय और असंख्यों अनाथ बिलखें। यह व्यवसाय बड़ा घिनौना है और उससे भी बुरी बात यह है कि युद्ध का वातावरण बनाने के लिए आये दिन कहीं न कहीं कुछ न कुछ मार-काट मचाते रहा जाय। ऐसी स्थिति में ही दोनों पक्ष हथियार खरीदते हैं और चन्द व्यापारी मौत के सौदागर बनकर धनी बनते हैं।

इस वर्ग को भी हमारा निवेदन है कि समय रहते अपनी गतिविधियां बदल दें। अपने साधनों को एक ओर से समेट कर दूसरे कार्यों में लगायें। सृजन के अनेकानेक काम बाकी पड़े हैं। गरीबी, बेकारी, बीमारी, अशिक्षा से निपटने के लिए उपयोगी व्यापार हजारों हो सकते हैं। पशु पालन, सिंचाई, सफाई, बिजली, गृह उद्योग जैसे अगणित छोटे-बड़े काम मौजूद हैं जिनमें वह पूंजी लगाई जा सकती है जो विनाश के साधन विनिर्मित करने में लगी हुई है। अभी तो यही समझा जाता है कि यह धन कुबेर ही राजनेताओं पर दबाव डालकर—जहाँ-तहाँ छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ खड़ी कराने के निमित्त कारण हैं।

जो हो समझदारी हर किसी को अपनानी चाहिए। विशेषतया जिनका अनाचार समूची मानवता के प्रति अपराध करता है। ऐसे लोगों के लिए ही यह कहा गया है कि—"जो सताता है वह सताया जायगा जो मिटाता है वह मिटाया जायगा।

सूचना

वर्ष १९८६-८७ ई० (संवत् २०४३) का दृश्य गणित ब्रह्मवर्चस् पंचाङ्ग ब्रह्मवर्चस् शान्ति-कुंज हरिद्वार द्वारा प्रकाशित हो चुका है। मूल्य तीन रुपये। शान्ति-कुंज हरिद्वार से इसे प्राप्त किया जा सकता है। जिन्हें मँगाना हो वे केन्द्र से पत्र व्यवहार कर लें।

हमारी हार्दिक इच्छा यह है कि यह पंक्तियाँ उन शासनाध्यक्षों और उद्योगपतियों को पढ़ने को मिलें जो युद्ध के—विनाश के निमित्त अपने कौशल और साधन को नियोजित किये हुए हैं। काश, वे समय रहते इस सलाह को नहीं चेतावनी को ध्यान में रख सकें तो उनकी दिशा धारा बदलेगी। रीति-नीति में आमूल-चूल परिवर्तन होगा। वह परिवर्तन समूची मानव-जाति के भाग्य भविष्य का काया-कल्प कर सकने में समर्थ होगा। जिन्हें आज धरती पर रहने वाले शैतान समझा जाता है उन्हें बदली हुई परिस्थितियों में भगवान कहा जायगा।

एक मार्ग पर चलने वाला प्रवाह रोक कर यदि दूसरी दिशा में मुड़ेगा तो उसका परिणाम चमत्कारी होगा। करोड़ों को जिस चक्की में परोक्ष रूप से पिस रहे हैं या पिसने जा रहे हैं उनके चेहरों की उद्विग्नता को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि आशा, प्रगति और प्रसन्नता में बदला जा सके तो जिनके शिर पर आज विनाश के नियोजन का कलंक हैं उन्हें सृजन का श्रेय भी मिलेगा। क्योंकि शक्तियाँ स्थिर तो रहेंगी नहीं। समुद्र में डुबोई भी नहीं जा सकेंगी उन्हें विनाश से विरत किया जायगा तो सृजन में निरत हुआ जायगा। विज्ञान वैभव कौशल की क्षमताएँ यदि मानव जाति के अभिनव सृजन में—उत्कर्ष के उपयुक्त साधनों में नियोजित की जायगीं तो वातावरण कुछ से कुछ हो जायगा। नरक को स्वर्ग बनाना इसी को कहते हैं।

कहना चाहिए तो शिष्टाचार वश कहा जा रहा है। वास्तविकता यह है कि यही करना होगा। इच्छा से भी और अनिच्छा से भी सृष्टा का व्यवस्थाक्रम और प्रकृति का सन्तुलन ऐसा है जिसमें समय-समय दुर्बुद्धिग्रस्त को सीधी राह पर खड़ा किया है। इस बार भी वे अपना काम करने और उलटों को उलटकर सीधा बनाने में लग पड़ी हैं। अच्छा हो प्रताड़ना और विवशता से बदलने की अपेक्षा दूरदर्शिता अपनाते हुए ही—सोचने का तरीका और काम करने का ढंग बदल लिया जाय।

अवन्तिका नगरी के समीप जंगल में कुछ ग्वाले पशु चराने जाया करते थे। उस क्षेत्र में एक ऊँचा टीला था। टीले पर जब कोई लड़का बैठ जाता तो बड़े विद्वानों जैसी बातें करता। नीचे उतरते ही उसकी स्थिति पूर्ववत् हो जाती। समझा गया कि टीले में कोई करामात है। सूचना राजा भोज के पास पहुँचाई गई। टीले को खोदने और उसके भीतर कोई विलक्षणता हो तो खोज निकालने की आज्ञा हुई।

टीला खोदा गया। उसके नीचे एक स्वर्ण सिंहासन निकला। उसके बत्तीस पाये थे, जो पुतली आकृति के बने हुए थे। राजा भोज ने उसे अपने बैठने के लिए उपयुक्त समझा सो एक दिन इसके लिए निर्धारित हो गया।

राजा ने जैसे ही सिंहासन पर पैर रखा, पायों में लगी एक पुतली बोलने लगी अरे यह सिंहासन राजा विक्रम का है, वे बहुत गुणवान थे। उनके बत्तीस गुणों की प्रतिनिधि एक-एक पुतली है। यदि आप में वे गुण हों तो ही इस सिंहासन पर बैठना। भोज के पूछने पर एक पुतली ने एक गुण का संस्मरण सुनाया। राजा में वे गुण न थे इसलिये वे असमंजस में पड़े और मुहूर्त कल के लिये हटा दिया गया। दूसरे दिन दूसरी पुतली ने, तीसरे दिन तीसरी पुतली ने एक-एक गुण से सम्बन्धित संस्मरण सुनाये। इस प्रकार बत्तीस पुतलियों को अपने-अपने संस्मरण सुनाते हुए बत्तीस दिन बीत गये। राजा साहस पूर्वक यह न कह सके कि उनमें वे गुण हैं। अस्तु बत्तीसों पुतलियाँ मिल कर उस सिंहासन को आसमान में उड़ा ले गईं।

शासक में कितने सद्गुण होने चाहिये इस कथान्तर का यही अभिप्राय है। तभी उसकी प्रजा सुखी रह सकती है। यही बात सुव्यवस्थित परिवार के गृहपति पर भी लागू होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनों से अपनी बात

गुरुदेव का श्रावणी सन्देश

गुरुदेव की सूक्ष्मीकरण एकान्त साधना को प्रायः डेढ़ वर्ष हो चला। इस बीच उनकी ढलती आयु और प्रचण्ड तपश्चर्या को देखते हुए प्रत्यक्ष स्वास्थ्य बहुत अधिक नहीं लड़खड़ाया है। चेतना शरीर तो और भी अधिक बलिष्ठ समर्थ एवं तेजस्वी हो गया है। उनकी संरक्षक शक्ति का प्रताप देखते हुए हम सब को किसी चिन्ता की आवश्यकता नहीं। वे अनवरत क्रम से अपने मार्ग पर चल रहे हैं। निर्धारित लक्ष्य को पूरा करके रहेंगे इतनी निश्चिन्तता हमें रहनी ही चाहिए।

श्रावणी पर्व पर उनने एक अँगड़ाई ली है। प्रज्ञा मिशन की ओर ध्यान दिया है और भावनाशील परिजनों को भी उनने स्मरण किया है। सभी के कुशल समाचार पूछे और मनःस्थिति एवं परिस्थिति का लेखा-जोखा लिया है। साथ ही उनके उज्ज्वल भविष्य की संरचना का आश्वासन भी दिया है। इसके अतिरिक्त परिजनों के प्रति निजी अभिव्यक्ति का पौन घण्टे का वीडियो टेप भी कराया है। इसके उपरान्त वे अपनी प्रचण्ड साधना में फिर पहले की ही भाँति लग गये हैं। विश्व की विषम परिस्थिति का सन्तुलन बिठाने के लिए इससे कम ऊर्जा से काम चलने वाला भी नहीं है।

यह गुरुदेव की हीरक जयन्ती का वर्ष है। इसमें प्रायः छै महीने बीत चुके और लगभग इतने ही दिन शेष हैं। यह शानदार वर्ष सभी परिजनों के लिए हर दृष्टि से सौभाग्य सूचक और उत्साहवर्धक है। सभी के मन में इस अवसर पर कुछ करने की उमंग है। साधारणतया हर्षोत्सवों पर धूमधाम भरे सज्जा सम्मेलन और यज्ञादि कर्मकाण्ड होते रहते हैं। इस सन्दर्भ में गुरुदेव ने आरम्भ में ही अनिच्छा व्यक्त कर दी है और कहा कि इस महत्वपूर्ण बेला को इतने सस्ते में न निपटाया जाय। जिन्हें करना हो वे कुछ ऐसा ठोस काम करें जिसका प्रभाव जन मानस के परिष्कृत करने के लक्ष्य की पूर्ति में महती भूमिका निभायें और उसका प्रत्यक्ष दर्शन प्रेरणाप्रद स्वरूप में चिरकाल तक होता रहे।

अधिक पूछने पर उनने कहा—हमारे जीवन के अनेकानेक कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण कार्य एक था—२४ प्रज्ञा पीठों का निर्माण। देवालयों की दृष्टि से वे भली प्रकार विनिर्मित हो गये। अनेकों का हमने स्वयं जाकर उद्घाटन भी किया। इमारतों की दृष्टि से मध्यवर्गी परिजनों का इतना साहस भी कम सराहनीय नहीं है।

जिस प्रयोजन के लिए जिन आशाओं के साथ यह निर्माण हुआ, उसके पीछे एक दूरगामी चेतना उभारने वाला लक्ष्य भी था। आशा करली गई थी कि प्रत्येक प्रज्ञापीठ स्थानीय क्षेत्र में नव जीवन का संचार ही नहीं करेगा, वरन् समीपवर्ती गाँवों को भी अपनी सेवा परिधि में लेकर एक मण्डल का केन्द्र बनायेगा। उनकी रचनात्मक प्रयत्नों से ट्यूबवैल जैसी हरितिमा उगी दूर-दूर तक दिखाई देगी। वे विद्युत उत्पादक, जेनरेटर बनकर अपने दायरे में आलोक वितरण करेंगे। प्राचीन काल में देव मन्दिर जनमानस में धर्मधारणा को गहराई तक प्रवेश कराते थे और लोकोपयोगी सत्प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनाने में वे प्राणपण से संलग्न रहते थे। उनके द्वारा उत्पन्न की गई लोक सेवकों की संगठना अनर्थ अनौचित्यों के पैर नहीं जमने देती थीं। प्रज्ञापीठें ऐसी ही हलचलों की केन्द्र बनकर रहेंगी, ऐसी आशा अपेक्षा की गई थी।

पर लगता है वस्तुस्थिति को और भावी जिम्मेदारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को समझे बिना ही आतुरता में चन्दे के बल पर देवालय बन गये और कार्य समाप्त हुआ मान लिया गया। यही कारण है कि विनिर्मित प्रज्ञा पीठों में भाव भरा जीवन संचार नहीं हो रहा है। उत्पादित इन बालकों को पक्षाघात जैसा कुछ होता जा रहा है। वे चलते-फिरते, हँसते खेलते, बोलते-चलते नहीं दीखते परिस्थिति को देखते हुए गुरुदेव को व्यथा होती है और चोट लगती है। निर्जीवता के महौल के बदले जाने और सजीवता उत्पन्न होने की आशा करते है।

हीरक जयन्ती वर्ष में समारोह के लिए गुरुदेव ने मना इसीलिए कर दिया है कि यदि प्रदर्शन और हुल्लड़ कोई ठोस काम होने की भूमिका नहीं बना सकते तो उनके निमित्त किया गया श्रम और खर्चा गया धन निरर्थक है।

इन निराशाजनक परिस्थितियों में भी एक आशा की नई किरण उनके मन में कौंध रही है। उसी का आभास उनने इस श्रावणी पर्व पर दिया है। वे चाहते हैं बन चुके प्रज्ञा पीठों को हिलाते जुलाते रहा जाय ताकि उनकी मूर्च्छना हटे और प्राण चेतना के लक्षण प्रकटें।

साथ ही उनकी एक और इच्छा भी है कि २४ लाख के विशालकाय परिवार में से कम से कम दस हजार व्यक्ति ऐसे निकलें, जिन्हें ईंट चूने से नहीं हाड़मांस से बने, भावनाशील और क्रियाशील शक्ति पीठ कहा जा सके जो सक्रिय भी हों और गतिशील भी।

गाँधी के सत्याग्रही बुद्ध के परिव्राजक, विनोबा के सर्वोदयी, सुग्रीव के रीछ वानर और गोपाल के ग्वाल-बाल कोई बहुत बड़ी प्रतिभा और परिस्थिति के नहीं थे, पर जब उन्होंने एक केन्द्र के तत्वावधान में रहकर परमार्थ प्रयोजन में अपने को समर्पित किया तो इन्हें इतना बड़ा श्रेय मिला जितना देवताओं को मिलता है

प्रज्ञा परिवार के पंजीकृत सदस्य प्रायः २४ लाख हैं। इनमें से मात्र दस हजार निकल कर अगली पंक्ति में आयें जिन्हें सच्चे अर्थों में युग शिल्पी, प्रज्ञापुत्र एवं व्रतधारी कहा जा सके। उन्हें घर छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाने के लिए नहीं कहा जा रहा है। बल्कि यह आह्वान किया जा रहा है कि न्यूनतम दो चार घण्टे का समय एवं बीस पैसे नित्य युगान्तरीय चेतना को गतिशील बनाने में संकल्प पूर्वक लगाते रहें। इतने में ही वे उस पंक्ति में गिने जा सकने योग्य बन जायेंगे जैसों की कि गुरुदेव ने इस बार अपेक्षा की है।

समय किसी के पास भी चौबीस घण्टे से कम नहीं। इसका सही विभाजन करके सही काम में लाते हुए सामान्य व्यक्ति महान कार्य कर गुजरते हैं जब कि व्यस्तता की गुहार लगाते हुए कितने ही अनगढ़ और आलसी अपना समय गँवाते हैं और उन समस्याओं को भी नहीं सुलझा पाते जिनकी आड़ में वे मानवी गरिमा को सार्थक करने वाले कार्यों से कतराते और आँख चुराते रहते हैं।

रोज कुआँ खोदने और रोज पानी पीने वाले को भी आठ घन्टा कमाने के लिए—सात घन्टा सोने के लिए—पाँच घण्टा नित्य कर्म तथा अन्याय इधर-उधर के कामों के लिए छोड़ कर विशुद्ध रूप से चार घन्टे बचते हैं। इसी में से संकल्पपूर्वक दो से लेकर चार घन्टे तक युग धर्म के निर्वाह में लगाते रहा जाय तो स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही साथ-साथ सधते रह सकते हैं। जो इतना समयदान अनुदान प्रस्तुत कर सकें उन्हें जीवन्त प्रज्ञापीठ या वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र कहा जा सकेगा। ऐसे लोग मात्र अपने प्रयास से ही इतना काम कर गुजर सकते हैं जितने कि भव्य इमारतों वाली प्रज्ञा पीठों से की गई थी।

अर्थोपाजन और परिवार निर्वाह के अतिरिक्त दो चार घन्टे का समय भगवान के लिए, देश धर्म, समाज संस्कृति के लिए, गुरुदेव के लिए, युग परिवर्तन के लिए लगाकर कोई व्यक्ति घाटे में नहीं रहेगा वरन् अपने त्याग की तुलना में अनेक गुना भण्डार भरेगा। इसके साथ ही अप्रैल अखण्ड-ज्योति अंक में छपे गुरुदेव के 'बोया काटा' लेख को कईबार पढ़कर सत्परिणाम के सम्बन्ध में सुनिश्चित विश्वास किया जा सकता है।

इन घण्टों में क्या किया जाना चाहिए। यह अनेकों बार बताया जा चुका है। झोला पुस्तकालय, चल पुस्तकालय, कार्यकर्ताओं के जन्म दिन, दीवारों पर आदर्श वाक्य, मुहल्लों में स्लाइड प्रोजेक्टर प्रदर्शन, टेप रिकार्डर से गुरुदेव के नवीनतम प्रवचनों को सुनाया जाना, प्रज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराण के चार खण्ड छप चुके हैं उनकी कथाएँ, युग गीतों के टैप प्रातःकाल सुनाने के लिए किसी ऊँचे स्थान पर लाउडस्पीकर फिट करना और टैप से युग कीर्तन बिस्तर पर पड़ेहुओं को भी सुनाना, यह वे कार्यक्रम हैं, जिन्हें वर्णमाला अभ्यास के समतुल्य समझा जा सकता है। भारी भरकम, बोझिल और विशालकाय कार्य इतना कर चुकने के पश्चात् ही किसी को सौंपे जा सकते हैं। समर्थता की प्रारम्भिक सीढ़ी पार कर लेने पर ही विशालकाय क्रिया-कलापों का बोझ उठ सकता है।

उपरोक्त समूची योजना के लिए आवश्यक उपकरण खरीदने के लिए प्रायः पाँच हजार की राशि चाहिए। कुछ उपकरण पहले से ही हों तो उतनी राशि से कम से भी काम चल सकता है (१) झोला पुस्तकालय—चल पुस्तकालय, ज्ञानरथ, लाउडस्पीकर, स्लाइड प्रोजैक्टर, समग्र यज्ञशाला, वीडियो टैप, सुगमसंगीत के वाद्ययन्त्र आदि ऐसी वस्तुएँ हैं जिनकी प्रचार कार्य में आयेदिन आवश्यकता रहती है। वे न हों तो साधन हीन व्यक्ति का प्रचार कार्य आधा अधूरा बनकर रह जाता है।

इनके निमित्त राशि जुटाई ही जानी चाहिए। अपने पास से, मित्रों पर दबाव देकर, बर्तन बेचकर या कर्ज लेकर किसी न किसी प्रकार इतने साधनों की व्यवस्था करनी चाहिए और मन समझाने को सोचा जाना चाहिए कि कोई आकस्मिक आपत्ति आ गई थी और उसमें इतना पैसा लग गया। इन सभी के लिये मेण्टेनेन्स का खर्च बीस पैसा रोज के अंशदान की राशि से निकल सकता है। ईंट चूने की शक्ति पीठों में लाखों की राशि जुट जाय और हाड़मांस की बोलती चलती जीवन्त शक्ति पीठ के लिए आवश्यक उपकरणों के निमित्त उतनी छोटी राशि भी न जुट सके, ऐसा हो ही नहीं सकता।

स्थिर विनिर्मित प्रज्ञापीठों में निर्माण कर्त्ताओं ने स्वयं समय नहीं दिया। नौकरों से, बूढ़े बीमारों से, अनपढ़ अनगढ़ों से काम करवाया फलतः उसका कुछ निष्कर्ष न निकला। व्यक्ति की अपनी निज की प्रतिभा का अतिरिक्त मूल्य होता है। अनुपयुक्त व्यक्ति छोटे-मोटे काम भी नहीं कर पाता जबकि सुयोग्य व्यक्ति रास्ता चलते अनेकों काम बना कर रख देता है। अस्तु यह आवश्यक है कि नव सृजन का वातावरण बनाने के लिए कार्यक्रम चलाने के लिए वरिष्ठ कार्यकर्ता स्वयं आगे बढ़ें और देखें कि उन्हें कितने नये सहयोगी धड़ाधड़ मिलते चले जाते हैं और युग चेतना का प्रकाश उस समूचे क्षेत्र को किस प्रकार ज्योतिर्मय बनाता है।

प्रज्ञा परिवार के जो भी सदस्य इन पंक्तियों को पढ़ें, यह युग निमन्त्रण सीधा उन्हीं के नाम भेजा गया है। गुरुदेव की हीरक जयन्ती इन्हीं दिनों दस हजार प्रज्ञा पुत्रों को जीवन्त प्रज्ञा संस्थान के रूप में खड़े होते देखना चाहती है। गुरुदेव दस हजार मनकों का हार अपने गले में पहनना चाहते हैं। अपना नाम अगली पंक्ति में लिखा कर औरों को भी परिजनों द्वारा अनुकरण की प्रेरणा दी जानी चाहिए।

●

आवश्यक ज्ञातव्य

जैसा कि पूर्व अंकों में सूचित किया गया था। प्रज्ञा पुराण के तीन और खण्ड "महामानव प्रकरण" "परिवार निर्माण प्रकरण" एवं "देव संस्कृति प्रकरण" पर प्रज्ञोपनिषद् एवं कथाओं के अनूठे समन्वय के रूप में गायत्री तपोभूमि मथुरा से प्रकाशित हो चुके हैं लगभग ३२५ अखण्ड-ज्योति पृष्ठों में प्रत्येक सजिल्द खण्ड में सामग्री आ पाई है। मूल्य प्रत्येक का २५) रक्खा गया है। इनका गुजराती अनुवाद भी शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रजिस्टर्ड नं० एम·टी·आर·९८
केवल वार्षिक ग्राहकों के लिये
अखण्ड-ज्योति मासिक
रजि० नं० आर·एन·२१६२ / ५२
लाइसेन्स संख्या एम·टी·आर·८
डाक व्यय की पहले अदायगी किए बिना
डाक मे डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❋ जीवन-ज्योति-प्रदाता ❋

तप के धनी, ज्ञान के सागर, चिन्तन के उद्‌गाता।
युग द्रष्टा, युग स्रष्टा, प्रेरक, जीवन-ज्योति प्रदाता॥

पथ के गीध, शिला, शबरी को पावन प्यार लुटाते।
चले जा रहे महाप्राण, करुणा की किरण उगाते॥
अन्धकार में घिरे मनुज को ज्ञान मशाल थमाये।
श्वास-श्वास को चले होमते, यज्ञ-ज्वाल धधकाये॥
सोई संसृति को जागृति का जीवन-घूँट पिलाते।
ध्यान-मग्न, एकाकी पथ पर आगे कदम बढ़ाते॥
अन्ध अनय के लिए मन्युवत् न्याय-नीति के त्राता।
तप के धनी, ज्ञान के सागर, चिन्तन के उद्‌गाता॥

संस्कृति-सीता, शान्ति-सभीता को अब मुक्ति दिलाने।
लिये अखण्ड-ज्योति-सा जीवन, युग का तिमिर मिटाने॥
चले जा रहे देव, लक्ष्य की सीमाओं से आगे।
सोये नहीं एक पल को भी, नींद जीतकर जागे॥
चिन्तन चरण वहाँ जा पहुँचे, जहाँ न कोई साथी।
साथी बनी राह में छायी, केवल गहन निशा थी॥
धर्म-साधना अर्पित जीवन, साधक, सृजक विधाता।
तप के धनी, ज्ञान के सागर, चिन्तन के उद्‌गाता॥

इसीलिए करुणार्द्र हृदय ने निशि को नहीं मिटाया।
दो रातों के बीच सन्त ने दिन का दिया जलाया॥
विश्वामित्र, वशिष्ठ, व्यास की परम्परा का पानी।
गंगा की अबाध धारा-सा बढ़ता रहे अमानी॥
उस सीमा तक लिये जा रहे तप की अमर कहानी।
साथ न कोई जहाँ पहुँचकर आज करे अगवानी॥
चिन्तन जाग रहा जन-जन में जीवन-ज्योति जगाता।
तप के धनी, ज्ञान के सागर, चिन्तन के उद्‌गाता॥

आप्त पितर फूले न समाते, गर्वित माथ उठाये।
आशीषों की वर्षा कर आनन्द अश्रु भर लाये॥
पुलकित प्राण आर्ष संस्कृति के, मुक्त ऋचायें गायें।
खड़ा हिमालय शीश उठाकर कीर्ति ध्वजा फहराये॥
भव्य भारती भरे भाव से पुलक-पुलक बलि जाये॥
तप की गाथा प्रलय काल तक स्वयं शारदा गाये॥
अमृत का पिघलाव प्राण से उमड़-घुमड़ उफनाता।
तप के धनी, ज्ञान के सागर, चिन्तन के उद्‌गाता॥

—लाखनसिंह भदौरिया

...क - भगवती देवी शर्मा प्रकाशक मुद्रक - मृत्युंजय शर्मा, अखण्ड - ज्योति संस्थान द्वारा
जन जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Entered in Database

Signature with Date 26/12/04

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri